नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 38



आगम ४४

"नन्दीसूत्रं" मूलं एवं वृत्तिः

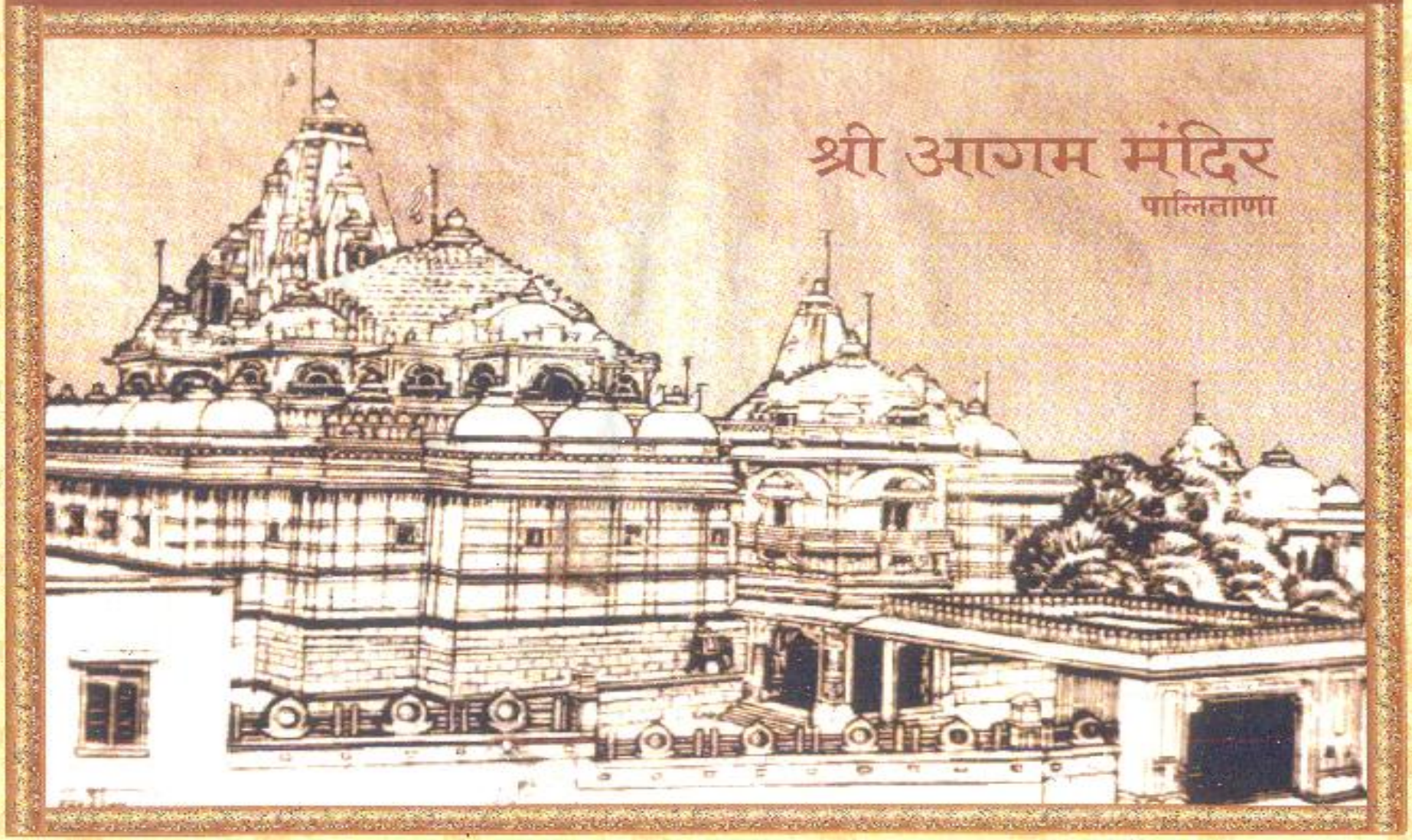
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

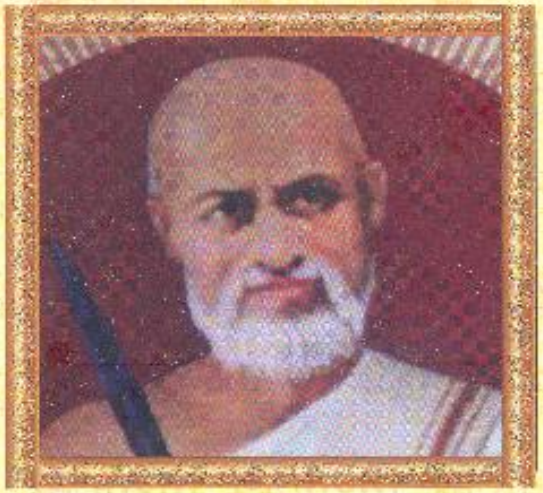
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

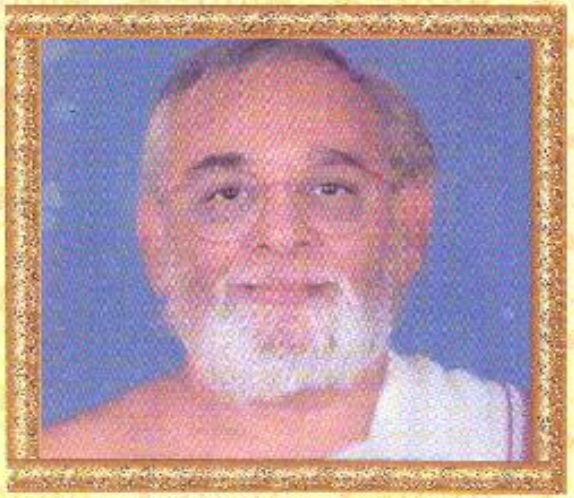
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-३८] नन्दी (चूलिकासूत्रम्-१)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"नन्दीसूत्रं" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + मलयगिरिसूरि-रचिता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-38

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है , फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये , तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा , सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे , उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी , जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली , बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही , साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो , मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी , [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ | *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य , शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

*** *मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

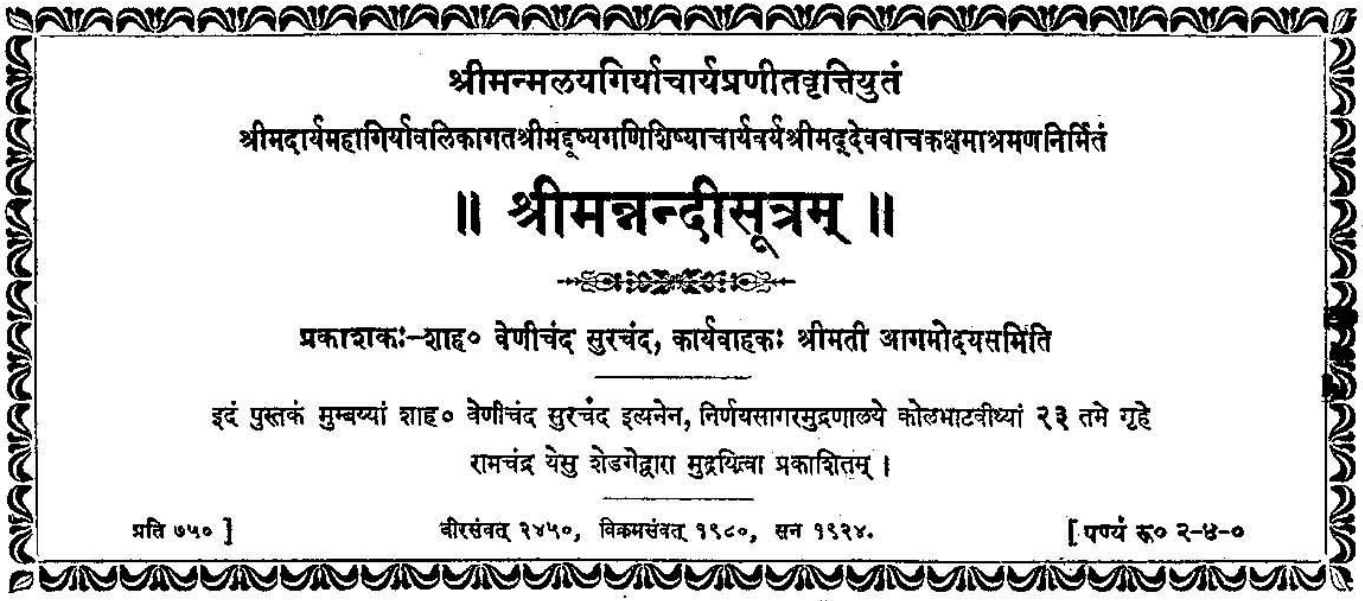
(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

आगम (४४)	[भाग-३८] "नन्दी"– चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्ति:) ..... मूलं [–] .....
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:
	नन्दी-सूत्रस्य मूल "टाइटल पेज"



श्रीमन्मलयगिर्याचार्यप्रणीतवृत्तियुतं

श्रीमदार्यमहागिर्यावलिकागतश्रीमद्दूष्यगणिशिष्याचार्यवर्यश्रीमद्देववाचकक्षमाश्रमणनिर्मितं

॥ श्रीमन्नन्दीसूत्रम् ॥

प्रकाशकः–शाह० वेणीचंद सुरचंद, कार्यवाहकः श्रीमती आगमोदयसमिति

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां शाह० वेणीचंद सुरचंद इत्यनेन, निर्णयसागरमुद्रणालये कोलभाटवीथ्यां २३ तमे गृहे रामचंद्र येसु शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

प्रति ७५०] वीरसंवत् २४५०, विक्रमसंवत् १९८०, सन १९२४. [पण्यं रू० २-४-०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलाङ्का:	नन्दी चूलिका-सूत्रस्य विषयानुक्रम								दीप-अनुक्रमा:	
मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१-	नन्दी-सूत्रं	००८			➔ श्रोता, पर्षदा	११५			➔ मतिश्रुत ज्ञान वर्णनं	२८६
	➔ वीरस्तुति	००८			➔ ज्ञानस्य भेदा:	१३६			➔ अङ्गप्रविष्ठसूत्र वर्णनं	४२४
	➔ संघस्तुति	०९१			➔ अवधिज्ञान वर्णनं	१५९			----------	
	➔ जिन व गणधरवंदना	१०१			➔ मन:पर्यवज्ञान-वर्णनं	२०५		०१-	अनुज्ञानन्दी – परिशिष्ठं १	५०९
	➔ स्थविरावली	१०३			➔ केवलज्ञान-वर्णनं	२२९		०१--	योगनन्दी- परिशिष्ठं	५१४
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:										

[नन्दीसूत्र- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "नन्दीसूत्र" के नामसे सन १९२४ (विक्रम संवत १९८०) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवाके, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

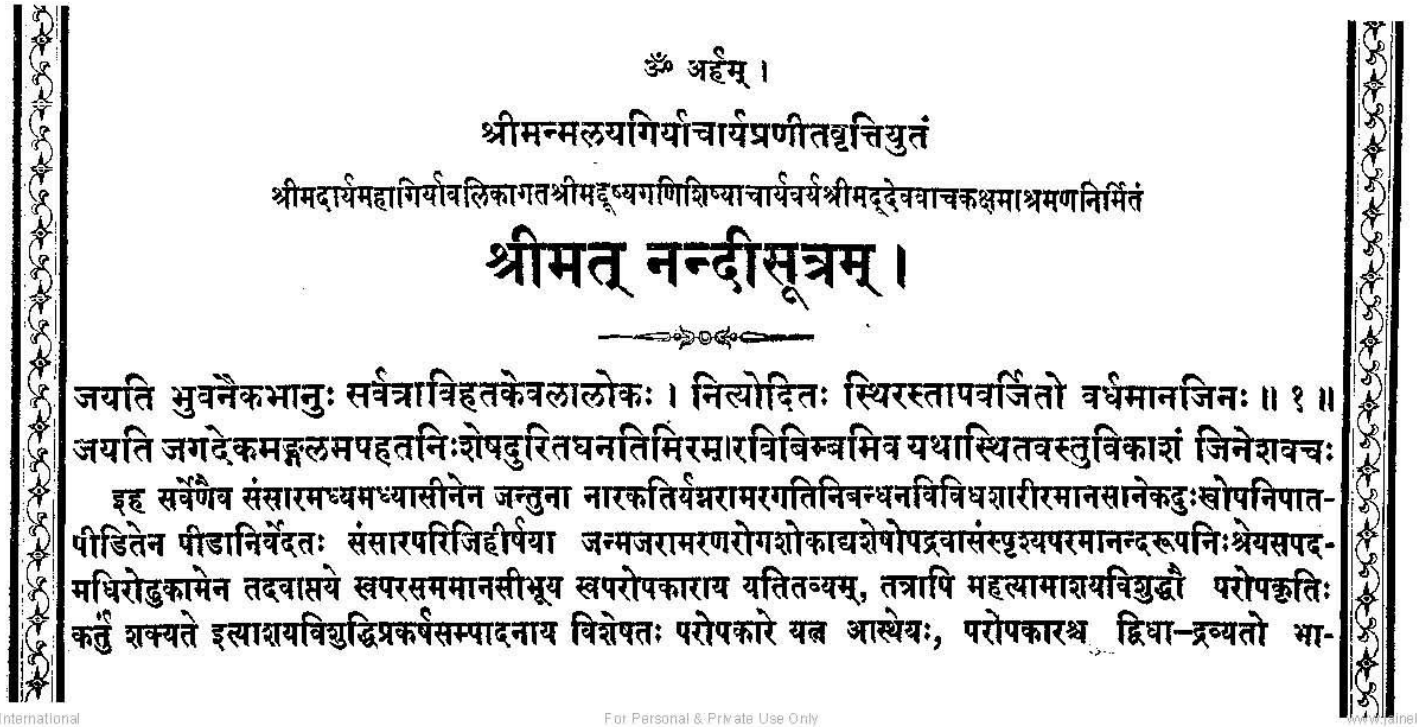
इसी नन्दीसूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से दुसरोने भी भी प्रकाशित करवाई है, किसीने पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है तो किसीने अपना नाम आगे कर दिया है और पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजीका नाम गौण कर दिया है या उड़ा दिया है |

✤ हमारा ये प्रयास क्यों? ✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-३८ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



ॐ अर्हम् ।

श्रीमन्मलयगिर्याचार्यप्रणीतवृत्तियुतं

श्रीमदार्यमहागिर्यावलिकागतश्रीमद्दूष्यगणिशिष्याचार्यवर्यश्रीमद्देववाचकक्षमाश्रमणनिर्मितं

श्रीमत् नन्दीसूत्रम् ।

जयति भुवनैकभानुः सर्वत्राविहतकेवलालोकः । नित्योदितः स्थिरस्तापवर्जितो वर्धमानजिनः ॥ १ ॥
जयति जगदेकमङ्गलमपहतनिःशेषदुरितघनतिमिरमारविबिम्बमिव यथास्थितवस्तुविकाशं जिनेशवचः
इह सर्वेणैव संसारमध्यमध्यासीनेन जन्तुना नारकतिर्यङ्नरामरगतिनिबन्धनविविधशारीरमानसानेकदुःखोपनिपात-
पीडितेन पीडानिर्वेदतः संसारपरिजिहीर्षया जन्मजरामरणरोगशोकाद्यशेषोपद्रवासंस्पृश्यपरमानन्दरूपनिःश्रेयसपद-
मधिरोढुकामेन तदवाप्तये स्वपरसममानसीभूय स्वपरोपकाराय यतितव्यम्, तत्रापि महत्यामाशयविशुद्धौ परोपकृतिः
कर्तुं शक्यते इत्याशयविशुद्धिप्रकर्षसम्पादनाय विशेषतः परोपकारे यत्न आस्थेयः, परोपकारश्च द्विधा–द्रव्यतो भा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	वृत्तिकार-कृत् मांगलिकम् एवं प्रस्तावना

वतश्च, तत्र द्रव्यतो विविधान्नपानकाञ्चनादिप्रदानजनितः, स च नैकान्तिकः, कदाचित्ततो विसूचिकादिदोषसम्भवतः उपकारासम्भवात्, नाप्यात्यन्तिकः कियत्कालमात्रभावित्वात्, भावतो जिनप्रणीतधर्मसम्पादनजनितः, स चैकान्तिकः, कदाचिदपि ततो दोषासम्भवात्, आत्यन्तिकश्च, परम्परया शाश्वतिकमोक्षसौख्यसम्पादकत्वात्, जिनप्रणीतोऽपि च धर्मो द्विधा–श्रुतधर्म्मश्चारित्रधर्म्मश्च, तत्र श्रुतधर्म्मः स्वाध्यायः, चारित्रधर्म्मः क्षान्त्यादिरूपो दशधा श्रमणधर्म्मः, उक्तं च—'सुयधम्मो सज्झाओ चरित्तधम्मो समणधम्मो' तत्र श्रुतधर्म्मसम्पत्समन्विता एव प्रायश्चारित्रधर्म्माभ्युपगमयथावत्परिपालनसमर्था भवन्तीति प्रथमतस्तत्प्रदानमेव न्याय्यं, तत्र परमार्हन्त्यमहिमोपशोभितभगवद्वर्द्धमानस्वामिनिवेदितमर्थमवधार्य गणभृत्सुधर्म्मस्वामिना तत्सन्तानवर्त्तिभिश्चान्यैरपि सूत्रप्रदानमकारि, न च सूत्रादविज्ञातार्थादभिलषितार्थावाप्तिरुपजायते ततः प्रारम्भणीयः प्रवचनानुयोगः, स च परमपदप्राप्तिहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतः, श्रेयांसि च बहुविघ्नानि भवन्ति, यत उक्तम्—"श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि। अश्रेयसि प्रवृत्तानां, क्वापि यान्ति विनायकाः ॥ १ ॥" इति, ततोऽस्य प्रारम्भ एव सकलप्रत्यूहोपशमनाय मङ्गलाधिकारे नन्दिर्वक्तव्यः। अथ नन्दिरिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, 'टुनदु समृद्धा'वित्यस्य 'धातोरुदितो न' मिति नमि विहिते नन्दनं नन्दिः प्रमोदो हर्ष इत्यर्थः, नन्दिहेतुत्वात् ज्ञानपञ्चकाभिधायकमध्ययनमपि नन्दिः, नन्दन्ति प्राणिनोऽनेनास्मिन्वेति वा नन्दिः–इदमेव प्रस्तुतमध्ययनम्, आविष्टलिङ्गत्वाच्चाध्ययनेऽपि प्रवर्त्तमानस्य नन्दिशब्दस्य पुंस्त्वम्, 'इः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वधातुभ्यः' इत्यौणादिक इप्रत्ययः, अपरे तु नन्दीति पठन्ति, ते च 'इक् कृष्यादिभ्य' इति सूत्रादिक्प्रत्ययं समानीय स्त्रीत्वेऽपि वर्त्तयन्ति, ततश्च 'इतोऽत्तयर्थादि' ति ङीप्रत्ययः, स च नन्दिश्चतुर्द्धा, तद्यथा–नामनन्दिः स्थापनानन्दिः द्रव्यनन्दिः भावनन्दिश्च, तत्र नामनन्दिर्यस्य कस्यचिज्जीवस्याजीव(स्योभयस्य)स्य वा नन्दिशब्दार्थरहितस्य नन्दिरिति नाम क्रियते स नाम्ना नन्दिर्नामनन्दिः, यद्वा नामनामवतोरभेदोपचारान्नाम चासौ नन्दिश्च नामनन्दिः, नन्दिरिति नामवान्नामनन्दिः, तथा सद्भावमाश्रित्य लेप्यकर्म्मादिष्वसद्भावं चाश्रित्याक्षवराटकादिषु भावनन्दिमतः साध्वादेर्वा स्थापना स स्थापनानन्दिः,अथवा द्वादशविधतूर्यरूपद्रव्यनन्दिस्थापना स्थापनानन्दिः,द्रव्यनन्दिर्द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो नन्दिपदार्थस्य ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः, 'अनुपयोगो द्रव्य'मिति वचनात्, नोआगमतस्तु त्रिधा, तद्यथा–ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिर्भव्यशरीरद्रव्यनन्दिर्ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यनन्दिश्च,तत्र यन्नन्दिपदार्थज्ञस्य व्यपगतजीवितस्य शरीरं सिद्धशिलातलादिगतं तद् भूतभावतया ज्ञशरीरद्रव्यनन्दिः, यस्तु बालको नेदानीं नन्दिशब्दार्थमवबुध्यते अथ चावश्यमायत्यां तेनैव शरीरसमुच्छ्रयेण भोत्स्यते स भाविभावनिबन्धनत्वाद्भव्यशरीरद्रव्यनन्दिः, इह हि यद् भूतभावं भाविभावं वा (योग्यं) वस्तु तद्यथाक्रमं विवक्षितभूतभाविभावापेक्षया द्रव्यमिति तत्त्ववेदिनां प्रसिद्धिमुपागमत्, उक्तं च—"भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्॥ १ ॥" ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तस्तु द्रव्यनन्दिः क्रियाऽऽविष्टो द्वादशविधतूर्यसमुदायः, उक्तं च—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २ ॥

"दव्वे तूरसमूदओ" तानि च द्वादश तूर्याण्यमूनि—"भंभा मुकुंदे महले कडंबे झल्लेरि हुडुक्के कंसाले। काहल तलिमा वंसो संखो पणवो य बारसमो ॥ १ ॥" भावनन्दिर्द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो नन्दिपदार्थस्य ज्ञाता तत्र चोपयुक्तः, 'उपयोगो भावनिक्षेप' इति वचनात्, नोआगमतः पञ्चप्रकारज्ञानसमुदयः, 'भावम्मि य पञ्चनाणाइं' इति वचनात्, अथवा पञ्चप्रकारज्ञानस्वरूपमात्रप्रतिपादकोऽध्ययनविशेषो भावनन्दिः, नोशब्दस्यैकदेशवचनत्वात्, अस्य चाध्ययनस्य सर्वश्रुतैकदेशत्वात्, तथाहि–अयमध्ययनविशेषः सर्वश्रुताभ्यन्तरभूतो वर्त्तते, तत एकदेशः, अत एव चायं सर्व्वश्रुतस्कन्धारम्भेषु सकलप्रत्यूहनिवृत्तये मङ्गलार्थमादौ तत्त्ववेदिभिरभिधीयते, अस्य च मङ्गलस्थानप्राप्तस्य व्याख्याप्रक्रमे पूर्वसूरयो विनेयानां सूत्रार्थगौरवोत्पादनार्थमविच्छेदेन तीर्थकराद्यावलिका आचक्षते, तत आचार्योऽपि देववाचकनामा ज्ञानपञ्चकं व्याचिख्यासुः प्रथमत आवलिका अभिधित्सुरविघ्नेन अध्यापकश्रावकपाठकचिन्तकानामभिलषितार्थसिद्धये 'अनादिमन्तस्तीर्थकरा' इतिज्ञापनार्थं सामान्यतो भगवत्तीर्थकृत्स्तुतिमभिधातुमाह—

जयइ जगजीवजोणीवियाणओ जगगुरू जगाणंदो। जगणाहो जगबंधू जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥१॥

इह स्तुतिर्द्विधा–प्रणामरूपा असाधारणगुणोत्कीर्त्तनरूपा च, तत्र प्रणामरूपा सामर्थ्यगम्या, यथा च सामर्थ्य-

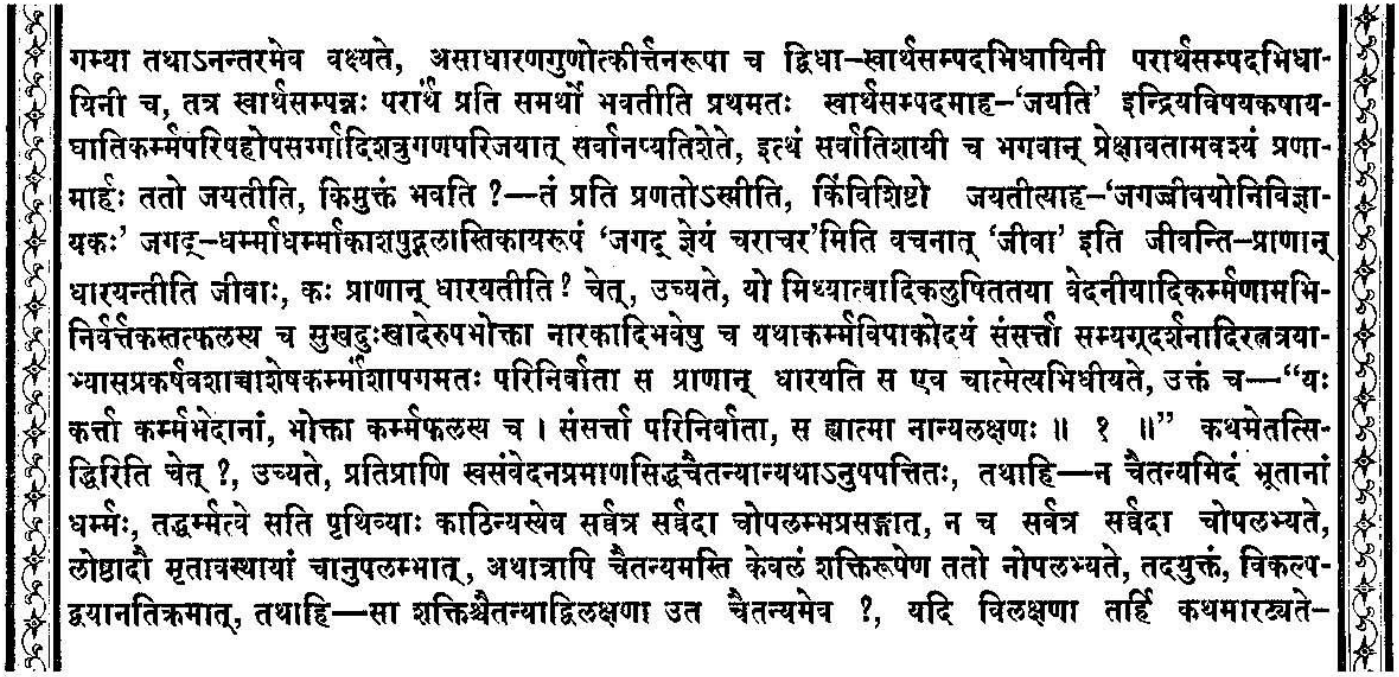
१ द्रव्ये तूर्यसमुदयः।

नन्दीनिक्षेपाः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवत् तिर्थकर (सामान्य) स्तुति

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



गम्या तथाऽनन्तरमेव वक्ष्यते, असाधारणगुणोत्कीर्त्तनरूपा च द्विधा–स्वार्थसम्पदभिधायिनी परार्थसम्पदभिधायिनी च, तत्र स्वार्थसम्पन्नः परार्थं प्रति समर्थो भवतीति प्रथमतः स्वार्थसम्पदमाह–'जयति' इन्द्रियविषयकषायघातिकर्म्मपरिषहोपसर्ग्गादिशत्रुगणपरिजयात् सर्वानप्यतिशेते, इत्थं सर्वातिशायी च भगवान् प्रेक्षावतामवश्यं प्रणामार्हः ततो जयतीति, किमुक्तं भवति ?—तं प्रति प्रणतोऽस्मीति, किंविशिष्टो जयतीत्याह–'जगज्जीवयोनिविज्ञायकः' जगद्–धर्म्माधर्म्माकाशपुद्गलास्तिकायरूपं 'जगद् ज्ञेयं चराचर'मिति वचनात् 'जीवा' इति जीवन्ति–प्राणान् धारयन्तीति जीवाः, कः प्राणान् धारयतीति ? चेत्, उच्यते, यो मिथ्यात्वादिकलुषिततया वेदनीयादिकर्म्मणामभिनिर्वर्त्तकस्तत्फलस्य च सुखदुःखादेरुपभोक्ता नारकादिभवेषु च यथाकर्म्मविपाकोदयं संसर्त्ता सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयाभ्यासप्रकर्षवशाच्चाशेषकर्म्मांशापगमतः परिनिर्वाता स प्राणान् धारयति स एव चात्मेत्यभिधीयते, उक्तं च—"यः कर्त्ता कर्म्मभेदानां, भोक्ता कर्म्मफलस्य च । संसर्त्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥" कथमेतत्सिद्धिरिति चेत् ?, उच्यते, प्रतिप्राणि स्वसंवेदनप्रमाणसिद्धचैतन्यान्यथाऽनुपपत्तितः, तथाहि—न चैतन्यमिदं भूतानां धर्म्मः, तद्धर्म्मत्वे सति पृथिव्याः काठिन्यस्येव सर्वत्र सर्वदा चोपलम्भप्रसङ्गात्, न च सर्वत्र सर्वदा चोपलभ्यते, लोष्टादौ मृतावस्थायां चानुपलम्भात्, अथात्रापि चैतन्यमस्ति केवलं शक्तिरूपेण ततो नोपलभ्यते, तदयुक्तं, विकल्पद्वयानतिक्रमात्, तथाहि—सा शक्तिश्चैतन्याद्विलक्षणा उत चैतन्यमेव ?, यदि विलक्षणा तर्हि कथमारभ्यते–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]

शक्तिरूपेण चैतन्यमस्ति ?, न हि घटे विद्यमाने पटरूपेण घटस्तिष्ठतीति वक्तुं शक्यम्, आह च प्रज्ञाकरगुप्तोऽपि–"रूपान्तरेण यदि तत्तदेवास्तीति मा रटीः । चैतन्यादन्यरूपस्य, भावे तद्विद्यते कथम् ॥ १ ॥" अथ द्वितीयः पक्षस्तर्हि चैतन्यमेव सा कथमनुपलम्भः ?, आवृतत्त्वादनुपलम्भ इति चेत्, नन्वावृतिरावरणं, तच्चावरणं किं विवक्षितपरिणामाभावः उत परिणामान्तरमाहोस्विदन्यदेव भूतातिरिक्तं किञ्चित् ?, तत्र न तावद्विवक्षितपरिणामाभावः, एकान्ततुच्छतया तस्यावारकत्वायोगात्, अन्यथा तस्याप्यतुच्छरूपतया भावरूपताऽऽपत्तिः, भावत्वे च पृथिव्यादीनामन्यतमो भावो भवेत्, 'पृथिव्यादीन्येव भूतानि तत्त्व'मिति वचनात्, पृथिव्यादीनि च भूतानि चैतन्यस्य व्यञ्जकानि नावारकाणीति कथमावारकत्वं तस्योपपत्तिमत् ?, अथ परिणामान्तरम्, तदप्ययुक्तं, परिणामान्तरस्यापि भूतस्वभावतया भूतवद्व्यञ्जकत्वस्यैवोपपत्तेर्नावारकत्वस्य, अथान्यदेव भूतातिरिक्तं किञ्चित्, तदतीवासमीचीनं, भूतातिरिक्ताभ्युपगमे चत्वार्येव पृथिव्यादीनि भूतानि तत्त्वमिति तत्त्वसङ्ख्याव्याघातप्रसङ्गात्, अपि चेदं चैतन्यं प्रत्येकं वा भूतानां धर्म्मः समुदायस्य वा ?, न तावत्प्रत्येकमनुपलम्भात्, न हि प्रतिपरमाणु संवेदनमुपलभ्यते, यदि च प्रतिपरमाणु भवेत्तर्हि पुरुषसहस्रचैतन्यवृन्दमिव परस्परं विभिन्नस्वभावमिति नैकरूपं भवेत्, अथ चैकरूपमुपलभ्यते, अहं पश्यामि अहं करोमीत्येवं सकलशरीराधिष्ठातृकैकरूपतयाऽनुभवात्, अथ समुदायस्य धर्म्मः, तदप्यसत्, प्रत्येकमभावात्, प्रत्येकं हि यदसत्तत्समुदायेऽपि न भवति, यथा रेणुषु तैलं, स्यादेतत्–मद्याङ्गेषु प्रत्येकं

॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

मदशक्तिरदृष्टाऽपि समुदाये भवतीति दृश्यते तद्वच्चैतन्यमपि भविष्यति को दोषः ?, तदयुक्तं, प्रत्येकमपि मद्याङ्गेषु प्रत्येकं मदशक्त्यनुयायिमाधुर्यादिगुणदर्शनात्, तथाहि–दृश्यते माधुर्यमिक्षुरसे धातकीपुष्पेषु च मनाक् विकलतोत्पादकतेत्यादि, न चैवं चैतन्यं सामान्यतो भूतेषु प्रत्येकमुपलभ्यते, ततः कथं समुदाये तद् भवितुमर्हति ?, मा प्रापत् सर्वस्य सर्वत्र भावप्रसक्त्याऽतिप्रसङ्गः । किञ्च–यदि चैतन्यं धर्म्मित्वेन प्रतिपन्नं ततोऽवश्यमस्यानुरूपो धर्म्मी प्रतिपत्तव्यः, आनुरूप्याभावे जलकाठिन्ययोरिव धर्मिधर्म्मभावानुपपत्तेः, न च भूतान्यनुरूपो धर्मी, वैलक्षण्यात्, तथाहि–चैतन्यं बोधस्वरूपममूर्त्तं च, भूतानि च तद्विलक्षणानि, तत्कथमेतेषां परस्परं धर्म्मधर्म्मिभावः ? । नापि चैतन्यमिदं भूतानां कार्यम्, अत्यन्तवैलक्षण्यादेव कार्यकारणभावस्याप्ययोगात्, उक्तं च—"काठिन्यादिबोधरूपाणि, भूतान्यध्यक्षसिद्धितः । चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं भवेत् ? ॥ १ ॥" अपिच—यदि भूतकार्यं चेतना तर्हि किं न सकलमपि जगत्प्राणिमयं भवति ?, परिणतिविशेषसद्भावाभावादिति चेत् ननु सोऽपि परिणतिविशेषसद्भावः सर्वत्रापि कस्मान्न भवति ?, सोऽपि हि भूतमात्रनिमित्तक एव ततः कथं तस्यापि क्वचित्कदाचिद्भावः ?, अन्यच्च–स किंरूपः परिणतिविशेष इति वाच्यम्, कठिनत्वादिरूप इति चेत्, तथाहि–काष्ठादिषु दृश्यन्ते घुणादिजन्तवो जायमानास्ततो यत्र कठिनत्वादिविशेषस्तत्प्राणिमयं न शेष इति, तदप्यसत्, व्यभिचारदर्शनात्, तथाहि–अविशिष्टेऽपि कठिनत्वादिविशेषे क्वचिद्भवन्ति क्वचिन्न क्वचिच्च कठिनत्वादिविशेषमन्तरेणापि संस्वेदजा नभसि च संमूर्च्छिमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जायन्ते, किञ्च–समानयोनिका अपि विचित्रवर्णसंस्थाना दृश्यन्ते प्राणिनः, तथाहि–गोमयाद्येकयोनिसम्भवि-नोऽपि केचिन्नीलतनवोऽपरे पीतकाया अन्ये विचित्रवर्णाः, संस्थानमप्येतेषां परस्परं विभिन्नमेव, तद्यदि भूतमात्र-निमित्तं चैतन्यं तत एकयोनिकाः सर्वेऽप्येकवर्णसंस्थाना भवेयुः, न च भवन्ति, तस्मादात्मान एव तत्तत्क-र्म्मवशात्तथोत्पद्यन्ते इति प्रतिपत्तव्यं । स्यादेतत्–तदाऽऽगच्छन् गच्छन् वा नात्मोपलभ्यते, केवलं देहे सति संवेदन-मुपलभ्यते, देहाभावे च भस्मावस्थायां न, तस्मान्नास्त्यात्मा, किन्तु संवेदनमात्रमेवैकमस्ति, तच्च देहकार्यं, देहे एव च समाश्रितं, कुड्ये चित्रवत्, न चित्रं कुड्यविरहितमवतिष्ठति, नापि कुड्यान्तरं सङ्क्रामति, नागतं वा कुड्यान्तरात्, किन्तु कुड्ये एव उत्पन्नं कुड्ये एव च विलीयते, एवं संवेदनमपि, तदप्यसत्, आत्मा हि स्वरूपेणामूर्त्तः, आन्तरमपि शरीरमतिसूक्ष्मत्वान्न चक्षुर्विषयः, तदुक्तम्–"अन्तरा भवदेहोऽपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते । निष्क्रामन् प्रविशन्नात्मा, नाभावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥" तत आन्तरशरीरयुक्तोऽप्यात्मा आगच्छन् गच्छन् वा नोपलभ्यते, लिङ्गतस्तूपल-भ्यते एव, तथाहि–कुमेरपि जन्तोस्तत्कालोत्पन्नस्याप्यस्ति निजशरीरविषयः प्रतिबन्धः, उपघातकमुपलभ्य पला-यनदर्शनात्, यश्च यद्विषयः प्रतिबन्धः स तद्विषयपरिशीलनाभ्यासपूर्वकः, तथादर्शनात्, न खल्वत्यन्तापरिज्ञा-तगुणदोषवस्तुविषये कस्याप्याग्रह उपजायते, ततो जन्मादौ शरीराग्रहः शरीरपरिशीलनाभ्यासजनितसंस्कारनि-बन्धन इति सिद्धमात्मनो जन्मान्तरादागमनम्, उक्तं च—"शरीराग्रहरूपस्य, चेतसः सम्भवो यदा । जन्मादौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

दहिनां दृष्टः, किं न जन्मान्तरागतिः ? ॥ १ ॥" अथागतिः प्रत्यक्षतो नोपलभ्यते ततः कथमनुमानादवसीयते ?, नैष दोषः, अनुमेयविषये प्रत्यक्षवृत्तेरनभ्युपगमात्, परस्परविषयपरिहारेण हि प्रत्यक्षानुमानयोः प्रवर्त्तनमिष्यते ततः कथं स एव दोषः ?, आह च—"अनुमेयेऽस्ति नाध्यक्षमिति कैवात्र दुष्टता ?। अध्यक्षस्यानुमानस्य, विषयो विषयो न हि ॥ १ ॥" अथ तज्जातीयेऽपि प्रत्यक्षवृत्तिमन्तरेण कथमनुमानमुदयितुमुत्सहते ?, न खलु यस्याग्निविषया प्रत्यक्षवृत्तिर्महानसेऽपि नासीत् तस्यान्यत्र क्षितिधरादौ धूमाद्वूमध्वजानुमानं, तदप्ययुक्तम्, अत्रापि तज्जातीये प्रत्यक्षवृत्तिभावात्, तथाहि–आग्रहोऽन्यत्र परिशीलनाभ्यासात् प्रवृत्तः प्रत्यक्षत एवोपलब्धः, तदुपष्टम्भेनेहाप्यनुमानं प्रवर्त्तते, उक्तं च–"आग्रहस्तावदभ्यासात्, प्रवृत्त उपलभ्यते । अन्यत्राप्यक्षतः साक्षात्ततो देहेऽनुमा न किम् ? ॥१॥" योऽपि चित्रदृष्टान्तः प्रागुपन्यस्तः सोऽप्ययुक्तो, वैषम्यात्, तथाहि–चित्रमचेतनं गमनस्वभावरहितं च, आत्मा च चेतनः कर्म्मवशाद् गत्यागती च कुरुते, ततः कथं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्यम् ?, ततो यथा कश्चिद् देवदत्तो विवक्षिते ग्रामे कतिपयदिनानि गृहीभूत्वा ग्रामान्तरे गृहान्तरमास्थायावतिष्ठते तद्वद् आत्माऽपि विवक्षिते भवे देहं परिहाय भवान्तरे देहान्तरमारचय्यावतिष्ठते, यच्चोक्तं–'संवेदनं देहकार्यं'मिति, तत्र चाक्षुषादिकं संवेदनं देहाश्रितमपि कथञ्चिद् भवतु, चक्षुरादीन्द्रियद्वारेण तस्योत्पत्तिसम्भवात्, यत्तु मानसं तत्कथम् ? न हि तद्देहकार्यं घटते, युक्तयोगात्, तथाहि–तन्मानसं ज्ञानं देहादुत्पद्यमानमिन्द्रियरूपाद्वा समुत्पद्यते अनिन्द्रियरूपाद्वा केशनखादिलक्षणात् ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

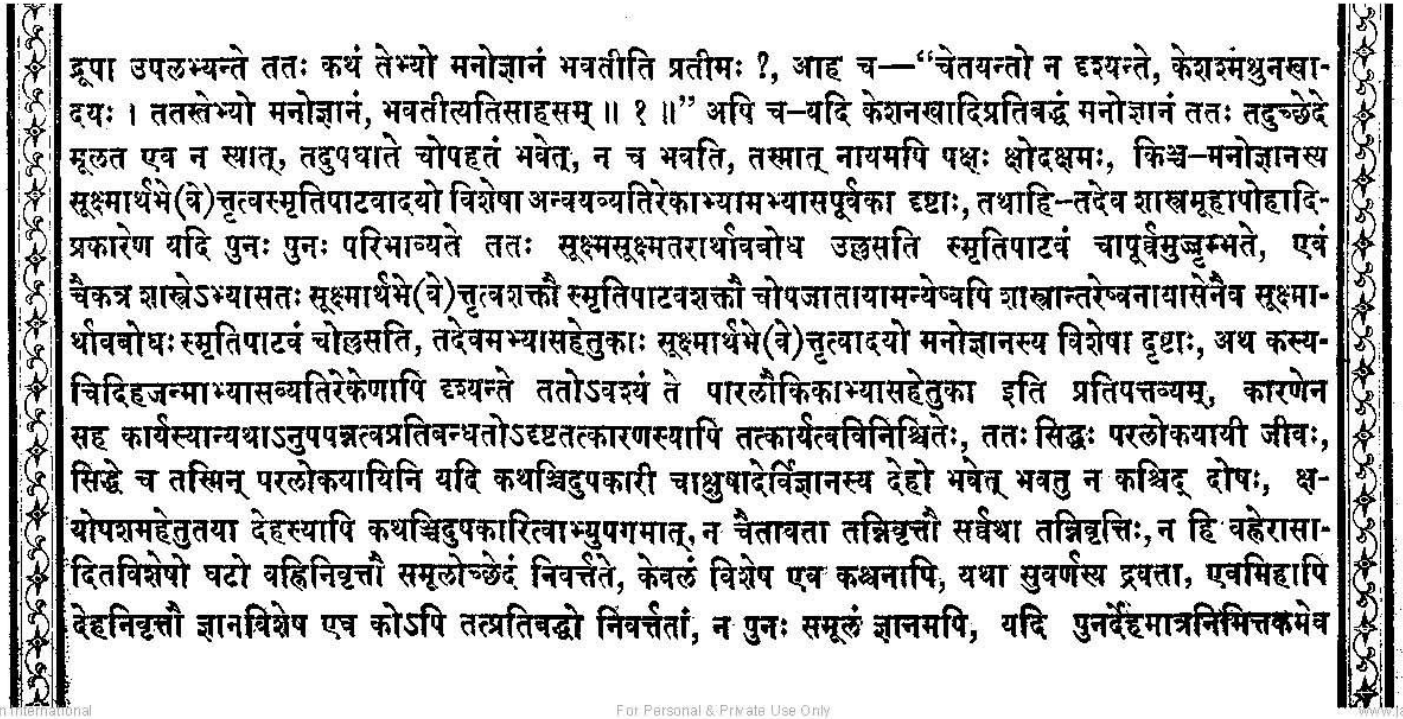
प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]

तत्र न तावदाद्यः पक्षः, इन्द्रियरूपात् तदुत्पत्ताविन्द्रियबुद्धिवद् वर्त्तमानार्थग्रहणप्रसक्तेः, इन्द्रियं हि वार्त्तमानिक एवार्थे व्याप्रियते ततस्तत्सामर्थ्यादुपजायमानं मानसमपि ज्ञानमिन्द्रियज्ञानमिव वर्त्तमानार्थग्रहणपर्यवसितसत्ताकमेव भवेत्, अथ यदा चक्षू रूपविषये व्याप्रियते तदा रूपविज्ञानमुत्पादयति न शेषकालं, ततः तद्रूपविज्ञानं वर्त्तमानार्थविषयं, वर्त्तमाने एवार्थे चक्षुषो व्यापारात्, रूपविषयव्यावृत्त्यभावे च मनोज्ञानं, ततो न तत्प्रतिनियतकालविषयं, एवं शेषेष्वपीन्द्रियेषु वाच्यं, ततः कथमिव मनोज्ञानस्य वर्त्तमानार्थग्रहणप्रसक्तिः ?, तदसाधीयो, यत इन्द्रियाश्रितं तदुच्यते यदिन्द्रियव्यापारमनुसृत्योपजायते, इन्द्रियाणां च व्यापारः प्रतिनियत एव वार्त्तमानिके स्वस्वविषये, ततो मनोज्ञानमपि यदिन्द्रियव्यापाराश्रितं तत ऐन्द्रियज्ञानमिव वार्त्तमानिकार्थग्राहकमेव भवेद्, अन्यथा इन्द्रियाश्रितमेव तद् न स्यात्, उक्तं च–"अक्षव्यापारमाश्रित्य, भवदक्षजमिष्यते । तद्व्यापारो न तत्रेति, कथमक्षभवं भवेत् ? ॥ १ ॥" अथानिन्द्रियरूपादिति पक्षः, तदप्ययुक्तं, तस्याचेतनत्वात्, नन्वचेतनत्वादिति कोऽर्थः ?, यदि इन्द्रियविज्ञानविरहादिति तदिष्यत एव, यदि नामेन्द्रियविज्ञानं ततो न भवति मनोज्ञानं तु कस्मात् न भवति ?, अथ मनोविज्ञानं नोत्पादयतीति अचेतनत्वं, तदा तदेव विचार्यमाणं इति प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुः, तदप्यसत्, अचेतनत्वादिति किमुक्तं भवति ?–स्वनिमित्तविज्ञानैः स्फुरच्चिद्रूपतयाऽनुपलब्धेः, स्पर्शादयो हि स्वस्वनिमित्तविज्ञानैः स्फुरच्चिद्रूपा उपलभ्यन्ते ततस्तेभ्यो ज्ञानमुत्पद्यते इति युक्तम्, केशनखादयस्तु न मनोज्ञानेन तथा स्फुरचि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



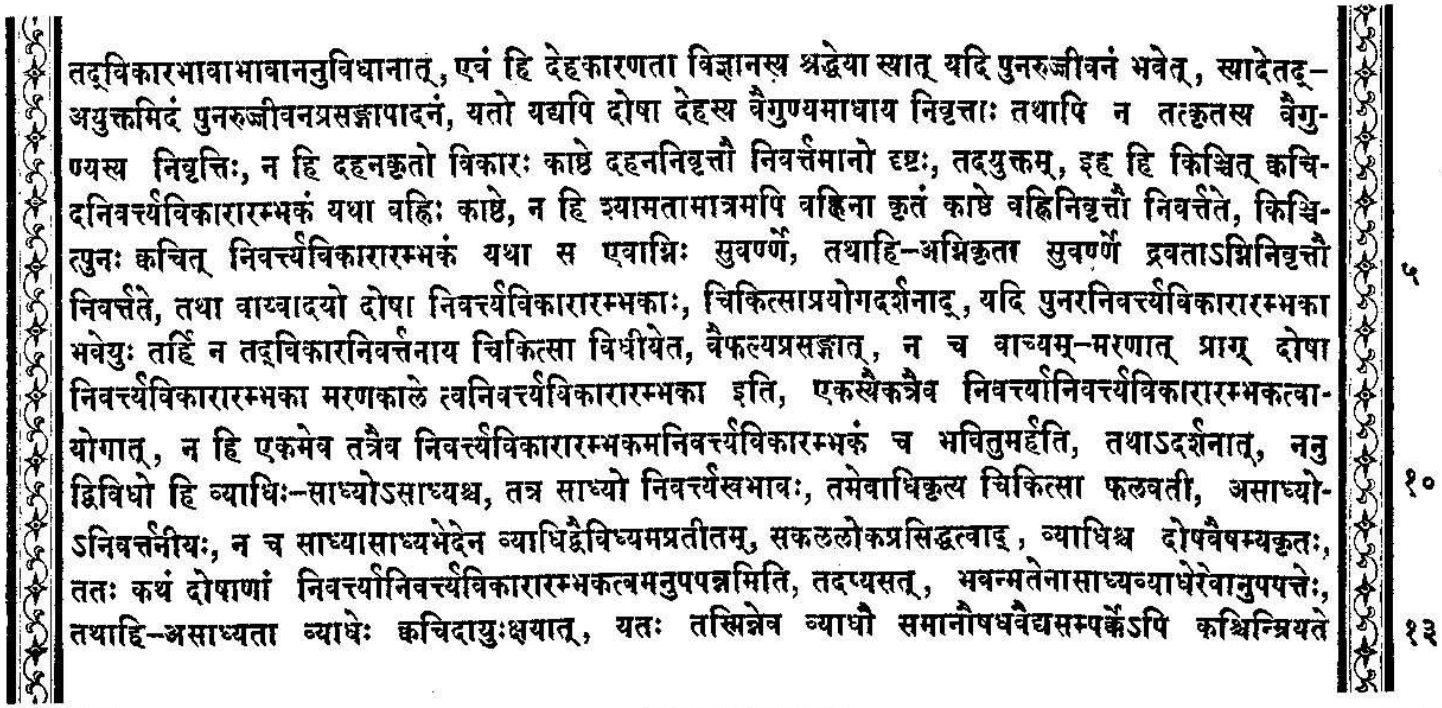
रूपा उपलभ्यन्ते ततः कथं तेभ्यो मनोज्ञानं भवतीति प्रतीमः ?, आह च—"चेतयन्तो न दृश्यन्ते, केशश्मश्रुनखादयः । ततस्तेभ्यो मनोज्ञानं, भवतीत्यतिसाहसम् ॥ १ ॥" अपि च–यदि केशनखादिप्रतिबद्धं मनोज्ञानं ततः तदुच्छेदे मूलत एव न स्यात्, तदुपघाते चोपहतं भवेत्, न च भवति, तस्मात् नायमपि पक्षः क्षोदक्षमः, किञ्च–मनोज्ञानस्य सूक्ष्मार्थभे(वे)त्तृत्वस्मृतिपाटवादयो विशेषा अन्वयव्यतिरेकाभ्यामभ्यासपूर्वका दृष्टाः, तथाहि–तदेव शास्त्रमूहापोहादिप्रकारेण यदि पुनः पुनः परिभाव्यते ततः सूक्ष्मसूक्ष्मतरार्थावबोध उल्लसति स्मृतिपाटवं चापूर्वमुज्जृम्भते, एवं चैकत्र शास्त्रेऽभ्यासतः सूक्ष्मार्थभे(वे)त्तृत्वशक्तौ स्मृतिपाटवशक्तौ चोपजातायामन्येष्वपि शास्त्रान्तरेष्वनायासेनैव सूक्ष्मार्थावबोधः स्मृतिपाटवं चोल्लसति, तदेवमभ्यासहेतुकाः सूक्ष्मार्थभे(वे)त्तृत्वादयो मनोज्ञानस्य विशेषा दृष्टाः, अथ कस्यचिदिहजन्माभ्यासव्यतिरेकेणापि दृश्यन्ते ततोऽवश्यं ते पारलौकिकाभ्यासहेतुका इति प्रतिपत्तव्यम्, कारणेन सह कार्यस्यान्यथाऽनुपपन्नत्वप्रतिबन्धतोऽदृष्टतत्कारणस्यापि तत्कार्यत्वविनिश्चितेः, ततः सिद्धः परलोकयायी जीवः, सिद्धे च तस्मिन् परलोकयायिनि यदि कथञ्चिदुपकारी चाक्षुषादेर्विज्ञानस्य देहो भवेत् भवतु न कश्चिद् दोषः, क्षयोपशमहेतुतया देहस्यापि कथञ्चिदुपकारित्वाभ्युपगमात्, न चैतावता तन्निवृत्तौ सर्वथा तन्निवृत्तिः, न हि वह्नेरासादितविशेषो घटो वह्निनिवृत्तौ समूलोच्छेदं निवर्त्तते, केवलं विशेष एव कश्चनापि, यथा सुवर्णस्य द्रवता, एवमिहापि देहनिवृत्तौ ज्ञानविशेष एव कोऽपि तत्प्रतिबद्धो निवर्त्ततां, न पुनः समूलं ज्ञानमपि, यदि पुनर्देहमात्रनिमित्तकमेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञानमिष्येत देहनिवृत्तौ च निवृत्तिमत् तर्हि देहस्य भस्मावस्थायां मा भूत् देहे तु तथाभूते एवावतिष्ठमाने मृतावस्थायां कस्मात् न भवति ?, प्राणापानयोरपि हेतुत्वात् तदभावान्न भवतीति चेत्, न, प्राणापानयोर्ज्ञानहेतुत्वायोगात्, ज्ञानादेव तयोरपि प्रवृत्तेः,तथाहि–यदि मन्दौ प्राणापानौ निःस्रष्टुमिष्यते ततो मन्दौ भवतः दीर्घौ चेत्तर्हि दीर्घाविति, यदि पुनर्देहमात्रनिमित्तौ प्राणापानौ प्राणापाननिमित्तं च विज्ञानं तर्हि नेत्थमिच्छावशात् प्राणापानप्रवर्त्तनं भवेत्, न हि देहमात्रनिमित्ता गौरता श्यामता वा इच्छावशात् प्रवर्त्तमाना दृष्टा, प्राणापाननिमित्तं च यदि विज्ञानं ततः प्राणापाननिर्हासातिशयसम्भवे विज्ञानस्यापि निर्हासातिशयौ स्याताम्, अवश्यं हि कारणे परिहीयमानेऽभिवर्द्धमाने च कार्यस्यापि हानिरुपचयश्च भवति, यथा महति मृत्पिण्डे महान् घटोऽल्पे चाल्पीयान्, अन्यथा कारणमेव तद् न स्याद्, न च भवतः प्राणापाननिर्हासातिशयसम्भवे विज्ञानस्यापि निर्हासातिशयौ, विपर्ययस्यापि भावात्, मरणावस्थायां प्राणापानातिशयसम्भवेऽपि विज्ञानस्य निर्हासदर्शनात्, स्यादेतत्–तदानीं वातपित्तादिभिर्दोषैर्देहस्य विगुणीकृतत्वात् न प्राणापानातिशयसम्भवेऽपि चैतन्यस्यातिशयसम्भवः, अत एव मृतावस्थायामपि न चैतन्यं, देहस्य विगुणीभूतत्वात्, तदसमीचीनतरम्, एवं सति मृतस्यापि पुनरुज्जीवनप्रसक्तेः, तथाहि–मृतस्य दोषाः समीभवन्ति, समीभवनं च दोषाणामवसीयते ज्वरादिविकारादर्शनात्, समत्वं चारोग्यं, 'तेषां समत्वमारोग्यं, क्षयवृद्धी विपर्यये' इति वचनात्, आरोग्यलाभात् स्वदेहस्य पुनरुज्जीवनं भवेत्, अन्यथा देहः कारणमेव न स्यात्, चेतसः

॥ ६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तद्विकारभावाभावाननुविधानात्, एवं हि देहकारणता विज्ञानस्य श्रद्धेया स्यात् यदि पुनरुज्जीवनं भवेत्, स्यादेतद्–
अयुक्तमिदं पुनरुज्जीवनप्रसङ्गापादनं, यतो यद्यपि दोषा देहस्य वैगुण्यमाधाय निवृत्ताः तथापि न तत्कृतस्य वैगु-
ण्यस्य निवृत्तिः, न हि दहनकृतो विकारः काष्ठे दहननिवृत्तौ निवर्त्तमानो दृष्टः, तदयुक्तम्, इह हि किञ्चित् क्वचि-
दनिवर्त्त्यविकारारम्भकं यथा वह्निः काष्ठे, न हि श्यामतामात्रमपि वह्निना कृतं काष्ठे वह्निनिवृत्तौ निवर्त्तते, किञ्चि-
त्पुनः क्वचित् निवर्त्त्यविकारारम्भकं यथा स एवाग्निः सुवर्णे, तथाहि–अग्निकृता सुवर्णे द्रवताऽग्निनिवृत्तौ
निवर्त्तते, तथा वाय्वादयो दोषा निवर्त्त्यविकारारम्भकाः, चिकित्साप्रयोगदर्शनाद्, यदि पुनरनिवर्त्त्यविकारारम्भका
भवेयुः तर्हि न तद्विकारनिवर्त्तनाय चिकित्सा विधीयेत, वैफल्यप्रसङ्गात्, न च वाच्यम्–मरणात् प्राग् दोषा
निवर्त्त्यविकारारम्भका मरणकाले त्वनिवर्त्त्यविकारारम्भका इति, एकस्यैकत्रैव निवर्त्त्यानिवर्त्त्यविकारारम्भकत्वा-
योगात्, न हि एकमेव तत्रैव निवर्त्त्यविकारारम्भकमनिवर्त्त्यविकारम्भकं च भवितुमर्हति, तथाऽदर्शनात्, ननु
द्विविधो हि व्याधिः–साध्योऽसाध्यश्च, तत्र साध्यो निवर्त्यस्वभावः, तमेवाधिकृत्य चिकित्सा फलवती, असाध्यो-
ऽनिवर्त्तनीयः, न च साध्यासाध्यभेदेन व्याधिद्वैविध्यमप्रतीतम्, सकललोकप्रसिद्धत्वाद्, व्याधिश्च दोषवैषम्यकृतः,
ततः कथं दोषाणां निवर्त्त्यानिवर्त्त्यविकारारम्भकत्वमनुपपन्नमिति, तदप्यसत्, भवन्मतेनासाध्यव्याधेरेवानुपपत्तेः,
तथाहि–असाध्यता व्याधेः क्वचिदायुःक्षयात्, यतः तस्मिन्नेव व्याधौ समानौषधवैद्यसम्पर्केऽपि कश्चिन्म्रियते

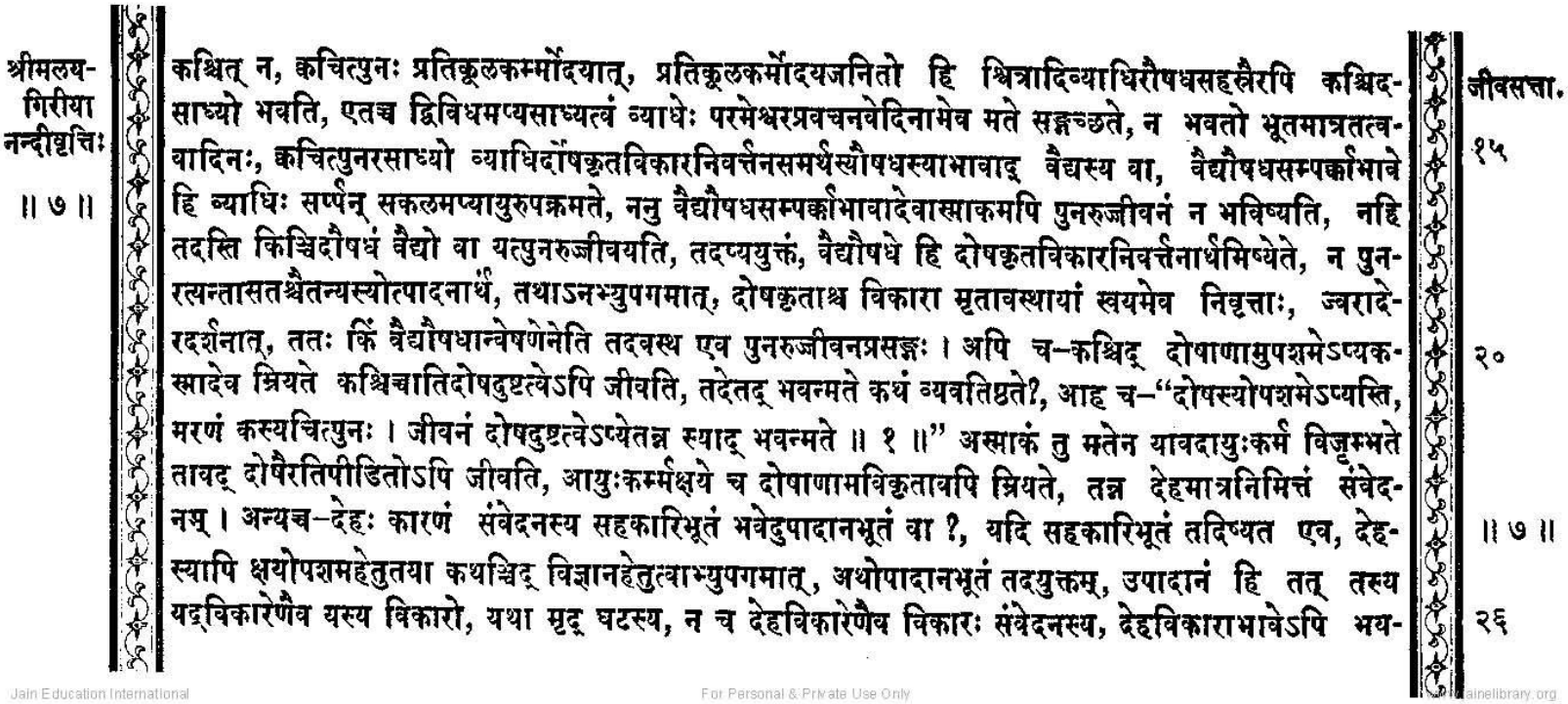
५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]



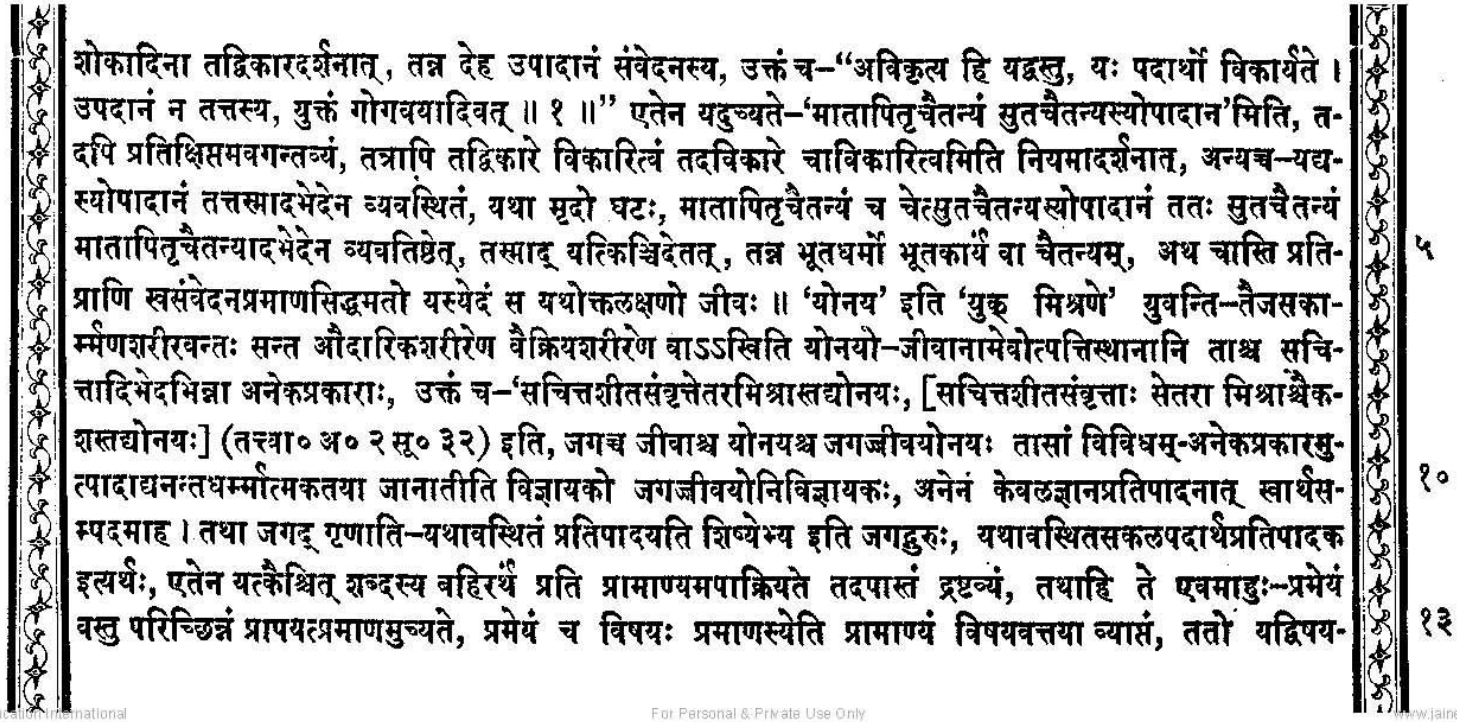
श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ७ ॥

कश्चित् न, क्वचित्पुनः प्रतिकूलकर्म्मोदयात्, प्रतिकूलकर्मोदयजनितो हि श्वित्रादिव्याधिरौषधसहस्रैरपि कश्चिद्-
साध्यो भवति, एतच्च द्विविधमप्यसाध्यत्वं व्याधेः परमेश्वरप्रवचनवेदिनामेव मते सङ्गच्छते, न भवतो भूतमात्रतत्त्व-
वादिनः, क्वचित्पुनरसाध्यो व्याधिर्दोषकृतविकारनिवर्त्तनसमर्थस्यौषधस्याभावाद् वैद्यस्य वा, वैद्यौषधसम्पर्कभावे
हि व्याधिः सर्व्वन् सकलमप्यायुरुपक्रमते, ननु वैद्यौषधसम्पर्कभावादेवास्माकमपि पुनरुज्जीवनं न भविष्यति, नहि
तदस्ति किञ्चिदौषधं वैद्यो वा यत्पुनरुज्जीवयति, तदप्ययुक्तं, वैद्यौषधे हि दोषकृतविकारनिवर्त्तनार्थमिष्येते, न पुन-
रत्यन्तासतश्चैतन्यस्योत्पादनार्थं, तथाऽनभ्युपगमात्, दोषकृताश्च विकारा मृतावस्थायां स्वयमेव निवृत्ताः, ज्वरादे-
रदर्शनात्, ततः किं वैद्यौषधान्वेषणेनेति तदवस्थ एव पुनरुज्जीवनप्रसङ्गः । अपि च–कश्चिद् दोषाणामुपशमेऽप्यक-
स्मादेव म्रियते कश्चिच्चातिदोषदुष्टत्वेऽपि जीवति, तदेतद् भवन्मते कथं व्यवतिष्ठते?, आह च–"दोषस्योपशमेऽप्यस्ति,
मरणं कस्यचित्पुनः । जीवनं दोषदुष्टत्वेऽप्येतन्न स्याद् भवन्मते ॥ १ ॥" अस्माकं तु मतेन यावदायुःकर्म विजृम्भते
तावद् दोषैरतिपीडितोऽपि जीवति, आयुःकर्म्मक्षये च दोषाणामविकृतावपि म्रियते, तन्न देहमात्रनिमित्तं संवेद-
नम् । अन्यच्च–देहः कारणं संवेदनस्य सहकारिभूतं भवेदुपादानभूतं वा ?, यदि सहकारिभूतं तदिष्यत एव, देह-
स्यापि क्षयोपशमहेतुतया कथञ्चिद् विज्ञानहेतुत्वाभ्युपगमात्, अथोपादानभूतं तदयुक्तम्, उपादानं हि तत् तस्य
यद्विकारेणैव यस्य विकारो, यथा मृद् घटस्य, न च देहविकारेणैव विकारः संवेदनस्य, देहविकाराभावेऽपि भव-

जीवसत्ता. १५ २० ॥ ७ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



शोकादिना तद्विकारदर्शनात्, तन्न देह उपादानं संवेदनस्य, उक्तं च–"अविकृत्य हि यद्वस्तु, यः पदार्थो विकार्यते । उपदानं न तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥ १ ॥" एतेन यदुच्यते–'मातापितृचैतन्यं सुतचैतन्यस्योपादान'मिति, तदपि प्रतिक्षिप्तमवगन्तव्यं, तत्रापि तद्विकारे विकारित्वं तदविकारे चाविकारित्वमिति नियमादर्शनात्, अन्यच्च–यद्यस्योपादानं तत्तस्मादभेदेन व्यवस्थितं, यथा मृदो घटः, मातापितृचैतन्यं च चेत्सुतचैतन्यस्योपादानं ततः सुतचैतन्यं मातापितृचैतन्यादभेदेन व्यवतिष्ठेत्, तस्माद् यत्किञ्चिदेतत्, तन्न भूतधर्मो भूतकार्यं वा चैतन्यम्, अथ चास्ति प्रतिप्राणि स्वसंवेदनप्रमाणसिद्धमतो यस्येदं स यथोक्तलक्षणो जीवः ॥ 'योनय' इति 'युक् मिश्रणे' युवन्ति–तैजसकार्म्मणशरीरवन्तः सन्त औदारिकशरीरेण वैक्रियशरीरेण वाऽऽखिति योनयो–जीवानामेवोत्पत्तिस्थानानि ताश्च सचित्तादिभेदभिन्ना अनेकप्रकाराः, उक्तं च–'सचित्तशीतसंवृत्तेतरमिश्रास्तद्योनयः, [सचित्तशीतसंवृत्ताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः] (तत्त्वा० अ० २ सू० ३२) इति, जगच्च जीवाश्च योनयश्च जगज्जीवयोनयः तासां विविधम्-अनेकप्रकारमुत्पादाद्यनन्तधर्म्मात्मकतया जानातीति विज्ञायको जगज्जीवयोनिविज्ञायकः, अनेनं केवलज्ञानप्रतिपादनात् स्वार्थसम्पदमाह । तथा जगद् गृणाति–यथावस्थितं प्रतिपादयति शिष्येभ्य इति जगद्गुरुः, यथावस्थितसकलपदार्थप्रतिपादक इत्यर्थः, एतेन यत्कैश्चित् शब्दस्य बहिरर्थं प्रति प्रामाण्यमपाक्रियते तदपास्तं द्रष्टव्यं, तथाहि ते एवमाहुः–प्रमेयं वस्तु परिच्छिन्नं प्रापयत्प्रमाणमुच्यते, प्रमेयं च विषयः प्रमाणस्येति प्रामाण्यं विषयवत्तया व्यासं, ततो यद्विषय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वन्न भवति न तत्प्रमाणं, यथा गगनेन्दीवरज्ञानं, न भवति च विषयवत् शाब्दं ज्ञानमिति, न चायमसिद्धो हेतुः, यतो द्विविधो विषयः–प्रत्यक्षः परोक्षश्च, तत्र न प्रत्यक्षः शाब्दज्ञानस्य विषयो, यस्य हि ज्ञानस्य प्रतिभासेन स्फुटाभनीलाद्याकाररूपेण योऽर्थोऽनुकृतान्वयव्यतिरेकः स तस्य प्रत्यक्षः, तस्य च प्रत्यक्षस्यार्थस्यायमेव प्रतिपत्तिप्रकारः सम्भवदशामश्नुते, नापरः, तद्विषयं च तदन्वयव्यतिरेकानुविधायि स्फुटप्रतिभासं ज्ञानं प्रत्यक्षं, प्रत्यक्षज्ञेयत्वात्, तद् न प्रत्यक्षोऽर्थोऽनेकप्रकारप्रतिपत्तिविषयो यः शाब्दप्रमाणस्यापि विषयो भवेत्, नापि परोक्षः, तस्यापि हि निश्चिततदन्वयव्यतिरेकनान्तरीयकदर्शनात् प्रतिपत्तिः यथा धूमदर्शनाद्वह्नेः, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात्, न च शब्दस्यार्थेन सह निश्चितान्वयव्यतिरेकता, प्रतिबन्धाभावात्, तादात्म्यतदुत्पत्त्यनुपपत्तेः, तथाहि–न बाह्योऽर्थो रूपं शब्दानां नापि शब्दो रूपमर्थानां, तथाप्रतीतेरभावात्, तत्कथमेषां तादात्म्यं ? येन व्यावृत्तिकृतव्यवस्थाभेदेऽपि नान्तरीयकता स्यात्, कृतकत्वानित्यत्ववद्, अपि च–यदि तादात्म्यमेषां भवेत् ततोऽनलाचलक्षुरिकादिशब्दोच्चारणे वदनदहनपूरणपाटनादिदोषः प्रसज्येत, न चैवमस्ति, तद् न तादात्म्यं, नापि तदुत्पत्तिः, तत्रापि विकल्पद्वयप्रसक्तेः, तथाहि–वस्तुनः किं शब्दस्योत्पत्तिरुत शब्दाद्वस्तुनः ?, तत्र वस्तुनः शब्दोत्पत्तावकृतसङ्केतस्यापि पुंसः प्रथमपनसदर्शने तच्छब्दोच्चारणप्रसङ्गः, शब्दाद्वस्तूत्पत्तौ विश्वस्यादरिद्रताप्रसक्तिः, तत एव कटककुण्डलाद्युत्पत्तेः, तदेवं प्रतिबन्धाभावात् न शब्दस्यार्थेन सह नान्तरीयकतानिश्चयः, तदभावाच्च न शब्दाद् निश्चितस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः, अपि त्वनिवर्त्तितशङ्कतयाऽस्ति न वेति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]

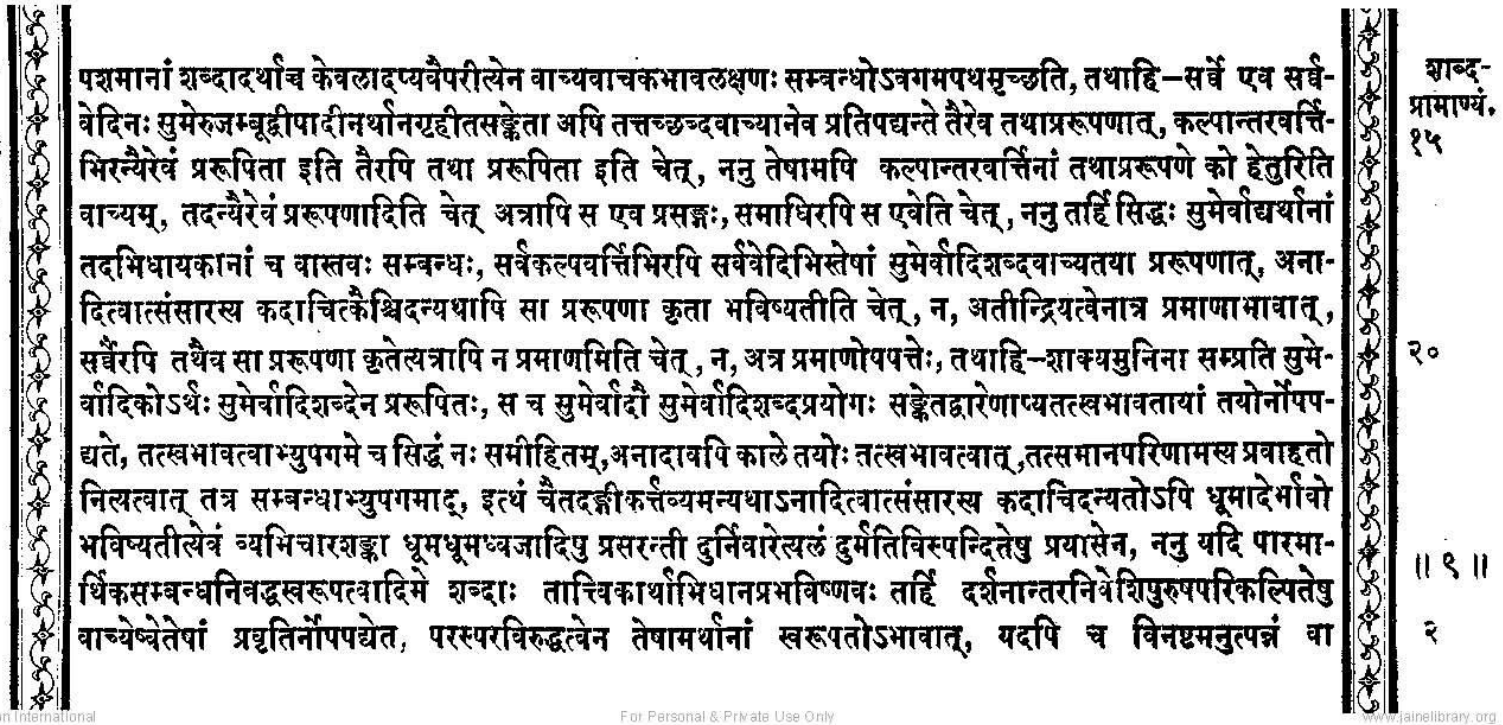
विकल्पितस्य, न च विकल्पितमुभयरूपं वस्त्वस्ति यत्प्राप्यं सद्विषयः स्यात्, प्रवर्त्तमानस्य तु पुरुषस्य तस्य तस्यार्थस्य पृथिव्याममज्जनादवश्यमन्यद् ज्ञानान्तरं प्राप्तिनिमित्तमुपजायते यतः किञ्चिदवाप्यत इति शाब्दज्ञानस्य विषयवत्त्वाभावः, तदसत्, विषयवत्त्वाभावासिद्धेः, परोक्षस्य तद्विषयत्वाभ्युपगमात्, यत्पुनरुक्तं-'न शब्दस्यार्थेन सह निश्चितान्वयव्यतिरेकता, प्रतिबन्धाभावादिति,' तदसमीचीनं, वाच्यवाचकभावलक्षणेन प्रतिबन्धान्तरेण नान्तरीयकतानिश्चयात्, शब्दो हि बाह्यवस्तुवाचकस्वभावतया तन्नान्तरीयकः, ततस्तन्नान्तरीयकतायां निश्चितायां शब्दाद् निश्चितस्यैवार्थस्य ५
प्रतिपत्तिर्न विकल्पितरूपस्य, निश्चितं च प्रापयत् विषयवदेव शाब्दं ज्ञानमिति । स्यादेतद्–यदि वास्तवसंबन्धपरिकरितमूर्त्तयः शब्दाः तर्हि समाश्रयतु निरर्थकतामिदानीं सङ्केतः, स खलु संबन्धो यतोऽर्थप्रतीतिः,स चेद् वास्तवो निरर्थकः सङ्केतः, तत एवार्थप्रतीतिसिद्धेः, तदेतदत्यन्तप्रमाणमार्गानभिज्ञत्वसूचकं, यतो न विद्यमान इत्येव सम्बन्धोऽर्थप्रतीतिनिबन्धनं, किन्तु स्वात्मज्ञानसहकारी, यथा प्रदीपः, तथाहि–प्रदीपो रूपप्रकाशनस्वभावोऽपि यदि स्वात्मज्ञानसहकारिकृतसाहायकः ततो रूपं प्रकाशयति, नान्यथा, ज्ञापकत्वात्, न खलु धूमादिकमपि लिङ्गं वस्तुवृत्त्या वह्न्यादि- १०
प्रतिबद्धमपि सत्तामात्रेण वह्न्यादेर्गमकमुपजायते, यदुक्तमन्यैरपि–"ज्ञापकत्वाद्धि सम्बन्धः, स्वात्मज्ञानमपेक्षते ।
तेनासौ विद्यमानोऽपि, नागृहीतः प्रकाशकः ॥ १ ॥" सम्बन्धस्य च परिज्ञानं तदावरणकर्म्मक्षयक्षयोपशमाभ्यां,
तौ च सङ्केततपश्चरणभावनाद्यनेकसाधनसाध्यौ, ततः तपश्चरणभावनासङ्केतादिभ्यः समुत्पन्नतदावरणकर्म्मक्षयक्षयो- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ९ ॥

पशमानां शब्दादर्थाच्च केवलाद्प्यवैपरीत्येन वाच्यवाचकभावलक्षणः सम्बन्धोऽवगमपथमृच्छति, तथाहि–सर्वे एव सर्ववेदिनः सुमेरुजम्बूद्वीपादीनर्थानगृहीतसङ्केता अपि तत्तच्छब्दवाच्यानेव प्रतिपद्यन्ते तैरेव तथाप्ररूपणात्, कल्पान्तरवर्त्तिभिरन्यैरेवं प्ररूपिता इति तैरपि तथा प्ररूपिता इति चेत्, ननु तेषामपि कल्पान्तरवर्त्तिनां तथाप्ररूपणे को हेतुरिति वाच्यम्, तदन्यैरेवं प्ररूपणादिति चेत् अत्रापि स एव प्रसङ्गः, समाधिरपि स एवेति चेत्, ननु तर्हि सिद्धः सुमेर्वाद्यर्थानां तदभिधायकानां च वास्तवः सम्बन्धः, सर्वकल्पवर्त्तिभिरपि सर्ववेदिभिस्तेषां सुमेर्वादिशब्दवाच्यतया प्ररूपणात्, अनादित्वात्संसारस्य कदाचित्कैश्चिदन्यथापि सा प्ररूपणा कृता भविष्यतीति चेत्, न, अतीन्द्रियत्वेनात्र प्रमाणाभावात्, सर्वैरपि तथैव सा प्ररूपणा कृतेत्यत्रापि न प्रमाणमिति चेत्, न, अत्र प्रमाणोपपत्तेः, तथाहि–शाक्यमुनिना सम्प्रति सुमेर्वादिकोऽर्थः सुमेर्वादिशब्देन प्ररूपितः, स च सुमेर्वादौ सुमेर्वादिशब्दप्रयोगः सङ्केतद्वारेणाप्यतत्स्वभावतायां तयोर्नोपपद्यते, तत्स्वभावत्वाभ्युपगमे च सिद्धं नः समीहितम्,अनादावपि काले तयोः तत्स्वभावत्वात्,तत्समानपरिणामस्य प्रवाहतो नित्यत्वात् तत्र सम्बन्धाभ्युपगमाद्, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यमन्यथाऽनादित्वात्संसारस्य कदाचिदन्यतोऽपि धूमादेर्भावो भविष्यतीत्येवं व्यभिचारशङ्का धूमधूमध्वजादिषु प्रसरन्ती दुर्निवारेत्यलं दुर्मतिविस्पन्दितेषु प्रयासेन, ननु यदि पारमार्थिकसम्बन्धनिबद्धस्वरूपत्वादिमे शब्दाः तात्त्विकार्थाभिधानप्रभविष्णवः तर्हि दर्शनान्तरनिवेशिपुरुषपरिकल्पितेषु वाच्येष्वेतेषां प्रवृतिर्नोपपद्येत, परस्परविरुद्धत्वेन तेषामर्थानां स्वरूपतोऽभावात्, यदपि च विनष्टमनुत्पन्नं वा

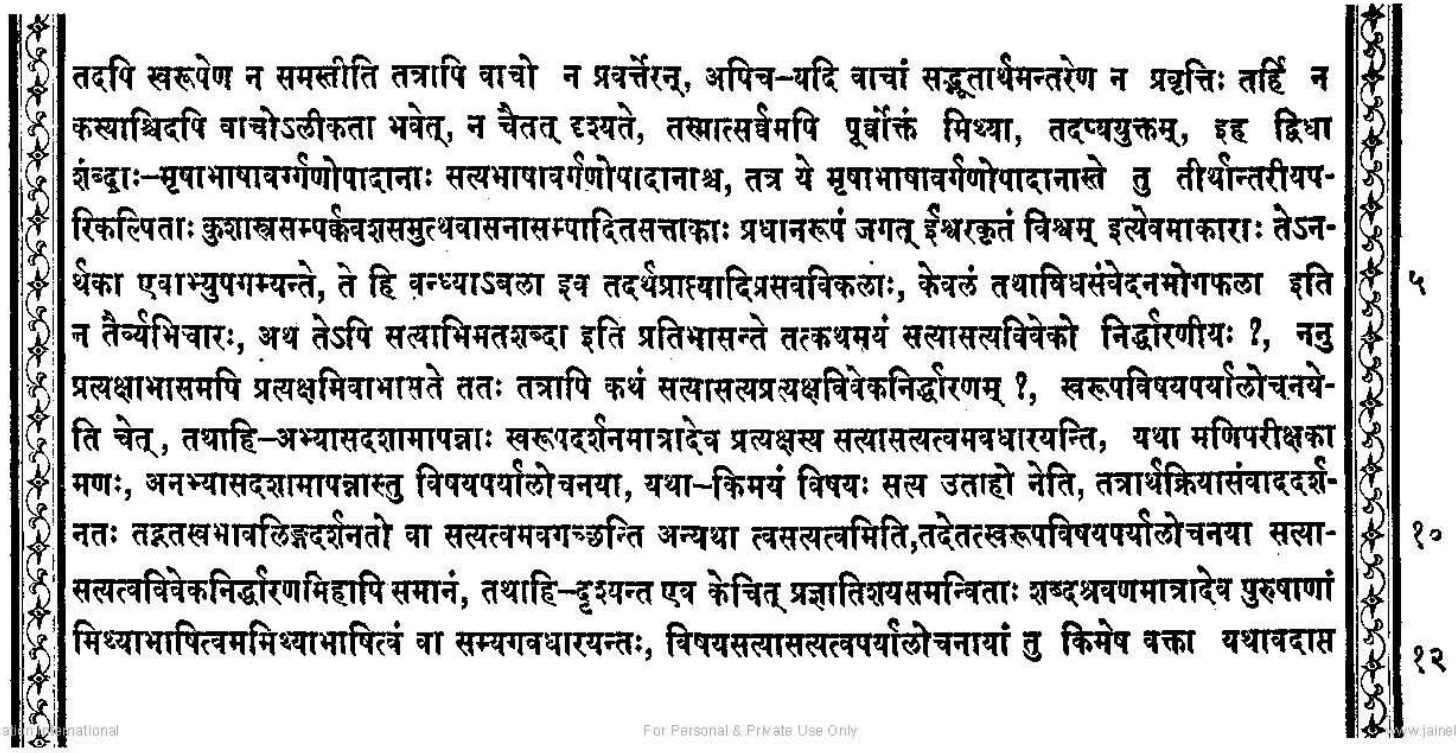
शब्द-प्रामाण्यं, १५

२०

॥ ९ ॥

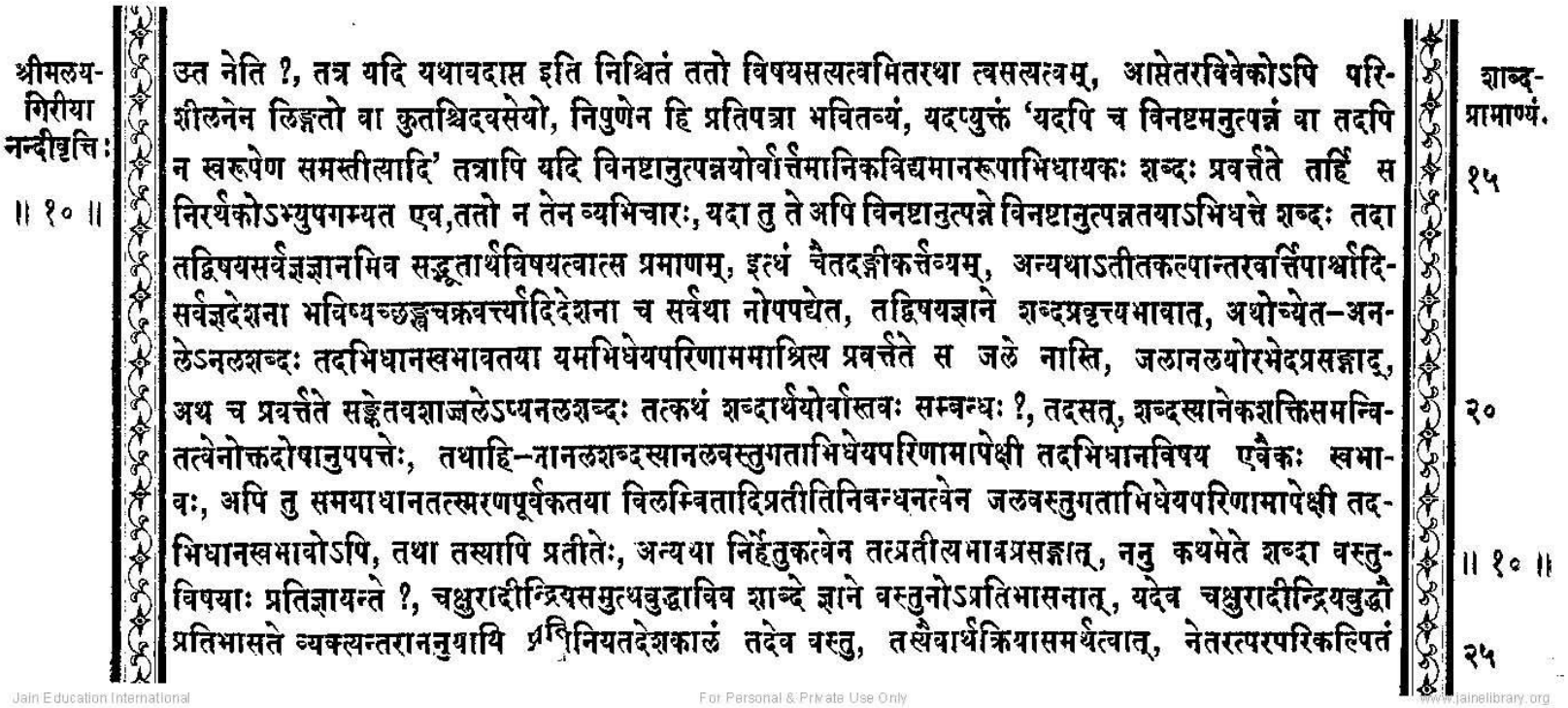
२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तदपि स्वरूपेण न समस्तीति तत्रापि वाचो न प्रवर्त्तेरन्, अपिच–यदि वाचां सद्भूतार्थमन्तरेण न प्रवृत्तिः तर्हि न कस्याश्चिदपि वाचोऽलीकता भवेत्, न चैतत् दृश्यते, तस्मात्सर्वमपि पूर्वोक्तं मिथ्या, तदप्ययुक्तम्, इह द्विधा शब्दाः–मृषाभाषावर्गणोपादानाः सत्यभाषावर्गणोपादानाश्च, तत्र ये मृषाभाषावर्गणोपादानास्ते तु तीर्थान्तरीयपरिकल्पिताः कुशास्त्रसम्पर्कवशसमुत्थवासनासम्पादितसत्ताकाः प्रधानरूपं जगत् ईश्वरकृतं विश्वम् इत्येवमाकाराः तेऽनर्थका एवाभ्युपगम्यन्ते, ते हि वन्ध्याऽबला इव तदर्थप्राप्त्यादिप्रसवविकलाः, केवलं तथाविधसंवेदनभोगफला इति न तैर्व्यभिचारः, अथ तेऽपि सत्याभिमतशब्दा इति प्रतिभासन्ते तत्कथमयं सत्यासत्यविवेको निर्द्धारणीयः ?, ननु प्रत्यक्षाभासमपि प्रत्यक्षमिवाभासते ततः तत्रापि कथं सत्यासत्यप्रत्यक्षविवेकनिर्द्धारणम् ?, स्वरूपविषयपर्यालोचनयेति चेत्, तथाहि–अभ्यासदशामापन्नाः स्वरूपदर्शनमात्रादेव प्रत्यक्षस्य सत्यासत्यत्वमवधारयन्ति, यथा मणिपरीक्षकामणः, अनभ्यासदशामापन्नास्तु विषयपर्यालोचनया, यथा–किमयं विषयः सत्य उताहो नेति, तत्रार्थक्रियासंवाददर्शनतः तद्गतस्वभावलिङ्गदर्शनतो वा सत्यत्वमवगच्छन्ति अन्यथा त्वसत्यत्वमिति,तदेतत्स्वरूपविषयपर्यालोचनया सत्यासत्यत्वविवेकनिर्द्धारणमिहापि समानं, तथाहि–दृश्यन्त एव केचित् प्रज्ञातिशयसमन्विताः शब्दश्रवणमात्रादेव पुरुषाणां मिथ्याभाषित्वममिथ्याभाषित्वं वा सम्यगवधारयन्तः, विषयसत्यासत्यत्वपर्यालोचनायां तु किमेष वक्ता यथावदाप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ १० ॥

उक्त नेति ?, तत्र यदि यथावदाप्त इति निश्चितं ततो विषयसत्यत्वमितरथा त्वसत्यत्वम्, आप्तेतरविवेकोऽपि परिशीलनेन लिङ्गतो वा कुतश्चिदवसेयो, निपुणेन हि प्रतिपत्रा भवितव्यं, यदप्युक्तं 'यदपि च विनष्टमनुत्पन्नं वा तदपि न स्वरूपेण समस्तीत्यादि' तत्रापि यदि विनष्टानुत्पन्नयोर्वार्त्तमानिकविद्यमानरूपाभिधायकः शब्दः प्रवर्त्तते तर्हि स निरर्थकोऽभ्युपगम्यत एव,ततो न तेन व्यभिचारः, यदा तु ते अपि विनष्टानुत्पन्ने विनष्टानुत्पन्नतयाऽभिधत्ते शब्दः तदा तद्विषयसर्वज्ञज्ञानमिव सद्भूतार्थविषयत्वात्स प्रमाणम्, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, अन्यथाऽतीतकल्पान्तरवर्त्तिपार्श्वादिसर्वज्ञदेशना भविष्यच्छङ्खचक्रवर्त्त्यादिदेशना च सर्वथा नोपपद्येत, तद्विषयज्ञाने शब्दप्रवृत्त्यभावात्, अथोच्येत–अनलेऽनलशब्दः तदभिधानस्वभावतया यमभिधेयपरिणाममाश्रित्य प्रवर्त्तते स जले नास्ति, जलानलयोरभेदप्रसङ्गाद्, अथ च प्रवर्त्तते सङ्केतवशाज्जलेऽप्यनलशब्दः तत्कथं शब्दार्थयोर्वास्तवः सम्बन्धः ?, तदसत्, शब्दस्यानेकशक्तिसमन्वितत्वेनोक्तदोषानुपपत्तेः, तथाहि–नानलशब्दस्यानलवस्तुगताभिधेयपरिणामापेक्षी तदभिधानविषय एवैकः स्वभावः, अपि तु समयाधानतत्स्मरणपूर्वकतया विलम्बितादिप्रतीतिनिबन्धनत्वेन जलवस्तुगताभिधेयपरिणामापेक्षी तदभिधानस्वभावोऽपि, तथा तस्यापि प्रतीतेः, अन्यथा निर्हेतुकत्वेन तत्प्रतीत्यभावप्रसङ्गात्, ननु कथमेते शब्दा वस्तुविषयाः प्रतिज्ञायन्ते ?, चक्षुरादीन्द्रियसमुत्थबुद्धाविव शाब्दे ज्ञाने वस्तुनोऽप्रतिभासनात्, यदेव चक्षुरादीन्द्रियबुद्धौ प्रतिभासते व्यक्त्यन्तराननुयायि प्रतिनियतदेशकालं तदेव वस्तु, तस्यैवार्थक्रियासमर्थत्वात्, नेतरत्परपरिकल्पितं

शाब्द-प्रामाण्यं.

१५

२०

॥ १० ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामान्यं, विपर्ययात्, न च तदर्थक्रियासमर्थं वस्तु शाब्दे ज्ञाने प्रतिभासते, तस्मादवस्तुविषया एते शब्दाः, तथा चात्र प्रमाणं–योऽर्थः शाब्दे ज्ञाने येन शब्देन सह संस्पृष्टो नावभासते न स तस्य शब्दस्य विषयः, यथा गोशब्दस्याश्वः, नावभासते चेन्द्रियगम्योऽर्थः शाब्दे ज्ञाने शब्देन संस्पृष्ट इति, यो हि यस्य शब्दस्यार्थः स तेन सह संस्पृष्टः शाब्दे ज्ञाने प्रतिभासते, यथा गोशब्देन गोपिण्डः, एतावन्मात्रनिबन्धनत्वाद् वाच्यत्वस्येति, तदेतदसमीचीनम्, इन्द्रियगम्यार्थस्य शाब्दे ज्ञाने शब्देन सहानवभासासिद्धेः, तथाहि–कृष्णं महान्तमखण्डं मसृणमपूर्वमपवरकात् घटमानयेत्युक्तः कश्चित् तज्ज्ञानावरणक्षयोपशमयुक्तः तमर्थं तथैव प्रत्यक्षमिव शाब्दे ज्ञाने प्रतिपद्यते, तदन्यघटमध्ये तदानयनाय तं प्रति भेदेन प्रवर्त्तनात्, तथैव च तत्प्राप्तेः, अथ तत्राप्यस्फुटरूप एव वस्तुनः प्रतिभासोऽनुभूयते, स्फुटाभं च प्रत्यक्षं, तत्कथं प्रत्यक्षगम्यं वस्तु शाब्दज्ञानस्य विषयः ?, नैष दोषः, स्फुटास्फुटरूपप्रतिभासभेदमात्रेण वस्तुभेदायोगात्, तथाहि-एकस्मिन्नेव नीलवस्तुनि दूरासन्नवर्त्तिप्रतिपत्तृज्ञाने स्फुटास्फुटप्रतिभासे उपलभ्येते, न च तत्र वस्तुभेदाभ्युपगमः, द्वयोरपि प्रत्यक्षप्रमाणतयाऽभ्युपगमात्, तथेहाप्येकस्मिन्नपि वस्तुनीन्द्रियजशाब्दज्ञाने स्फुटास्फुटप्रतिभासे भविष्यतो, न च तद्गोचरवस्तुभेदः, अथ वस्त्वभावेऽपि शाब्दज्ञानप्रतिभासाविशेषात् सत्यपि वस्तुनि शाब्दज्ञानं न तद्याथात्म्यसंस्पर्शि, तद्भावाभावयोरननुविधानात्, यस्य हि ज्ञानस्य प्रतिभासो यस्य भावाभावावनुविधत्ते तत्तस्य परिच्छेदकं, न च शाब्दज्ञानप्रतिभासो वस्तुनो भावाभावावनु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

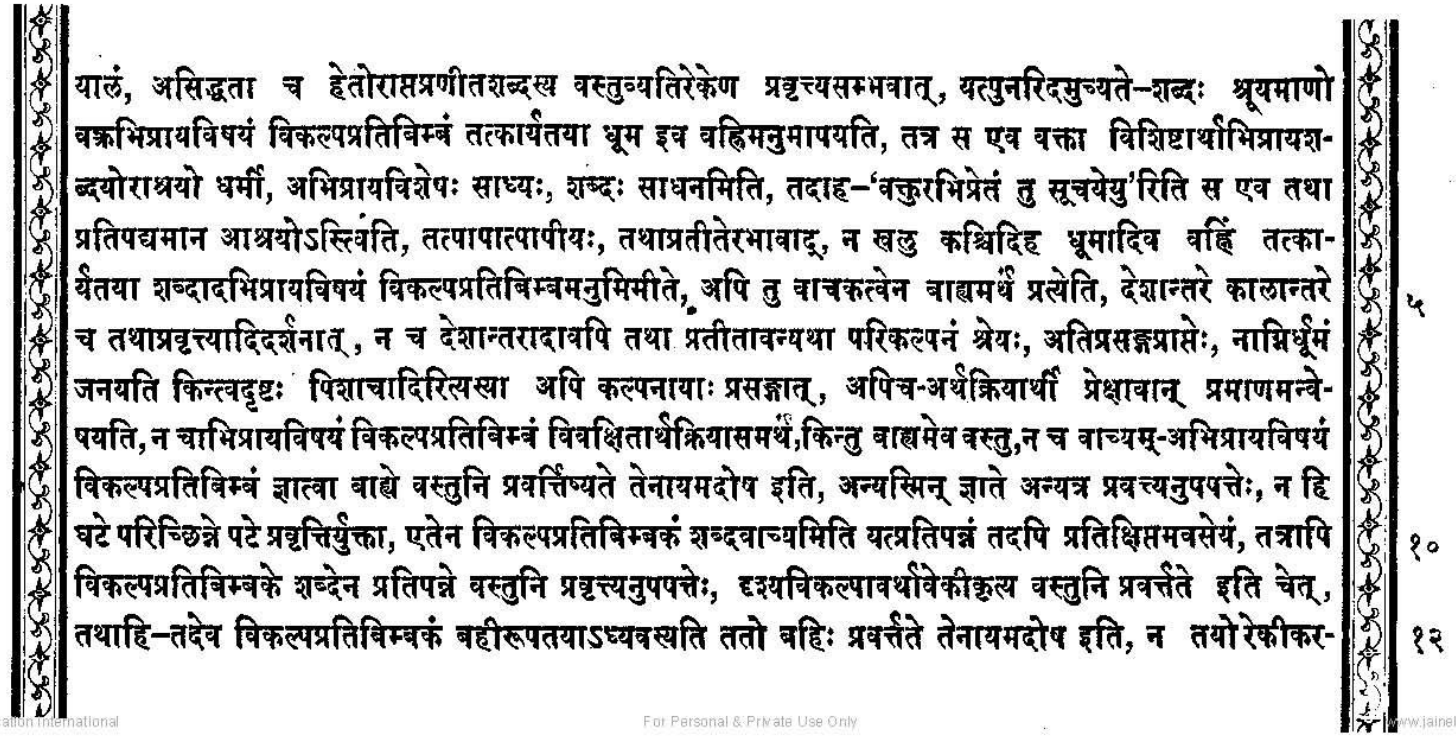
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]

विधत्ते, वस्त्वभावेऽपि तदविशेषात्, तन्न वस्तुनः परिच्छेदकं शाब्दज्ञानं रसज्ञानमिव गन्धस्य, प्रमाणं चात्र-यज्ज्ञानं यदन्वयव्यतिरेकानुविधायि न भवति न तत्तद्विषयं, यथा रूपज्ञानं रसविषयं, न भवति चेन्द्रियगम्यार्थान्वयव्यतिरेकानुविधायि शाब्दं ज्ञानमिति व्यापकानुपलब्धेः प्रतिनियतवस्तुविषयवत्त्वं हि ज्ञानस्य निमित्तवत्तया व्याप्तं, अन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावे च निमित्तवत्त्वाभावः स्यात्, निमित्तान्तरासम्भवात्, तेन तद्विषयवत्त्वं निमित्तवत्त्वाभावाद्विपक्षाद्व्यापकानुपलब्ध्या व्यावर्त्तमानमन्वयव्यतिरेकानुविधानेन व्याप्यते इति प्रतिबन्धसिद्धेः, तदयुक्तम्, प्रत्यक्षज्ञानेऽप्येवमविषयत्वप्रसक्तेः, तथाहि–यथा जलवस्तुनि जलोल्लेखि प्रत्यक्षमुदयपदवीमासादयति तथा जलाभावेऽपि मरौ मध्याह्नमार्त्तण्डमरीचिकास्वक्षुण्णजलप्रतिभासमुदयमानमुपलभ्यते ततो जलाभावेऽपि जलज्ञानप्रतिभासाविशेषात् सत्यपि जले जलप्रत्यक्षं प्रादुर्भवन्न तद्याथात्म्यसंस्पर्शि, तद्भावाभावयोरननुकारादित्यादि सर्वं समानमेव, अत्र देशकालस्वरूपपर्यालोचनया तत्प्राप्त्यभावादिना च मरुमरीचिकासु जलोल्लेखिनः प्रत्यक्षस्य भ्रान्तत्वमवसीयते, भ्रान्तं चाप्रमाणं, ततो न तेन व्यभिचारः, प्रमाणभूतस्य च वस्त्वन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वाद् व्यभिचार एव, तदेतदन्यत्रापि समानं, तथाहि–यथार्थदर्शनादिगुणयुक्तः पुरुष आप्तः, तत्प्रणीतशब्दसमुत्थं च ज्ञानं प्रमाणं, न च तस्य वस्त्वन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वव्यभिचारसम्भवः, यत्पुनरनाप्तप्रणीतशब्दसमुत्थं ज्ञानं तदप्रमाणं, अप्रमाणत्वाच्च न तेन व्यभिचारः, यदपि च प्रमाणमुपन्यस्तं तदपि हेतोरसिद्धत्वान्न साध्यसाधना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



यालं, असिद्धता च हेतोरासप्रणीतशब्दस्य वस्तुव्यतिरेकेण प्रवृत्त्यसम्भवात्, यत्पुनरिदमुच्यते–शब्दः श्रूयमाणो वक्त्रभिप्रायविषयं विकल्पप्रतिबिम्बं तत्कार्यतया धूम इव वह्निमनुमापयति, तत्र स एव वक्ता विशिष्टार्थाभिप्रायशब्दयोराश्रयो धर्मी, अभिप्रायविशेषः साध्यः, शब्दः साधनमिति, तदाह–'वक्तुरभिप्रेतं तु सूचयेयु'रिति स एव तथा प्रतिपद्यमान आश्रयोऽस्त्विति, तत्पापात्पापीयः, तथाप्रतीतेरभावाद्, न खलु कश्चिदिह धूमादिव वह्निं तत्कार्यतया शब्दादभिप्रायविषयं विकल्पप्रतिबिम्बमनुमिमीते, अपि तु वाचकत्वेन वाह्यमर्थं प्रत्येति, देशान्तरे कालान्तरे च तथाप्रवृत्त्यादिदर्शनात्, न च देशान्तरादावपि तथा प्रतीतावन्यथा परिकल्पनं श्रेयः, अतिप्रसङ्गप्राप्तेः, नाग्निर्धूमं जनयति किन्त्वदृष्टः पिशाचादिरित्यस्या अपि कल्पनायाः प्रसङ्गात्, अपिच-अर्थक्रियार्थी प्रेक्षावान् प्रमाणमन्वेषयति, न चाभिप्रायविषयं विकल्पप्रतिबिम्बं विवक्षितार्थक्रियासमर्थं,किन्तु वाह्यमेव वस्तु,न च वाच्यम्-अभिप्रायविषयं विकल्पप्रतिबिम्बं ज्ञात्वा वाह्ये वस्तुनि प्रवर्त्तिष्यते तेनायमदोष इति, अन्यस्मिन् ज्ञाते अन्यत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, न हि घटे परिच्छिन्ने पटे प्रवृत्तिर्युक्ता, एतेन विकल्पप्रतिबिम्बकं शब्दवाच्यमिति यत्प्रतिपन्नं तदपि प्रतिक्षिप्तमवसेयं, तत्रापि विकल्पप्रतिबिम्बके शब्देन प्रतिपन्ने वस्तुनि प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, दृश्यविकल्पावर्थावेकीकृत्य वस्तुनि प्रवर्त्तते इति चेत्, तथाहि–तदेव विकल्पप्रतिबिम्बकं बहीरूपतयाऽध्यवस्यति ततो बहिः प्रवर्त्तते तेनायमदोष इति, न तयोरेकीकर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]

णासिद्धेः, अत्यन्तवैलक्षण्येन साधर्म्ययोगात्, साधर्म्ये चैकीकरणनिमित्तम्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात्, अपि च–कश्चैतावेकीकरोतीति वाच्यम्, स एव विकल्प इति चेत्, तद् न, तत्र बाह्यस्वरूपलक्षणानवभासात्, अन्यथा विकल्पत्वायोगाद्, अनवभासितेन चैकीकरणासम्भवाद्, अतिप्रसक्तेः, अथ विकल्पादन्य एव कश्चिद्विकल्प्यमेवार्थं दृश्यमित्यध्यवस्यति, हन्त तर्हि स्वदर्शनपरित्यागप्रसङ्गः, एवमभ्युपगमे सति बलादात्मास्तित्वप्रसक्तेः तथाहि–निर्विकल्पकं न विकल्प्यमर्थं साक्षात्करोति, तदगोचरत्वात्, ततो न तत् दृश्यमर्थं विकल्पेन सहैकीकर्तुमलं, न च देशकालस्वभावव्यवहितार्थविषयेषु शाब्दविकल्पेषु तद्विषये निर्विकल्पकसम्भवः, तत्कथं तत्र तेन दृश्यविकल्पार्थैकीकरणम्, ततो विकल्पादन्यः सर्वत्र दृश्यविकल्पावर्थावेकीकुर्वन् बलादात्मैवोपपद्यते न च सोऽभ्युपगम्यते, तस्माच्छब्दो बाह्यस्यार्थस्य वाचक इत्यकामेनापि प्रतिपत्तव्यम्, इतश्च प्रतिपत्तव्यम्, अन्यथा सङ्केतस्यापि कर्तुमशक्यत्वात्, तथाहि–येन शब्देन इदं तदित्यादिना सङ्केतो विधेयः तेन किं सङ्केतितेन उतासङ्केतितेन ?, न तावत्सङ्केतितेन, अनवस्थाप्रसङ्गात्, तस्यापि हि येन शब्देन सङ्केतः कार्यः तेन किं सङ्केतितेन उतासङ्केतितेनेत्यादि तदेवावर्त्तते, अथासङ्केतितेन सिद्धः तर्हि शब्दार्थयोर्वास्तवः सम्बन्ध इति । तथा 'जगदानन्दः' इह जगच्छब्देन संज्ञिपञ्चेन्द्रियपरिग्रहः तेषामेव भगवद्दर्शनदेशनादित आनन्दसम्भवात्, ततश्च जगतां–संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणाममृतस्यन्दिमूर्त्तिदर्शनमात्रतो निःश्रेयसाभ्युदयसाधकधर्म्मोपदेशद्वारेण चानन्दहेतुत्वादैहिकामुष्मिकप्रमोदकारणत्वाज्जगदानन्दः, अनेन

१५ २० ॥ १२ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परार्थसम्पदमाह। तथा 'जगन्नाथ' इह जगच्छब्देन सकलचराचरपरिग्रहः, नाथशब्देन च योगक्षेमकृदभिधीयते, 'योगक्षे-
मकृत् नाथ' इति विद्वत्प्रवादात्, ततश्च जगतः-सकलचराचररूपस्य यथावस्थितस्वरूपप्ररूपणद्वारेण वितथप्ररूपणा-
पायेभ्यः पालनाच्च नाथ इव नाथो जगन्नाथः, अनेनापि परार्थसम्पदमाह। तथा 'जगद्बन्धुः' इह जगच्छब्देन सकलप्रा-
णिगणपरिग्रहः, प्राणिन एवाधिकृत्य बन्धुत्वोपपत्तेः, ततश्च जगतः–सकलप्राणिसमुदायरूपस्याव्यापादनोपदेशप्रणयनेन
सुखस्थापकत्वाद्बन्धुरिव बन्धुर्जगद्बन्धुः, सकलजगदव्यापादनोपदेशप्रणयनं च भगवतः सुप्रतीतम्, तथा चाचारसूत्रं– ५
"सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघेत्तव्वा न उवद्दवेयव्वा, एस
धम्मे सुद्धे धुवे नीए सासए समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए" इत्यादि, एतेन संसारमोचकानां व्यापाद्योपकृतये
दुःखितसत्त्वव्यापादनमुपदिशतामकुशलमार्गप्रवृत्तत्वमावेदितं द्रष्टव्यं, यतस्ते एवमाहुः—यत्परिणामसुन्दरं तदापात-
कटुकमपि परेषामाधेयं, यथा रोगोपशमनमौषधं, परिणामसुन्दरं च दुःखितसत्त्वानां व्यापादनमिति, तथाहि–कृमि-
कीटपतङ्गमशकलावकचटककुक्षिकमहादरिद्रान्धपङ्ग्वादयो दुःखितजन्तवः पापकर्म्मोदयवशात्संसारसागरमभिप्लवन्ते, १०
ततस्तेऽवश्यं तत्पापक्षपणाय परोपकारकरणैकरसिकमानसेन व्यापादनीयाः, तेषां हि व्यापादने महादुःखमतीवो-

१ सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सत्त्वा न हन्तव्या नाज्ञापयितव्या न परिग्रहीतव्या नोपद्रोतव्याः, एष धर्मः शुद्धो ध्रुवो नीतियुक्तः (नित्यः नैत्यिकः) शाश्वतः समेत्य लोकं खेदज्ञैः प्रवेदितः १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

पजायते, तीव्रदुःखवेदनाभिभववशाच्च प्राग्बद्धं पापकर्मोदीर्योदीर्यानुभवन्तः प्रतिक्षिपन्ति, स्यादेतत्–किमत्र प्रमाणं यत्ते व्यापाद्यमानाः तीव्रवेदनाऽनुभवतः प्राग्बद्धं पापकर्मोदीर्योदीर्यं परिक्षिपन्ति न पुनरार्त्तरौद्रध्यानोपगमतः प्रभूततरं पापमावर्जयन्तीति ?, उच्यते, युष्मत्सिद्धान्तानुगतमेव नारकस्वरूपोपदर्शकं वचः, तथाहि–नारका निरन्तरं परमाधार्मिकसुरैः ताडनभेदनोत्कर्त्तनशूल्यारोपणाद्यनेकप्रकारमुपहन्यमानाः परमाधार्मिकसुराभावे परस्परोदीरिततीव्रवेदना रौद्रध्यानोपगता अपि प्राग्बद्धमेव कर्म क्षपयन्ति, नापूर्वं पापमधिकतरमुपार्जयन्ति, नारकायुर्बन्धासम्भवात्, तदसम्भवश्चानन्तरं भूयः तत्रैवोत्पादाभावाद्। अपि च–यत एव रौद्रध्यानोपगता अत एव तेषां प्रभूततरप्राग्बद्धपापकर्मपरिक्षयः,तीव्रसङ्क्लेशभावात्,न खलु तीव्रसङ्क्लेशाभावे परमाधार्मिकसुरा अपि तेषां कर्म्म क्षपयितुं शक्ताः, ततो रौद्रादिध्यानमुपजनयन्तोऽपि व्यापादका व्यापाद्यानामुपकारका एव, इत्थं च व्यापादनतः तेषामुपकारसम्भवे ये तद्व्यापादनमुपेक्षन्ते प्रतिषेधन्ति वा ते महापापकारिणः, ये पुनः प्रागुपात्तपुण्यकर्मोदयवशतः सुखासिकामनुभवन्तोऽवतिष्ठन्ते न ते व्यापादनीयाः, तेषां व्यापादने सुखानुभववियोगभावतोऽपकारसम्भवात्, न च परहितनिरताः परापकृतये संरम्भमातन्वन्ति, तदेतदयुक्तम्, परोपकारो हि स एव सुधिया विधेयो य आत्मन उपकारको, न च परेषां व्यापादनेनोपकृतिकरणे भवतः कमप्युपकारमीक्षामहे, तथाहि—परेषां व्यापादने को भवतः उपकारः ?, किं पुण्यबन्धः उत कर्मक्षयः ?, तत्र न तावत्पुण्यबन्धः, परेषामन्तरायकरणात्, ते हि परे यदि भवता न व्यापाद्ये-

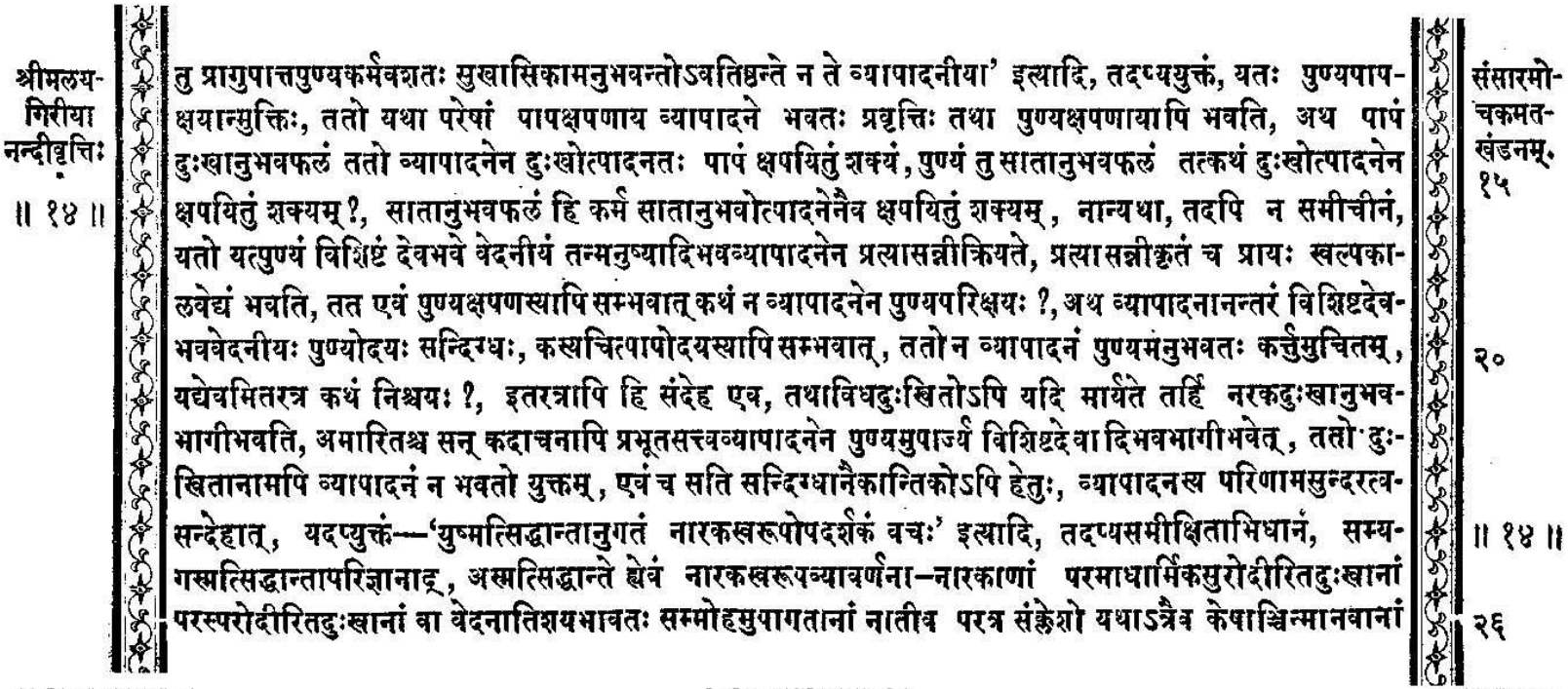
१५ २० ॥ १३ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रंस्ततः ते परान् सत्त्वान् व्यापाद्य पुण्यमुपार्जयेयुः, व्यापादिताश्च परवधे अप्रसक्ता इति व्यापादनं पुण्योपार्जनान्तरायकरणं, न च पुण्योपार्जनान्तरायकृत् पुण्यमुपार्जयति, विरोधात् सर्वस्य पुण्यबन्धप्रसक्तेश्च; एतेन यदुक्तं–'परिणामसुन्दरं च दुःखितसत्त्वानां व्यापादन'मिति तदसिद्धं द्रष्टव्यम्, पुण्योपार्जनान्तरायकरणेन परिणामसुन्दरत्वायोगात्, अथ कर्मक्षय इति पक्षः, ननु तत्कर्म किं सहेतुकमुताहेतुकं ?, सहेतुकमपि किमज्ञानहेतुकमुताहिंसाजन्यमुताहो वधजन्यं ?, तत्र न तावदज्ञानहेतुकम्, अज्ञानहेतुकतायां हिंसातो निवृत्त्यसम्भवात्, यो हि यन्निमित्तो दोषः स तत्प्रतिपक्षस्यैवासेवायां निवर्त्तते, यथा हिमजनितं शीतमनलासेवनेन, न चाज्ञानस्य हिंसा प्रतिपक्षभूता, किन्तु सम्यग्ज्ञानं, तत्कथमज्ञानहेतुकं कर्म हिंसातो विनिवर्त्तते ?, अथाहिंसाजन्यमिति वदेत्, तदपि न युक्तम्, एवं सति मुक्तानामपि कर्मबन्धप्रसक्तेः, तेषामहिंसकत्वात्, अथ हिंसाजन्यं, यद्येवं तर्हि कथं हिंसात एव तस्य निवृत्तिः, न हि यत एव यस्य प्रादुर्भावः तत एव तस्य निवृत्तिर्भवितुमर्हति, विरोधात्, न खल्वजीर्णप्रभवो रोगो मुहुरजीर्णकरणात् निवर्त्तते, ततः प्राणिहिंसोत्पादितकर्मनिवृत्त्यर्थमवश्यमहिंसाऽऽसेवनीया, उक्तं च–"तम्हा पाणिवहोवज्जियस्स कम्मस्स खवणहेऊओ । वहविरई कायव्वा संवररूवत्ति नियमेणं ॥ १ ॥" अथाहेतुकं, न तर्हि तदस्ति, खरविषाणवत्, तत्कथं तदपगमाय प्राणिवधोद्यमो भवतः ?, अथाहेतुकमप्यस्ति यथाऽऽकाशं, तर्ह्याकाशस्येव तस्यापि न कथञ्चन विनाश इत्यफलत्वात् न कार्यः प्राणिवधः, यदप्युक्तं–ये,

१ तस्मात्प्राणिवधोपार्जितस्य कर्मणः क्षपणहेतुतः । वधविरतिः कर्तव्या संवररूपेति नियमेन ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ १४ ॥

तु प्रागुपात्तपुण्यकर्मवशतः सुखासिकामनुभवन्तोऽवतिष्ठन्ते न ते व्यापादनीया' इत्यादि, तदप्ययुक्तं, यतः पुण्यपाप-
क्षयान्मुक्तिः, ततो यथा परेषां पापक्षपणाय व्यापादने भवतः प्रवृत्तिः तथा पुण्यक्षपणायापि भवति, अथ पापं
दुःखानुभवफलं ततो व्यापादनेन दुःखोत्पादनतः पापं क्षपयितुं शक्यं, पुण्यं तु सातानुभवफलं तत्कथं दुःखोत्पादनेन
क्षपयितुं शक्यम्?, सातानुभवफलं हि कर्म सातानुभवोत्पादनेनैव क्षपयितुं शक्यम्, नान्यथा, तदपि न समीचीनं,
यतो यत्पुण्यं विशिष्टं देवभवे वेदनीयं तन्मनुष्यादिभवव्यापादनेन प्रत्यासन्नीक्रियते, प्रत्यासन्नीकृतं च प्रायः स्वल्पका-
लवेद्यं भवति, तत एवं पुण्यक्षपणस्यापि सम्भवात् कथं न व्यापादनेन पुण्यपरिक्षयः?, अथ व्यापादनानन्तरं विशिष्टदेव-
भववेदनीयः पुण्योदयः सन्दिग्धः, कस्यचित्पापोदयस्यापि सम्भवात्, ततो न व्यापादनं पुण्यमनुभवतः कर्तुमुचितम्,
यद्येवमितरत्र कथं निश्चयः?, इतरत्रापि हि संदेह एव, तथाविधदुःखितोऽपि यदि म्रियते तर्हि नरकदुःखानुभव-
भागीभवति, अमारितश्च सन् कदाचनापि प्रभूतसत्त्वव्यापादनेन पुण्यमुपार्ज्य विशिष्टदेवादिभवभागीभवेत्, ततो दुः-
खितानामपि व्यापादनं न भवतो युक्तम्, एवं च सति सन्दिग्धानैकान्तिकोऽपि हेतुः, व्यापादनस्य परिणामसुन्दरत्व-
सन्देहात्, यदप्युक्तं—'युष्मत्सिद्धान्तानुगतं नारकस्वरूपोपदर्शकं वचः' इत्यादि, तदप्यसमीक्षिताभिधानं, सम्य-
गस्मत्सिद्धान्तापरिज्ञानाद्, अस्मत्सिद्धान्ते ह्येवं नारकस्वरूपव्यावर्णना—नारकाणां परमाधार्मिकसुरोदीरितदुःखानां
परस्परोदीरितदुःखानां वा वेदनातिशयभावतः सम्मोहमुपागतानां नातीव परत्र संक्लेशो यथाऽत्रैव केषाञ्चिन्मानवानां

संसारमो-चकमत-खंडनम्. १५

२०

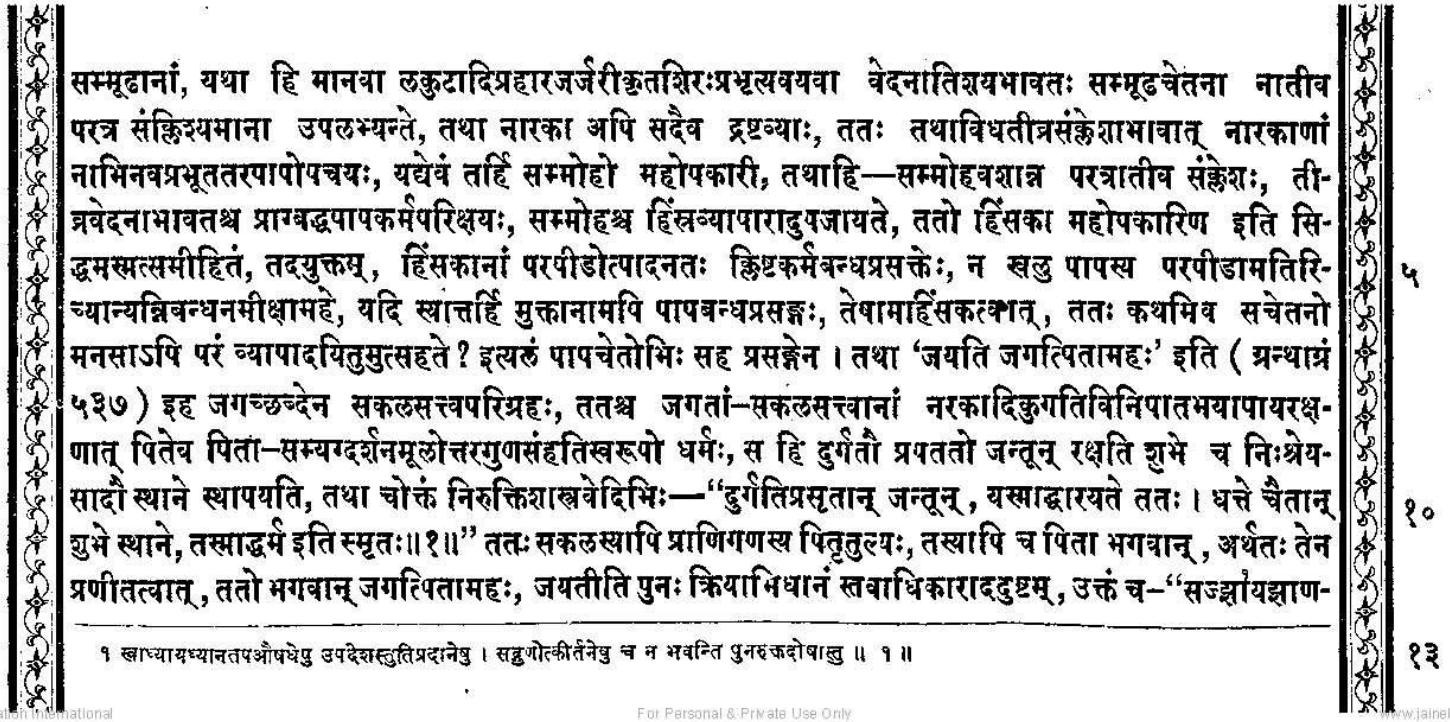
॥ १४ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥

दीप अनुक्रम [१]



सम्मूढानां, यथा हि मानवा लकुटादिप्रहारजर्जरीकृतशिरःप्रभृत्यवयवा वेदनातिशयभावतः सम्मूढचेतना नातीव परत्र संक्लिश्यमाना उपलभ्यन्ते, तथा नारका अपि सदैव द्रष्टव्याः, ततः तथाविधतीव्रसंक्लेशाभावात् नारकाणां नाभिनवप्रभूततरपापोपचयः, यद्येवं तर्हि सम्मोहो महोपकारी, तथाहि—सम्मोहवशान्न परत्रातीव संक्लेशः, तीव्रवेदनाभावतश्च प्राग्बद्धपापकर्मपरिक्षयः, सम्मोहश्च हिंस्रव्यापारादुपजायते, ततो हिंसका महोपकारिण इति सिद्धमस्मत्समीहितं, तदयुक्तम्, हिंसकानां परपीडोत्पादनतः क्लिष्टकर्मबन्धप्रसक्तेः, न खलु पापस्य परपीडामतिरिच्यान्यन्निबन्धनमीक्षामहे, यदि स्यात्तर्हि मुक्तानामपि पापबन्धप्रसङ्गः, तेषामहिंसकत्वात्, ततः कथमिव सचेतनो मनसाऽपि परं व्यापादयितुमुत्सहते? इत्यलं पापचेतोभिः सह प्रसङ्गेन। तथा 'जयति जगत्पितामहः' इति (ग्रन्थाग्रं ५३७) इह जगच्छब्देन सकलसत्त्वपरिग्रहः, ततश्च जगतां–सकलसत्त्वानां नरकादिकुगतिविनिपातभयापायरक्षणात् पितेव पिता–सम्यग्दर्शनमूलोत्तरगुणसंहतिस्वरूपो धर्मः, स हि दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् रक्षति शुभे च निःश्रेयसादौ स्थाने स्थापयति, तथा चोक्तं निरुक्तिशास्त्रवेदिभिः—"दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून्, यस्माद्धारयते ततः। धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृतः॥१॥" ततः सकलस्यापि प्राणिगणस्य पितृतुल्यः, तस्यापि च पिता भगवान्, अर्थतः तेन प्रणीतत्वात्, ततो भगवान् जगत्पितामहः, जयतीति पुनः क्रियाभिधानं स्वाधिकाराददुष्टम्, उक्तं च–"सज्झायझाण-

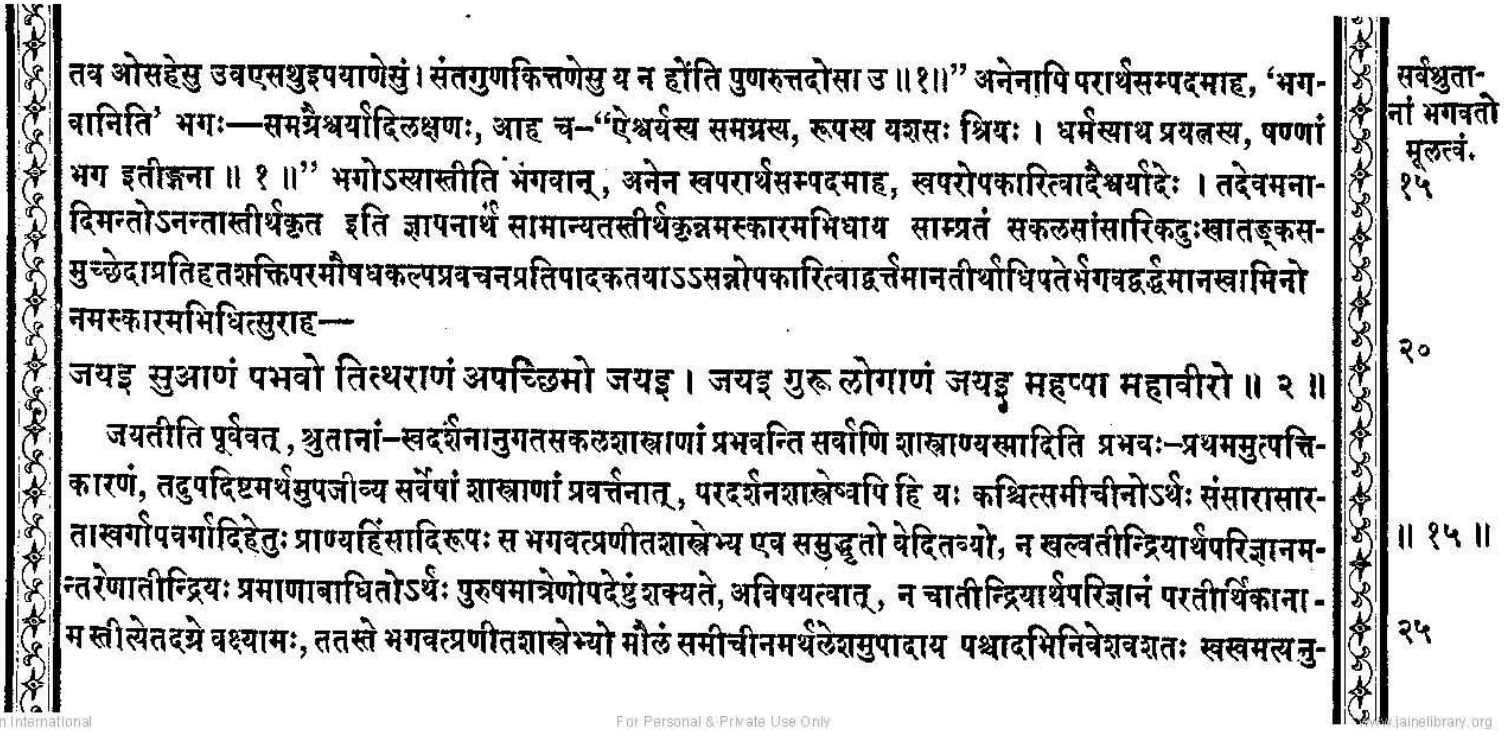
१ स्वाध्यायध्यानतपओषधेषु उपदेशस्तुतिप्रदानेषु। सद्गुणोत्कीर्तनेषु च न भवन्ति पुनरुक्तदोषास्तु ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥२॥

दीप अनुक्रम [२]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ १५ ॥

तव ओसहेसु उवएसथुइपयाणेसुं। संतगुणकित्तणेसु य न होंति पुणरुत्तदोसा उ ॥१॥" अनेनापि परार्थसम्पदमाह, 'भगवानिति' भगः—समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, आह च–"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः। धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना ॥ १ ॥" भगोऽस्यास्तीति भगवान्, अनेन स्वपरार्थसम्पदमाह, स्वपरोपकारित्वादैश्वर्यादेः। तदेवमनादिमन्तोऽनन्तास्तीर्थकृत इति ज्ञापनार्थं सामान्यतस्तीर्थकृन्नमस्कारमभिधाय साम्प्रतं सकलसांसारिकदुःखातङ्कसमुच्छेदाप्रतिहतशक्तिपरमौषधकल्पप्रवचनप्रतिपादकतयाऽऽसन्नोपकारित्वाद्वर्त्तमानतीर्थाधिपतेर्भगवद्वर्द्धमानस्वामिनो नमस्कारमभिधित्सुराह—

जयइ सुआणं पभवो तित्थराणं अपच्छिमो जयइ। जयइ गुरू लोगाणं जयइ महप्पा महावीरो ॥ २ ॥

जयतीति पूर्ववत्, श्रुतानां–स्वदर्शनानुगतसकलशास्त्राणां प्रभवन्ति सर्वाणि शास्त्राण्यस्मादिति प्रभवः–प्रथममुत्पत्तिकारणं, तदुपदिष्टमर्थमुपजीव्य सर्वेषां शास्त्राणां प्रवर्त्तनात्, परदर्शनशास्त्रेष्वपि हि यः कश्चित्समीचीनोऽर्थः संसारासारतास्वर्गापवर्गादिहेतुः प्राण्यहिंसादिरूपः स भगवत्प्रणीतशास्त्रेभ्य एव समुद्भूतो वेदितव्यो, न खल्वतीन्द्रियार्थपरिज्ञानमन्तरेणातीन्द्रियः प्रमाणाबाधितोऽर्थः पुरुषमात्रेणोपदेष्टुं शक्यते, अविषयत्वात्, न चातीन्द्रियार्थपरिज्ञानं परतीर्थिकानामस्तीत्येतदग्रे वक्ष्यामः, ततस्ते भगवत्प्रणीतशास्त्रेभ्यो मौलं समीचीनमर्थलेशमुपादाय पश्चादभिनिवेशवशतः स्वस्वमत्यनु-

सर्वश्रुतानां भगवतो मूलत्वं. १५ २० ॥ १५ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवत् वर्धमानस्वामीनः स्तुति

प्रत सूत्रांक ॥२॥

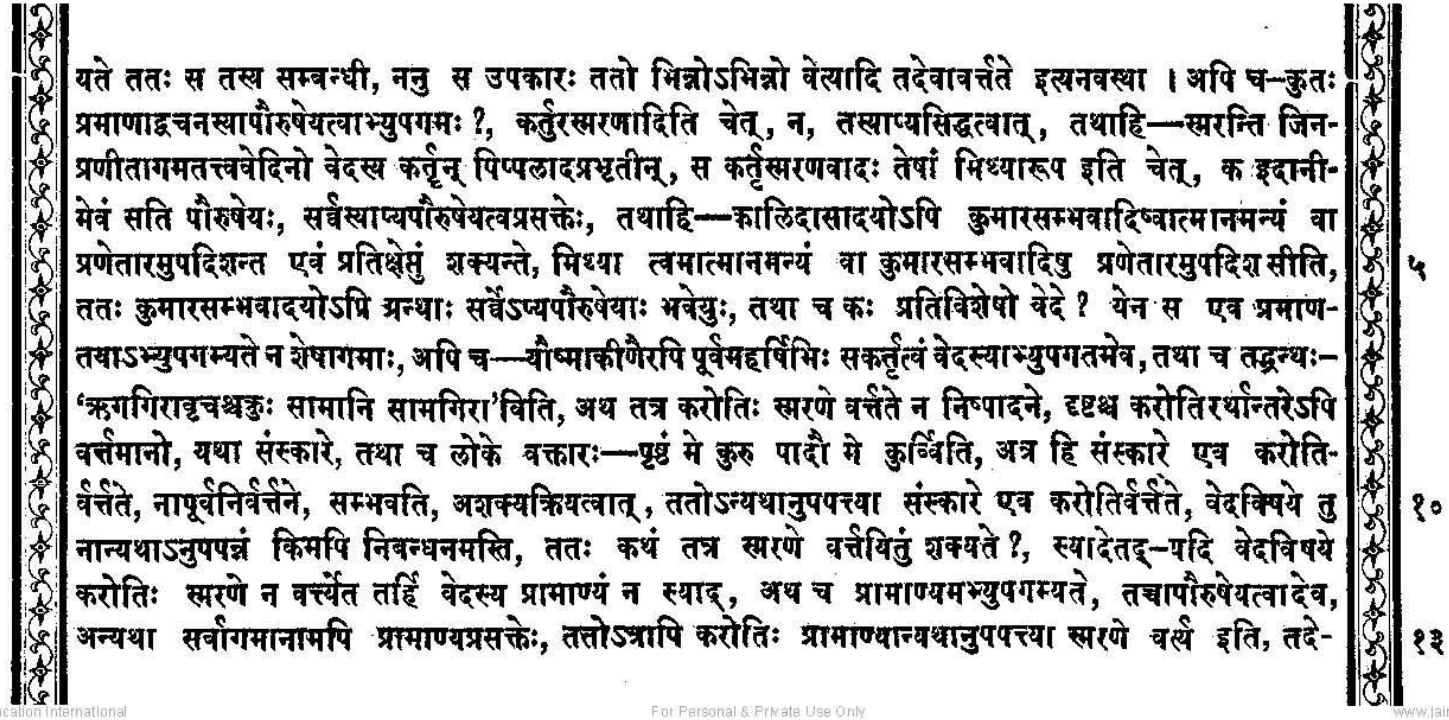
दीप अनुक्रम [२]

सारेण तास्ताः स्वसमयक्रियाः प्रपञ्चितवन्तः, उक्तं च स्तुतिकारेण–"सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु, स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तिसम्पदः। तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता, जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः॥१॥" शाकटायनोऽपि यापनीययतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह—'श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नत्वाऽऽदिं सर्ववेदसाम्' अत्र च न्यासकृता व्याख्या–'सर्ववेदसां' सर्वज्ञानानां स्वपरदर्शनसम्बन्धिसकलशास्त्रानुगतपरिज्ञानानाम् 'आदिं' प्रभवं प्रथममुत्पत्तिकारणमिति । अत एव चेह श्रुतानामित्यत्र बहुवचनम्, अन्यथैकवचनमेव प्रयुज्यते, प्रायः श्रुतशब्दस्य केवलद्वादशाङ्गमात्रवाचिनः सर्वत्रापि सिद्धान्ते एकवचनान्ततया प्रयोगदर्शनात्, सर्वश्रुतकारणत्वेन च भगवतः स्तुतिप्रतिपादने इदमप्यावेदितं द्रष्टव्यम्—सर्वाण्यपि श्रुतानि पौरुषेयाण्येव, न किमप्यपौरुषेयमस्ति, असम्भवात्, तथाहि–शास्त्रं वचनात्मकं, वचनं तालोष्ठपुटपरिस्पन्दादिरूपपुरुषव्यापारान्वयव्यतिरेकानुविधायि, ततस्तदभावे कथं भवति ?, न खलु पुरुषव्यापारमन्तरेण वचनमाकाशे ध्वनदुपलभ्यते, अपि च–तदपौरुषेयं वचनमकारणत्वान्नित्यमभ्युपगम्यते, 'सदकारणवन्नित्य'मिति वचनप्रामाण्यात्, ततश्च अत्र विकल्पयुगलमवतेतीर्यते, तदपौरुषेयं वचः किमुपलभ्यस्वभावमुतानुपलभ्यस्वभावं ?, तत्र यद्यनुपलभ्यस्वभावं तर्हि तस्य नित्यत्वेनाभ्युपगमात् कदाचिदपि स्वभावाप्रच्युतेः सर्वदैवोपलम्भाभावप्रसङ्गः, अथोपलम्भस्वभावं तर्हि सर्वदानुपरमेणोपलभ्येत, अन्यथा तत्स्वभावता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हानिप्रसङ्गाद्, अथोपलभ्यस्वभावमपि सहकारिप्रत्ययमपेक्ष्योपलम्भमुपजनयति तेन न सर्वदोपलम्भप्रसङ्गः, तदयुक्तम्, एकान्तनित्यस्य सहकार्यपेक्षाया अयोगात्, ततो विशेषप्रतिलम्भलक्षणा हि तस्य तत्रापेक्षा, यदाह धर्मकीर्त्तिः– 'अपेक्षाया विशेषप्रतिलम्भलक्षणत्वादि'ति, न च नित्यस्य विशेषप्रतिलम्भोऽस्ति, अनित्यत्वापत्तेः, तथाहि—स विशेषप्रतिलम्भः तस्मात्मभूतः, ततो विशेषे जायमाने स एव पदार्थः तेन रूपेण जातो भवति, प्राक्तनं विशिष्टावस्थालक्षणं रूपं विनष्टमित्यनित्यत्वापत्तिः, अथोच्येत–स विशेषप्रतिलम्भो न तस्मात्मभूतः किन्तु व्यतिरिक्तः कथमनित्यत्वापत्तिः ?, यद्येवं तर्हि कथं स तस्य सहकारी ?, न हि तेन सहकारिणा तस्य वचनस्य किमप्युपक्रियते, भिन्नविशेषकरणात्, अथ भिन्नोऽपि विशेषः तस्य सम्बन्धी तेन तत्सम्बन्धिविशेषकरणात् तस्याप्युपकारी द्रष्टव्य इति सहकारी व्यपदिश्यते, ननु विशेषेणापि सह तस्य वचनस्य कः सम्बन्धो?, न तावत्तादात्म्यं, भिन्नत्वेनाभ्युपगमात्, नापि तदुत्पत्तिः, विकल्पद्वयानतिक्रमात्, तथाहि–किं वचनेन विशेषो जन्यते ? उत विशेषेण वचनम् ?, तत्र न तावदाद्यः पक्षो, विशेषस्य सहकारिणोऽभावात्, नापि द्वितीयो, वचनस्य नित्यतया कर्त्तुमशक्यत्वाद्, अथ मा भूद् वचनविशेषयोर्जन्यजनकभावः, आधाराधेयभावो भविष्यति, तदप्यसमीचीनम्, आधाराधेयभावस्यापि परस्परोपकार्योपकारकभावापेक्षत्वात्, तथाहि—त्रदरं पतनधर्मकं सत् कुण्डेन स्वानन्तरदेशस्थायितया परिणामि जन्यते, तस्यान्यतोऽभावात्, ततः कथमनयोराधाराधेयभाव ?, अथ तेन विशेषेण वचनस्योपकारः कश्चित्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



यते ततः स तस्य सम्बन्धी, ननु स उपकारः ततो भिन्नोऽभिन्नो वेत्यादि तदेवावर्त्तते इत्यनवस्था । अपि च–कुतः प्रमाणाद्वचनस्यापौरुषेयत्वाभ्युपगमः ?, कर्तुरस्मरणादिति चेत्, न, तस्याप्यसिद्धत्वात्, तथाहि—स्मरन्ति जिन-प्रणीतागमतत्त्ववेदिनो वेदस्य कर्तॄन् पिप्पलादप्रभृतीन्, स कर्तृस्मरणवादः तेषां मिथ्यारूप इति चेत्, क इदानी-मेवं सति पौरुषेयः, सर्वस्याप्यपौरुषेयत्वप्रसक्तेः, तथाहि—कालिदासादयोऽपि कुमारसम्भवादिष्वात्मानमन्यं वा प्रणेतारमुपदिशन्त एवं प्रतिक्षेप्तुं शक्यन्ते, मिथ्या त्वमात्मानमन्यं वा कुमारसम्भवादिषु प्रणेतारमुपदिशसीति, ततः कुमारसम्भवादयोऽपि ग्रन्थाः सर्वेऽप्यपौरुषेयाः भवेयुः, तथा च कः प्रतिविशेषो वेदे ? येन स एव प्रमाण-तयाऽभ्युपगम्यते न शेषागमाः, अपि च—यौष्माकीणैरपि पूर्वमहर्षिभिः सकर्तृत्वं वेदस्याभ्युपगतमेव, तथा च तद्ग्रन्थः– 'ऋगगिरावृचश्चक्रुः सामानि सामगिरा'विति, अथ तत्र करोतिः स्मरणे वर्त्तते न निष्पादने, दृष्टश्च करोतिरर्थान्तरेऽपि वर्त्तमानो, यथा संस्कारे, तथा च लोके वक्तारः—पृष्ठं मे कुरु पादौ मे कुर्विति, अत्र हि संस्कारे एव करोति-र्वर्त्तते, नापूर्वनिर्वर्त्तने, सम्भवति, अशक्यक्रियत्वात्, ततोऽन्यथानुपपत्त्या संस्कारे एव करोतिर्वर्त्तते, वेदविषये तु नान्यथाऽनुपपन्नं किमपि निबन्धनमस्ति, ततः कथं तत्र स्मरणे वर्त्तयितुं शक्यते ?, स्यादेतद्–यदि वेदविषये करोतिः स्मरणे न वर्त्तेत तर्हि वेदस्य प्रामाण्यं न स्याद्, अथ च प्रामाण्यमभ्युपगम्यते, तच्चापौरुषेयत्वादेव, अन्यथा सर्वागमानामपि प्रामाण्यप्रसक्तेः, तत्तोऽत्रापि करोतिः प्रामाण्यान्यथानुपपत्त्या स्मरणे वर्त्त इति, तदे-

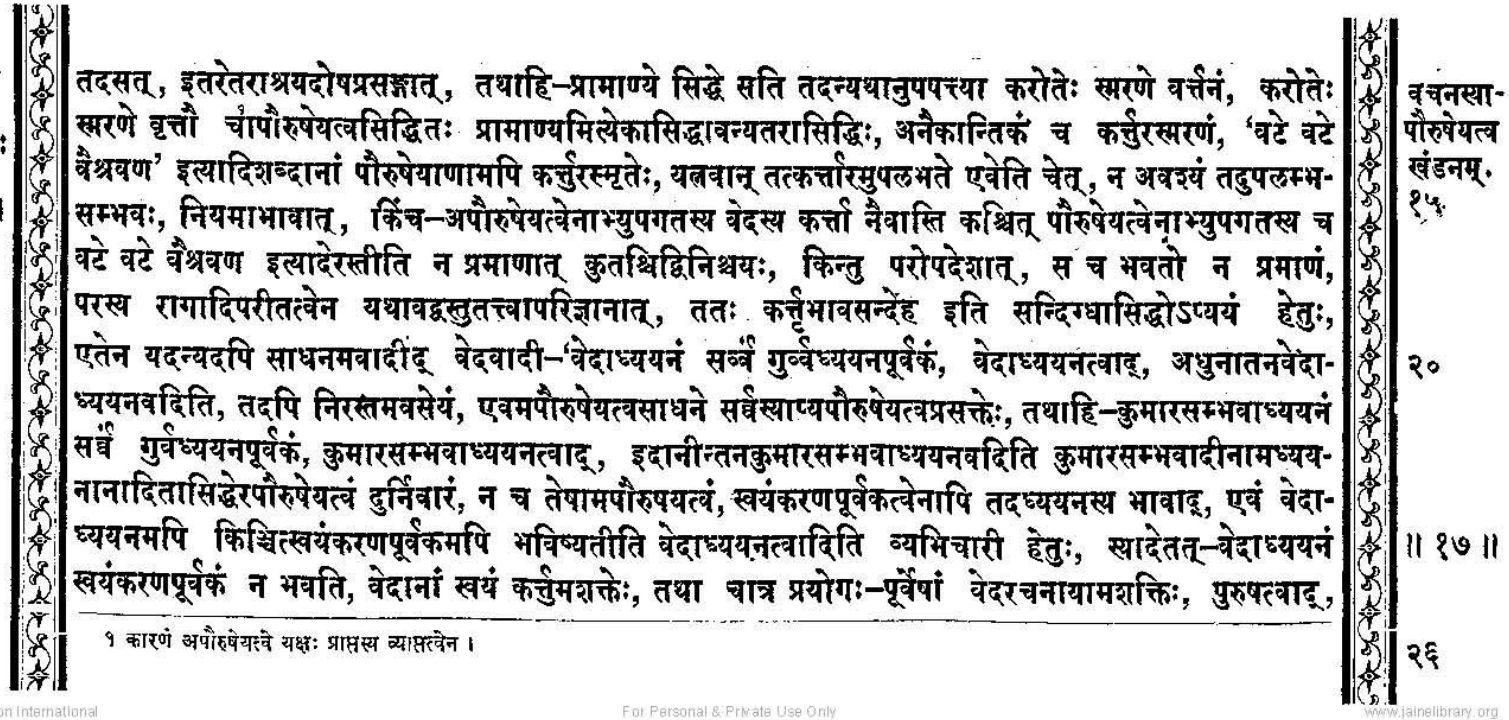
५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥२॥

दीप अनुक्रम [२]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ १७ ॥

तदसत्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि–प्रामाण्ये सिद्धे सति तदन्यथानुपपत्त्या करोतेः स्मरणे वर्त्तनं, करोतेः स्मरणे वृत्तौ चापौरुषेयत्वसिद्धितः प्रामाण्यमित्येकासिद्धावन्यतरासिद्धिः, अनैकान्तिकं च कर्त्तुरस्मरणं, 'वटे वटे वैश्रवण' इत्यादिशब्दानां पौरुषेयाणामपि कर्त्तुरस्मृतेः, यत्रवान् तत्कर्त्तारमुपलभते एवेति चेत्, न अवश्यं तदुपलम्भसम्भवः, नियमाभावात्, किंच–अपौरुषेयत्वेनाभ्युपगतस्य वेदस्य कर्त्ता नैवास्ति कश्चित् पौरुषेयत्वेनाभ्युपगतस्य च वटे वटे वैश्रवण इत्यादेरस्तीति न प्रमाणात् कुतश्चिद्विनिश्चयः, किन्तु परोपदेशात्, स च भवतो न प्रमाणं, परस्य रागादिपरीतत्वेन यथावद्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, ततः कर्त्तृभावसन्देह इति सन्दिग्धासिद्धोऽप्ययं हेतुः, एतेन यदन्यदपि साधनमवादीद् वेदवादी–'वेदाध्ययनं सर्व्वं गुर्व्वध्ययनपूर्वकं, वेदाध्ययनत्वाद्, अधुनातनवेदाध्ययनवदिति, तदपि निरस्तमवसेयं, एवमपौरुषेयत्वसाधने सर्वस्याप्यपौरुषेयत्वप्रसक्तेः, तथाहि–कुमारसम्भवाध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकं, कुमारसम्भवाध्ययनत्वाद्, इदानीन्तनकुमारसम्भवाध्ययनवदिति कुमारसम्भवादीनामध्ययनानादितासिद्धेरपौरुषेयत्वं दुर्निवारं, न च तेषामपौरुषयत्वं, स्वयंकरणपूर्वकत्वेनापि तदध्ययनस्य भावाद्, एवं वेदाध्ययनमपि किञ्चित्स्वयंकरणपूर्वकमपि भविष्यतीति वेदाध्ययनत्वादिति व्यभिचारी हेतुः, स्यादेतत्–वेदाध्ययनं स्वयंकरणपूर्वकं न भवति, वेदानां स्वयं कर्त्तुमशक्तेः, तथा चात्र प्रयोगः–पूर्वेषां वेदरचनायामशक्तिः, पुरुषत्वाद्,

१ कारणं अपौरुषेयत्वे यक्षः प्राप्तस्य व्याप्तत्वेन ।

वचनस्यापौरुषेयत्व खंडनम्.

१५

२०

॥ १७ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

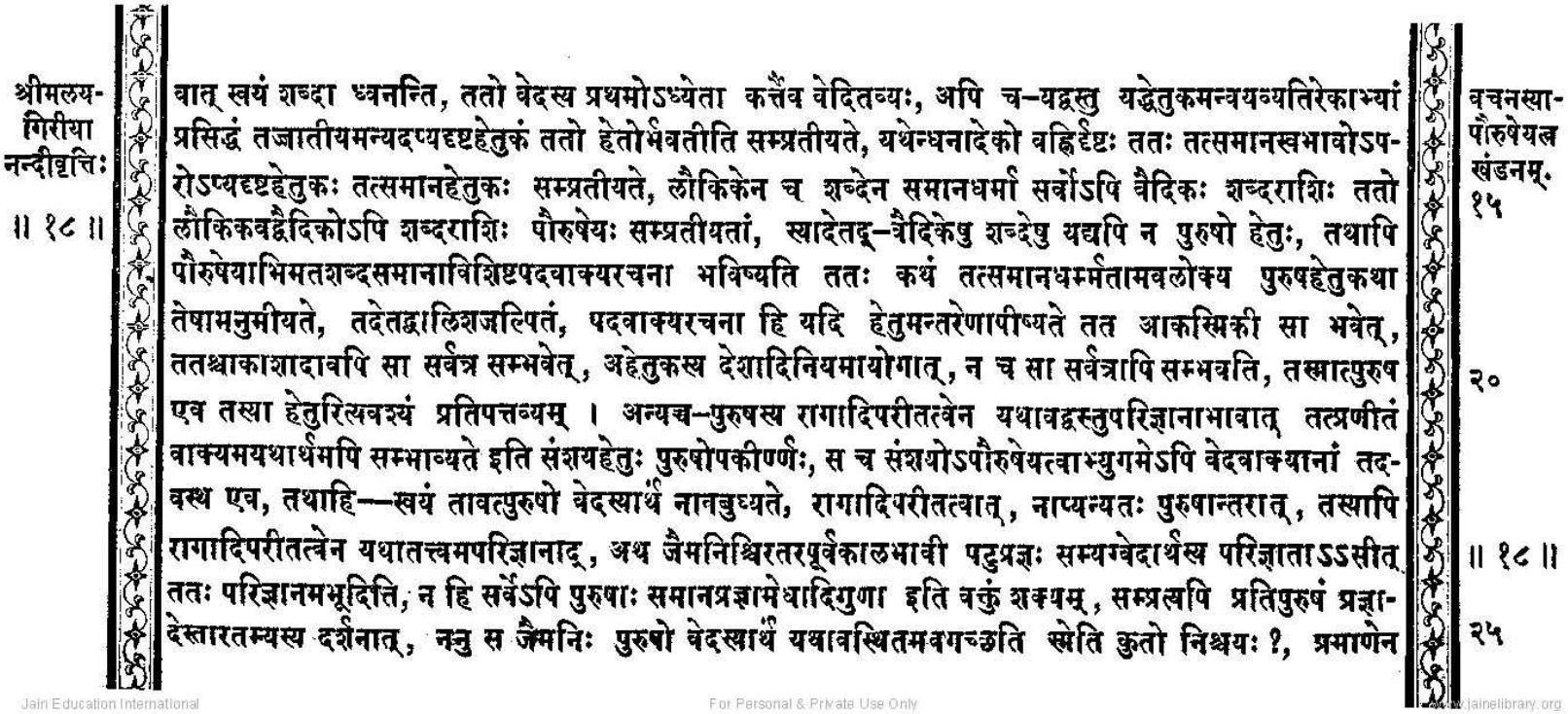
इदानीन्तनपुरुषवदिति, तदप्ययुक्तम्, अत्रापि हेतोर्व्यभिचारात्, तथाहि–भारतादिष्विदानीन्तनपुरुषाणामशक्तावपि कस्यचित्पुरुषस्य व्यासादेः शक्तिः श्रूयते, एवं वेदविषयेऽपि सम्प्रति पुरुषाणां कर्त्तुमशक्तावपि कस्यचित्प्राक्तनस्य पुरुषविशेषस्य शक्तिर्भविष्यतीति। अपि च–यथाऽग्निसामान्यस्य ज्वालाप्रभवत्वमरणिनिर्मथनप्रभवत्वं च परस्परमबाध्यबाधकत्वान्न विरुध्यते, को ह्यत्र विरोधः अग्निश्च स्यात् कदाचिदरणिनिर्म्मथनपूर्वकः कदाचिज्ज्वालान्तरपूर्वकश्च, ततो यथाऽऽद्योऽपि पथिककृतोऽग्निः ज्वालान्तरपूर्वको नारणिनिर्मथनपूर्वकः, पथिकाग्नित्वाद्, आद्यानन्तराग्निवदित्ययं हेतुर्व्यभिचारी, विपक्षे वृत्तिसम्भवात्, तथा वेदाध्ययनमपि विपक्षे वृत्तिसम्भवात् व्यभिचार्येव, तथाहि–वेदाध्ययने स्वयंकरणपूर्वकत्वमध्ययनान्तरपूर्वकत्वं च परस्परमबाध्यबाधकत्वादविरुद्धम्, ततश्च वेदाध्ययनमपि स्यात् किञ्चित्स्वयंकरणपूर्वकमपीति, यदा त्वेवं विशिष्यते–यस्तु तथाविधः स्वयं कृत्वाऽध्येतुमसमर्थः तस्य वेदाध्ययनमध्ययनान्तरपूर्वकमिति, तदा न कश्चिद्दोषः, यथा यादृशोऽग्निर्ज्वालाप्रभवो दृष्टः तादृशः सर्वोऽपि ज्वालाप्रभव इति, अस्तु वा सर्वं वेदाध्ययनमध्ययनान्तरपूर्वकं, तथाऽप्येवमनादिता सिद्ध्येद् वेदस्य, नापौरुषेयत्वं, अथात एवानादितामात्रादपौरुषेयत्वसिद्धिरिष्यते तर्हि डिम्भकपांशुक्रीडादेरपि पुरुषव्यवहारस्यापौरुषेयतापत्तिः, तस्यापि पूर्वपूर्वदर्शनप्रवृत्तित्वेनानादित्वात्, अपि च–स्युरपौरुषेया वेदा यदि पुरुषाणामादिः स्याद् वेदाध्ययनं चानादि, तदाप्याद्यपुरुषस्याध्ययनमध्ययनान्तरपूर्वकं न सिद्ध्यति, अध्यापयतुरभावात्, न च पुरुषस्य तालवादिकरणग्रामव्यापाराभा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥२॥

दीप अनुक्रम [२]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ १८ ॥

वात् स्वयं शब्दा ध्वनन्ति, ततो वेदस्य प्रथमोऽध्येता कर्त्तैव वेदितव्यः, अपि च–यद्वस्तु यद्धेतुकमन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रसिद्धं तज्जातीयमन्यदप्यदृष्टहेतुकं ततो हेतोर्भवतीति सम्प्रतीयते, यथेन्धनादेको वह्निर्दृष्टः ततः तत्समानस्वभावोऽप-रोऽप्यदृष्टहेतुकः तत्समानहेतुकः सम्प्रतीयते, लौकिकेन च शब्देन समानधर्मा सर्वोऽपि वैदिकः शब्दराशिः ततो लौकिकवद्वैदिकोऽपि शब्दराशिः पौरुषेयः सम्प्रतीयतां, स्यादेतद्–वैदिकेषु शब्देषु यद्यपि न पुरुषो हेतुः, तथापि पौरुषेयाभिमतशब्दसमानाविशिष्टपदवाक्यरचना भविष्यति ततः कथं तत्समानधर्म्मतामवलोक्य पुरुषहेतुकथा तेषामनुमीयते, तदेतद्बालिशजल्पितं, पदवाक्यरचना हि यदि हेतुमन्तरेणापीष्यते तत आकस्मिकी सा भवेत्, ततश्चाकाशादावपि सा सर्वत्र सम्भवेत्, अहेतुकस्य देशादिनियमायोगात्, न च सा सर्वत्रापि सम्भवति, तस्मात्पुरुष एव तस्या हेतुरित्यवश्यं प्रतिपत्तव्यम् । अन्यच्च–पुरुषस्य रागादिपरीतत्वेन यथावद्वस्तुपरिज्ञानाभावात् तत्प्रणीतं वाक्यमयथार्थमपि सम्भाव्यते इति संशयहेतुः पुरुषोपकीर्णः, स च संशयोऽपौरुषेयत्वाभ्युगमेऽपि वेदवाक्यानां तद-वस्थ एव, तथाहि—स्वयं तावत्पुरुषो वेदस्यार्थं नावबुध्यते, रागादिपरीतत्वात्, नाप्यन्यतः पुरुषान्तरात्, तस्यापि रागादिपरीतत्वेन यथातत्त्वमपरिज्ञानाद्, अथ जैमनिश्चिरतरपूर्वकालभावी पटुप्रज्ञः सम्यग्वेदार्थस्य परिज्ञाताऽऽसीत् ततः परिज्ञानमभूदिति, न हि सर्वेऽपि पुरुषाः समानप्रज्ञामेधादिगुणा इति वक्तुं शक्यम्, सम्प्रत्यपि प्रतिपुरुषं प्रज्ञा-देस्तारतम्यस्य दर्शनात्, ननु स जैमनिः पुरुषो वेदस्यार्थं यथावस्थितमवगच्छति स्मेति कुतो निश्चयः ?, प्रमाणेन

वचनस्या-पौरुषेयत्व खंडनम्. १५ २० ॥ १८ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥२॥ दीप अनुक्रम [२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

संवादादिति चेत् नन्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु न प्रमाणस्यावतारो, यथा अग्निहोत्रहवनस्य स्वर्गसाधनत्वे, बहवश्चातीन्द्रिया अर्था वेदे व्यावर्ण्यन्ते, तत्कथं तत्र संवादः ?, अथ येष्वर्थेष्वस्मादृशां प्रमाणसम्भवः तद्विषये प्रमाणसंवाददर्शनादतीन्द्रियाणामप्यर्थानां स सम्यक् परिज्ञाताऽभ्युपगम्यते, तदप्ययुक्तम्, रागादिकलुषिततया तस्यातीन्द्रियार्थपरिज्ञानासम्भवाद्, अन्यथा सर्वेषामप्यतीन्द्रियार्थप्रदर्शित्वप्रसक्तिस्ततः तत्कृतातीन्द्रियार्थव्याख्या मिथ्यैव, अपि च– आगमोऽर्थतः परिज्ञातः सन् प्रेक्षावतामुपयोगविषयो भवति, नापरिज्ञातार्थं शब्दगडुमात्रं, ततोऽर्थः प्रधानः, स चेत्पुरुषप्रणीतः किं शब्दमात्रस्यापौरुषेयत्वपरिकल्पनेन ?, निरर्थकत्वात्, तन्नान्यतोऽपि वेदार्थस्य सम्यगवगमः, नापि वेदः स्वकीयमर्थमुपदेशमन्तरेण स्वयमेव साक्षादुपदर्शयति, ततो वेदस्येष्टार्थप्रतिपत्त्युपायाभावाद् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम' इति श्रुतौ यथा वेदप्रामाणिकैरयमर्थः परिकल्प्यते–'घृताद्याहुतिं परिक्षिपेत् स्वर्गकाम' इति, तथाऽयमप्यर्थः तैः किं न कल्प्यते ?–खादेत्स्वमांसं स्वर्गकाम इति, नियामकाभावाद्, उक्तं च—"स्वयं रागादिमान्नार्थं, वेत्ति वेदस्य नान्यतः । न वेदयति वेदोऽपि, वेदार्थस्य कुतो गतिः ? ॥ १ ॥ तेनाग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इति श्रुतौ । खादेत्स्वमांसमित्येष, नार्थ इत्यत्र का प्रमा ? ॥ २ ॥" अथ य एव शाब्दो व्यवहारो लोके प्रसिद्धः स एव वेदवाक्यार्थनिश्चयनिबन्धनं, न च लोकेऽग्निहोत्रशब्दस्य स्वमांसं वाच्यम्, नापि जुहुयादित्यस्य भक्षणं, तत्कथमयमर्थः परिकल्प्यते ?, तदयुक्तम्, नानार्था हि लोके शब्दा रूढाः, यथा गोशब्दः, अपि च सर्वे

'अग्निहोत्र' इति वाक्यार्थविचारः, .

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥२॥

दीप अनुक्रम [२]

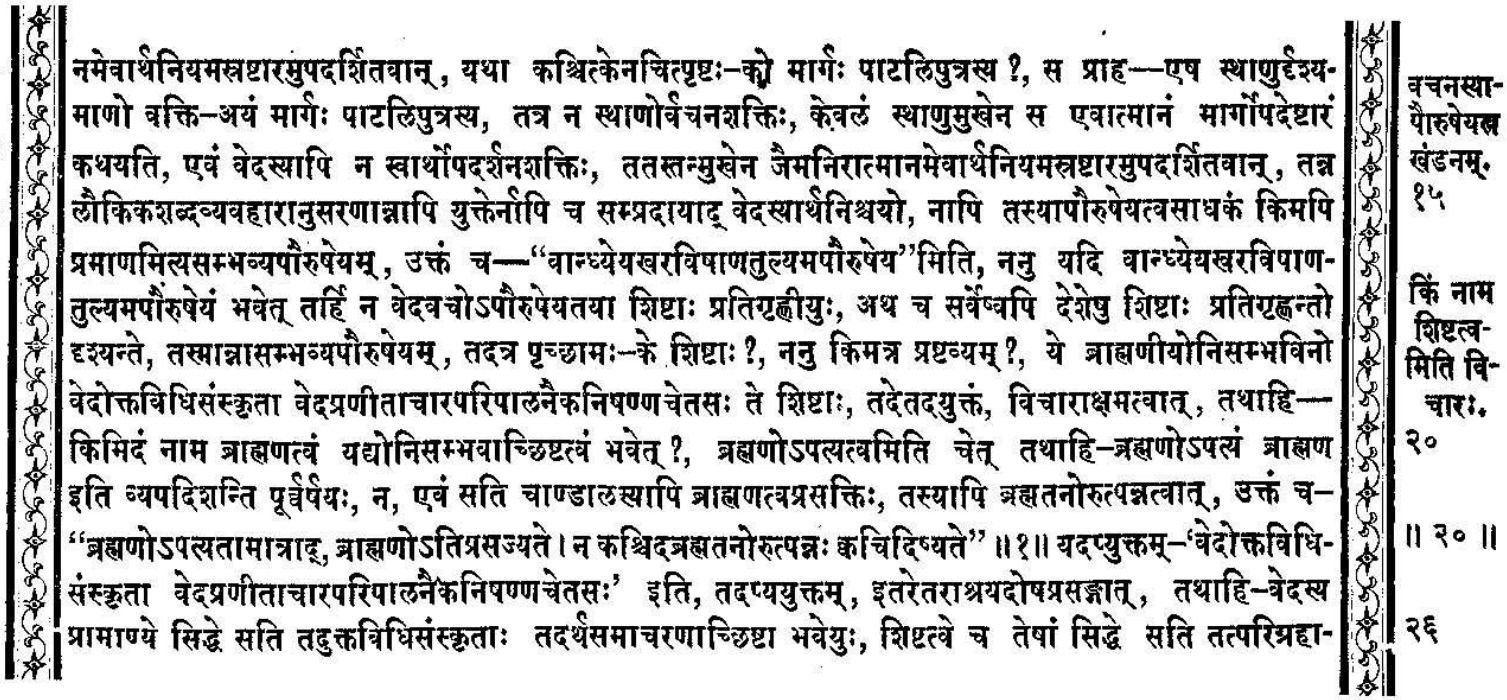
शब्दाः प्रायः सर्वार्थानां वाचकाः, देशादिभेदतो द्रुतविलम्बितादिभेदेन तथाप्रतीतिदर्शनात्, तथाहि—द्रविडस्यार्यदेशमुपागतस्य मारिशब्दात् झटिति वर्षविषया प्रतीतिरुपजायते, विलम्बिता चोपसर्गविषया, यद्वा आर्यदेशोत्पन्नस्य द्रविडदेशमधिगतस्य शीघ्रमुपसर्गविषया प्रतीतिः विलम्बिता च वर्षविषया, एवमनया दिशा सर्वेषामपि शब्दानां सर्वार्थवाचकत्वं परिभावनीयं, न च वाच्यम्–एवं सति घटशब्दमात्रश्रवणादखिलार्थप्रतीतिप्रसङ्गो, यथा क्षयोपशममवबोधप्रवृत्तेः, क्षयोपशमश्च सङ्केताद्यपेक्ष इति तदभावे न भवति, ततोऽग्निहोत्रादिशब्दस्य स्वर्मांसादिवाचकत्वेऽप्यविरोध इति लौकिकशाब्दव्यवहारानुसरणेऽपि न वैदिकवाक्यानामभिलषितनियतार्थप्रतिपत्तिः। किंच–लोकप्रसिद्धेनैव शाब्देन व्यवहारेण वयं वेदवाक्यानां प्रतिनियतमर्थं निश्चेतुमुद्युक्ताः, लौकिकश्च शाब्दो व्यवहारोऽनेकधा परिप्लवमानो दृष्टः, सङ्केतवशतः प्रायः सर्वेषामपि शब्दानां सर्वार्थप्रतिपादनशक्तिसम्भवात्, ततो लौकिकेनैव शाब्देन व्यवहारेणास्माकमाशङ्कोदपादि—कोऽत्रार्थः स्यात्?, किं घृताहुतिं प्रक्षिपेत् स्वर्गकाम इति उताहो स्वमांसं खादेदिति?, तत्कथं तत एव निश्चयः कर्तुं[1] बुध्यते?, न हि यो यत्र संशयहेतुः स तत्र निश्चयमुत्पादयितुं शक्त इति, अपि च—नैकान्तेन वेदे लौकिकशाब्दव्यवहारानुसरणं, स्वर्गोर्वश्यादिशब्दानामरूढार्थानामपि तत्र व्याख्यानात्, यथा स्वर्गः—सुखविशेषः उर्वशी तु–अरणिरिति, तथा शब्दान्तरेष्वप्यरूढार्थकल्पना किं न सम्भविनी?, उक्तं च—

१ गतिं कुर्वाणः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"स्वर्गोर्वश्यादिशब्दश्च, दृष्टोऽरूढार्थवाचकः । शब्दान्तरेषु तादृक्षु, तादृश्येवास्तु कल्पना ॥ १ ॥" स्यादेतद्–अग्निहोत्रादेर्वाक्यस्य स्वमांसभक्षणप्रसङ्गो न युक्तो, वेदेनैवान्यत्र तस्यान्यथा व्याख्यानात्, तदयुक्तम्, तत्रापि वाक्यार्थस्य निर्णयाभावात्, यथोक्तं प्राक्–न हि अप्रसिद्धार्थस्य वाक्यस्य अप्रसिद्धार्थमेव वाक्यान्तरं नियतार्थप्रसाधनायालं, तुल्यदोषत्वात्, अथेत्थमाचक्षीथाः—यत्रार्थे न काचित्प्रमाणबाधा सोऽर्थो ग्राह्यो, न चाग्निहोत्रादिवाक्यस्य घृताहुतिप्रक्षेपरूपेऽर्थे प्रमाणबाधामुत्पश्यामः, तत्कथं तमर्थं न गृह्णीमः ?, तदेतत् स्वमांसभक्षणलक्षणेऽप्यर्थे समानं, न हि तत्रापि कांचित्प्रमाणबाधामीक्षामहे, अपि च—यदि प्रमाणबलात्प्रवृत्तिमीहसे तर्हि पौरुषेयमेव वचस्त्वयोपादेयं, तस्य लोकप्रतीत्यनुसारितया सम्प्रदायतोऽधिगतार्थतया च प्रायो युक्तिविषयत्वात्, नापौरुषेयं, विपरीततया तत्र युक्तेरसम्भवात्, तथाहि—काऽत्र युक्तिः ? यया स्वमांसभक्षणात् स्वर्गप्राप्तिर्बाध्यते, न घृताहुतिप्रक्षेपादिति ?, घृताद्याहुतिप्रक्षेपादीनां स्वर्गप्रापणादिशक्तेरतीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षाद्यगोचरत्वात्, सम्प्रदायस्य चार्थनैयत्यकारिणोऽसम्भवाद्, एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यामः, अथागमार्थाश्रया युक्तिः स्वमांसभक्षणतः स्वर्गप्राप्तेर्बाधिका भविष्यति, तदयुक्तम्, आगमार्थस्याद्याप्यनिश्चयात् अनिश्चितार्थस्य च बाधकत्वायोगात्, अथ सम्प्रदायादर्थनिश्चयो भविष्यति, तथाहि–प्रथमतो वेदेन जैमनये स्वार्थ उपदर्शितः पश्चात्तेनास्मभ्यमुपदिष्ट इति, तदप्यसत्, वेदस्य हि यदि स्वार्थोपदर्शने शक्तिः ततोऽस्मभ्यमपि स्वार्थं किं नोपदर्शयति ?, तस्माज्जैमनयेऽपि न तेन स्वार्थो दर्शितः, किन्तु स वेदमुखेनात्मा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २० ॥

नमेवार्थनियमस्रष्टारमुपदर्शितवान्, यथा कश्चित्केनचित्पृष्टः–को मार्गः पाटलिपुत्रस्य ?, स प्राह—एष स्थाणुर्दृश्यमाणो वक्ति–अयं मार्गः पाटलिपुत्रस्य, तत्र न स्थाणोर्वचनशक्तिः, केवलं स्थाणुमुखेन स एवात्मानं मार्गोपदेष्टारं कथयति, एवं वेदस्यापि न स्वार्थोपदर्शनशक्तिः, ततस्तन्मुखेन जैमनिरात्मानमेवार्थनियमस्रष्टारमुपदर्शितवान्, तन्न लौकिकशब्दव्यवहारानुसरणान्नापि युक्तेर्नापि च सम्प्रदायाद् वेदस्यार्थनिश्चयो, नापि तस्यापौरुषेयत्वसाधकं किमपि प्रमाणमित्यसम्भव्यपौरुषेयम्, उक्तं च—"वान्ध्येयखरविषाणतुल्यमपौरुषेय"मिति, ननु यदि वान्ध्येयखरविषाणतुल्यमपौरुषेयं भवेत् तर्हि न वेदवचोऽपौरुषेयतया शिष्टाः प्रतिगृह्णीयुः, अथ च सर्वेष्वपि देशेषु शिष्टाः प्रतिगृह्णन्तो दृश्यन्ते, तस्मान्नासम्भव्यपौरुषेयम्, तदत्र पृच्छामः–के शिष्टाः ?, ननु किमत्र प्रष्टव्यम् ?, ये ब्राह्मणीयोनिसम्भविनो वेदोक्तविधिसंस्कृता वेदप्रणीताचारपरिपालनैकनिषण्णचेतसः ते शिष्टाः, तदेतदयुक्तं, विचाराक्षमत्वात्, तथाहि—किमिदं नाम ब्राह्मणत्वं यद्योनिसम्भवाच्छिष्टत्वं भवेत् ?, ब्रह्मणोऽपत्यत्वमिति चेत् तथाहि–ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मण इति व्यपदिशन्ति पूर्वर्षयः, न, एवं सति चाण्डालस्यापि ब्राह्मणत्वप्रसक्तिः, तस्यापि ब्रह्मतनोरुत्पन्नत्वात्, उक्तं च–"ब्रह्मणोऽपत्यतामात्राद्, ब्राह्मणोऽतिप्रसज्यते। न कश्चिदब्रह्मतनोरुत्पन्नः क्वचिदिष्यते" ॥१॥ यदप्युक्तम्–'वेदोक्तविधिसंस्कृता वेदप्रणीताचारपरिपालनैकनिषण्णचेतसः' इति, तदप्ययुक्तम्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि–वेदस्य प्रामाण्ये सिद्धे सति तदुक्तविधिसंस्कृताः तदर्थसमाचरणाच्छिष्टा भवेयुः, शिष्टत्वे च तेषां सिद्धे सति तत्परिग्रहा-

वचनस्यापौरुषेयत्व खंडनम्. १५

किं नाम शिष्टत्वमिति विचारः. २०

॥ २० ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

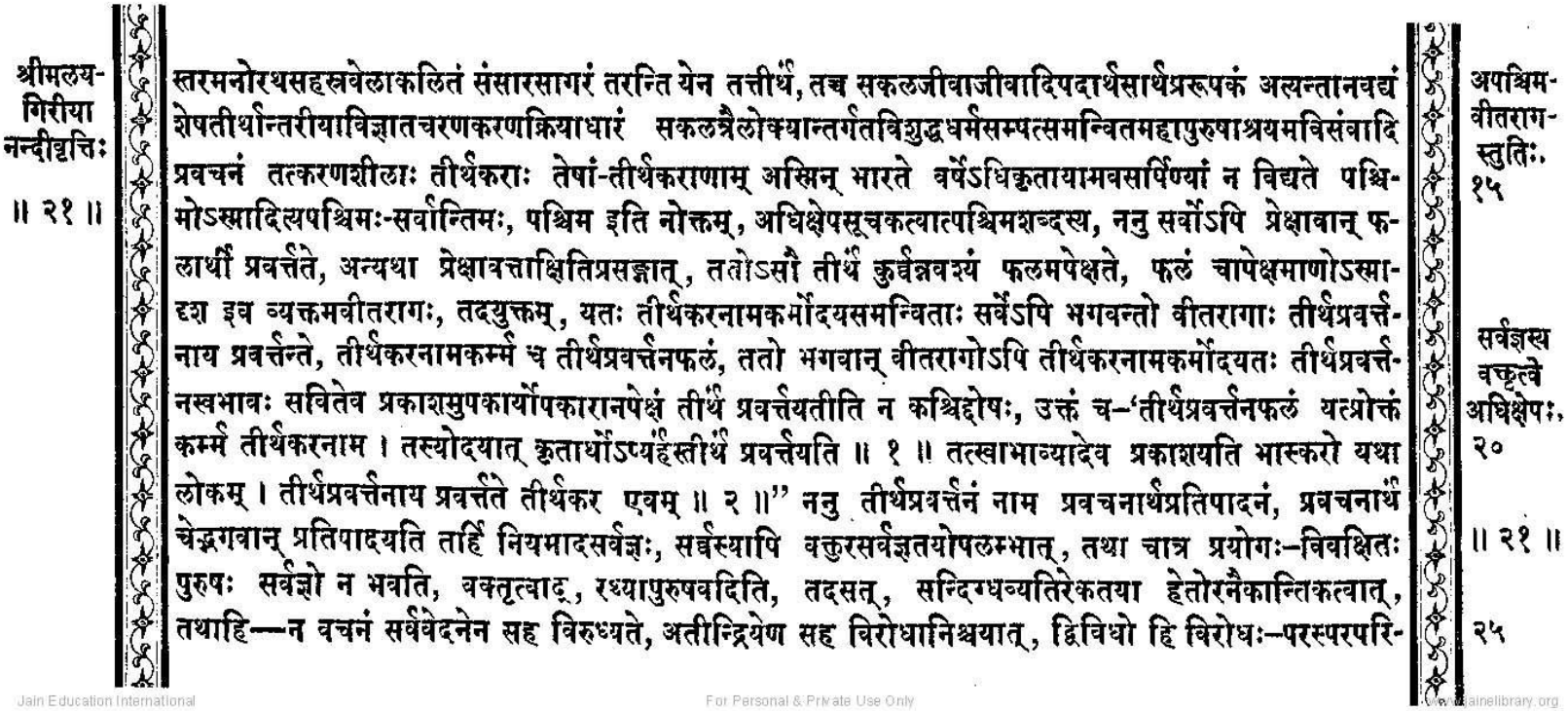
प्रत सूत्रांक ॥२॥

दीप अनुक्रम [२]

द्वेदप्रामाण्यमित्येकाभावेऽन्यतरस्याप्यभावः, आह च—"शिष्टैः परिगृहीतत्वाच्चेदन्योऽन्यसमाश्रयः । वेदार्थाचरणाच्छिष्टास्तदाचाराच्च स प्रमा ॥ १ ॥" स्यादेतत्–भवतोऽपि तत्त्वतोऽपौरुषेयं वचनमिष्टमेव, तथाहि—सर्वोऽपि सर्वज्ञो वचनपूर्वक एवेष्यते, "तप्पुविया अरिहया" इति वचनप्रामाण्यात्, ततोऽनादित्वात् सिद्धं वचनस्यापौरुषेयत्वमिति, तदयुक्तम्, अनादितायामप्यपौरुषेयत्वायोगात्, तथाहि—सर्वज्ञपरम्पराऽप्येषाऽनादिरिष्यते, ततः पूर्वः पूर्वः सर्वज्ञः प्राक्तनसर्वज्ञप्रणीतवचनपूर्वको भवन्न विरुध्यते, किं च–वचनं द्विधा–शब्दरूपमर्थरूपं च, तत्र शब्दरूपवचनापेक्षया नायमस्माकं सङ्गरो, यदुत-सर्वोऽपि सर्वज्ञो वचनपूर्वक इति, मरुदेव्यादीनां तदन्तरेणापि सर्वज्ञत्वश्रुतेः, किन्त्वर्थरूपापेक्षया, ततः कथं शब्दापौरुषेयत्वाभ्युपगमप्रसङ्गः ?, नन्वर्थपरिज्ञानमपि शब्दमन्तरेण नोपपद्यते, तत्कथं न शब्दरूपापेक्षयाऽपि सङ्गरः, तदसत्, शब्दमन्तरेणापि विशिष्टक्षयोपशमादिभावतोऽर्थपरिज्ञानसम्भवात्, तथाहि–दृश्यन्ते तथाविधक्षयोपशमभावतो मार्गानुसारिबुद्धेर्वचनमन्तरेणापि तदर्थप्रतिपत्तिरिति कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः । तत्र सर्वश्रुतप्रभवा ऋषभादयोऽप्यासीरन् न च ते सम्प्रति स्तोतुं प्रस्तुता इति तद्व्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह–तीर्थकराणामपश्चिमो जयति, तत्र जन्मजरामरणसलिलसम्भृतं मिथ्यादर्शनाविरतिगम्भीरं महाभीमकषायपातालं दुरवगाहमहामोहावर्त्तभीषणं रागद्वेषपवनविक्षोभितं विविधानिष्टसंयोगवियोगवीचीनिचयसङ्कुलं उच्चै-

१ तत्पूर्विका अर्हत्ता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ २१ ॥

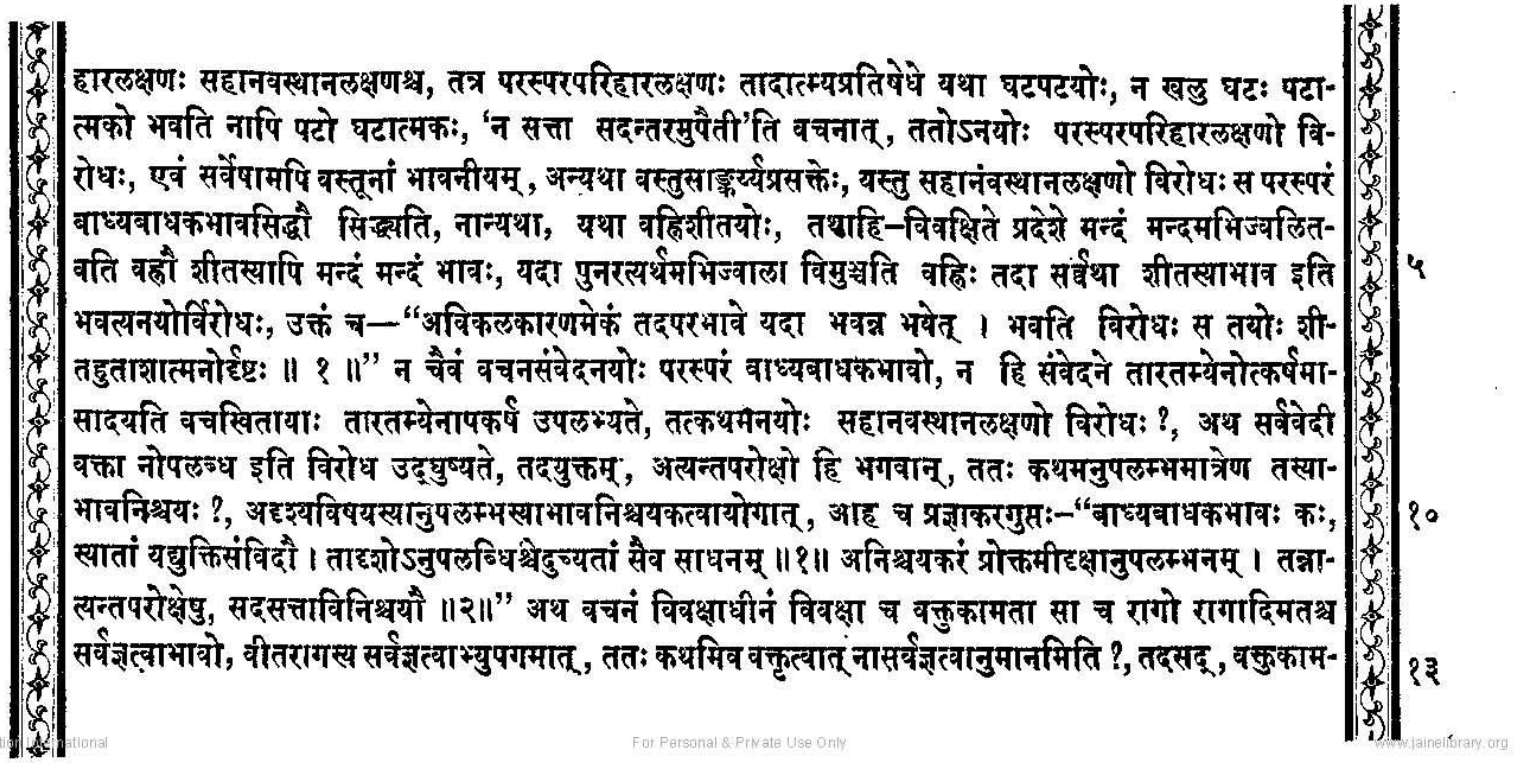
स्तरमनोरथसहस्रवेलाकलितं संसारसागरं तरन्ति येन तत्तीर्थं, तच्च सकलजीवाजीवादिपदार्थसार्थप्ररूपकं अत्यन्तानवद्यं शेषतीर्थान्तरीयाविज्ञातचरणकरणक्रियाधारं सकलत्रैलोक्यान्तर्गतविशुद्धधर्मसम्पत्समन्वितमहापुरुषाश्रयमविसंवादि प्रवचनं तत्करणशीलाः तीर्थकराः तेषां-तीर्थकराणाम् अस्मिन् भारते वर्षेऽधिकृतायामवसर्पिण्यां न विद्यते पश्चिमोऽस्मादित्यपश्चिमः-सर्वान्तिमः, पश्चिम इति नोक्तम्, अधिक्षेपसूचकत्वात्पश्चिमशब्दस्य, ननु सर्वोऽपि प्रेक्षावान् फलार्थी प्रवर्त्तते, अन्यथा प्रेक्षावत्ताक्षितिप्रसङ्गात्, ततोऽसौ तीर्थं कुर्वन्नवश्यं फलमपेक्षते, फलं चापेक्षमाणोऽस्मादृश इव व्यक्तमवीतरागः, तदयुक्तम्, यतः तीर्थकरनामकर्मोदयसमन्विताः सर्वेऽपि भगवन्तो वीतरागाः तीर्थप्रवर्त्तनाय प्रवर्त्तन्ते, तीर्थकरनामकर्म्म च तीर्थप्रवर्त्तनफलं, ततो भगवान् वीतरागोऽपि तीर्थकरनामकर्मोदयतः तीर्थप्रवर्त्तनस्वभावः सवितेव प्रकाशमुपकार्योपकारानपेक्षं तीर्थं प्रवर्त्तयतीति न कश्चिद्दोषः, उक्तं च–'तीर्थप्रवर्त्तनफलं यत्प्रोक्तं कर्म्म तीर्थकरनाम । तस्योदयात् कृतार्थोऽप्यर्हंस्तीर्थं प्रवर्त्तयति ॥ १ ॥ तत्स्वाभाव्यादेव प्रकाशयति भास्करो यथा लोकम् । तीर्थप्रवर्त्तनाय प्रवर्त्तते तीर्थकर एवम् ॥ २ ॥" ननु तीर्थप्रवर्त्तनं नाम प्रवचनार्थप्रतिपादनं, प्रवचनार्थं चेद्भगवान् प्रतिपादयति तर्हि नियमादसर्वज्ञः, सर्वस्यापि वक्तुरसर्वज्ञतयोपलम्भात्, तथा चात्र प्रयोगः–विवक्षितः पुरुषः सर्वज्ञो न भवति, वक्तृत्वाद्, रथ्यापुरुषवदिति, तदसत्, सन्दिग्धव्यतिरेकतया हेतोरनैकान्तिकत्वात्, तथाहि—न वचनं सर्ववेदनेन सह विरुध्यते, अतीन्द्रियेण सह विरोधानिश्चयात्, द्विविधो हि विरोधः–परस्परपरि-

अपश्चिम-वीतराग-स्तुतिः, १५

सर्वज्ञस्य वक्तृत्वे अधिक्षेपः, २०

॥ २१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

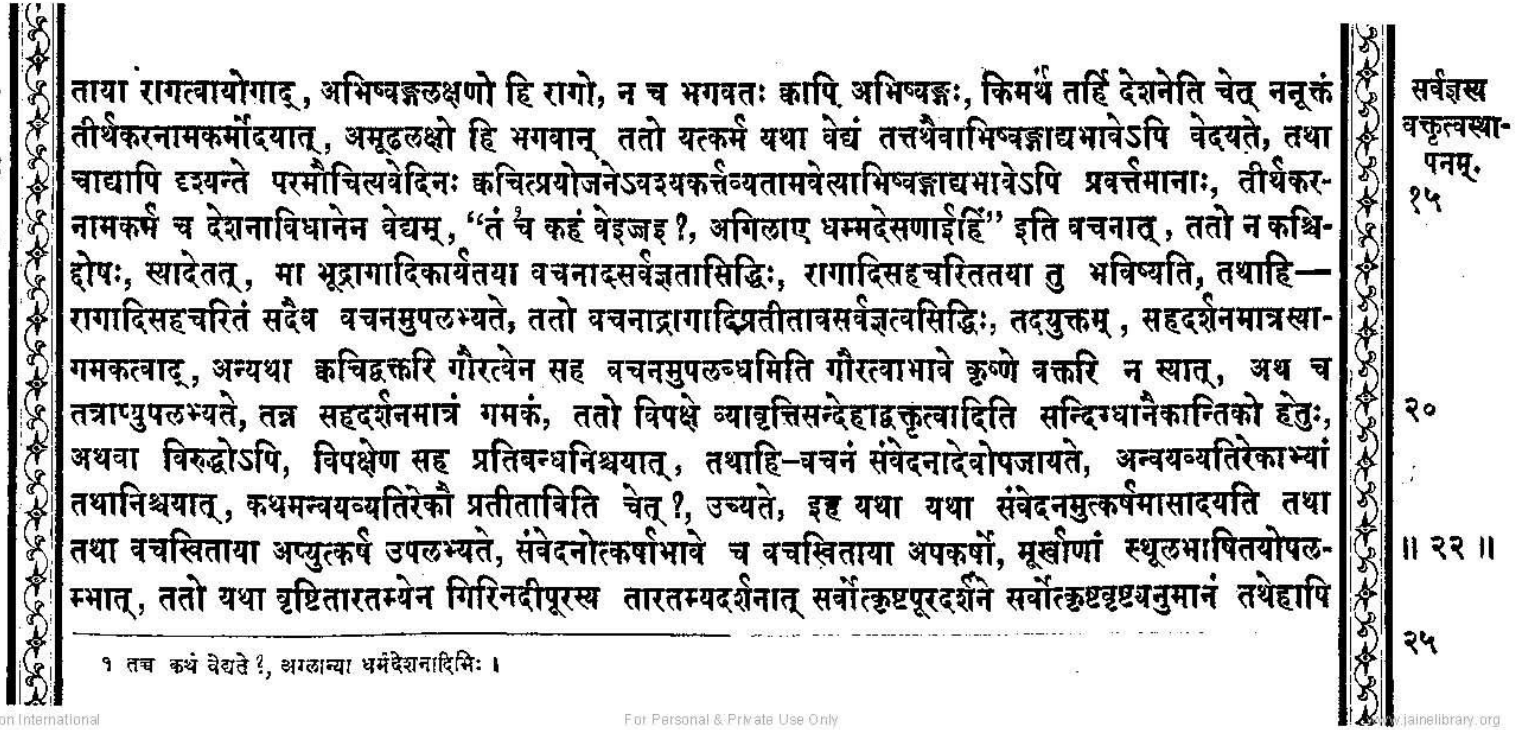


हारलक्षणः सहानवस्थानलक्षणश्च, तत्र परस्परपरिहारलक्षणः तादात्म्यप्रतिषेधे यथा घटपटयोः, न खलु घटः पटात्मको भवति नापि पटो घटात्मकः, 'न सत्ता सदन्तरमुपैती'ति वचनात्, ततोऽनयोः परस्परपरिहारलक्षणो विरोधः, एवं सर्वेषामपि वस्तूनां भावनीयम्, अन्यथा वस्तुसाङ्कर्य्यप्रसक्तेः, यस्तु सहानवस्थानलक्षणो विरोधः स परस्परं बाध्यबाधकभावसिद्धौ सिद्ध्यति, नान्यथा, यथा वह्निशीतयोः, तथाहि–विवक्षिते प्रदेशे मन्दं मन्दमभिज्वलितवति वह्नौ शीतस्यापि मन्दं मन्दं भावः, यदा पुनरत्यर्थमभिज्वाला विमुञ्चति वह्निः तदा सर्वथा शीतस्याभाव इति भवत्यनयोर्विरोधः, उक्तं च—"अविकलकारणमेकं तदपरभावे यदा भवन्न भवेत् । भवति विरोधः स तयोः शीतहुताशात्मनोर्दृष्टः ॥ १ ॥" न चैवं वचनसंवेदनयोः परस्परं बाध्यबाधकभावो, न हि संवेदने तारतम्येनोत्कर्षमासादयति वचस्तितायाः तारतम्येनापकर्ष उपलभ्यते, तत्कथमनयोः सहानवस्थानलक्षणो विरोधः ?, अथ सर्ववेदी वक्ता नोपलभ्य इति विरोध उद्घुष्यते, तदयुक्तम्, अत्यन्तपरोक्षो हि भगवान्, ततः कथमनुपलम्भमात्रेण तस्याभावनिश्चयः ?, अदृश्यविषयस्यानुपलम्भस्याभावनिश्चयकत्वायोगात्, आह च प्रज्ञाकरगुप्तः–"बाध्यबाधकभावः कः, स्यातां यद्युक्तिसंविदौ । तादृशोऽनुपलब्धिश्चेदुच्यतां सैव साधनम् ॥१॥ अनिश्चयकरं प्रोक्तमीदृक्षानुपलम्भनम् । तन्नात्यन्तपरोक्षेषु, सदसत्ताविनिश्चयौ ॥२॥" अथ वचनं विवक्षाधीनं विवक्षा च वक्तुकामता सा च रागो रागादिमतश्च सर्वज्ञत्वाभावो, वीतरागस्य सर्वज्ञत्वाभ्युपगमात्, ततः कथमिव वक्तृत्वात् नासर्वज्ञत्वानुमानमिति ?, तदसद्, वक्तुकाम-

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥२॥ दीप अनुक्रम [२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



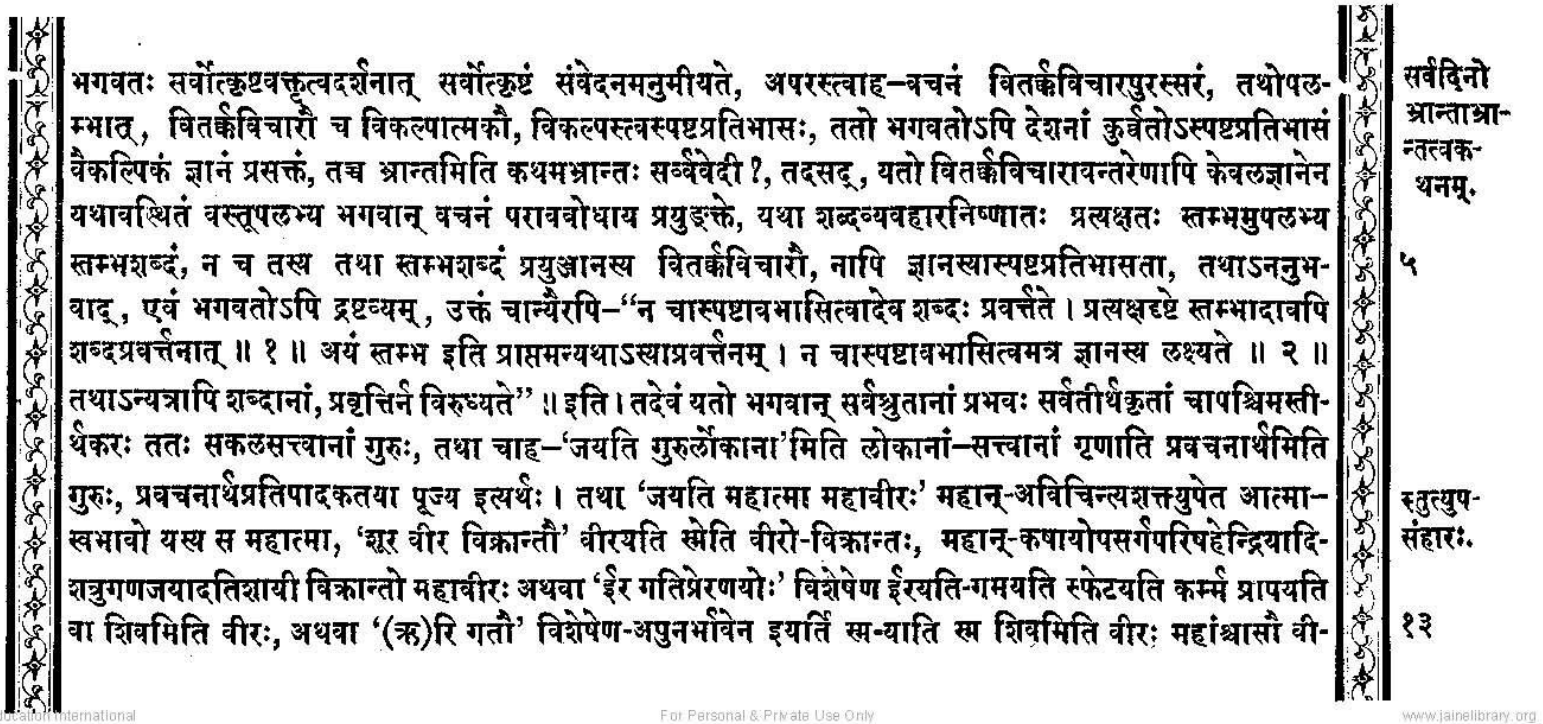
श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २२ ॥

ताया रागत्वायोगाद्, अभिष्वङ्गलक्षणो हि रागो, न च भगवतः क्वापि अभिष्वङ्गः, किमर्थं तर्हि देशनेति चेत् ननूक्तं तीर्थकरनामकर्मोदयात्, अमूढलक्षो हि भगवान् ततो यत्कर्म यथा वेद्यं तत्तथैवाभिष्वङ्गाद्यभावेऽपि वेदयते, तथा चाद्यापि दृश्यन्ते परमौचित्यवेदिनः क्वचित्प्रयोजनेऽवश्यकर्त्तव्यतामवेत्याभिष्वङ्गाद्यभावेऽपि प्रवर्त्तमानाः, तीर्थकरनामकर्म च देशनाविधानेन वेद्यम्, "तं च कहं वेइज्जइ ?, अगिलाए धम्मदेसणाईहिं" इति वचनात्, ततो न कश्चिद्दोषः, स्यादेतत्, मा भूद्रागादिकार्यतया वचनादसर्वज्ञतासिद्धिः, रागादिसहचरिततया तु भविष्यति, तथाहि— रागादिसहचरितं सदैव वचनमुपलभ्यते, ततो वचनाद्रागादिप्रतीतावसर्वज्ञत्वसिद्धिः, तदयुक्तम्, सहदर्शनमात्रस्यागमकत्वाद्, अन्यथा क्वचिद्वक्तरि गौरत्वेन सह वचनमुपलब्धमिति गौरत्वाभावे कृष्णे वक्तरि न स्यात्, अथ च तत्राप्युपलभ्यते, तन्न सहदर्शनमात्रं गमकं, ततो विपक्षे व्यावृत्तिसन्देहाद्वक्तृत्वादिति सन्दिग्धानैकान्तिको हेतुः, अथवा विरुद्धोऽपि, विपक्षेण सह प्रतिबन्धनिश्चयात्, तथाहि–वचनं संवेदनादेवोपजायते, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तथानिश्चयात्, कथमन्वयव्यतिरेकौ प्रतीताविति चेत् ?, उच्यते, इह यथा यथा संवेदनमुत्कर्षमासादयति तथा तथा वचस्विताया अप्युत्कर्ष उपलभ्यते, संवेदनोत्कर्षाभावे च वचस्विताया अपकर्षो, मूर्खाणां स्थूलभाषितयोपलम्भात्, ततो यथा वृष्टितारतम्येन गिरिनदीपूरस्य तारतम्यदर्शनात् सर्वोत्कृष्टपूरदर्शने सर्वोत्कृष्टवृष्ट्यनुमानं तथेहापि

१ तच्च कथं वेद्यते ?, अग्लान्या धर्मदेशनादिभिः ।

सर्वज्ञस्य वक्तृत्वस्थापनम्. १५ २० ॥ २२ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



भगवतः सर्वोत्कृष्टवक्तृत्वदर्शनात् सर्वोत्कृष्टं संवेदनमनुमीयते, अपरस्त्वाह–वचनं वितर्कविचारपुरस्सरं, तथोपलम्भात्, वितर्कविचारौ च विकल्पात्मकौ, विकल्पस्त्वस्पष्टप्रतिभासः, ततो भगवतोऽपि देशनां कुर्वतोऽस्पष्टप्रतिभासं वैकल्पिकं ज्ञानं प्रसक्तं, तच्च भ्रान्तमिति कथमभ्रान्तः सर्व्ववेदी ?, तदसद्, यतो वितर्कविचारावन्तरेणापि केवलज्ञानेन यथावस्थितं वस्तूपलभ्य भगवान् वचनं परावबोधाय प्रयुङ्क्ते, यथा शब्दव्यवहारनिष्णातः प्रत्यक्षतः स्तम्भमुपलभ्य स्तम्भशब्दं, न च तस्य तथा स्तम्भशब्दं प्रयुञ्जानस्य वितर्कविचारौ, नापि ज्ञानस्यास्पष्टप्रतिभासता, तथाऽननुभवाद्, एवं भगवतोऽपि द्रष्टव्यम्, उक्तं चान्यैरपि–"न चास्पष्टावभासित्वादेव शब्दः प्रवर्त्तते । प्रत्यक्षदृष्टे स्तम्भादावपि शब्दप्रवर्त्तनात् ॥ १ ॥ अयं स्तम्भ इति प्राप्तमन्यथाऽस्याप्रवर्त्तनम् । न चास्पष्टावभासित्वमत्र ज्ञानस्य लक्ष्यते ॥ २ ॥ तथाऽन्यत्रापि शब्दानां, प्रवृत्तिर्न विरुध्यते" ॥ इति । तदेवं यतो भगवान् सर्वश्रुतानां प्रभवः सर्वतीर्थकृतां चापश्चिमस्तीर्थकरः ततः सकलसत्त्वानां गुरुः, तथा चाह–'जयति गुरुर्लोकाना'मिति लोकानां–सत्त्वानां गृणाति प्रवचनार्थमिति गुरुः, प्रवचनार्थप्रतिपादकतया पूज्य इत्यर्थः । तथा 'जयति महात्मा महावीरः' महान्-अविचिन्त्यशक्तियुपेत आत्मा–स्वभावो यस्य स महात्मा, 'शूर वीर विक्रान्तौ' वीरयति स्मेति वीरो-विक्रान्तः, महान्-कषायोपसर्गपरिषहेन्द्रियादिशत्रुगणजयादतिशायी विक्रान्तो महावीरः अथवा 'ईर गतिप्रेरणयोः' विशेषेण ईरयति-गमयति स्फेटयति कर्म्म प्रापयति वा शिवमिति वीरः, अथवा '(ऋ)रि गतौ' विशेषेण-अपुनर्भावेन इयर्ति स्म-याति स्म शिवमिति वीरः महांश्चासौ वी-

सर्वदिनो भ्रान्ताभ्रान्तत्वकथनम्. ५

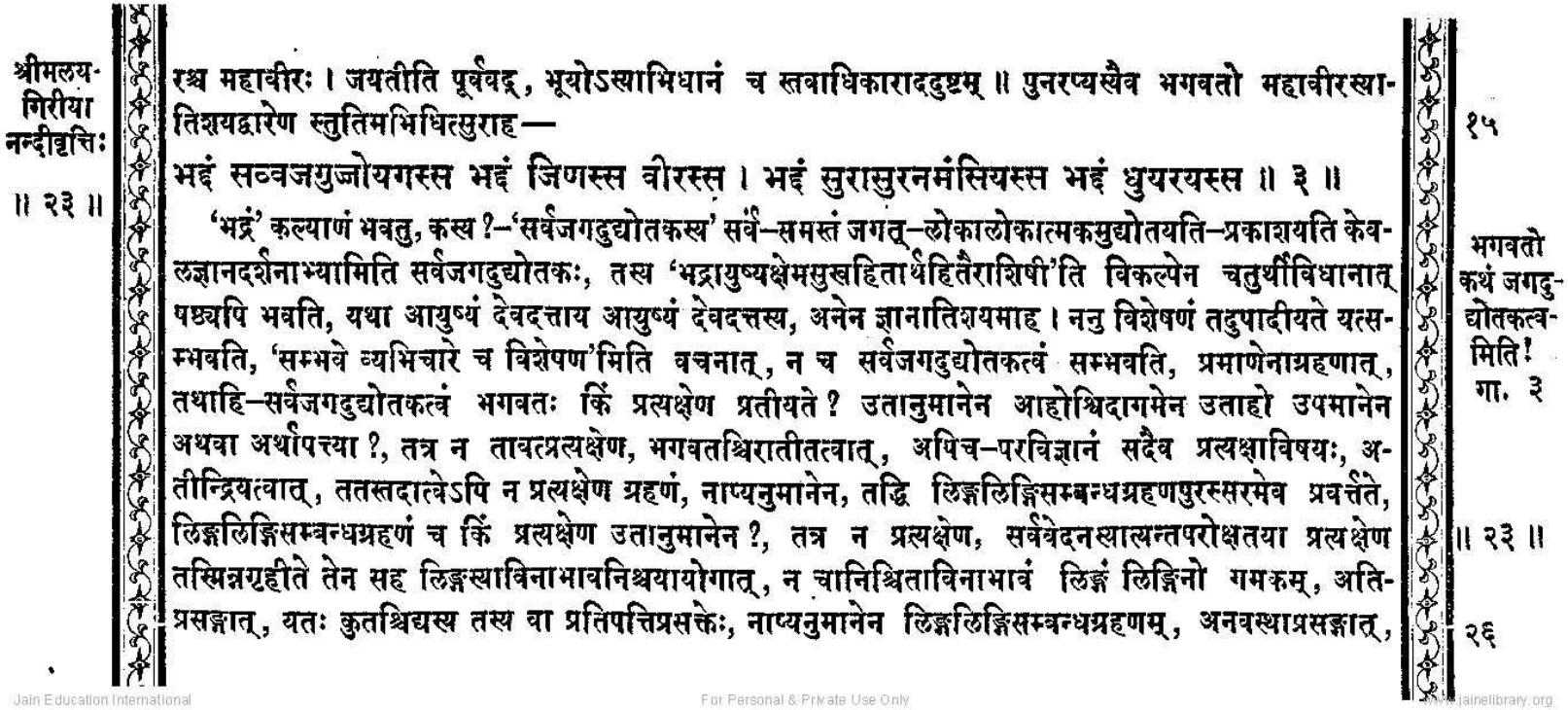
स्तुत्युपसंहारः. १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २३ ॥

रश्च महावीरः । जयतीति पूर्ववद्, भूयोऽस्याभिधानं च स्तवाधिकारादद्दष्टम् ॥ पुनरप्यस्यैव भगवतो महावीरस्यातिशयद्वारेण स्तुतिमभिधित्सुराह—

भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स भद्दं जिणस्स वीरस्स । भद्दं सुरासुरनमंसियस्स भद्दं धुयरयस्स ॥ ३ ॥

'भद्रं' कल्याणं भवतु, कस्य ?–'सर्वजगदुद्योतकस्य' सर्वं–समस्तं जगत्–लोकालोकात्मकमुद्योतयति–प्रकाशयति केवलज्ञानदर्शनाभ्यामिति सर्वजगदुद्योतकः, तस्य 'भद्रायुष्यक्षेमसुखहितार्थहितैराशिषी'ति विकल्पेन चतुर्थीविधानात् षष्ठ्यपि भवति, यथा आयुष्यं देवदत्ताय आयुष्यं देवदत्तस्य, अनेन ज्ञानातिशयमाह । ननु विशेषणं तदुपादीयते यत्सम्भवति, 'सम्भवे व्यभिचारे च विशेषण'मिति वचनात्, न च सर्वजगदुद्योतकत्वं सम्भवति, प्रमाणेनाग्रहणात्, तथाहि–सर्वजगदुद्योतकत्वं भगवतः किं प्रत्यक्षेण प्रतीयते ? उतानुमानेन आहोश्विदागमेन उताहो उपमानेन अथवा अर्थापत्त्या ?, तत्र न तावत्प्रत्यक्षेण, भगवतश्चिरातीतत्वात्, अपिच–परचित्तज्ञानं सदैव प्रत्यक्षाविषयः, अतीन्द्रियत्वात्, ततस्तदात्वेऽपि न प्रत्यक्षेण ग्रहणं, नाप्यनुमानेन, तद्धि लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणपुरस्सरमेव प्रवर्त्तते, लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणं च किं प्रत्यक्षेण उतानुमानेन ?, तत्र न प्रत्यक्षेण, सर्ववेदनस्यात्यन्तपरोक्षतया प्रत्यक्षेण तस्मिन्नगृहीते तेन सह लिङ्गस्याविनाभावनिश्चययोगात्, न चानिश्चिताविनाभावं लिङ्गं लिङ्गिनो गमकम्, अतिप्रसङ्गात्, यतः कुतश्चिद्यस्य तस्य वा प्रतिपत्तिप्रसक्तेः, नाप्यनुमानेन लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणम्, अनवस्थाप्रसङ्गात्,

१५

भगवतो कथं जगदुद्योतकत्वमिति! गा. ३

॥ २३ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवत् महावीरस्य (अतिशय आश्रिता) स्तुति

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

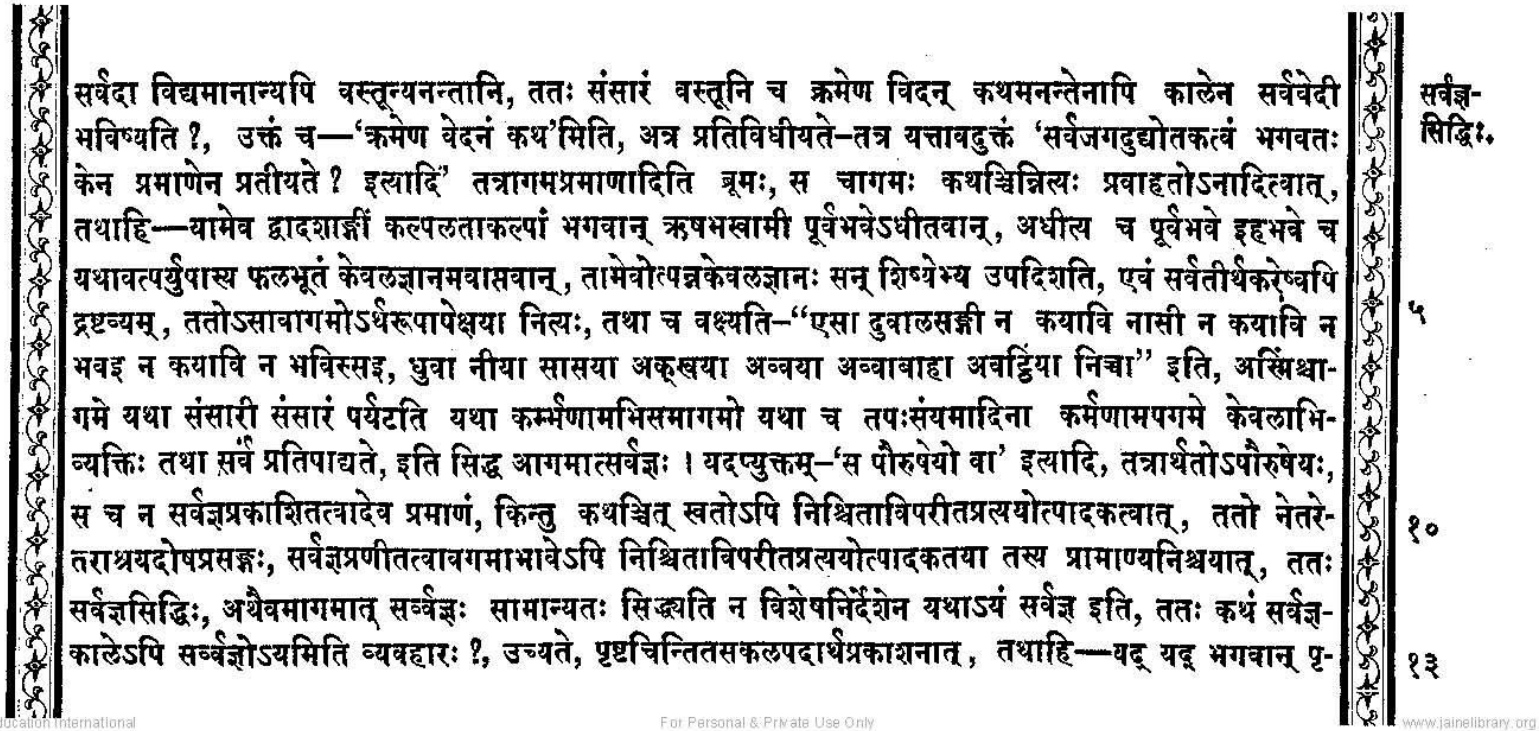
पौरुषेया-पौरुषेय-त्वविचारः

तथाहि–तदप्यनुमानं लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणतो भवेत्, ततस्तत्रापि लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणमनुमानान्तरात्कर्त्तव्यम्, तत्रापि चेयमेव वार्त्तेत्यनवस्था, नाप्यागमतः सर्ववेदनविनिश्चयः, स हि पौरुषेयो वा स्यादपौरुषेयो वा ?, पौरुषेयोऽपि सर्वज्ञकृतो रथ्यापुरुषकृतो वा ?, तत्र न तावत् सर्वज्ञकृतः, सर्वज्ञासिद्धौ सर्वज्ञकृतत्वस्यैवाविनिश्चयात्, अपि च–एवमभ्युपगमे सतीतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः, तथाहि–सर्वज्ञसिद्धौ तत्कृतागमसिद्धिः, तत्कृतागमसिद्धौ च सर्वज्ञसिद्धिः, अथ रथ्यापुरुषप्रणीत इति पक्षस्तर्हि न स प्रमाणमुन्मत्तकप्रणीतशास्त्रवत्, अप्रमाणाच्च तस्मान्न सुनिश्चितसर्वज्ञसिद्धिः, अप्रमाणात्प्रमेयासिद्धेः, अन्यथा प्रमाणपर्येषणं विशीर्येत, अथापौरुषेय इति पक्षस्तर्हि ऋषभः सर्वज्ञो वर्द्धमानस्वामी सर्वज्ञ इत्यादिरर्थवादः प्राप्नोति, ऋषभाद्यभावेऽपि भावात्, तथाहि–सर्व्वकल्पस्थायी आगमः, ऋषभादयस्त्वधुनातनकल्पवर्त्तिनः, तत ऋषभाद्यभावेऽपि पूर्व्वमप्यस्यागमस्यैवमेव भावात्कथमेतेषामृषभादीनामभिधानं तत्र परमार्थसत् ?, तस्मादर्थवाद एषः, न सर्व्वज्ञप्रतिपादनमिति। अपि च–यद्यपौरुषेयागमाभ्युपगमस्तर्हि किमिदानीं सर्वज्ञेन ?, आगमादेव धर्म्माधर्म्मादिव्यवस्थासिद्धेः, तस्मात् नागमगम्यः सर्ववेदी, नाप्युपमानगम्यः, तस्य प्रत्यक्षपूर्वकत्वात्, तथाहि—प्रत्यक्षप्रसिद्धगोपिण्डस्य यथा गौः तथा गवय इत्यागमाहितसंस्कारस्याटव्यां पर्यटतो गवयदर्शनानन्तरं तन्नामप्रतिपत्तिरुपमानं प्रमाणं वर्ण्यते, न चैकोऽपि सर्वज्ञः प्रत्यक्षसिद्धो येन तत्सादृश्यावष्टम्भेनान्यस्य विवक्षितपुरुषस्योपमानप्रमाणतः सर्वज्ञ इति प्रतीतिर्भवेत्, नाप्यर्थापत्तिगम्यः, सा हि प्रत्यक्षादिप्रमाणगोचरीकृतार्थान्यथानु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पपत्त्या प्रवर्त्तते, न च कोऽप्यर्थः सर्वज्ञमन्तरेण नोपपद्यते, तत्कथमर्थापत्तिगम्यः ?, तदेवं प्रमाणपञ्चकावृत्तेरभावप्रमाणमेव सर्वज्ञं क्रोडीकरोति, उक्तं च–"प्रमाणपञ्चकं यत्र, वस्तुरूपे न जायते । वस्त्वसत्तावबोधार्थं, तत्राभावप्रमाणता ॥१॥" अपि च–सर्वं वस्तु जानाति भगवान् केन प्रमाणेन ?, किं प्रत्यक्षेण उत यथासम्भवं सर्वैरेव प्रमाणैः, तत्र न तावत्प्रत्यक्षेण, देशकालविप्रकृष्टेषु सूक्ष्मेष्वमूर्त्तेषु च तस्याप्रवृत्तेः, इन्द्रियाणामगोचरत्वात्, यदि पुनस्तत्रापीन्द्रियं व्याप्रियेत तर्हि सर्व्वः सर्वज्ञो भवेत्, अथेन्द्रियप्रत्यक्षादन्यदतीन्द्रियं प्रत्यक्षं तस्यास्ति तेन सर्व्वं जानातीति मन्येथाः, तदप्ययुक्तम्, तस्यास्तित्वे प्रमाणाभावात्, न च प्रमाणमन्तरेण प्रमेयसिद्धिः, सर्वस्य सर्वेष्टार्थसिद्धिप्रसक्तेः, अथवा अस्तु तदपि तथापि सर्वमेतावदेव जगति वस्तु इति न निश्चयः, न खल्वतीन्द्रियमप्यवधिज्ञानं सर्ववस्तुविषयं सिद्धं, तदपरिच्छिन्नानामपि धर्म्माधर्मास्तिकायादीनां सम्भवाद्, एवं केवलज्ञानापरिच्छिन्नमपि किमपि वस्तु भविष्यतीत्याशङ्काऽनतिवृत्तेर्न सर्वविषयं केवलज्ञानं वक्तुं शक्यं, तथा च कुतः सर्वज्ञस्यापि स्वयमात्मनः सर्वज्ञत्वविनिश्चयः?, अथ यथायथं सर्वैरेव प्रमाणैः सर्वं वस्तु जानातीति पक्षः, नन्वेवं सति य एवागमे कृतपरिश्रमः स एव सर्वज्ञत्वं प्राप्नोति, आगमस्य प्रायः सर्वार्थविषयत्वात्, तथा च कः प्रतिविशेषो वर्द्धमानस्वाम्यादौ ? येन स एव प्रमाणमिष्यते न जैमिनिरिति । अन्यच्च-यथाऽवस्थितसकलवस्तुवेदी सर्वज्ञ इष्यते, ततोऽशुच्यादिरसानामपि यथावस्थिततया संवेदनादशुच्यादिरसास्वादप्रसङ्गः, आह च—"अशुच्यादिरसास्वादप्रसङ्गश्चानिवारितः" किं च–कालतोऽनाद्यनन्तः संसारो, जगति च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सर्वदा विद्यमानान्यपि वस्तून्यनन्तानि, ततः संसारं वस्तूनि च क्रमेण विदन् कथमनन्तेनापि कालेन सर्ववेदी भविष्यति ?, उक्तं च—'क्रमेण वेदनं कथ'मिति, अत्र प्रतिविधीयते–तत्र यत्तावदुक्तं 'सर्वजगदुद्योतकत्वं भगवतः केन प्रमाणेन प्रतीयते ? इत्यादि' तत्रागमप्रमाणादिति ब्रूमः, स चागमः कथञ्चिन्नित्यः प्रवाहतोऽनादित्वात्, तथाहि—यामेव द्वादशाङ्गीं कल्पलताकल्पां भगवान् ऋषभस्वामी पूर्वभवेऽधीतवान्, अधीत्य च पूर्वभवे इहभवे च यथावत्पर्युपास्य फलभूतं केवलज्ञानमवाप्तवान्, तामेवोत्पन्नकेवलज्ञानः सन् शिष्येभ्य उपदिशति, एवं सर्वतीर्थकरेष्वपि द्रष्टव्यम्, ततोऽसावागमोऽर्थरूपापेक्षया नित्यः, तथा च वक्ष्यति–"एसा दुवालसङ्गी न कयावि नासी न कयावि न भवइ न कयावि न भविस्सइ, धुवा नीया सासया अक्खया अव्वया अव्वाबाहा अवट्ठिया निच्चा" इति, अस्मिंश्चागमे यथा संसारी संसारं पर्यटति यथा कर्म्मणामभिसमागमो यथा च तपःसंयमादिना कर्मणामपगमे केवलाभिव्यक्तिः तथा सर्वं प्रतिपाद्यते, इति सिद्ध आगमात्सर्वज्ञः । यदप्युक्तम्–'स पौरुषेयो वा' इत्यादि, तत्रार्थतोऽपौरुषेयः, स च न सर्वज्ञप्रकाशितत्वादेव प्रमाणं, किन्तु कथञ्चित् स्वतोऽपि निश्चिताविपरीतप्रत्ययोत्पादकत्वात्, ततो नेतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः, सर्वज्ञप्रणीतत्वावगमाभावेऽपि निश्चिताविपरीतप्रत्ययोत्पादकतया तस्य प्रामाण्यनिश्चयात्, ततः सर्वज्ञसिद्धिः, अथैवमागमात् सर्व्वज्ञः सामान्यतः सिद्ध्यति न विशेषनिर्देशेन यथाऽयं सर्वज्ञ इति, ततः कथं सर्वज्ञकालेऽपि सर्व्वज्ञोऽयमिति व्यवहारः ?, उच्यते, पृष्टचिन्तितसकलपदार्थप्रकाशनात्, तथाहि—यद् यद् भगवान् पृ-

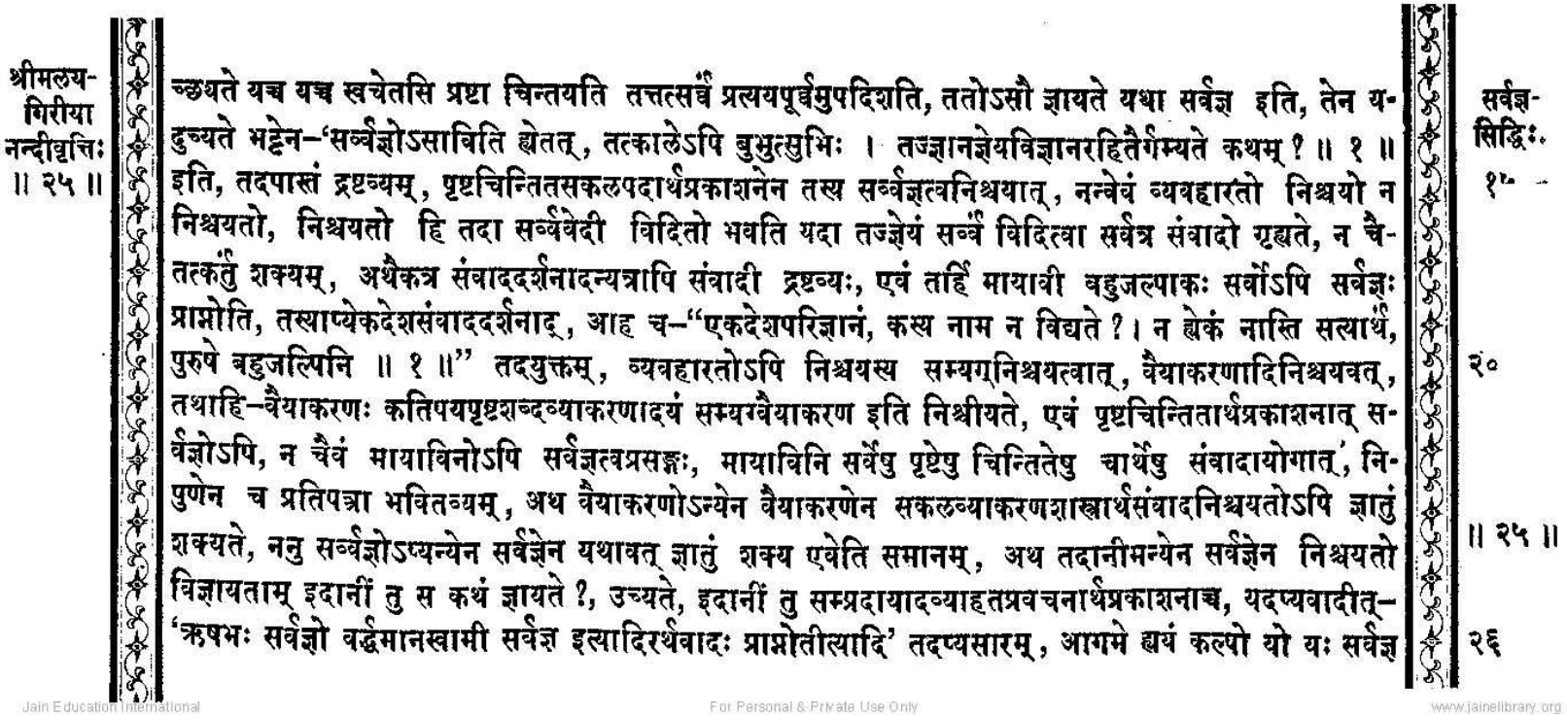
सर्वज्ञ-सिद्धिः॥

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २५ ॥

च्छथते यच्च यच्च स्वचेतसि प्रष्टा चिन्तयति तत्तत्सर्वं प्रत्ययपूर्वमुपदिशति, ततोऽसौ ज्ञायते यथा सर्वज्ञ इति, तेन यदुच्यते भट्टेन–'सर्व्वज्ञोऽसाविति ह्येतत्, तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः । तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ? ॥ १ ॥ इति, तदपास्तं द्रष्टव्यम्, पृष्टचिन्तितसकलपदार्थप्रकाशनेन तस्य सर्व्वज्ञत्वनिश्चयात्, नन्वेवं व्यवहारतो निश्चयो न निश्चयतो, निश्चयतो हि तदा सर्व्ववेदी विदितो भवति यदा तज्ज्ञेयं सर्व्वं विदित्वा सर्वत्र संवादो गृह्यते, न चैतत्कर्तुं शक्यम्, अथैकत्र संवाददर्शनादन्यत्रापि संवादी द्रष्टव्यः, एवं तर्हि मायावी बहुजल्पाकः सर्वोऽपि सर्वज्ञः प्राप्नोति, तस्याप्येकदेशसंवाददर्शनाद्, आह च–"एकदेशपरिज्ञानं, कस्य नाम न विद्यते ?। न ह्येकं नास्ति सत्यार्थं, पुरुषे बहुजल्पिनि ॥ १ ॥" तदयुक्तम्, व्यवहारतोऽपि निश्चयस्य सम्यग्निश्चयत्वात्, वैयाकरणादिनिश्चयवत्, तथाहि–वैयाकरणः कतिपयपृष्टशब्दव्याकरणादयं सम्यग्वैयाकरण इति निश्चीयते, एवं पृष्टचिन्तितार्थप्रकाशनात् सर्वज्ञोऽपि, न चैवं मायाविनोऽपि सर्वज्ञत्वप्रसङ्गः, मायाविनि सर्वेषु पृष्टेषु चिन्तितेषु चार्थेषु संवादायोगात्, निपुणेन च प्रतिपत्त्रा भवितव्यम्, अथ वैयाकरणोऽन्येन वैयाकरणेन सकलव्याकरणशास्त्रार्थसंवादनिश्चयतोऽपि ज्ञातुं शक्यते, ननु सर्व्वज्ञोऽप्यन्येन सर्वज्ञेन यथावत् ज्ञातुं शक्य एवेति समानम्, अथ तदानीमन्येन सर्वज्ञेन निश्चयतो विज्ञायताम् इदानीं तु स कथं ज्ञायते ?, उच्यते, इदानीं तु सम्प्रदायादव्याहतप्रवचनार्थप्रकाशनाच्च, यदप्यवादीत्–'ऋषभः सर्वज्ञो वर्द्धमानस्वामी सर्वज्ञ इत्यादिरर्थवादः प्राप्नोतीत्यादि' तदप्यसारम्, आगमे ह्ययं कल्पो यो यः सर्वज्ञ

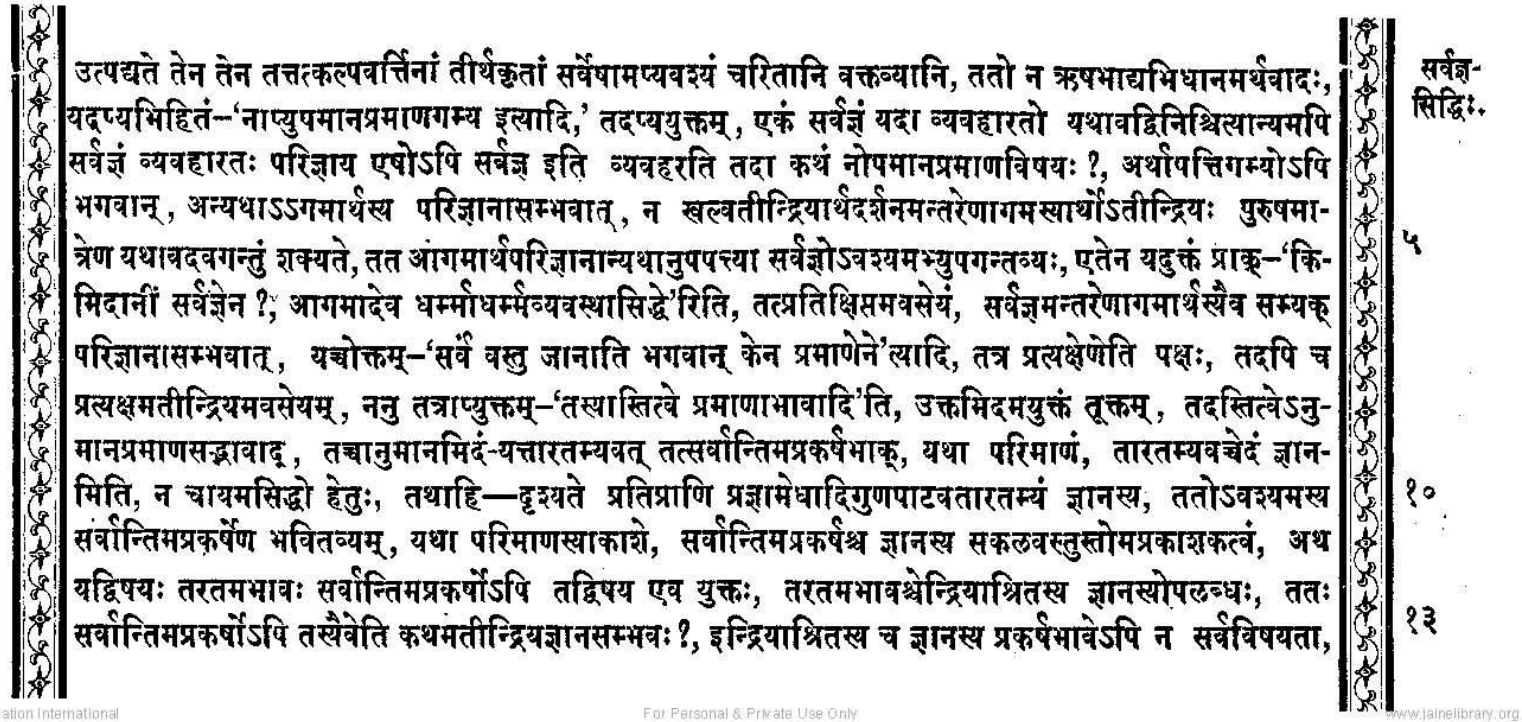
सर्वज्ञ-सिद्धिः १९ २० ॥ २५ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]



उत्पद्यते तेन तेन तत्तत्कल्पवर्त्तिनां तीर्थकृतां सर्वेषामप्यवश्यं चरितानि वक्तव्यानि, ततो न ऋषभाद्यभिधानमर्थवादः, यदप्यभिहितं–'नाप्युपमानप्रमाणगम्य इत्यादि,' तदप्ययुक्तम्, एकं सर्वज्ञं यदा व्यवहारतो यथावद्विनिश्चित्यान्यमपि सर्वज्ञं व्यवहारतः परिज्ञाय एषोऽपि सर्वज्ञ इति व्यवहरति तदा कथं नोपमानप्रमाणविषयः ?, अर्थापत्तिगम्योऽपि भगवान्, अन्यथाऽऽगमार्थस्य परिज्ञानासम्भवात्, न खल्वतीन्द्रियार्थदर्शनमन्तरेणागमस्यार्थोऽतीन्द्रियः पुरुषमात्रेण यथावदवगन्तुं शक्यते, तत आगमार्थपरिज्ञानान्यथानुपपत्त्या सर्वज्ञोऽवश्यमभ्युपगन्तव्यः, एतेन यदुक्तं प्राक्–'किमिदानीं सर्वज्ञेन ?, आगमादेव धर्म्माधर्म्मव्यवस्थासिद्धे'रिति, तत्प्रतिक्षिप्तमवसेयं, सर्वज्ञमन्तरेणागमार्थस्यैव सम्यक् परिज्ञानासम्भवात्, यच्चोक्तम्–'सर्वं वस्तु जानाति भगवान् केन प्रमाणेने'त्यादि, तत्र प्रत्यक्षेणेति पक्षः, तदपि च प्रत्यक्षमतीन्द्रियमवसेयम्, ननु तत्राप्युक्तम्–'तस्यास्तित्वे प्रमाणाभावादि'ति, उक्तमिदमयुक्तं तूक्तम्, तदस्तित्वेऽनुमानप्रमाणसद्भावाद्, तच्चानुमानमिदं-यत्तारतम्यवत् तत्सर्वान्तिमप्रकर्षभाक्, यथा परिमाणं, तारतम्यवच्चेदं ज्ञानमिति, न चायमसिद्धो हेतुः, तथाहि—दृश्यते प्रतिप्राणि प्रज्ञामेधादिगुणपाटवतारतम्यं ज्ञानस्य, ततोऽवश्यमस्य सर्वान्तिमप्रकर्षेण भवितव्यम्, यथा परिमाणस्याकाशे, सर्वान्तिमप्रकर्षश्च ज्ञानस्य सकलवस्तुस्तोमप्रकाशकत्वं, अथ यद्विषयः तरतमभावः सर्वान्तिमप्रकर्षोऽपि तद्विषय एव युक्तः, तरतमभावश्चेन्द्रियाश्रितस्य ज्ञानस्योपलब्धः, ततः सर्वान्तिमप्रकर्षोऽपि तस्यैवेति कथमतीन्द्रियज्ञानसम्भवः ?, इन्द्रियाश्रितस्य च ज्ञानस्य प्रकर्षभावेऽपि न सर्वविषयता,

सर्वज्ञ-सिद्धिः.

५

१०

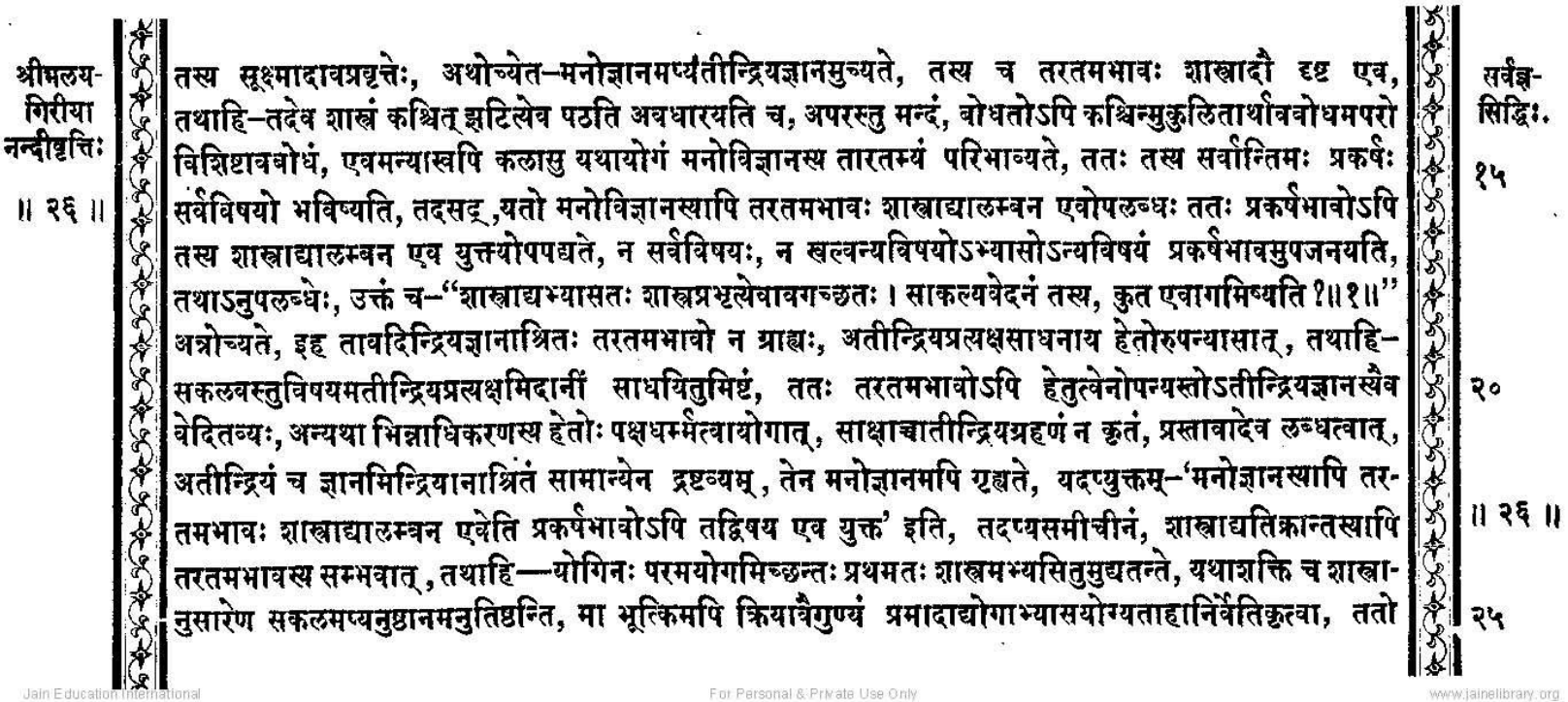
१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २६ ॥

तस्य सूक्ष्मादावप्रवृत्तेः, अथोच्येत–मनोज्ञानमप्यतीन्द्रियज्ञानमुच्यते, तस्य च तरतमभावः शास्त्रादौ दृष्ट एव, तथाहि–तदेव शास्त्रं कश्चित् झटित्येव पठति अवधारयति च, अपरस्तु मन्दं, बोधतोऽपि कश्चिन्मुकुलितार्थावबोधमपरो विशिष्टावबोधं, एवमन्यास्वपि कलासु यथायोगं मनोविज्ञानस्य तारतम्यं परिभाव्यते, ततः तस्य सर्वान्तिमः प्रकर्षः सर्वविषयो भविष्यति, तदसद्,यतो मनोविज्ञानस्यापि तरतमभावः शास्त्राद्यालम्बन एवोपलब्धः ततः प्रकर्षभावोऽपि तस्य शास्त्राद्यालम्बन एव युक्त्योपपद्यते, न सर्वविषयः, न खल्वन्यविषयोऽभ्यासोऽन्यविषयं प्रकर्षभावमुपजनयति, तथाऽनुपलब्धेः, उक्तं च–"शास्त्राद्यभ्यासतः शास्त्रप्रभृत्येवावगच्छतः । साकल्यवेदनं तस्य, कुत एवागमिष्यति ?॥१॥" अत्रोच्यते, इह तावदिन्द्रियज्ञानाश्रितः तरतमभावो न ग्राह्यः, अतीन्द्रियप्रत्यक्षसाधनाय हेतोरुपन्यासात्, तथाहि– सकलवस्तुविषयमतीन्द्रियप्रत्यक्षमिदानीं साधयितुमिष्टं, ततः तरतमभावोऽपि हेतुत्वेनोपन्यस्तोऽतीन्द्रियज्ञानस्यैव वेदितव्यः, अन्यथा भिन्नाधिकरणस्य हेतोः पक्षधर्मत्वायोगात्, साक्षाच्चातीन्द्रियग्रहणं न कृतं, प्रस्तावादेव लब्धत्वात्, अतीन्द्रियं च ज्ञानमिन्द्रियानाश्रितं सामान्येन द्रष्टव्यम्, तेन मनोज्ञानमपि गृह्यते, यदप्युक्तम्–'मनोज्ञानस्यापि तरतमभावः शास्त्राद्यालम्बन एवेति प्रकर्षभावोऽपि तद्विषय एव युक्त' इति, तदप्यसमीचीनं, शास्त्राद्यतिक्रान्तस्यापि तरतमभावस्य सम्भवात्, तथाहि—योगिनः परमयोगमिच्छन्तः प्रथमतः शास्त्रमभ्यसितुमुद्यतन्ते, यथाशक्ति च शास्त्रानुसारेण सकलमप्यनुष्ठानमनुतिष्ठन्ति, मा भूत्किमपि क्रियावैगुण्यं प्रमादाद्योगाभ्यासयोग्यताहानिर्वेतिकृत्वा, ततो

सर्वज्ञसिद्धिः. १५ २० ॥ २६ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वज्ञ-सिद्धिः..

निरन्तरमेव यथोक्तानुष्ठानपुरस्सरं शास्त्रमभ्यस्यतां शुद्धचेतसां प्रतिदिवसमभिवर्द्धन्ते प्रज्ञामेधादिगुणाः, ते चाभ्यासादभिवर्द्धमाना अद्यापि स्वसंवेदनप्रमाणेनानुभूयन्ते ततो नासिद्धाः, ततः शनैः शनैरभ्यासप्रकर्षे जायमाने शास्त्रसन्दर्शितोपायाः वचनगोचरातीताः शेषप्राणिगणसंवेदनागम्याः सिद्धिपदसम्पद्धेतवः सूक्ष्मसूक्ष्मतरार्थविषया मनाक् समुल्लसत्स्फुटप्रतिभासा ज्ञानविशेषा उत्पद्यन्ते, ततः किञ्चिदूनात्यन्तप्रकर्षसम्भवे मनसोऽपि निरपेक्षमत्यादिज्ञानप्रकर्षपर्यन्तोत्तरकालभावि केवलज्ञानादर्वाक्तनं सवितुरुदयात् प्राक् तदालोककल्पमशेषरूपादिवस्तुविषयं प्रातिभं ज्ञानमुदयते, तच्च स्पष्टाभतयेन्द्रियप्रत्यक्षादधिकतरं, न चेदमसिद्धं, सर्वदर्शनेष्वप्यध्यात्मशास्त्रेषु तस्याभिधानात्, अथ प्रथमतो मनःसापेक्षमभ्यासमारब्धवान्, अभ्यासप्रकर्षे तूपजायमाने कथं मनोऽपि नालम्बते ?, उच्यते, अत्यन्ताभ्यासप्रकर्षवशतो मनोनिरपेक्षमपि शक्तत्वात्, तथाहि–तरणं शिक्षितुकामः प्रथमं तरण्डमपेक्षते, ततोऽभ्यासप्रकर्षयोगतः तरणनिष्णातस्तरण्डमपि परित्यजति, एवं योग्यपि वेदितव्यः, ततः सर्वोत्कृष्टप्रकर्षसम्भवेऽतीव स्फुटप्रतिभासं सकललोकालोकविषयमनुपममबाध्यं केवलज्ञानमुदयते, ततो यदुक्तं 'शास्त्राद्यभ्यासतः शास्त्रप्रभृत्येवावगच्छत' इत्यादि, तदत्यन्तमध्यात्मशास्त्रयाथात्म्यवेदिगुरुसम्पर्कबहिर्भूतत्वसूचकमवसेयं, स्यादेतत्, तारतम्यदर्शनादस्तु ज्ञानस्य प्रकर्षसम्भवानुमानं, स तु प्रकर्षः सकलवस्तुविषय इति कथं श्रद्धेयम् ?, न खलु लङ्घनमभ्यासतः तारतम्यवदप्युपलभ्यमानं सकललोकविषयमुपलभ्यते, तदसद्, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात्, तथाहि–न लङ्घनमभ्यासादुपजायते, किन्तु बलविशेषतः, तथाहि–

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

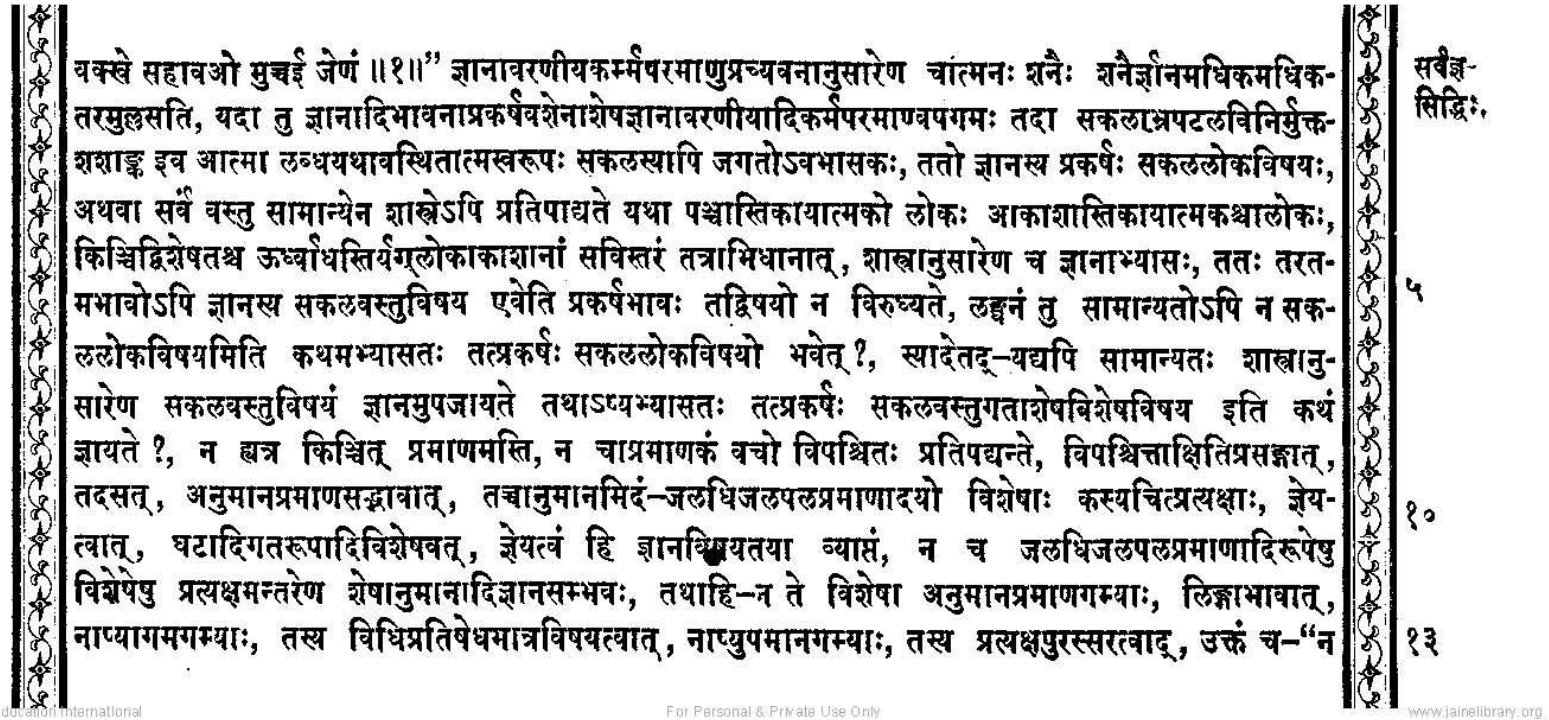
प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

समानेऽपि गरुत्मच्छाखामृगशावकयोरभ्यासे न समानं लङ्घनम्, उक्तं च–"गरुत्मच्छाखामृगयोर्लङ्घनाभ्याससम्भवे। समानेऽपि समानत्वं, लङ्घनस्य न विद्यते ॥ १ ॥" अपि च—पुरुषयोरपि द्वयोः समानप्रथमयौवनयोरपि समानेऽप्यभ्यासे एकः प्रभूतं लङ्घयितुं शक्नोति अपरस्तु स्तोकं, तस्माद्बलसापेक्षं लङ्घनं नाभ्यासमात्रहेतुकम्, अभ्यासस्तु केवलं देहवैगुण्यमात्रमपनयति, तच्च बलं वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमात्, क्षयोपशमश्च जातिभेदापेक्षी द्रव्यक्षेत्राद्यपेक्षी च, ततो यस्य यावद्बलं तस्य तावदेव लङ्घनमिति तन्न सकललोकविषयं, जीवस्तु शशाङ्क इव स्वरूपेण सकलजगत्प्रकाशनस्वभावः, केवलमावरणघनपटलतिरस्कृतप्रभावत्वात् न तथा प्रकाशते, उक्तं च– "स्थितः शीतांशुवज्जीवः, प्रकृत्या भावशुद्धया। चन्द्रिकावच्च विज्ञानं, तदावरणमभ्रवत् ॥ १ ॥" ततो यथा प्रचण्डनैर्ऋतपवनप्रहता घनपटलपरमाणवः शनैः शनैर्निःस्नेहीभूयापगच्छन्ति, तदपगमनानुसारेण च चन्द्रस्य प्रकाशो जगति वितनुते, तथा जीवस्यापि रागादिभ्यः चित्तं विनिवर्त्त्य कायवाक्चेष्टासु संयतस्य सम्यक्शास्त्रानुसारेण च यथावस्थितं वस्तु परिभावयतो ज्ञानादिभावनाप्रभावतो ज्ञानावरणीयादिकर्म्मपरमाणवः शनैः शनैर्निःस्नेहीभूयात्मनः प्रच्यवन्ते, कथमेतत्प्रत्येयमिति चेत्?, उच्यते, इहाज्ञानादिनिमित्तकं ज्ञानावरणीयादि कर्म्म, ततः तत्प्रतिपक्षज्ञानाद्यासेवनेऽवश्यं तदात्मनः प्रच्यवते, उक्तं च—"बंधइ जहेव कम्मं अन्नाणाईहिं कलुसियमणो उ। तह चेव तविपक्खे मुच्चइ तेणं ॥ १ ॥"

१ बध्नाति यथैव कर्म अज्ञानादिभिः कलुषितमनास्तु। तथैव तद्विपक्षे स्वभावतो मुच्यते येन ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

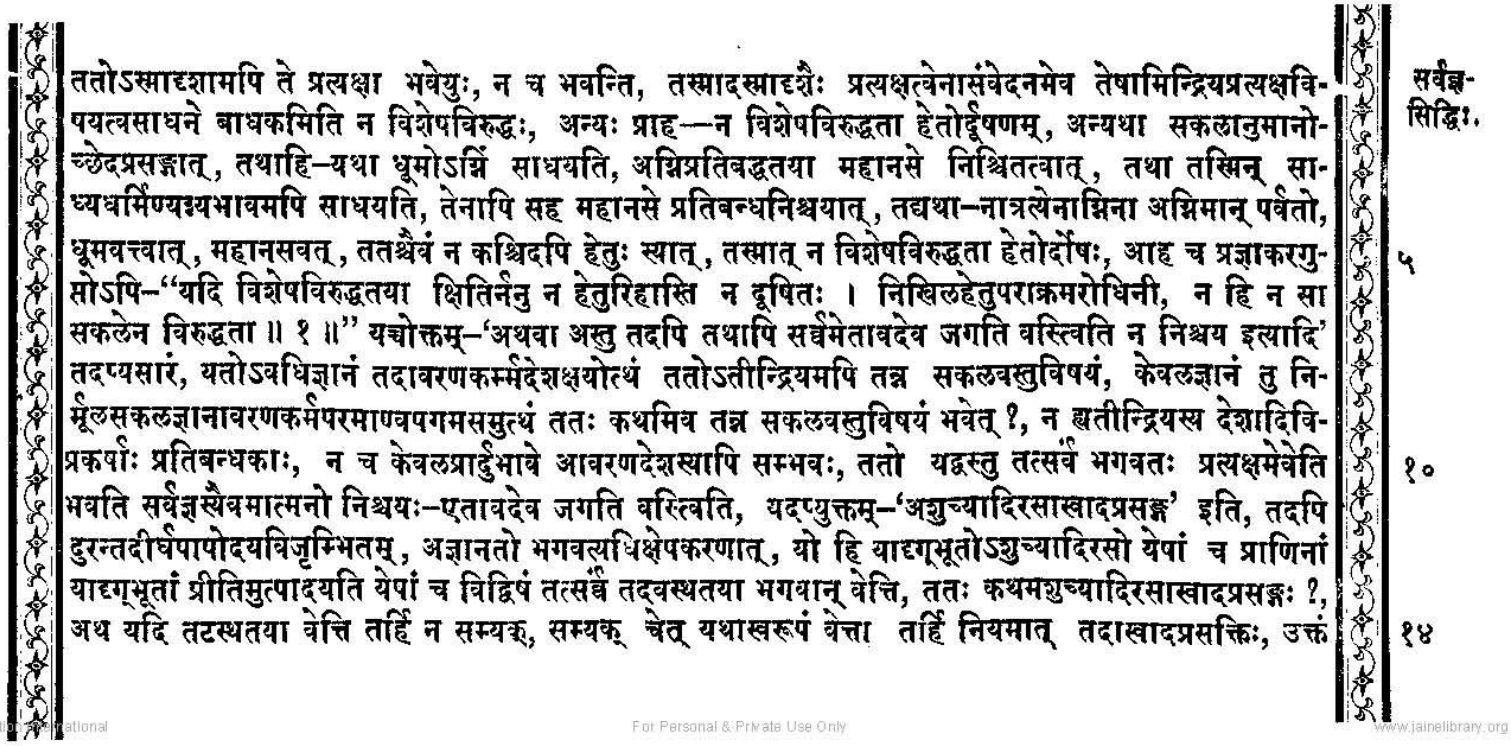


वक्खे सहावओ मुच्चई जेणं ॥१॥" ज्ञानावरणीयकर्म्मपरमाणुप्रच्यवनानुसारेण चात्मनः शनैः शनैर्ज्ञानमधिकमधिक- सर्वज्ञ-
तरमुल्लसति, यदा तु ज्ञानादिभावनाप्रकर्षवशेनाशेषज्ञानावरणीयादिकर्मपरमाण्वपगमः तदा सकलाभ्रपटलविनिर्मुक्त- सिद्धिः,
शशाङ्क इव आत्मा लब्धयथावस्थितात्मस्वरूपः सकलस्यापि जगतोऽवभासकः, ततो ज्ञानस्य प्रकर्षः सकललोकविषयः,
अथवा सर्वं वस्तु सामान्येन शास्त्रेऽपि प्रतिपाद्यते यथा पञ्चास्तिकायात्मको लोकः आकाशास्तिकायात्मकश्चालोकः,
किञ्चिद्विशेषतश्च ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकाकाशानां सविस्तरं तत्राभिधानात्, शास्त्रानुसारेण च ज्ञानाभ्यासः, ततः तरत- ५
मभावोऽपि ज्ञानस्य सकलवस्तुविषय एवेति प्रकर्षभावः तद्विषयो न विरुध्यते, लङ्घनं तु सामान्यतोऽपि न सक-
ललोकविषयमिति कथमभ्यासतः तत्प्रकर्षः सकललोकविषयो भवेत्?, स्यादेतद्–यद्यपि सामान्यतः शास्त्रानु-
सारेण सकलवस्तुविषयं ज्ञानमुपजायते तथाऽप्यभ्यासतः तत्प्रकर्षः सकलवस्तुगताशेषविशेषविषय इति कथं
ज्ञायते?, न ह्यत्र किञ्चित् प्रमाणमस्ति, न चाप्रमाणकं वचो विपश्चितः प्रतिपद्यन्ते, विपश्चित्ताक्षितिप्रसङ्गात्,
तदसत्, अनुमानप्रमाणसद्भावात्, तच्चानुमानमिदं–जलधिजलपलप्रमाणादयो विशेषाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः, ज्ञेय- १०
त्वात्, घटादिगतरूपादिविशेषवत्, ज्ञेयत्वं हि ज्ञानविषयतया व्याप्तं, न च जलधिजलपलप्रमाणादिरूपेषु
विशेषेषु प्रत्यक्षमन्तरेण शेषानुमानादिज्ञानसम्भवः, तथाहि–न ते विशेषा अनुमानप्रमाणगम्याः, लिङ्गाभावात्,
नाप्यागमगम्याः, तस्य विधिप्रतिषेधमात्रविषयत्वात्, नाप्युपमानगम्याः, तस्य प्रत्यक्षपुरस्सरत्वाद्, उक्तं च–"न १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चागमेन यदसौ, विध्यादिप्रतिपादकः । अप्रत्यक्षत्वतो नैवोपमानस्यापि सम्भवः ॥१॥" नाप्यर्थापत्तिविषयाः, सा हि दृष्टः श्रुतो वाऽर्थो यदन्तरेण नोपपद्यते यथा काष्ठस्य भस्मविकारोऽग्नेर्दाहकशक्तिमन्तरेण तद्विषया वर्ण्यते, न च दृष्टः श्रुतो वा कोऽप्यर्थः तान् विशेषानन्तरेण नोपपद्यते, ततो नार्थापत्तिगम्याः, न चैते विशेषाः स्वरूपेण न सन्ति, विशेषान् विना सामान्यस्यैवासम्भवात्, न च वाच्यमत एव सामान्यस्यान्यथानुपपत्तेरर्थापत्तिगम्याः, नियतरूपतयाऽनवगमात्, प्रातिनैयत्यमेव च विशेषाणां स्वस्वरूपं, अन्यथा विशेषहानेः सामान्यरूपताप्रसङ्गात्, न च तेषां ज्ञेयत्वमेवासिद्धमिति वाच्यम्, अभावप्रमाणव्यभिचारप्रसङ्गात्, तथाहि–यदि केनापि प्रमाणेन न ज्ञायन्ते तर्हि 'प्रमाणपञ्चकं यत्र, वस्तुरूपे न जायते । वस्त्वसत्तावबोधार्थं, तत्राभावप्रमाणता ॥ १ ॥' इति वचनादभावप्रमाणविषयाः स्युः, अभावाख्यं च प्रमाणमभावसाधनमिष्यते, अथ च ते विशेषाः स्वरूपेणैवावतिष्ठन्ते, ततोऽभावप्रमाणव्यभिचारप्रसङ्गः, तस्माद्विपक्षव्यापकानुपलब्ध्या विशेषाणां ज्ञेयत्वं,प्रत्यक्षविषयतया व्याप्यत इति प्रतिबन्धसिद्धिः, स्यादेतत्–ज्ञेयत्वादिति हेतुर्विशेषविरुद्धः, तथाहि–घटादिगता रूपादिविशेषा इन्द्रियप्रत्यक्षेण प्रत्यक्षा उपलब्धाः, ततः तज्ज्ञेयत्वमिन्द्रियप्रत्यक्षविषयतया प्रत्यक्षत्वेन व्याप्तं निश्चितं सत् जलधिजलपलप्रमाणादिष्वपि विशेषेषु प्रत्यक्षत्वमिन्द्रियप्रत्यक्षविषयतां साधयति, तच्चानिष्टमिति, तदयुक्तम्, विरुद्धलक्षणासम्भवात्, तथाहि—विरुद्धो हेतुः तदा भवति यदा बाधकं नोपजायते, 'विरुद्धोऽसति बाधके' इति वचनाद्, अत्र च बाधकं विद्यते, यदि हि इन्द्रियप्रत्यक्षविषयतया प्रत्यक्षत्वं भवेत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



ततोऽस्मादृशामपि ते प्रत्यक्षा भवेयुः, न च भवन्ति, तस्मादस्मादृशैः प्रत्यक्षत्वेनासंवेदनमेव तेषामिन्द्रियप्रत्यक्षविषयत्वसाधने बाधकमिति न विशेषविरुद्धः, अन्यः प्राह—न विशेषविरुद्धता हेतोर्दूषणम्, अन्यथा सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात्, तथाहि–यथा धूमोऽग्निं साधयति, अग्निप्रतिबद्धतया महानसे निश्चितत्वात्, तथा तस्मिन् साध्यधर्मिण्यश्यभावमपि साधयति, तेनापि सह महानसे प्रतिबन्धनिश्चयात्, तद्यथा–नात्रत्येनाग्निना अग्निमान् पर्वतो, धूमवत्त्वात्, महानसवत्, ततश्चैवं न कश्चिदपि हेतुः स्यात्, तस्मात् न विशेषविरुद्धता हेतोर्दोषः, आह च प्रज्ञाकरगुप्तोऽपि–"यदि विशेषविरुद्धतया क्षितिर्ननु न हेतुरिहास्ति न दूषितः । निखिलहेतुपराक्रमरोधिनी, न हि न सा सकलेन विरुद्धता ॥ १ ॥" यच्चोक्तम्–'अथवा अस्तु तदपि तथापि सर्वमेतावदेव जगति वस्त्विति न निश्चय इत्यादि' तदप्यसारं, यतोऽवधिज्ञानं तदावरणकर्म्मदेशक्षयोत्थं ततोऽतीन्द्रियमपि तन्न सकलवस्तुविषयं, केवलज्ञानं तु निर्मूलसकलज्ञानावरणकर्मपरमाण्वपगमसमुत्थं ततः कथमिव तन्न सकलवस्तुविषयं भवेत्?, न ह्यतीन्द्रियस्य देशादिविप्रकर्षाः प्रतिबन्धकाः, न च केवलप्रादुर्भावे आवरणदेशस्यापि सम्भवः, ततो यद्वस्तु तत्सर्वं भगवतः प्रत्यक्षमेवेति भवति सर्वज्ञस्यैवमात्मनो निश्चयः–एतावदेव जगति वस्त्विति, यदप्युक्तम्–'अशुच्यादिरसास्वादप्रसङ्ग' इति, तदपि दुरन्तदीर्घपापोदयविजृम्भितम्, अज्ञानतो भगवत्यधिक्षेपकरणात्, यो हि यादृग्भूतोऽशुच्यादिरसो येषां च प्राणिनां यादृग्भूतां प्रीतिमुत्पादयति येषां च विद्विषं तत्सर्वं तदवस्थतया भगवान् वेत्ति, ततः कथमशुच्यादिरसास्वादप्रसङ्गः?, अथ यदि तटस्थतया वेत्ति तर्हि न सम्यक्, सम्यक् चेत् यथास्वरूपं वेत्ता तर्हि नियमात् तदास्वादप्रसक्तिः, उक्तं

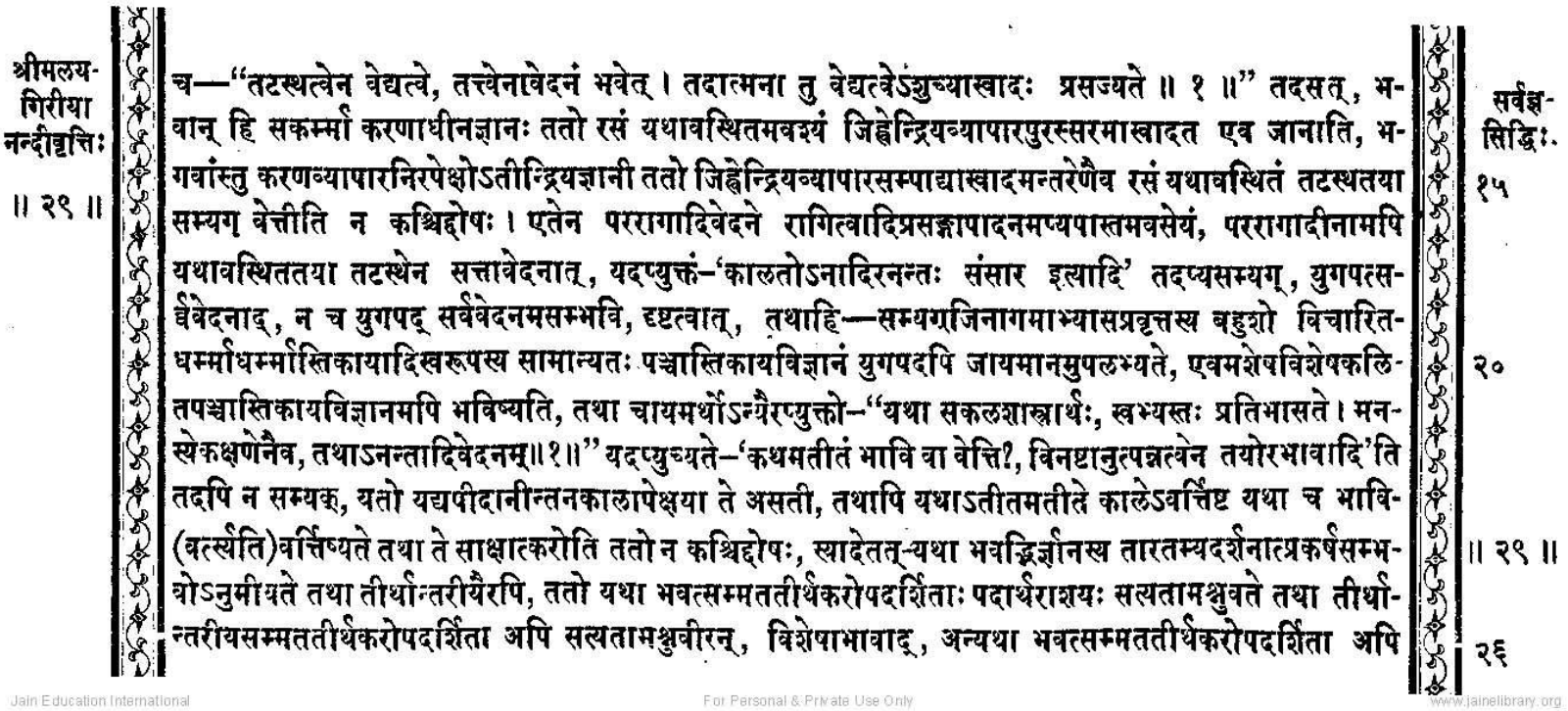
सर्वज्ञ-सिद्धिः

५

१०

१४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ २९ ॥

च—"तटस्थत्वेन वेद्यत्वे, तत्त्वेनावेदनं भवेत् । तदात्मना तु वेद्यत्वेऽशुच्यास्वादः प्रसज्यते ॥ १ ॥" तदसत्, भवान् हि सकर्म्मा करणाधीनज्ञानः ततो रसं यथावस्थितमवश्यं जिह्वेन्द्रियव्यापारपुरस्सरमास्वादत एव जानाति, भगवांस्तु करणव्यापारनिरपेक्षोऽतीन्द्रियज्ञानी ततो जिह्वेन्द्रियव्यापारसम्पाद्यास्वादमन्तरेणैव रसं यथावस्थितं तटस्थतया सम्यग् वेत्तीति न कश्चिद्दोषः । एतेन पररागादिवेदने रागित्वादिप्रसङ्गापादनमप्यपास्तमवसेयं, पररागादीनामपि यथावस्थिततया तटस्थेन सत्तावेदनात्, यदप्युक्तं–'कालतोऽनादिरनन्तः संसार इत्यादि' तदप्यसम्यग्, युगपत्सर्ववेदनाद्, न च युगपद् सर्ववेदनमसम्भवि, दृष्टत्वात्, तथाहि—सम्यगजिनागमाभ्यासप्रवृत्तस्य बहुशो विचारितधर्म्माधर्म्मास्तिकायादिस्वरूपस्य सामान्यतः पञ्चास्तिकायविज्ञानं युगपदपि जायमानमुपलभ्यते, एवमशेषविशेषकलितपञ्चास्तिकायविज्ञानमपि भविष्यति, तथा चायमर्थोऽन्यैरप्युक्तो–"यथा सकलशास्त्रार्थः, स्वभ्यस्तः प्रतिभासते । मनस्येकक्षणेनैव, तथाऽनन्तादिवेदनम्॥१॥" यदप्युच्यते–'कथमतीतं भावि वा वेत्ति?, विनष्टानुत्पन्नत्वेन तयोरभावादि'ति तदपि न सम्यक्, यतो यद्यपीदानीन्तनकालापेक्षया ते असती, तथापि यथाऽतीतमतीते काले ऽवर्त्तिष्ट यथा च भावि(वर्त्स्यति)वर्त्तिष्यते तथा ते साक्षात्करोति ततो न कश्चिद्दोषः, स्यादेतत्-यथा भवद्भिर्ज्ञानस्य तारतम्यदर्शनात्प्रकर्षसम्भवोऽनुमीयते तथा तीर्थान्तरीयैरपि, ततो यथा भवत्सम्मततीर्थकरोपदर्शिताः पदार्थराशयः सत्यतामश्नुवते तथा तीर्थान्तरीयसम्मततीर्थकरोपदर्शिता अपि सत्यतामश्नुवीरन्, विशेषाभावाद्, अन्यथा भवत्सम्मततीर्थकरोपदर्शिता अपि

सर्वज्ञसिद्धिः. १५ २० ॥ २९ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असत्यतामश्नुवीरन्, अथ तीर्थान्तरीयसम्मततीर्थकरोपदिष्टाः पदार्थराशयोऽनुमानप्रमाणेन बाध्यन्ते ततो न ते सत्याः, तदयुक्तम्, अनुमानप्रमाणेनातीन्द्रियज्ञानस्य बाधितुमशक्यत्वात्, आह च–"अतीन्द्रियानसंवेद्यान्, पश्यन्त्या- र्षेण चक्षुषा । ये भावान् वचनं तेषां, नानुमानेन बाध्यते ॥ १ ॥" अथ सम्भवंति जगति प्रज्ञालवोन्मेषदुर्विदग्धाः कुतर्कशास्त्राभ्याससम्पर्कतो वाचालाः तथाविधाद्भुतेन्द्रजालकौशलवशेन दर्शितदेवागमनभोयानचामरादिविभूतयः कीर्तिपूजादिलब्धुकामाः स्वयमसर्वज्ञा अपि सर्वज्ञा वयमिति ब्रुवाणाः, तत एतावदेव न ज्ञायते यदुत–तेषां सर्वो- त्तमप्रकर्षरूपमतीन्द्रियज्ञानमभूत्, यदि पुनर्यथोक्तस्वरूपमतीन्द्रियज्ञानमभविष्यत् तर्हि वचनमपि तेषां नाबाधिष्यत, अथ च दृश्यते बाधा ततस्ते कैतवभूमयो न सर्वज्ञा इति प्रतिपत्तव्यम्, तदेतदर्हत्यपि समानं, न समानम्, अर्हद्वचसि प्रमासंवाददर्शनात्, उक्तं च–"जैनेश्वरे हि वचसि, प्रमासंवाद इष्यते । प्रमाणबाधा त्वन्येषामतो द्रष्टा जिनेश्वरः ॥ १ ॥" अथ पुरुषमात्रसमुत्थं प्रमाणमतीन्द्रियविषये न साधकं नापि बाधकमविषयत्वात्, समानकक्षतायां हि बाध्यबाधकभावः, तथा चोक्तम्–"समानविषया यस्माद्बाध्यबाधकसंस्थितिः । अतीन्द्रिये च संसारिप्रमाणं न प्रवर्त्तते ॥१॥" ततः कथमुच्यते–अर्हतो वचसि प्रमासंवाददर्शनं प्रमाणबाध्यत्वमन्येषामिति ?, तदपि न सम्यक्, यतो न भगवान् केवलमतीन्द्रियमस्माद्दशामशक्यपरिच्छेदमेवोपदिशति, यदि पुनः तथाभूतमुपदिशेत् तर्हि न कोऽपि तद्व- चनतः प्रवर्तेत, अतीन्द्रियार्थं वचः सर्वेषामेव विद्यते परस्परविरुद्धं च, ततः कथं तद्वचनतः प्रेक्षावतां प्रवृत्तिः ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

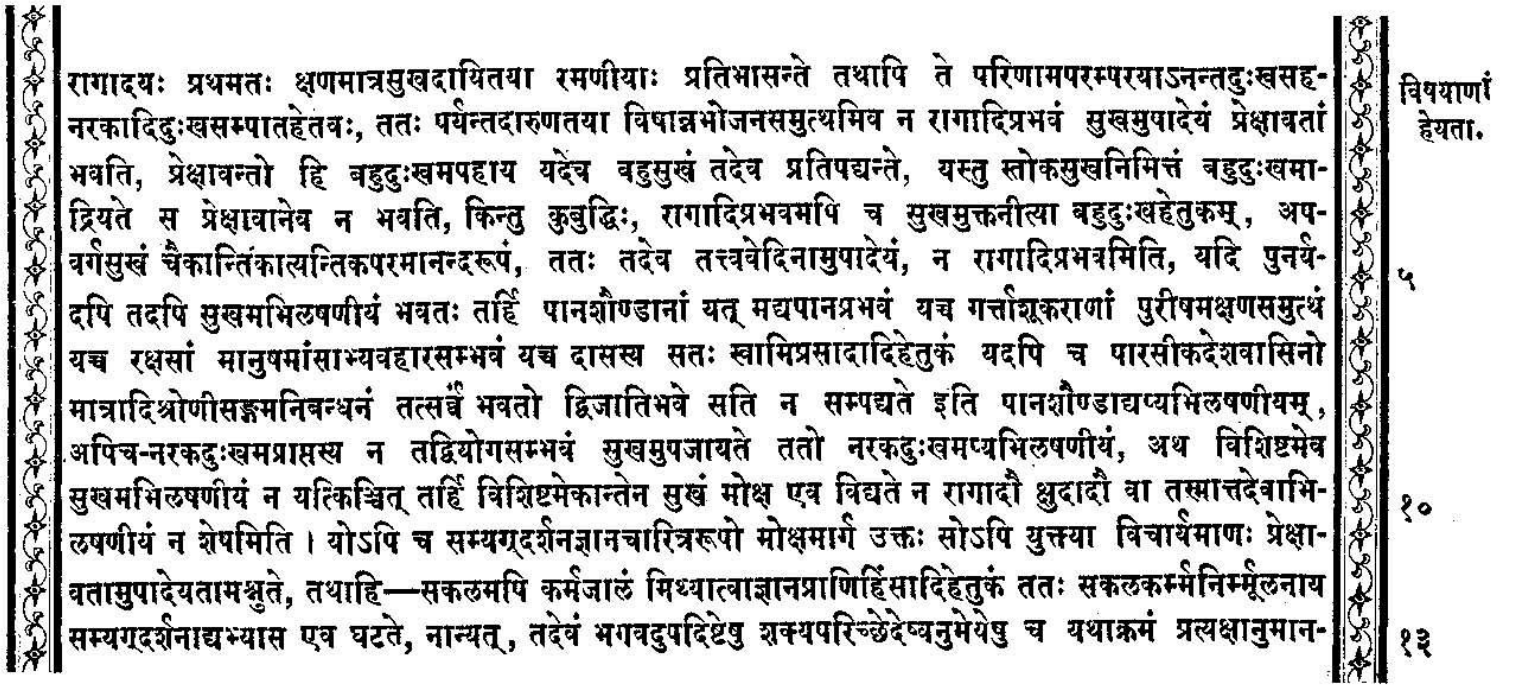
ततोऽवश्यं परान् प्रतिपादयता भगवता परैः शक्यपरिच्छेदमप्युपदेष्टव्यं, शक्यपरिच्छेदेषु चार्थेषु भगवदुक्तेषु यत्तथा-
प्रमाणेन संवेदनं तत्तद्विषयं साधकं प्रमाणमुच्यते, विपरीतं तु बाधकं, अस्ति च भगवदुक्तेषु शक्यपरिच्छेदेष्वर्थेषु प्र-
मासंवादः, तथाहि–घटादयः पदार्था अनेकान्तात्मका उक्ताः, ते च तथैव प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा निश्चीयन्ते,
मोक्षोऽपि च परमानन्दरूपशाश्वतिकसौख्यात्मक उक्तः, ततः सोऽपि युक्त्या सङ्गतिमुपपद्यते, यतः संसारप्रतिपक्षभूतो
मोक्षः संसारे जन्मजरामरणादिदुःखहेतवो रागादयः ते च निर्मूलमपगता मोक्षावस्थायामिति न मोक्षे दुःखलेश-
स्यापि सम्भवः, न च निर्मूलमपगता रागादयो भूयोऽपि जायन्ते, ततः तत्सौख्यं शाश्वतिकमुपवर्ण्यते, ननु यदि
न तत्र रागादयस्तर्हि न तत्र मत्तकामिनीगाढालिङ्गनपीनस्तनापीडनवदनचुम्बनकराघातादिप्रभवं रागनिबन्धनं सुखं
नापि द्वेषनिबन्धनं प्रबलवैरितिरस्कारापादनप्रभवं नापि मोहनिबन्धनमहङ्कारसमुत्थमात्मीयविनीतपुत्रभ्रातृप्रभृ-
तिबन्धुवर्गसहवाससम्भवं च, ततः कथमिव स मोक्षो जन्मिनामुपादेयो भवति ?, आह च–"वीतरागस्य न सुखं,
योषिदालिङ्गनादिजम् । वीतद्वेषस्य च कुतः, शत्रुसेनाविमर्दजम् ? ॥ १ ॥ वीतमोहस्य न सुखमात्मीयाभिनिवेशजम् ।
ततः किं तादृशा तेन, कृत्यं मोक्षेण जन्मिनाम् ? ॥२॥" अपि च–क्षुदादयोऽपि तत्र सर्वथा निवृत्ता इष्यन्ते, ततो-
ऽत्यन्तबुभुक्षाक्षामकुक्षेर्यद् विशिष्टाहारभोजनेन यद्वा ग्रीष्मादौ पिपासापीडितस्य पाटलाकुसुमादिवासितसुगन्धि-
शीतसलिलपानेनोपजायते सुखं तदपि तत्र दूरतोऽपास्तप्रसरमिति किं कार्यं तेन, तदेतदतीवासमीचीनं, यतो यद्यपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||३||

दीप अनुक्रम [३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



रागादयः प्रथमतः क्षणमात्रसुखदायितया रमणीयाः प्रतिभासन्ते तथापि ते परिणामपरम्परयाऽनन्तदुःखसह- विषयाणां
नरकादिदुःखसम्पातहेतवः, ततः पर्यन्तदारुणतया विषान्नभोजनसमुत्थमिव न रागादिप्रभवं सुखमुपादेयं प्रेक्षावतां हेयता.
भवति, प्रेक्षावन्तो हि बहुदुःखमपहाय यदेव बहुसुखं तदेव प्रतिपद्यन्ते, यस्तु स्तोकसुखनिमित्तं बहुदुःखमा-
द्रियते स प्रेक्षावानेव न भवति, किन्तु कुबुद्धिः, रागादिप्रभवमपि च सुखमुक्तनीत्या बहुदुःखहेतुकम्, अप-
वर्गसुखं चैकान्तिकात्यन्तिकपरमानन्दरूपं, ततः तदेव तत्त्ववेदिनामुपादेयं, न रागादिप्रभवमिति, यदि पुनर्य- ५
दपि तदपि सुखमभिलषणीयं भवतः तर्हि पानशौण्डानां यत् मद्यपानप्रभवं यच्च गर्त्ताशूकराणां पुरीषमक्षणसमुत्थं
यच्च रक्षसां मानुषमांसाभ्यवहारसम्भवं यच्च दासस्य सतः स्वामिप्रसादादिहेतुकं यदपि च पारसीकदेशवासिनो
मात्रादिश्रोणीसङ्गमनिबन्धनं तत्सर्वं भवतो द्विजातिभवे सति न सम्पद्यते इति पानशौण्डाद्यप्यभिलषणीयम्,
अपिच-नरकदुःखमप्राप्तस्य न तद्वियोगसम्भवं सुखमुपजायते ततो नरकदुःखमप्यभिलषणीयं, अथ विशिष्टमेव
सुखमभिलषणीयं न यत्किञ्चित् तर्हि विशिष्टमेकान्तेन सुखं मोक्ष एव विद्यते न रागादौ क्षुदादौ वा तस्मात्तदेवाभि- १०
लषणीयं न शेषमिति । योऽपि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपो मोक्षमार्ग उक्तः सोऽपि युक्त्या विचार्यमाणः प्रेक्षा-
वतामुपादेयतामश्नुते, तथाहि—सकलमपि कर्मजालं मिथ्यात्वाज्ञानप्राणिहिंसादिहेतुकं ततः सकलकर्म्मनिर्म्मूलनाय
सम्यग्दर्शनाद्यभ्यास एव घटते, नान्यत्, तदेवं भगवदुपदिष्टेषु शक्यपरिच्छेदेष्वनुमेयेषु च यथाक्रमं प्रत्यक्षानुमान- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

संवाददर्शनात् मोक्षादिषु च युक्त्योपपद्यमानत्वाद्भगवानेव सर्वज्ञो न सुगतादिरिति स्थितम् ॥ तथा 'भद्रं जिनस्य वीरस्य' जयति रागादिशत्रुगणमिति जिनः, औणादिको नक्प्रत्ययः, तस्य भद्रं भवतु, अनेनापायातिशयमाह, अपायो-विश्लेषः तस्यातिशयः–प्रकर्षभावोऽपायातिशयो, रागादिभिः सहात्यन्तिको वियोग इत्यर्थः, ननु रागादिभिः सहात्यन्तिको वियोगोऽसम्भवी, प्रमाणबाधनात्, तच्च प्रमाणमिदं-यदनादिमत् न तद्विनाशमाविशति, यथाऽऽकाशं, अनादिमन्तश्च रागादय इति, किञ्च-रागादयो धर्माः, ते च धर्मिणो भिन्ना अभिन्ना वा ?, यदि भिन्नाः तर्हि सर्वेषामविशेषेण वीतरागत्वप्रसङ्गः, रागादिभ्यो भिन्नत्वाद्, विवक्षितपुरुषवत्, अथाभिन्नाः तर्हि तत्क्षये धर्मिणोऽप्यात्मनः क्षयः, तदभिन्नत्वात्, तत्स्वरूपवत्, तथा च कुतस्तस्य वीतरागत्वं ?, तस्यैवाभावादिति, अत्रोच्यते, इह यद्यपि रागादयो दोषा जन्तोरनादिमन्तः तथापि कस्यचित् स्त्रीशरीरादिषु यथावस्थितवस्तुतत्त्वावगमेन तेषां रागादीनां प्रतिपक्षभावनातः प्रतिक्षणमपचयो दृश्यते, ततः सम्भाव्यते विशिष्टकालादिसामग्रीसद्भावे भावनाप्रकर्षविशेषभावतो निर्मूलमपि क्षयः, अथ यद्यपि प्रतिपक्षभावनातः प्रतिक्षणमपचयो दृष्टस्तथापि तेषामात्यन्तिकोऽपि क्षयः सम्भवतीति कथमवसेयम् ?, उच्यते, अन्यत्र तथाविधप्रतिबन्धग्रहणात्, तथाहि—शीतस्पर्शसम्पाद्या रोमहर्षादयः शीतप्रतिपक्षस्य वह्नेर्मन्दतायां मन्दा उपलब्धाः उत्कर्षे च निरन्वयविनाशधर्माणः, ततोऽन्यत्रापि बाधकस्य मन्दतायां बाध्यस्य मन्दतादर्शनाद् बाधकोत्कर्षेऽवश्यं बाध्यस्य निरन्वयविनाशो वेदितव्यः, अन्यथा बाधकमन्दतायां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

मन्दताऽपि न स्यात्, अथास्ति ज्ञानस्य ज्ञानावरणीयं कर्म बाधकं, ज्ञानावरणीयकर्ममन्दतायां च ज्ञानस्यापि मनाक् मन्दता, अथ च प्रबलज्ञानावरणीयकर्मोदयोत्कर्षेऽपि न ज्ञानस्य निरन्वयो विनाशः, एवं प्रतिपक्षभावनोत्कर्षेऽपि न रागादीनामत्यन्ततयोच्छेदो भविष्यतीति, तदयुक्तम्, द्विविधं हि बाध्यं–सहभूस्वभावभूतं सहकारिसम्पाद्यस्वभावभूतं च, तत्र यत्सहभूस्वभावभूतं तन्न कदाचिदपि निरन्वयं विनाशमाविशति, ज्ञानं चात्मनः सहभूस्वभावभूतम्, आत्मा च परिणामिनित्यः, ततोऽत्यन्तप्रकर्षवत्यपि ज्ञानावरणीयकर्म्मोदये न निरन्वयविनाशो ज्ञानस्य, रागादयस्तु लोभादिकर्मविपाकोदयसम्पादितसत्ताकाः, ततः कर्मणो निर्मूलापगमे तेऽपि निर्मूलमपगच्छन्ति, नन्वासतां कर्मसम्पाद्या रागादयः तथापि कर्मनिवृत्तौ ते निवर्त्तन्ते इति नावश्यं नियमो, न हि दहननिवृत्तौ तत्कृता काष्ठेऽङ्गारता निवर्त्तते, तदसत्, यत इह किञ्चित् कचिन्निवर्त्त्यं विकारमापादयति, यथाऽग्निः सुवर्णे द्रवतां, तथाहि–अग्निनिवृत्तौ तत्कृता सुवर्णे द्रवता निवर्त्तते, किञ्चित्पुनः क्वचिदनिवर्त्त्यविकारारम्भकं, यथा स एवाग्निः काष्ठे, न खलु श्यामतामात्रमपि काष्ठे दहनकृतं तन्निवृत्तौ निवर्त्तते, कर्म चात्मनि निवर्त्त्यविकारारम्भकं, यदि पुनरनिवर्त्त्यविकारारम्भकं भवेत्तर्हि यदपि तदपि कर्म्मणा कृतं न कर्मनिवृत्तौ निवर्त्तेत, यथाऽग्निना श्यामतामात्रमपि काष्ठकृतमग्निनिवृत्तौ, ततश्च यदेकदा कर्म्मणाऽऽपादितं मनुष्यत्वममरत्वं कृमिकीटत्वं अज्ञत्वं शिरोवेदनादि तत्सर्वकालं तथैवावतिष्ठेत, न चैतदृश्यते, तस्मान्निवर्त्त्यविकारारम्भकं कर्म्म, ततः कर्म्मनिवृत्तौ रागादी-

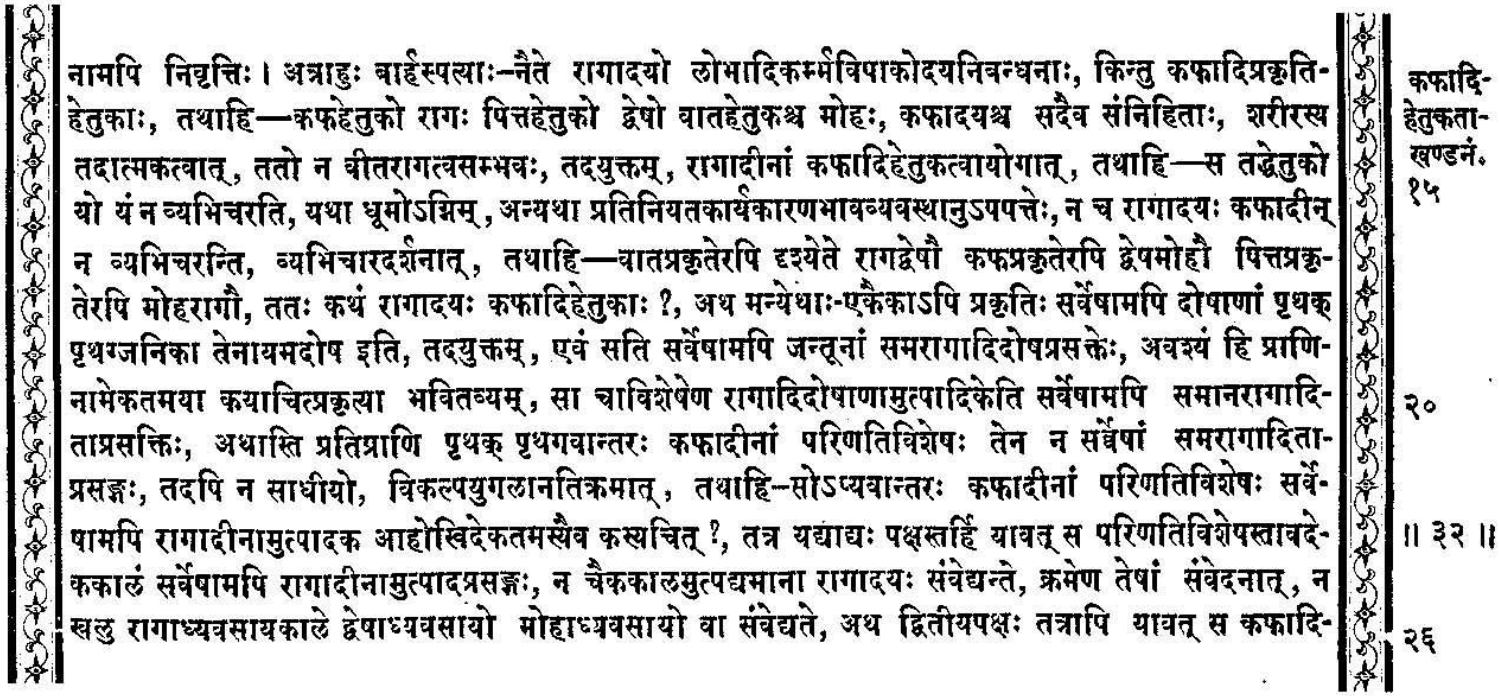
ज्ञानस्य सहभूस्वभावता.

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

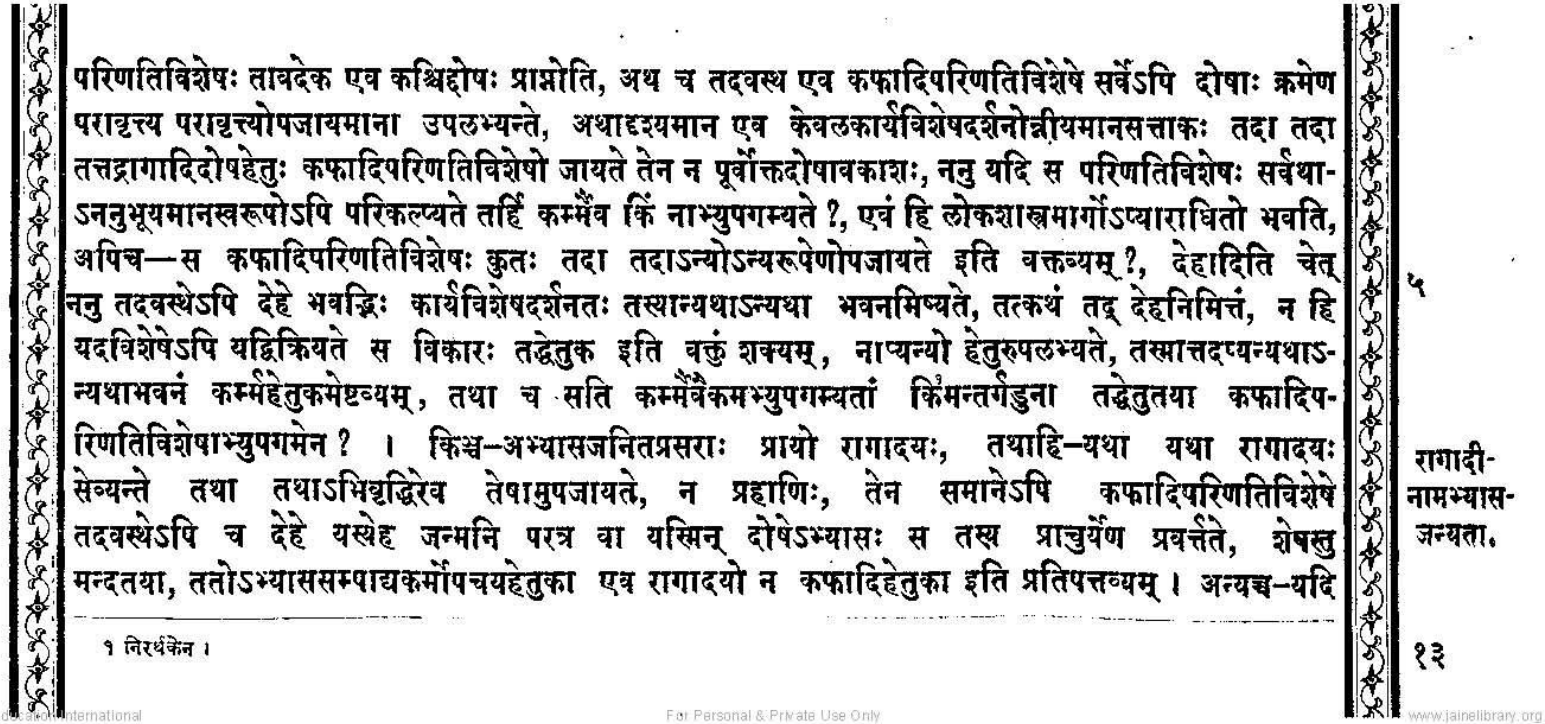


श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ३२ ॥

नामपि निवृत्तिः। अत्राहुः बार्हस्पत्याः–नैते रागादयो लोभादिकर्म्मविपाकोदयनिबन्धनाः, किन्तु कफादिप्रकृतिहेतुकाः, तथाहि—कफहेतुको रागः पित्तहेतुको द्वेषो वातहेतुकश्च मोहः, कफादयश्च सदैव संनिहिताः, शरीरस्य तदात्मकत्वात्, ततो न वीतरागत्वसम्भवः, तदयुक्तम्, रागादीनां कफादिहेतुकत्वायोगात्, तथाहि—स तद्धेतुको यो यं न व्यभिचरति, यथा धूमोऽग्निम्, अन्यथा प्रतिनियतकार्यकारणभावव्यवस्थानुऽपपत्तेः, न च रागादयः कफादीन् न व्यभिचरन्ति, व्यभिचारदर्शनात्, तथाहि—वातप्रकृतेरपि दृश्येते रागद्वेषौ कफप्रकृतेरपि द्वेषमोहौ पित्तप्रकृतेरपि मोहरागौ, ततः कथं रागादयः कफादिहेतुकाः ?, अथ मन्येथाः-एकैकाऽपि प्रकृतिः सर्वेषामपि दोषाणां पृथक् पृथग्जनिका तेनायमदोष इति, तदयुक्तम्, एवं सति सर्वेषामपि जन्तूनां समरागादिदोषप्रसक्तेः, अवश्यं हि प्राणिनामेकतमया कयाचित्प्रकृत्या भवितव्यम्, सा चाविशेषेण रागादिदोषाणामुत्पादिकेति सर्वेषामपि समानरागादिताप्रसक्तिः, अथास्ति प्रतिप्राणि पृथक् पृथगवान्तरः कफादीनां परिणतिविशेषः तेन न सर्वेषां समरागादिताप्रसङ्गः, तदपि न साधीयो, विकल्पयुगलानतिक्रमात्, तथाहि–सोऽप्यवान्तरः कफादीनां परिणतिविशेषः सर्वेषामपि रागादीनामुत्पादक आहोस्विदेकतमस्यैव कस्यचित् ?, तत्र यद्याद्यः पक्षस्तर्हि यावत् स परिणतिविशेषस्तावदेककालं सर्वेषामपि रागादीनामुत्पादप्रसङ्गः, न चैककालमुत्पद्यमाना रागादयः संवेद्यन्ते, क्रमेण तेषां संवेदनात्, न खलु रागाध्यवसायकाले द्वेषाध्यवसायो मोहाध्यवसायो वा संवेद्यते, अथ द्वितीयपक्षः तत्रापि यावत् स कफादि-

कफादि-हेतुकता-खण्डनं. १५ २० ॥ ३२ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



परिणतिविशेषः तावदेक एव कश्चिद्दोषः प्राप्नोति, अथ च तदवस्थ एव कफादिपरिणतिविशेषे सर्वेऽपि दोषाः क्रमेण परावृत्त्य परावृत्त्योपजायमाना उपलभ्यन्ते, अथादृश्यमान एव केवलकार्यविशेषदर्शनोन्नीयमानसत्ताकः तदा तदा तत्तद्रागादिदोषहेतुः कफादिपरिणतिविशेषो जायते तेन न पूर्वोक्तदोषावकाशः, ननु यदि स परिणतिविशेषः सर्वथाऽननुभूयमानस्वरूपोऽपि परिकल्प्यते तर्हि कर्म्मैव किं नाभ्युपगम्यते ?, एवं हि लोकशास्त्रमार्गोऽप्याराधितो भवति, अपिच—स कफादिपरिणतिविशेषः कुतः तदा तदाऽन्योऽन्यरूपेणोपजायते इति वक्तव्यम् ?, देहादिति चेत् ननु तदवस्थेऽपि देहे भवद्भिः कार्यविशेषदर्शनतः तस्यान्यथाऽन्यथा भवनमिष्यते, तत्कथं तद् देहनिमित्तं, न हि यदविशेषेऽपि यद्विक्रियते स विकारः तद्धेतुक इति वक्तुं शक्यम्, नाप्यन्यो हेतुरुपलभ्यते, तस्मात्तदप्यन्यथाऽन्यथाभवनं कर्म्महेतुकमेष्टव्यम्, तथा च सति कर्म्मैवैकमभ्युपगम्यतां किमन्तर्गडुना तद्धेतुतया कफादिपरिणतिविशेषाभ्युपगमेन ? । किञ्च–अभ्यासजनितप्रसराः प्रायो रागादयः, तथाहि–यथा यथा रागादयः सेव्यन्ते तथा तथाऽभिवृद्धिरेव तेषामुपजायते, न प्रहाणिः, तेन समानेऽपि कफादिपरिणतिविशेषे तदवस्थेऽपि च देहे यस्येह जन्मनि परत्र वा यस्मिन् दोषेऽभ्यासः स तस्य प्राचुर्येण प्रवर्त्तते, शेषस्तु मन्दतया, ततोऽभ्यासस्सम्पाद्यकर्मोपचयहेतुका एव रागादयो न कफादिहेतुका इति प्रतिपत्तव्यम् । अन्यच्च–यदि

५

रागादीनामभ्यासजन्यता.

१३

१ निरर्थकेन ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कफहेतुको रागः स्यात् ततः कफवृद्धौ रागवृद्धिर्भवेत्, पित्तप्रकर्षे तापप्रकर्षवत्, न च भवति, तदुत्कर्षोत्थपीडाबाधिततया द्वेषस्यैव दर्शनात्, अथ पक्षान्तरं गृह्णीथा यदुत न कफहेतुको रागः किन्तु कफादिदोषसाम्यहेतुकः, तथाहि–कफादिदोषसाम्ये विरुद्धव्याध्यभावतो रागोद्भवो दृश्यते इति, तदपि न समीचीनं, व्यभिचारदर्शनात्, न हि यावत् कफादिदोषसाम्यं तावत् सर्वदैव रागोद्भवोऽनुभूयते, द्वेषाद्युद्भवस्याप्यनुभवात्, न च यद्भावेऽपि यन्न भवति तत्तद्धेतुकं सचेतसा वक्तुं शक्यम्। अपिच–एवमभ्युपगमे ये विषमदोषास्ते रागिणो न प्राप्नुवन्ति, अथ च तेऽपि रागिणो दृश्यन्ते। स्यादेतद्–अलं चसूर्या, तत्त्वं निर्वेच्मि–शुक्रोपचयहेतुको रागो नान्यहेतुक इति, तदपि न युक्तम्, एवं ह्यत्यन्तस्त्रीसेवापरतया शुक्रक्षयतः क्षरत्क्षतजानां रागिता न स्याद्, अथ चैतेऽपि तस्यामप्यवस्थायां निकामं रागिणो दृश्यन्ते, किञ्च–यदि शुक्रस्य रागहेतुता तर्हि तस्य सर्वस्त्रीषु साधारणत्वान्नैकस्त्रीनियतो रागः कस्यापि भवेत्, दृश्यते च कस्याप्येकस्त्रीनियतो रागः, अथोच्येत–रूपस्यापि कारणत्वाद्रूपातिशयलुब्धः तस्यामेव रूपवत्यामभिरज्यते, न योषिदन्तरे, उक्तं च—"रूपातिशयपाशेन, विवशीकृतमानसाः। स्वां योषितं परित्यज्य, रमन्ते योषिदन्तरे॥१॥" तदपि न मनोरमं, रूपरहितायामपि क्वापि रागदर्शनात्, अथ तत्रोपचारविशेषः समीचीनो भविष्यति तेन तत्राभिरज्यते, उपचारोऽपि च रागहेतुर्न रूपमेव केवलं तेनायमदोष इति, तदपि

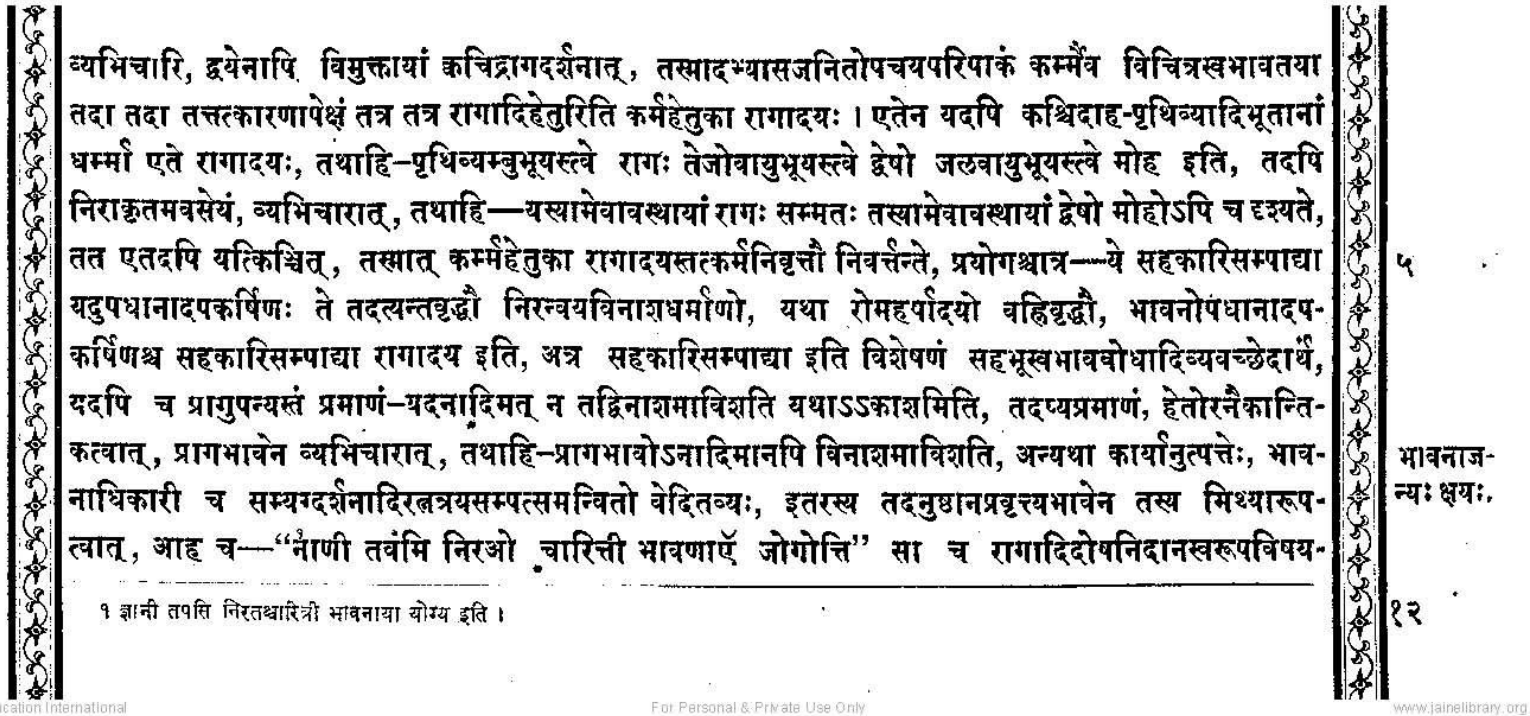
१५

शुक्रहेतुकताखंडनं.

॥ ३३ ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्यभिचारि, द्वयेनापि विमुक्तायां क्वचिद्रागदर्शनात्, तस्मादभ्यासजनितोपचयपरिपाकं कर्म्मैव विचित्रस्वभावतया तदा तदा तत्तत्कारणापेक्षं तत्र तत्र रागादिहेतुरिति कर्महेतुका रागादयः। एतेन यदपि कश्चिदाह-पृथिव्यादिभूतानां धर्म्मा एते रागादयः, तथाहि–पृथिव्यम्बुभूयस्त्वे रागः तेजोवायुभूयस्त्वे द्वेषो जलवायुभूयस्त्वे मोह इति, तदपि निराकृतमवसेयं, व्यभिचारात्, तथाहि—यस्यामेवावस्थायां रागः सम्मतः तस्यामेवावस्थायां द्वेषो मोहोऽपि च दृश्यते, तत एतदपि यत्किञ्चित्, तस्मात् कर्म्महेतुका रागादयस्तत्कर्मनिवृत्तौ निवर्त्तन्ते, प्रयोगश्चात्र—ये सहकारिसम्पाद्या यदुपधानादपकर्षिणः ते तदत्यन्तवृद्धौ निरन्वयविनाशधर्माणो, यथा रोमहर्षादयो वह्निवृद्धौ, भावनोपधानादपकर्षिणश्च सहकारिसम्पाद्या रागादय इति, अत्र सहकारिसम्पाद्या इति विशेषणं सहभूस्वभाववोधादिव्यवच्छेदार्थं, यदपि च प्रागुपन्यस्तं प्रमाणं–यदनादिमत् न तद्विनाशमाविशति यथाऽऽकाशमिति, तदप्यप्रमाणं, हेतोरनैकान्तिकत्वात्, प्रागभावेन व्यभिचारात्, तथाहि–प्रागभावोऽनादिमानपि विनाशमाविशति, अन्यथा कार्यानुत्पत्तेः, भावनाधिकारी च सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयसम्पत्समन्वितो वेदितव्यः, इतरस्य तदनुष्ठानप्रवृत्त्यभावेन तस्य मिथ्यारूपत्वात्, आह च—"नाणी तवंमि निरओ चारित्ती भावणाए जोगोत्ति" सा च रागादिदोषनिदानस्वरूपविषय-

५ भावनाजन्यः क्षयः.

१२

१ ज्ञानी तपसि निरतश्चारित्री भावनाया योग्य इति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फलगोचरा यथाऽऽगममेवमवसेया–"जं कुच्छियाणुयोगो पयइविसुद्धस्स होइ जीवस्स । एएसि मो नियाणं बुहाण न य सुंदरं एयं ॥ १ ॥ रूवंपि संकिलेसोऽभिस्संगो पीइमाइलिङ्गो उ । परमसुहपच्चणीओ एयंपि असोहणं चेव ॥ २ ॥ विसओ य भंगुरो खलु गुणरहिओ तह य तहतहारूवो । संपत्ति निप्फलो केवलं तु मूलं अणत्थाणं ॥ ३ ॥ जम्मजरामरणाईविचित्तरूवो फलं तु संसारो । बुहजणनिवेयकरो एसोऽवि तहाविहो चेव ॥ ४ ॥" अपि च– सूत्रानुसारेण ज्ञानादिषु यो नैरन्तर्येणाभ्यासः तद्रूपाऽपि भावना वेदितव्या, तस्यापि रागादिप्रतिपक्षभूतत्वात्, न हि तत्त्ववृत्त्या सम्यग्ज्ञानाद्यभ्यासे व्यापृतमनस्कस्य स्त्रीशरीररामणीयकादिविषये चेतः प्रवृत्तिमातनोति, तथाऽनुपलम्भात् । शौद्धोदनीयाः पुनरेवमाहुः–नैरात्म्यादिभावना रागादिक्लेशप्रहाणिहेतुः, नैरात्म्यादिभावनायाः सकलरागादिविपक्षभूतत्वात्, तथाहि–नैरात्म्यावगतौ नात्माभिनिवेशः, आत्मनोऽवगमाभावाद्, आत्माभिनिवेशाभावाच्च न पुत्रभ्रातृकलत्रादिष्वात्मीयाभिनिवेशः, आत्मनो हि य उपकारी स आत्मीयो, यश्च प्रतिघातकः स द्वेष्यः, यदा त्वात्मैव न विद्यते किन्तु पूर्वापरक्षणत्रुटितानुसन्धानाः पूर्वपूर्वहेतुप्रतिबद्धा ज्ञानक्षणा एव तथा तथोत्पद्यन्ते तदा कः

१५

नैरात्म्यखंडनं.

॥ ३४ ॥

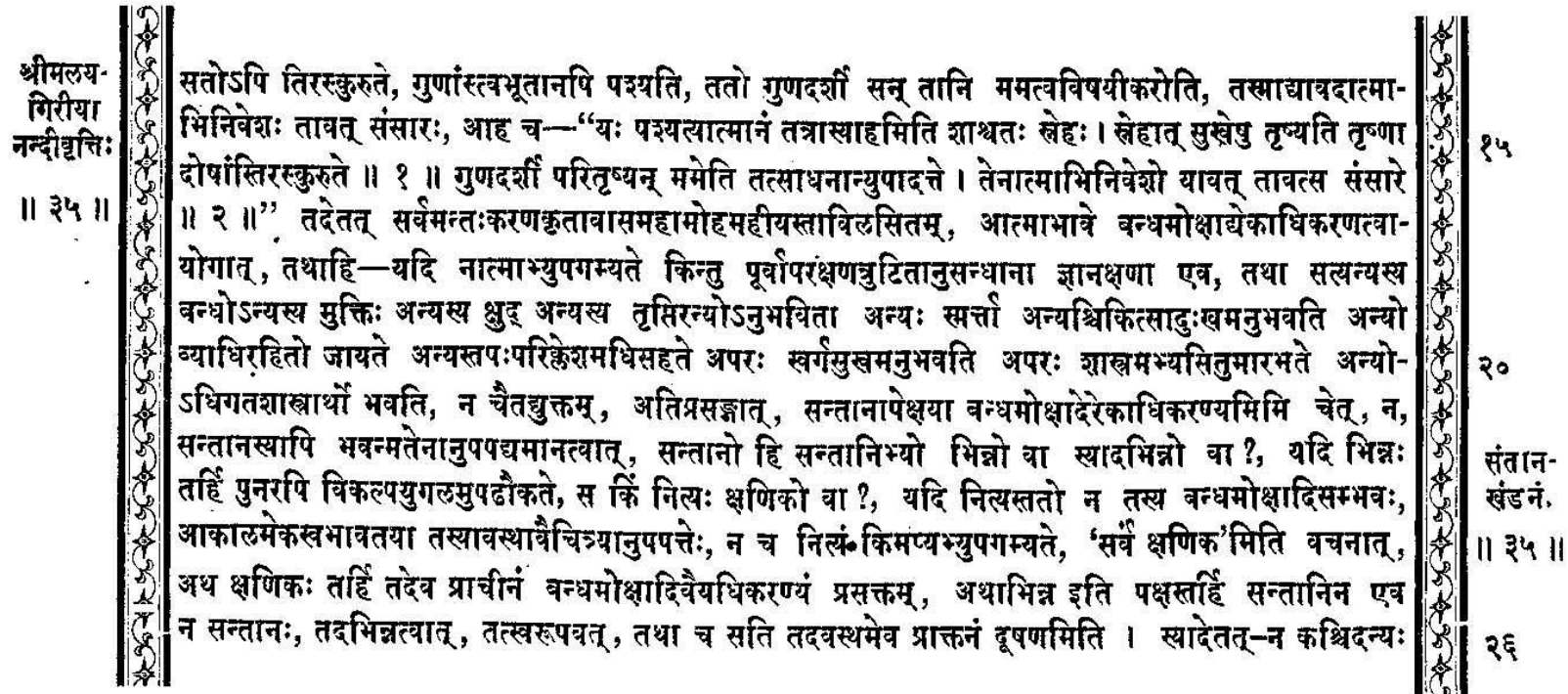
२५

१ यत् कुत्सितेऽनुयोगः प्रकृतिविशुद्धस्य भवति जीवस्य । एतस्य (एतत्) निदानं बुधानां न च सुन्दरमेतत् ॥ १ ॥ रूपमपि संक्लेशः अभिष्वङ्गः प्रीत्यादिलिङ्गस्तु । परमसुखप्रत्यनीक एषोऽप्यशोभन एव ॥ २ ॥ विषया अपि भङ्गुराः खलु गुणरहिताः तथा च तथा तथारूपाः । संप्राप्तिनिष्फलाः केवलं मूलं त्वनर्थानाम् ॥ ३ ॥ जन्मजरामरणादिविचित्ररूपः फलं तु संसारः । बुधजननिर्वेदकर एषोऽपि तथाविध एव ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कस्योपकर्त्ता उपघातको वा?, ज्ञानक्षणानां च क्षणमात्रावस्थायितया परमार्थत उपकर्तुमपकर्तुं वा अशक्यत्वात्, तन्न तत्त्ववेदिनः पुत्रादिष्वात्मीयाभिनिवेशो नापि वैरिषु द्वेषो, यस्तु लोकानामात्मात्मीयाद्यभिनिवेशः सोऽनादिवासना-परिपाकोपनीतो वेदितव्यः, अतत्त्वमूलत्वात्, ननु यदि न परमार्थतः कश्चिदुपकार्योपकारकभावः तर्हि कथ-मुच्यते–भगवान् सुगतः करुणया सकलसत्त्वोपकाराय देशनां कृतवानिति, क्षणिकत्वमपि च यद्येकान्तेन तर्हि तत्त्ववेदी क्षणानन्तरं विनष्टः सन् न कदाचनाप्येवं भूयो भविष्यामीति जानानः किमर्थं मोक्षाय यत्नमारभते?, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानात्, भगवान् हि प्राचीनायामवस्थायामवस्थितः सकलमपि जगद् रागद्वेषादिदुःखसङ्कलमभिजानानः कथमिदं सकलमपि जगत् मया दुःखादुद्धर्त्तव्यमिति समुत्पन्नकृपाविशेषो नैरा-त्म्यक्षणिकत्वादिकमवगच्छन्नपि तेषामुपकार्यसत्त्वानां निःक्लेशक्षणोत्पादनाय प्रजाहितो राजेव स्वसन्ततिशुद्धौ सक-लजगत्साक्षात्करणसमर्थः स्वसन्ततिगतविशिष्टक्षणोत्पत्तये यत्नमारभते, सकलजगत्साक्षात्कारमन्तरेण सर्वेषामक्षण-विधानमुपकर्तुमशक्यत्वात्, ततः समुत्पन्नकेवलज्ञानः पूर्वाहितकृपाविशेषसंस्कारवशात् कृतार्थोऽपि देशनायां प्रवर्त्तते इति, तदेवं श्रुतमप्यात्मप्रज्ञया निर्दोषं नैरात्म्यादि वस्तुतत्त्वं परिभाव्य भावतः तथैव भावयतो जन्तोर्भावनाप्रकर्ष-विशेषतो वैराग्यमुपजायते, ततो मुक्तिलाभः, यस्त्वात्मानमभिमन्यते न तस्य मुक्तिसम्भवो, यत आत्मनि परमा-र्थतया विद्यमाने तत्र स्नेहः प्रवर्त्तते, तत्स्नेहवशाच्च तत्सुखेषु परितर्षवान् भवति, तृष्णावशाच्च सुखसाधनेषु दोषान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ३५ ॥

सतोऽपि तिरस्कुरुते, गुणांस्त्वभूतानपि पश्यति, ततो गुणदर्शी सन् तानि ममत्वविषयीकरोति, तस्माद्यावदात्माभिनिवेशः तावत् संसारः, आह च—"यः पश्यत्यात्मानं तत्रास्माहमिति शाश्वतः स्नेहः। स्नेहात् सुखेषु तृष्यति तृष्णा दोषांस्तिरस्कुरुते ॥ १ ॥ गुणदर्शी परितृष्यन् ममेति तत्साधनान्युपादत्ते। तेनात्माभिनिवेशो यावत् तावत्स संसारे ॥ २ ॥" तदेतत् सर्वमन्तःकरणकृतावासमहामोहमहीयस्ताविलसितम्, आत्माभावे बन्धमोक्षाद्येकाधिकरणत्वायोगात्, तथाहि—यदि नात्माभ्युपगम्यते किन्तु पूर्वापरक्षणवृटितानुसन्धाना ज्ञानक्षणा एव, तथा सत्यन्यस्य बन्धोऽन्यस्य मुक्तिः अन्यस्य क्षुद् अन्यस्य तृप्तिरन्योऽनुभविता अन्यः स्मर्त्ता अन्यश्चिकित्सादुःखमनुभवति अन्यो व्याधिरहितो जायते अन्यस्तपःपरिक्लेशमधिसहते अपरः स्वर्गसुखमनुभवति अपरः शास्त्रमभ्यसितुमारभते अन्योऽधिगतशास्त्रार्थो भवति, न चैतद्युक्तम्, अतिप्रसङ्गात्, सन्तानापेक्षया बन्धमोक्षादेरेकाधिकरण्यमिमि चेत्, न, सन्तानस्यापि भवन्मतेनानुपपद्यमानत्वात्, सन्तानो हि सन्तानिभ्यो भिन्नो वा स्यादभिन्नो वा ?, यदि भिन्नः तर्हि पुनरपि विकल्पयुगलमुपढौकते, स किं नित्यः क्षणिको वा ?, यदि नित्यस्ततो न तस्य बन्धमोक्षादिसम्भवः, आकालमेकस्वभावतया तस्यावस्थावैचित्र्यानुपपत्तेः, न च नित्यं किमप्यभ्युपगम्यते, 'सर्वं क्षणिक'मिति वचनात्, अथ क्षणिकः तर्हि तदेव प्राचीनं बन्धमोक्षादिवैयधिकरण्यं प्रसक्तम्, अथाभिन्न इति पक्षस्तर्हि सन्तानिन एव न सन्तानः, तदभिन्नत्वात्, तत्स्वरूपवत्, तथा च सति तदवस्थमेव प्राक्तनं दूषणमिति। स्यादेतत्—न कश्चिदन्यः

१५ २० संतान-खंडनं. ॥ ३५ ॥ २६

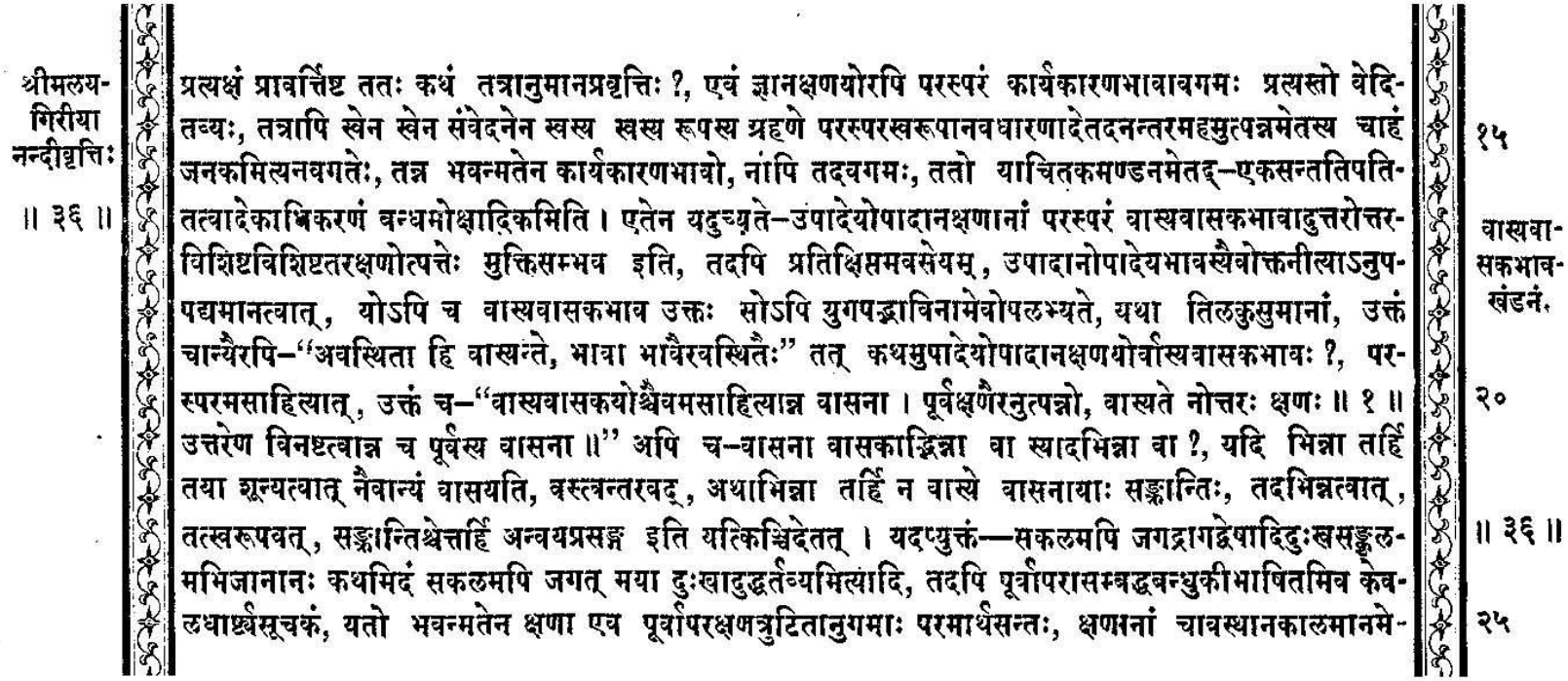
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

क्षणेभ्यः सन्तानः, किन्तु य एव कार्यकारणभावप्रबन्धेन क्षणानां भावः स एव सन्तानः; ततो न कश्चिद्दोषः, तदप्ययुक्तम्, भवन्मते कार्यकारणभावस्याप्यघटमानत्वात्, तथाहि—प्रतीत्यसमुत्पादमात्रं कार्यकारणभावः, ततो यथा विवक्षितघटक्षणानन्तरं घटक्षणः तथा पटादिक्षणोऽपि, यथा च घटक्षणात् प्रागनन्तरो विवक्षितो घटक्षणः तथा पटादिक्षणा अपि, ततः कथं प्रतिनियतकार्यकारणभावावगमः ?, किञ्च—कारणादुपजायमानं कार्यं सतो वा जायेत असतो वा ?, यदि सतः तर्हि कार्योत्पत्तिकालेऽपि कारणं सदिति कार्यकारणयोः समकालताप्रसङ्गः, न च समकालयोः कार्यकारणभाव इष्यते, मात्रपत्याद्यविशेषाद्, घटपटादीनामपि परस्परं कार्यकारणभावप्रसङ्गः, अथासत इति पक्षः, तदप्ययुक्तम्, असतः कार्योत्पादायोगाद्, अन्यथा खरविषाणादपि तदुत्पत्तिप्रसक्तेः, न चात्यन्ताभावप्रध्वंसाभावयोः कोऽपि विशेषः, उभयत्रापि वस्तुसत्त्वाभावात्, प्रध्वंसाभावे वस्त्वासीत् तेन हेतुरिति चेत् यदाऽऽसीत् तदा न हेतुः अन्यदा च हेतुरिति साध्वी तत्त्वव्यवस्थितिः, अन्यच्च—तद्भावे भाव इत्यवगमे कार्यकारणभावावगमः, स च तद्भावे भावः किं प्रत्यक्षेण प्रतीयते उतानुमानेन ?, न तावत्प्रत्यक्षेण, पूर्ववस्तुगतेन हि प्रत्यक्षेण पूर्वं वस्तु परिच्छिन्नमुत्तरवस्तुगतेन तूत्तरं, न चैते परस्परस्वरूपमवगच्छतो, नाप्यन्योऽनुसन्धाता कश्चिदेकोऽभ्युपगम्यते, तत एतदनन्तरमेतस्य भाव इति कथमवगमः ?, नाप्यनुमानेन, तस्य प्रत्यक्षपूर्वकत्वात्, तद्धि लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणपूर्वकं प्रवर्त्तते, लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धश्च प्रत्यक्षेण ग्राह्यो नानुमानेन, अनुमानेन ग्रहणेऽनवस्थाप्रसक्तेः, न च कार्यकारणभावविषये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ३६ ॥

प्रत्यक्षं प्रावर्त्तिष्ट ततः कथं तत्रानुमानप्रवृत्तिः ?, एवं ज्ञानक्षणयोरपि परस्परं कार्यकारणभावावगमः प्रत्यक्षो वेदितव्यः, तत्रापि स्वेन स्वेन संवेदनेन स्वस्य स्वस्य रूपस्य ग्रहणे परस्परस्वरूपानवधारणादेतदनन्तरमहमुत्पन्नमेतस्य चाहं जनकमित्यनवगतेः, तन्न भवन्मतेन कार्यकारणभावो, नापि तदवगमः, ततो याचितकमण्डनमेतद्–एकसन्ततिपतितत्वादेकाभिकरणं बन्धमोक्षादिकमिति । एतेन यदुच्यते–उपादेयोपादानक्षणानां परस्परं वास्यवासकभावादुत्तरोत्तरविशिष्टविशिष्टतरक्षणोत्पत्तेः मुक्तिसम्भव इति, तदपि प्रतिक्षिप्तमवसेयम्, उपादानोपादेयभावस्यैवोक्तनीत्याऽनुपपद्यमानत्वात्, योऽपि च वास्यवासकभाव उक्तः सोऽपि युगपद्भाविनामेवोपलभ्यते, यथा तिलकुसुमानां, उक्तं चान्यैरपि–"अवस्थिता हि वास्यन्ते, भावा भावैरवस्थितैः" तत् कथमुपादेयोपादानक्षणयोर्वास्यवासकभावः ?, परस्परमसाहित्यात्, उक्तं च–"वास्यवासकयोश्चैवमसाहित्यान्न वासना । पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तरः क्षणः ॥ १ ॥ उत्तरेण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥" अपि च–वासना वासकाद्भिन्ना वा स्यादभिन्ना वा ?, यदि भिन्ना तर्हि तया शून्यत्वात् नैवान्यं वासयति, वस्त्वन्तरवद्, अथाभिन्ना तर्हि न वास्ये वासनायाः सङ्क्रान्तिः, तदभिन्नत्वात्, तत्स्वरूपवत्, सङ्क्रान्तिश्चेत्तर्हि अन्वयप्रसङ्ग इति यत्किञ्चिदेतत् । यदप्युक्तं—सकलमपि जगद्रागद्वेषादिदुःखसङ्कुलमभिजानानः कथमिदं सकलमपि जगत् मया दुःखादुद्धर्तव्यमित्यादि, तदपि पूर्वापरासम्बद्धबन्धुकीभाषितमिव केवलधार्ष्ट्यसूचकं, यतो भवन्मतेन क्षणा एव पूर्वापरक्षणत्रुटितानुगमाः परमार्थसन्तः, क्षणानां चावस्थानकालमानमे-

१५

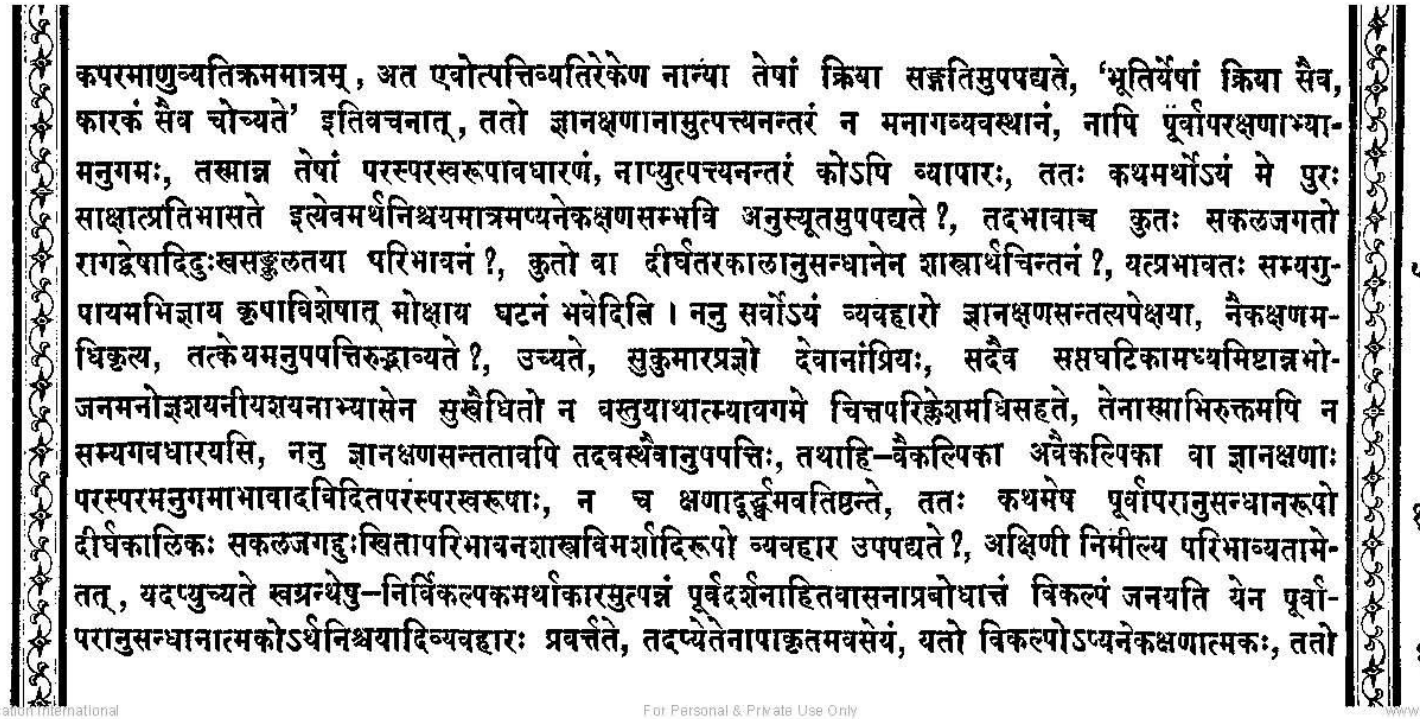
वास्यवासकभावखंडनं.

२०

॥ ३६ ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कपरमाणुव्यतिक्रममात्रम्, अत एवोत्पत्तिव्यतिरेकेण नान्या तेषां क्रिया सङ्गतिमुपपद्यते, 'भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते' इतिवचनात्, ततो ज्ञानक्षणानामुत्पत्त्यनन्तरं न मनागव्यवस्थानं, नापि पूर्वापरक्षणाभ्यामनुगमः, तस्मान्न तेषां परस्परस्वरूपावधारणं, नाप्युत्पत्त्यनन्तरं कोऽपि व्यापारः, ततः कथमर्थोऽयं मे पुरः साक्षात्प्रतिभासते इत्येवमर्थनिश्चयमात्रमप्यनेकक्षणसम्भवि अनुस्यूतमुपपद्यते ?, तदभावाच्च कुतः सकलजगतो रागद्वेषादिदुःखसङ्कुलतया परिभावनं ?, कुतो वा दीर्घतरकालानुसन्धानेन शास्त्रार्थचिन्तनं ?, यत्प्रभावतः सम्यगुपायमभिज्ञाय कृपाविशेषात् मोक्षाय घटनं भवेदिति । ननु सर्वोऽयं व्यवहारो ज्ञानक्षणसन्तत्यपेक्षया, नैकक्षणमधिकृत्य, तत्केयमनुपपत्तिरुद्भाव्यते ?, उच्यते, सुकुमारप्रज्ञो देवानांप्रियः, सदैव सप्तघटिकामध्यमिष्टान्नभोजनमनोज्ञशयनीयशयनाभ्यासेन सुखैधितो न वस्तुयाथात्म्यावगमे चित्तपरिक्लेशमधिसहते, तेनास्माभिरुक्तमपि न सम्यगवधारयसि, ननु ज्ञानक्षणसन्ततावपि तदवस्थैवानुपपत्तिः, तथाहि–वैकल्पिका अवैकल्पिका वा ज्ञानक्षणाः परस्परमनुगमाभावादविदितपरस्परस्वरूपाः, न च क्षणाद्ऊर्द्ध्वमवतिष्ठन्ते, ततः कथमेष पूर्वापरानुसन्धानरूपो दीर्घकालिकः सकलजगद्दुःखितापरिभावनशास्त्रविमर्शादिरूपो व्यवहार उपपद्यते ?, अक्षिणी निमील्य परिभाव्यतामेतत्, यदप्युच्यते स्वग्रन्थेषु–निर्विकल्पकमर्थाकारमुत्पन्नं पूर्वदर्शनाहितवासनाप्रबोधात्तं विकल्पं जनयति येन पूर्वापरानुसन्धानात्मकोऽर्थनिश्चयादिव्यवहारः प्रवर्त्तते, तदप्येतेनापाकृतमवसेयं, यतो विकल्पोऽप्यनेकक्षणात्मकः, ततो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकल्पेऽपि यत्पूर्वक्षणे वृत्तं तदपरक्षणो न वेत्ति, यच्चापरक्षणे वृत्तं न तत्पूर्वक्षणः, ततः कथमेष दीर्घकालिकोऽनुस्यूतैकरूपतया प्रतीयमानोऽर्थनिश्चयादिव्यवहारो घटते ?। अपि च–भवन्मतेन ज्ञानस्यार्थपरिच्छेदव्यवस्थाऽपि नोपपद्यते, अर्थाभावे ज्ञानस्योत्पादाद्, अर्थकार्यतया तस्याभ्युपगमात्, 'नाकारणं विषय' इति वचनात्, न च वाच्यं तत उत्पन्नमिति तस्य परिच्छेदकम्, इन्द्रियस्याप्यर्थवत्परिच्छेदप्रसक्तेः, ततोऽप्युत्पादात्, तदभावेऽभावात्, नापि सारूप्यात्, तस्यापि सर्वदेशविकल्पाभ्यामयोगात्, तथाहि–न सर्वात्मनाऽर्थेन सह सारूप्यं, सर्वात्मनाऽर्थेन सह सारूप्ये ज्ञानस्य जडरूपताप्रसक्तेः, अन्यथा सर्वात्मना सारूप्यायोगात्, नाप्येकदेशेन, सर्वस्य सर्वार्थपरिच्छेदकत्वप्रसङ्गात्, सर्वस्यापि ज्ञानस्य सर्वैरपि वस्तुभिः सह केनचिदंशेनान्ततः प्रमेयत्वादिना सारूप्यसम्भवात्, आह च भवदाचार्योऽपि धर्म्मकीर्त्तिर्ज्ञाननयप्रस्थाने—"सर्वात्मना हि सारूप्ये, ज्ञानमज्ञानतां व्रजेत्। साम्ये केनचिदंशेन, सर्वं सर्वस्य वेदनम् ॥ १ ॥" न च सारूप्यादर्थपरिच्छेदव्यवस्थितावर्थसाक्षात्कारो भवति, परमार्थतोऽर्थस्य परोक्षत्वात्, ततो योऽयं प्रतिप्राणि प्रसिद्धः सकलैरपीन्द्रियैर्यथायोगमर्थसाक्षात्कारो यच्च गुरूपदेशश्रवणं शास्त्रनिरीक्षणं वा यद्दशात्तत्त्वं ज्ञात्वा मोक्षाय प्रवृत्तिः तत्सर्वमेकान्तिकक्षणिकपक्षाभ्युपगमे विरुध्यते, स्यादेतत्–परमार्थत एतदेव, तथाहि—न ज्ञानं कस्यचित् परिच्छेदकम्, उक्तनीत्या ग्राहकत्वायोगात्, नापि तत् कस्यचित्परिच्छेद्यं, तत्रापि ग्राह्यग्राहकत्वायोगात्, ततो ग्राह्यग्राहकाकारातिरिक्तं ज्ञानमेव केवलं स्वसंविदितरूपत्वात् स्वयं प्रकाशते, तेनाद्वैत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेव तत्त्वं, यस्तु तथार्थनिश्चयादिको व्यवहारः सोऽनादिकालसंलीनवासनापरिपाकसम्पादितो द्रष्टव्यः, तदप्ययुक्तम्, वासनाया अपि विचार्यमाणाया अघटमानत्वात्, तथाहि–सा वासना असती सती वा?, न तावदसती, असतः खर-विषाणस्येव सकलोपाख्याविकलतया तथा तथाऽर्थप्रतिभासहेतुत्वायोगाद्, अथ सती तर्हि सा ज्ञानाद् व्यत्यरैक्षीत् न वा?, व्यत्यरैक्षीच्चेदद्वैतहानिः, द्वयस्याभ्युपगमाद्, अपि च–सा ज्ञानाद् व्यतिरिक्ता सती एकरूपा वा स्याद-नेकरूपा वा?, न तावदेकरूपा एकरूपत्वे तस्या नीलपीताद्यनेकप्रतिभासहेतुत्वायोगात्, स्वभावभेदेन विना भिन्न-भिन्नार्थक्रियाकरणविरोधात्, अथानेका तर्हि नामान्तरेणार्थ एव प्रतिपन्नः, तथाहि–सा वासना ज्ञानाद् व्यति-रिक्ता अनेकरूपा च, अर्थोऽप्येवंरूप एवेति, अथाव्यतिरिक्ता साऽपि च पूर्वविज्ञानजनिता विशिष्टज्ञानान्तरोत्पादन-समर्था शक्तिः, आह च प्रज्ञाकरगुप्तः–"वासनेति हि पूर्वविज्ञानजनितां शक्तिमामनन्ति वासनास्वरूपविदः" एवं तर्हि पूर्वपूर्वविज्ञानजनिताः कालभेदेन तत्तद्विशिष्टविशिष्टतरज्ञानोत्पादनसमर्थाः शक्तयोऽनेकाः प्रबन्धेनानुवर्तमानाः तिष्ठन्ति, तत एकस्मिन्नपि ज्ञानक्षणेऽनेका वासनाः सन्ति, शक्तीनामेव वासनात्वेनाभ्युपगमात्, तासां च ज्ञानक्ष-णादव्यतिरेकादेकस्याः प्रबोधे सर्वासामपि प्रबोधः प्राप्नोति, अन्यथाऽव्यतिरेकायोगात्, ततो युगपदनन्तविज्ञाना-नामुदयप्रसङ्गः, स चायुक्तः, प्रत्यक्षबाधितत्वात्। अन्यच्च–ज्ञाने विनश्यति तदव्यतिरेकात्ता अपि निरन्वयमेव विनष्टाः, ततः कथं तत्सामर्थ्यात्कालभेदेन तत्तद्विशिष्टविशिष्टतरज्ञानान्तरप्रसूतिः?, स्यादेतत्–पूर्वमेव विज्ञानं

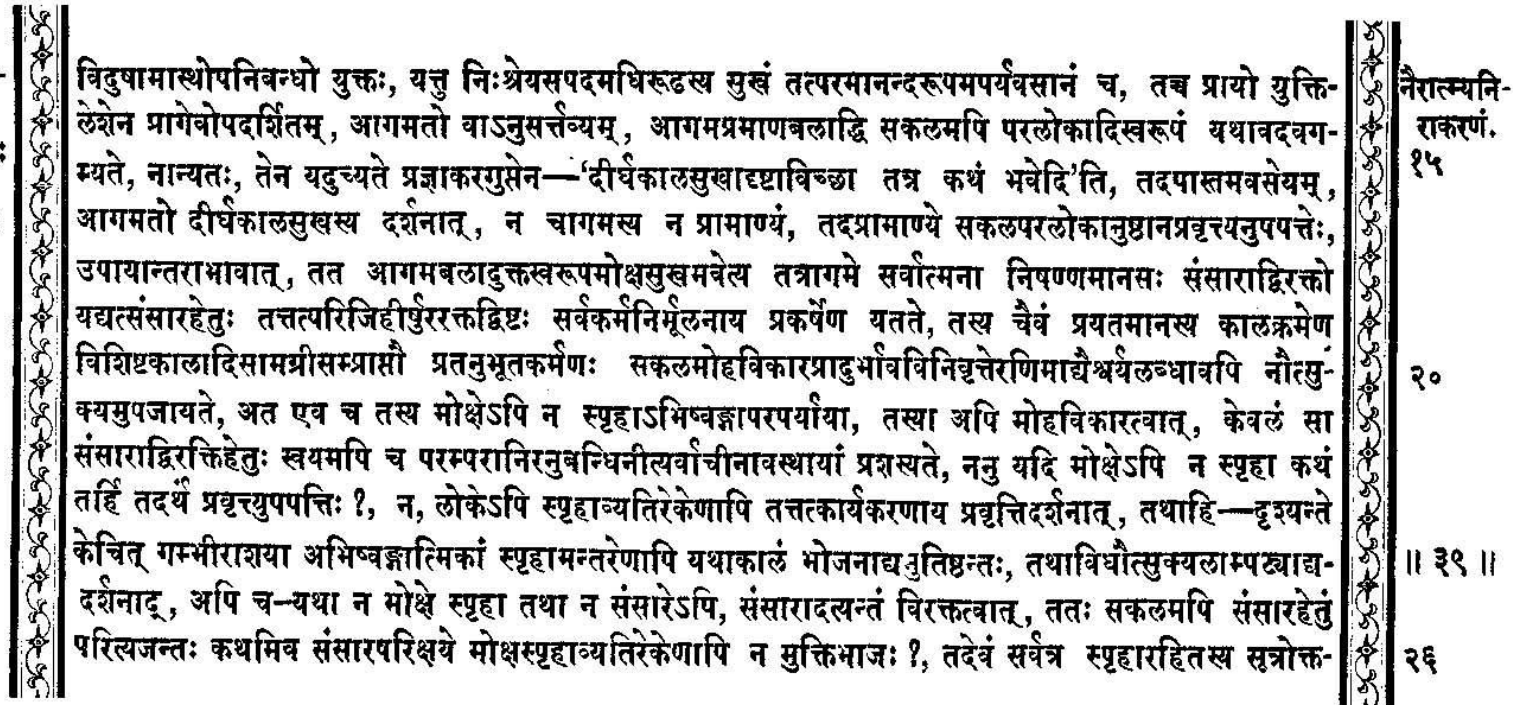
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाटवाधिष्ठितं, वासना तज्जनिता शक्तिः, उक्तदोषप्रसङ्गात्, तच्च पूर्वं विज्ञानं किञ्चिदनन्तरं तथा तथा विशिष्टं ज्ञानं जनयति, किञ्चित् कालान्तरे, यथा जाग्रद्दशाभावि ज्ञानं स्वप्नज्ञानं, न च व्यवहितादुत्पत्तिरसम्भाव्या, दृष्टत्वात्, तथाहि—अनुभवाच्चिरकालातीतादपि स्मृतिरुदयमासादयन्ती दृश्यते, तदप्ययुक्तम्, तत्राप्युक्तदोषानतिक्रमात्, यद्धि पूर्वविज्ञानं निरन्वयमेव विनष्टं न तस्य कोऽपि धर्म्मः क्षणान्तरेऽनुगच्छति, ततः कथं ततोऽनन्तरं कालान्तरे वा विशिष्टं ज्ञानमुदयते ?, एवं हि तन्निर्हेतुकमेव परमार्थतो भवेत्, अथ पूर्वं विज्ञानं प्रतीत्य तदुत्पद्यते तत्कथं तन्निर्हेतुकं ?, क्रीडनशीलो देवानांप्रियो यदेवमेवास्मान् पुनः पुनरायासयति, ननु यदा यत्पूर्वं विज्ञानं न तदा तद्विशिष्टं ज्ञानमुपजायते यदा च तदुपजायते न तदा पूर्वविज्ञानस्य लेशोऽपि तत्कथं तन्न निर्हेतुकम् ?, यदप्युक्तम्—'किञ्चित्कालान्तरे' इति, तदपि न्यायबाह्यं, चिरविनष्टस्य कार्यकरणायोगाद्, अन्यथा चिरविनष्टेऽपि शिखिनि केकायितं भवेत्, ननु चिरविनष्टादप्यनुभवात् स्मृतिरुदयमासादयन्ती दृश्यते, न च दृष्टेऽनुपपन्नता, तद्वत् ज्ञानान्तरमपि भविष्यति को दोषः ?, उच्यते, दृश्यते चिरविनष्टादप्यनुभवात् स्मृतिः, केवलं साऽपि भवन्मते नोपपद्यते, तत्राप्युक्तदोषप्रसङ्गात्, ततोऽयमपरो भवतो दोषः, न च दृष्टमित्येव यथाकथञ्चित्परिकल्पनामधिसहते, किन्तु प्रमाणोपपन्नं, तत्र यथा भवत्परिकल्पना तथा न किमप्युपपद्यते, ततोऽवश्यमन्वयि ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम्, तथा च सति न कश्चिद्दोषः, सर्वस्यापि स्मृत्यादेरुपपद्यमानत्वात्, तथाहि—अनुभवेन पटीयसाऽविच्युतिरूपधारणासहितेनात्मनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासनाऽपरपर्यायः संस्कार आधीयते, स च यावदवतिष्ठते तावत्तादृशार्थदर्शनादाभोगतो वा स्मृतिरुदयते, संस्का-
राभावे तु न, ततोऽन्वयिज्ञानाभ्युपगमे परमार्थतोऽनुसन्धातुरेकस्याभ्युपगमात्कार्यकारणभावावगमो निखिलजग-
दुःखितापरिभावनं शास्त्रपौर्वापर्यालोचनेन मोक्षोपायसमीचीनताविवेचनमित्यादि सर्वमुपपद्यते, तन्न नैरात्म्यादि-
भावना रागादिक्लेशप्रहाणिहेतुः, तस्या मिथ्यारूपत्वात्। यदपि च उक्तम्–'आत्मनि परमार्थतया विद्यमाने तत्र स्नेहः
प्रवर्त्तत इति' तत्रार्वाचीनावस्थायामेतदिष्यत एव, अन्यथा मोक्षायापि प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, तथाहि–यत एवात्मनि ५
स्नेहः तत एव प्रेक्षावतामात्मनो दुःखपरिजिहीर्षया सुखमुपादातुं यत्नः, तत्र संसारे सर्वत्रापि दुःखमेव केवलं, तथाहि–
नरकगतौ कुन्ताग्रभेदकरपत्रशिरःपाटनशूलारोपकुम्भिपाकासिपत्रवनकृतकर्णनासिकादिच्छेदं कदम्बवालुकापथगम-
नादिरूपमनेकप्रकारं दुःखमेव निरन्तरं, नाक्षिनिमीलनमात्रमपि तत्र सुखं, तिर्यग्गतावपि अङ्कुशकशाभिघातप्राज-
नकतोदनवधबन्धरोगक्षुत्पिपासादिप्रभवमनेकं दुःखं, मनुष्यगतावपि परप्रेषगुप्तिगृहप्रवेशधनबन्धुवियोगानिष्टसम्प्र-
योगरोगादिजनितं विविधमनेकं दुःखं, देवगतावपि च परगतविशिष्टद्युतिविभवदर्शनात् मात्सर्यमात्मनि तद्विहीने १०
विषादः च्युतिसमये चातिरमणीयविमानवनवापीस्तूपदेवाङ्गनावियोगजमनिष्टजन्मसन्तापं वाऽवेक्षमाणस्य तप्तायो-
भाजननिक्षिप्तशफरादप्यधिकतरं दुःखं, यदपि च–मनुष्यगतौ देवगतौ वा किमप्यापातरमणीयं कियत्कालभावि
विषयोपभोगसुखं तदपि विषसम्मिश्रभोजनसुखमिव पर्यन्तदारुणत्वादतीव विदुषामनुपादेयम्, तत्र संसृतौ क्वापि १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ३९ ॥

विदुषामास्थोपनिबन्धो युक्तः, यत्तु निःश्रेयसपदमधिरूढस्य सुखं तत्परमानन्दरूपमपर्यवसानं च, तच्च प्रायो युक्ति-
लेशेन प्रागेवोपदर्शितम्, आगमतो वाऽनुसर्त्तव्यम्, आगमप्रमाणबलाद्धि सकलमपि परलोकादिस्वरूपं यथावदवग-
म्यते, नान्यतः, तेन यदुच्यते प्रज्ञाकरगुप्तेन—'दीर्घकालसुखादृष्टाविच्छा तत्र कथं भवेदि'ति, तदपास्तमवसेयम्,
आगमतो दीर्घकालसुखस्य दर्शनात्, न चागमस्य न प्रामाण्यं, तदप्रामाण्ये सकलपरलोकानुष्ठानप्रवृत्त्यनुपपत्तेः,
उपायान्तराभावात्, तत आगमबलादुक्तस्वरूपमोक्षसुखमवेत्य तत्रागमे सर्वात्मना निषण्णमानसः संसाराद्विरक्तो
यद्यत्संसारहेतुः तत्तत्परिजिहीर्षुररक्तद्विष्टः सर्वकर्मनिर्मूलनाय प्रकर्षेण यतते, तस्य चैवं प्रयतमानस्य कालक्रमेण
विशिष्टकालादिसामग्रीसम्प्राप्तौ प्रतनुभूतकर्मणः सकलमोहविकारप्रादुर्भावविनिवृत्तेरणिमाद्यैश्वर्यलब्धावपि नौत्सु-
क्यमुपजायते, अत एव च तस्य मोक्षेऽपि न स्पृहाऽभिष्वङ्गापरपर्याया, तस्या अपि मोहविकारत्वात्, केवलं सा
संसाराद्विरक्तिहेतुः स्वयमपि च परम्परानिरनुबन्धिनीत्यर्वाचीनावस्थायां प्रशस्यते, ननु यदि मोक्षेऽपि न स्पृहा कथं
तर्हि तदर्थं प्रवृत्त्युपपत्तिः ?, न, लोकेऽपि स्पृहाव्यतिरेकेणापि तत्तत्कार्यकरणाय प्रवृत्तिदर्शनात्, तथाहि—दृश्यन्ते
केचित् गम्भीराशया अभिष्वङ्गात्मिकां स्पृहामन्तरेणापि यथाकालं भोजनाद्युत्तिष्ठन्तः, तथाविधौत्सुक्यलाम्पट्याद्य-
दर्शनाद्, अपि च–यथा न मोक्षे स्पृहा तथा न संसारेऽपि, संसारादत्यन्तं विरक्तत्वात्, ततः सकलमपि संसारहेतुं
परित्यजन्तः कथमिव संसारपरिक्षये मोक्षस्पृहाव्यतिरेकेणापि न मुक्तिभाजः ?, तदेवं सर्वत्र स्पृहारहितस्य सूत्रोक्त-

नैरात्म्यनि-राकरणं.

१५

२०

॥ ३९ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नीत्या ज्ञानादिषु यतमानस्य भावनाप्रकर्षे सत्यशेषरागादिकर्म्मपरिक्षयतो भवति मुक्तिः, एतेन यदुक्तम्–'तत्स्नेहव-
शाच्च तत्सुखेषु परितर्षवान् भवती'त्यादि, तदपि निर्विषयमगन्तव्यम्, उक्तनीत्या तत्त्ववेदिनः परितर्षाद्यभावा-
दिति स्थितं । साङ्ख्याः पुनराहुः—प्रकृतिपुरुषान्तरपरिज्ञानान्मुक्तिः, तथाहि—"शुद्धचैतन्यरूपोऽयं, पुरुषः परमा- सांख्यमु-
र्थतः । प्रकृत्यन्तरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥१॥" ततः प्रकृतेः सुखादिस्वभावाया यावत् न विवेकेन ग्रहणं तावन्न क्तिनिरासः
मुक्तिः, केवलज्ञानोदये तु मुक्तिः, तदप्यसद्, आत्मा ह्येकान्तनित्यः, सुखादयस्तूत्पादव्ययधर्म्माणः, ततो विरुद्ध- ५
धर्म्मसंसर्गादात्मनः प्रकृतेर्भेदः प्रतीत एव, किं न मुक्तिः ?, अथैतदेव संसारी न पर्यालोचयति ततो न मुक्तिः, यद्येवं
तर्हि सर्वदाऽप्यमुक्तिरेव, प्राप्तविवेकाध्यवसायस्यासम्भवात्, तथाहि—यावत्संसारी तावन्न विवेकपरिभावनं, अथ
च विवेकपरिभावने संसारित्वव्यपगमः, ततो विवेकाध्यवसायासम्भवात् न कदाचिदपि संसाराद्विप्रमुक्तिः, अपि च–
सृष्टेरपि प्रागात्मा केवल इष्यते, ततस्तस्य कथं संसारः ?, कथं वा मुक्तस्य सतो न भूयोऽपि ?, अथ सृष्टेः प्रागात्मनो
दिदृक्षा ततो दिदृक्षावशात्प्रधानेन सहैकतामात्मनि पश्यतः संसारः, मुक्तिस्तु प्रकृतेर्दुष्टतामवधार्य प्रकृतेर्विरागतो १०
भवति, ततो न पुनः प्रकृतिविषया दिदृक्षेति न भूयः संसारः, तदप्ययुक्तम्, स्वकृतान्तविरोधात्, तथाहि–दिदृक्षा
नाम द्रष्टुमभिलाषः, स च पूर्वदृष्टेष्वर्थेषु तथास्मरणतो भवति, न च प्रकृतिः पूर्वं कदाचनापि दृष्टा, तत्कथं तद्वि-
षयौ स्मरणाभिलाषौ ?, अपि च—स्मरणाभिलाषौ प्रकृतिविकारत्वात् प्रकृतेर्भाविनौ, स्मरणाभिलाषाभ्यां च प्रकृत्य- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नुगम इत्यन्योऽन्याश्रयः, आह च—"अभिलाषस्मरणयोः, प्रकृतेरेव वृत्तितः। अभिलाषाच्च तद्वृत्तिरित्यन्योऽन्यसमाश्रयः ॥ १ ॥" अथानादिवासनावशात्प्रकृतिविषयौ स्मरणाभिलाषौ, तदप्यसत्, वासनाया अपि प्रकृतिविकारतया प्रकृतेः पूर्वमभावात्, अथात्मस्वभावरूपा सा वासना तर्हि तस्याः कदाचनाप्यात्मन इवोपरमासम्भवात्सर्वदाऽप्यमुक्तिरेवेति यत्किञ्चिदेतत्। यदप्युक्तम्–'रागादयो धर्माः, ते च किं धर्म्मिणो भिन्ना अभिन्ना वा' इत्यादि, तदप्ययुक्तं, भेदाभेदपक्षस्य जात्यन्तरस्याभ्युपगमात्, केवलभेदाभेदपक्षे धर्मधर्मिभावस्यानुपपद्यमानत्वात्, तथाहि–धर्मधर्मिणोरेकान्तेन भेदेऽभ्युपगम्यमाने धर्मिणो निःस्वभावतापत्तिः, स्वभावस्य धर्म्मत्वात्तस्य च ततोऽन्यत्वात्, स्वो भावः स्वभावः–तस्यैवात्मीया सत्ता, न तु तदर्थान्तरं धर्म्मरूपं, ततो न निःस्वभावतापत्तिरिति चेत्, न, इत्थं स्वरूपसत्ताऽभ्युपगमे तदपरसत्तासामान्ययोगकल्पनाया वैयर्थ्यप्रसङ्गात्, अपि च—यद्येकान्तेन धर्म्मधर्मिणोर्भेदः ततो धर्म्मिणो ज्ञेयत्वादिभिः धर्म्मैरननुवेधात् तस्य सर्वथाऽनवगमप्रसङ्गो, न ह्यज्ञेयस्वभावं ज्ञातुं शक्यत इति, तथा च सति तदभावप्रसङ्गः, कदाचिदप्यवगमाभावात्, तथापि तत्सत्त्वाभ्युपगमेऽतिप्रसङ्गः, अन्यस्यापि यस्य कस्यचित् कदाचिदप्यनवगतस्य षष्ठभूतादेर्भावापत्तेः, एवं च धर्म्यभावे धर्माणामपि ज्ञेयत्वप्रमेयत्वादीनां निराश्रयत्वादभावापत्तिः, न हि धर्म्याधाररहिताः क्वापि धर्म्माः सम्भवन्ति, तथाऽनुपलब्धेः, अन्यच्च–परस्परमपि तेषां धर्म्माणामेकान्तेन भेदाभ्युपगमे सत्त्वाद्यननुवेधात् कथं भावाभ्युपगमः?, तदन्यसत्त्वादिधर्म्माभ्युपगमे च धर्म्मित्वप्रस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

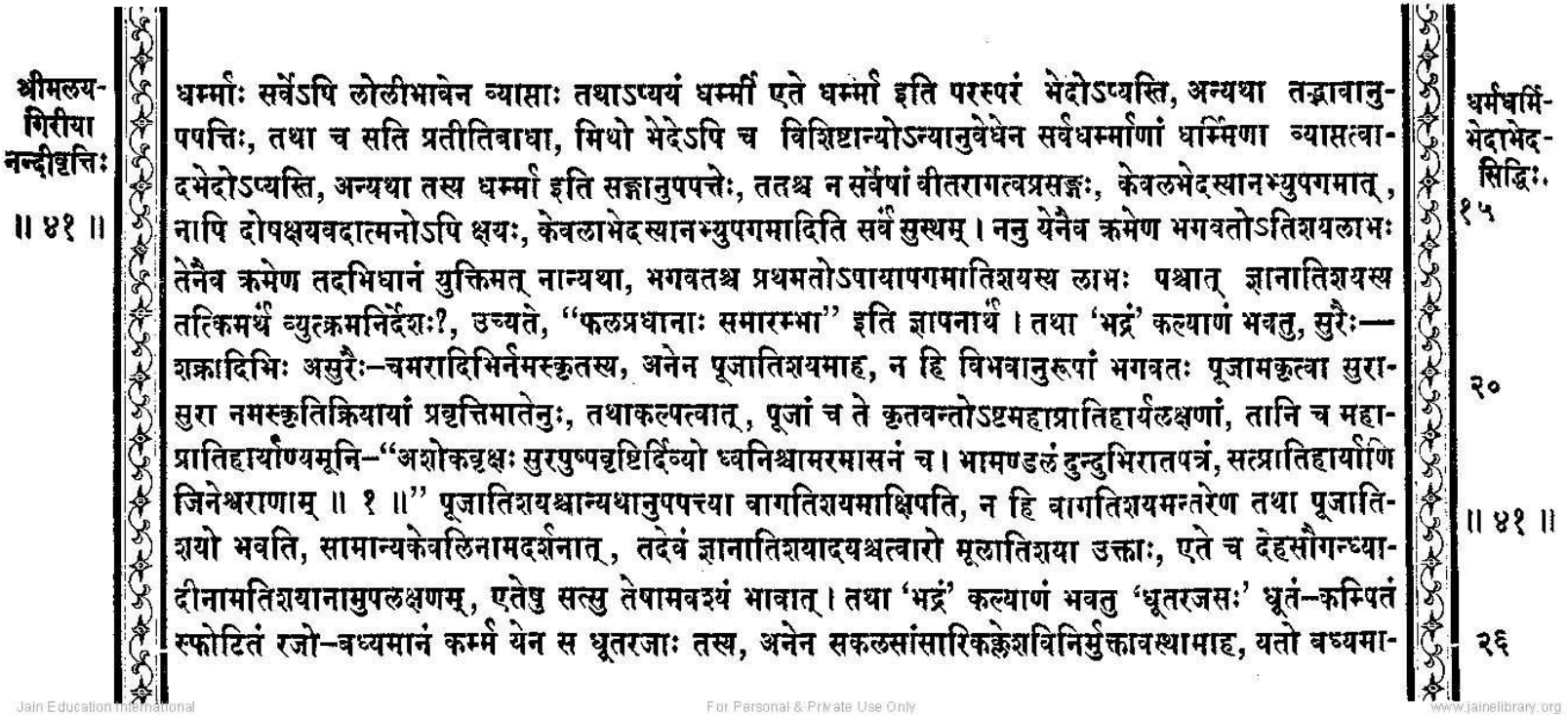
क्किरनवस्था च, तन्नैकान्तभेदपक्षे धर्मिधर्मभावः, नाप्येकान्ताभेदपक्षे, यतस्तस्मिन्नभ्युपगम्यमाने धर्म्ममात्रं वा स्याद्धर्म्मिमात्रं वा, अन्यथैकान्ताभेदानुपपत्तेः, अन्यतराभावे चान्यतरस्याप्यभावः, परस्परनान्तरीयकत्वाद्, धर्म्मनान्तरीयको हि धर्म्मी, धर्म्मिनान्तरीयकाश्च धर्म्माः, ततः कथमेकाभावेऽपरस्यावस्थानमिति?, कल्पितो धर्म्मधर्म्मिभावः ततो न दूषणमिति चेत् तर्हि वस्त्वभावप्रसङ्गः, न हि धर्म्मधर्म्मिस्वभावरहितं किञ्चिद्वस्त्वस्ति, धर्म्मधर्म्मिभावश्च कल्पित इति तदभावप्रसङ्गः, धर्म्मा एव कल्पिता न धर्म्मी तत्कथमभावप्रसङ्ग इति चेत्, न, धर्म्माणां कल्पनामात्रत्वाभ्युपगमेन परमार्थतोऽसत्त्वाभ्युपगमात्, तदभावे च धर्म्मिणोऽप्यभावापत्तेः, अथ तदेवैकं स्वलक्षणं सकलसजातीयविजातीयव्यावृत्त्येकस्वभावं, धर्म्मिव्यावृत्तिनिबन्धनाश्च या व्यावृत्तयो भिन्ना इव कल्पितास्ता धर्म्माः, ततो न कश्चिन्नो दोषः, तदप्ययुक्तम्, एवं कल्पनायां वस्तुतोऽनैकान्तात्मकताप्रसक्तेः, अन्यथा सकलसजातीयविजातीयव्यावृत्त्ययोगात्, न हि येनैव स्वभावेन घटाद् व्यावर्त्तते पटः तेनैव स्तम्भादपि, स्तम्भस्य घटरूपताप्रसक्तेः, तथाहि–घटाद् व्यावर्तते पटो घटव्यावृत्तिस्वभावतया स्तम्भादपि चेद् घटव्यावृत्तिस्वभावतयैव व्यावर्त्तते तर्हि बलात् स्तम्भस्य घटरूपताप्रसक्तिः, अन्यथा तत्स्वभावतया व्यावृत्त्ययोगात्, तस्माद्यतो यतो व्यावर्त्तते तत्तद्व्यावृत्तिनिमित्तभूताः स्वभावा अवश्यमभ्युपगन्तव्याः, ते च नैकान्तेन धर्म्मिणोऽभिन्नाः, तदभावप्रसङ्गात्, तथा च तदवस्थ एव पूर्वोक्तो दोषः, तस्माद् भिन्नाभिन्नाः, भेदाभेदोऽपि धर्म्मधर्म्मिणोः कथमिति चेत्, उच्यते, इह यद्यपि तादात्म्यतो धर्म्मिणां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ४१ ॥

धर्म्माः सर्वेऽपि लोलीभावेन व्याप्ताः तथाऽप्ययं धर्म्मी एते धर्म्मा इति परस्परं भेदोऽप्यस्ति, अन्यथा तद्भावानुपपत्तिः, तथा च सति प्रतीतिबाधा, मिथो भेदेऽपि च विशिष्टान्योऽन्यानुवेधेन सर्वधर्म्माणां धर्म्मिणा व्याप्तत्वादभेदोऽप्यस्ति, अन्यथा तस्य धर्म्मा इति सङ्गानुपपत्तेः, ततश्च न सर्वेषां वीतरागत्वप्रसङ्गः, केवलभेदस्यानभ्युपगमात्, नापि दोषक्षयवदात्मनोऽपि क्षयः, केवलाभेदस्यानभ्युपगमादिति सर्वं सुस्थम्। ननु येनैव क्रमेण भगवतोऽतिशयलाभः तेनैव क्रमेण तदभिधानं युक्तिमत् नान्यथा, भगवतश्च प्रथमतोऽपायापगमातिशयस्य लाभः पश्चात् ज्ञानातिशयस्य तत्किमर्थं व्युत्क्रमनिर्देशः?, उच्यते, "फलप्रधानाः समारम्भा" इति ज्ञापनार्थं। तथा 'भद्रं' कल्याणं भवतु, सुरैः—शक्रादिभिः असुरैः—चमरादिभिर्नमस्कृतस्य, अनेन पूजातिशयमाह, न हि विभवानुरूपां भगवतः पूजामकृत्वा सुरासुरा नमस्कृतिक्रियायां प्रवृत्तिमातेनुः, तथाकल्पत्वात्, पूजां च ते कृतवन्तोऽष्टमहाप्रातिहार्यलक्षणां, तानि च महाप्रातिहार्याण्यमूनि—"अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यो ध्वनिश्चामरमासनं च। भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥" पूजातिशयश्चान्यथानुपपत्त्या वागतिशयमाक्षिपति, न हि वागतिशयमन्तरेण तथा पूजातिशयो भवति, सामान्यकेवलिनामदर्शनात्, तदेवं ज्ञानातिशयादयश्चत्वारो मूलातिशया उक्ताः, एते च देहसौगन्ध्यादीनामतिशयानामुपलक्षणम्, एतेषु सत्सु तेषामवश्यं भावात्। तथा 'भद्रं' कल्याणं भवतु 'धूतरजसः' धूतं—कम्पितं स्फोटितं रजो—बध्यमानं कर्म्म येन स धूतरजाः तस्य, अनेन सकलसांसारिकक्लेशविनिर्मुक्तावस्थामाह, यतो बध्यमा-

धर्मधर्मिभेदाभेदसिद्धिः

१५

२०

॥ ४१ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥३॥

दीप अनुक्रम [३]

नकं कर्म रजो भण्यते, बध्यमानकर्माभावश्चायोगिसिद्धावस्थां गतस्य, नार्वाचीनावस्थायां, यत उक्तं सूत्रे– "जाव णं एस जीवे एयइ वेयइ चलइ फंदइ घट्टइ खुब्भइ उदीरइ तं तं (भावं) परिणमइ ताव णं अट्ठविहबन्धए वा सत्तविहबंधए वा छव्विहबन्धए वा एगविहबंधए वा, नो चेव णं अबन्धए सिआ" तत्र मिथ्यादृष्ट्यादयो मिश्रवर्जिता अप्रमत्तान्ता आयुर्बन्धकालेऽष्टानामपि कर्म्मणां बन्धकाः, शेषकाले त्वायुर्वर्जानां सप्तानां, एतेषामेव सप्तकर्मणां मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिबादरा अपि बन्धकाः, सूक्ष्मसम्पराया मोहायुर्वर्जानां षण्णां कर्मणाम्, उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनः सातवेदनीयस्यैवैकस्य, तच्च सातवेदनीयं तेषां द्विसामयिकं, तृतीयसमयेऽवस्थानाभावात्, शैलेशीप्रतिपत्तेरारभ्य पुनर्योगाभावादबन्धकाः, उक्तं च—"सत्तविहबंधगा होंति पाणिणो आउवज्जगाणं तु । तह सुहुमसंपराया छव्विहबंधा विणिद्दिट्ठा ॥ १ ॥ मोहाउयवज्जाणं पयडीणं ते उ बन्धगा भणिया । उवसंतखीणमोहा केवलिणो एगविहबन्धा ॥ २ ॥ तं पुण दुसमयठिइयस्स बंधगा न उण संपरायस्स । सेलेसीपडिवन्ना अबंधगा होंति विण्णेया ॥ ३ ॥" अथ भगवान् संसारातीतत्वात् सदैव परमकल्याणरूपः तत्किमेवमुच्यते तस्य भद्रं भवतु?, न च

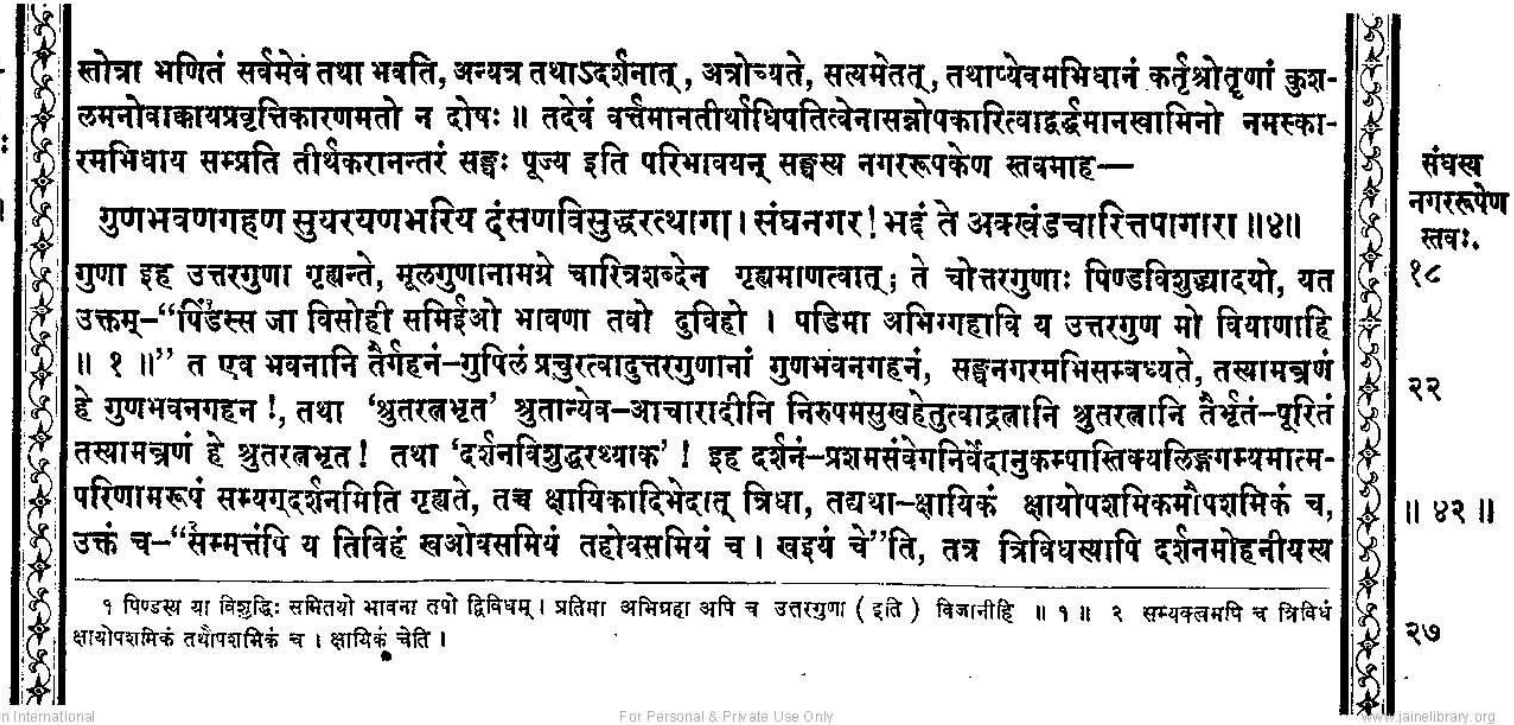
१ यावद् एष जीव एजते व्येजते चलति स्पन्दते घटते क्षुभ्यति उदीरयति तं तं भावं परिणमति तावद् अष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा षड्विधबन्धको वा एकविधबन्धको वा; नो चैव अबन्धकः स्यात् । २ सप्तविधबन्धका भवन्ति प्राणिन आयुर्वर्जकानां तु । तथा सूक्ष्मसंपरायाः षड्विधबन्धा विनिर्दिष्टाः ॥१॥ मोहायुर्वर्जानां प्रकृतीनां ते तु बन्धका भणिताः । उपशान्तक्षीणमोहौ केवलिन एकविधबन्धाः ॥ २ ॥ ते पुनर्द्वीसमयस्थितिकस्य बन्धका न पुनः संपरायस्य । शैलेशीप्रतिपन्ना अबन्धका भवन्ति विज्ञेयाः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४॥

दीप अनुक्रम [४]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ४२ ॥

स्तोत्रा भणितं सर्वमेवं तथा भवति, अन्यत्र तथाऽदर्शनात्, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, तथाप्येवमभिधानं कर्तृश्रोतृणां कुश-लमनोवाक्कायप्रवृत्तिकारणमतो न दोषः ॥ तदेवं वर्त्तमानतीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वाद्वर्द्धमानस्वामिनो नमस्का-रमभिधाय सम्प्रति तीर्थकरानन्तरं सङ्घः पूज्य इति परिभावयन् सङ्घस्य नगररूपकेण स्तवमाह—

गुणभवणगहण सुयरयणभरिय दंसणविसुद्धरत्थागा। संघनगर! भद्दं ते अक्खंडचारित्तपागारा ॥४॥

गुणा इह उत्तरगुणा गृह्यन्ते, मूलगुणानामग्रे चारित्रशब्देन गृह्यमाणत्वात्; ते चोत्तरगुणाः पिण्डविशुद्ध्यादयो, यत उक्तम्–"पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुण मो वियाणाहि ॥ १ ॥" त एव भवनानि तैर्गहनं–गुपिलं प्रचुरत्वादुत्तरगुणानां गुणभवनगहनं, सङ्घनगरमभिसम्बध्यते, तस्यामन्त्रणं हे गुणभवनगहन !, तथा 'श्रुतरत्नभृत' श्रुतान्येव–आचारादीनि निरुपमसुखहेतुत्वाद्रत्नानि श्रुतरत्नानि तैर्भृतं–पूरितं तस्यामन्त्रणं हे श्रुतरत्नभृत! तथा 'दर्शनविशुद्धरथाक' ! इह दर्शनं–प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्यलिङ्गगम्यमात्म-परिणामरूपं सम्यग्दर्शनमिति गृह्यते, तच्च क्षायिकादिभेदात् त्रिधा, तद्यथा–क्षायिकं क्षायोपशमिकमौपशमिकं च, उक्तं च–"सम्मत्तंपि य तिविहं खओवसमियं तहोवसमियं च। खइयं चे"ति, तत्र त्रिविधस्यापि दर्शनमोहनीयस्य

१ पिण्डस्य या विशुद्धिः समितयो भावना तपो द्विविधम्। प्रतिमा अभिग्रहा अपि च उत्तरगुणा (इति) विजानीहि ॥ १ ॥ २ सम्यक्त्वमपि च त्रिविधं क्षायोपशमिकं तथौपशमिकं च । क्षायिकं चेति ।

संघस्य नगररूपेण स्तवः.

१८

२२

॥ ४२ ॥

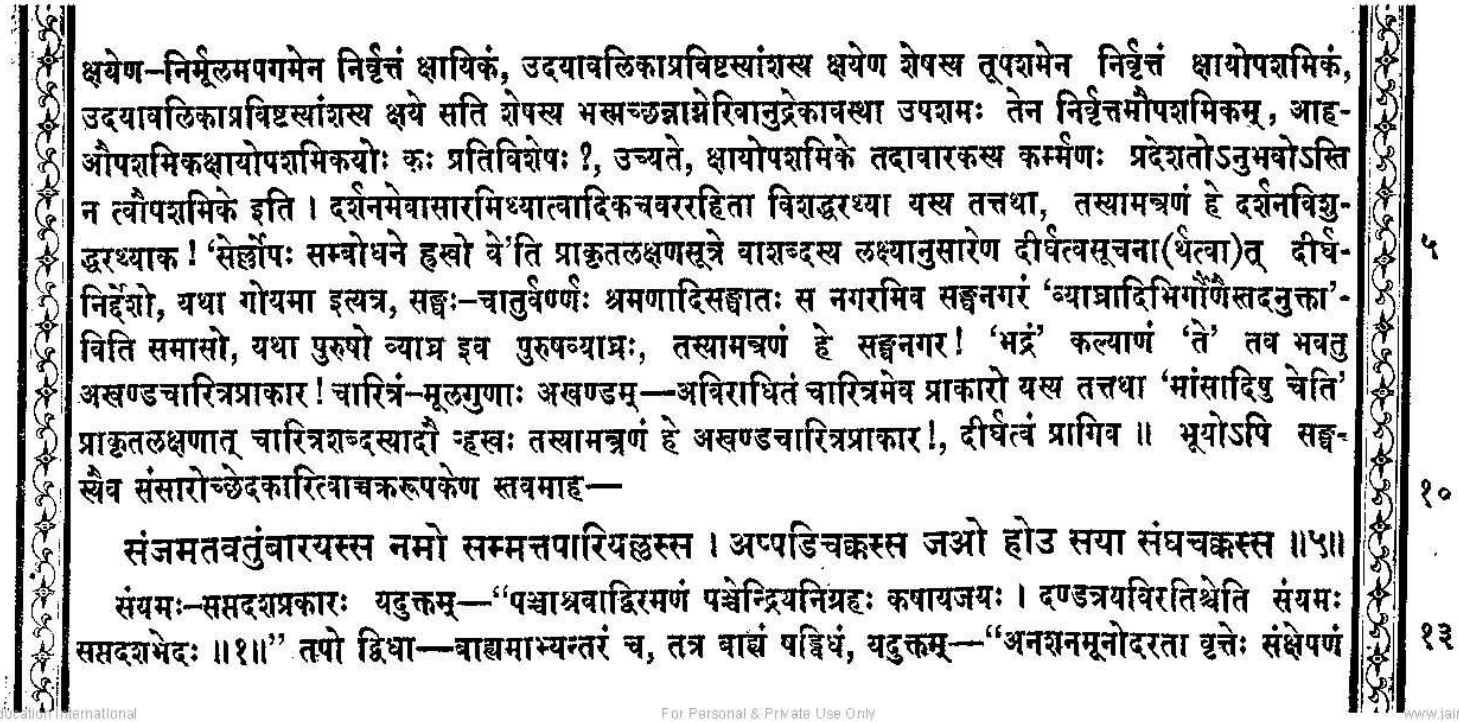
२७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विविध-रूपेण "संघ"स्य स्तवना

प्रत सूत्रांक ॥४॥

दीप अनुक्रम [४]



क्षयेण–निर्मूलमपगमेन निर्वृत्तं क्षायिकं, उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षयेण शेषस्य तूपशमेन निर्वृत्तं क्षायोपशमिकं, उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षये सति शेषस्य भस्मच्छन्नाग्नेरिवानुद्रेकावस्था उपशमः तेन निर्वृत्तमौपशमिकम्, आह-औपशमिकक्षायोपशमिकयोः कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, क्षायोपशमिके तदावारकस्य कर्म्मणः प्रदेशतोऽनुभवोऽस्ति न त्वौपशमिके इति । दर्शनमेवासारमिथ्यात्वादिकचवररहिता विशद्धरध्या यस्य तत्तथा, तस्यामन्त्रणं हे दर्शनविशु-द्धरध्याक ! 'सेर्ह्रोपः सम्बोधने ह्रस्वो वे'ति प्राकृतलक्षणसूत्रे वाशब्दस्य लक्ष्यानुसारेण दीर्घत्वसूचना(र्थत्वा)त् दीर्घ- ५
निर्देशो, यथा गोयमा इत्यत्र, सङ्घः–चातुर्वर्ण्यः श्रमणादिसङ्घातः स नगरमिव सङ्घनगरं 'व्याघ्रादिभिर्गौणैस्तदनुक्ता'-
वितिं समासो, यथा पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः, तस्यामन्त्रणं हे सङ्घनगर! 'भद्रं' कल्याणं 'ते' तव भवतु
अखण्डचारित्रप्राकार ! चारित्रं–मूलगुणाः अखण्डम्—अविराधितं चारित्रमेव प्राकारो यस्य तत्तथा 'मांसादिषु चेति'
प्राकृतलक्षणात् चारित्रशब्दस्यादौ ह्रस्वः तस्यामन्त्रणं हे अखण्डचारित्रप्राकार!, दीर्घत्वं प्रागिव ॥ भूयोऽपि सङ्घ-
स्यैव संसारोच्छेदकारित्वाच्चक्ररूपकेण स्तवमाह— १०

संजमतवतुंबारयस्स नमो सम्मत्तपारियल्लस्स । अप्पडिचक्कस्स जओ होउ सया संघचक्कस्स ॥५॥

संयमः–सप्तदशप्रकारः यदुक्तम्—"पञ्चाश्रवाद्विरमणं पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायजयः । दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः
सप्तदशभेदः ॥१॥" तपो द्विधा—बाह्यमाभ्यन्तरं च, तत्र बाह्यं षड्विधं, यदुक्तम्—"अनशनमूनोदरता वृत्तेः संक्षेपणं १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रसत्यागः । कायक्लेशः संलीनतेति बाह्यं तपः प्रोक्तम् ॥ १ ॥" आभ्यन्तरमपि षोढा, यत उक्तम्—"प्रायश्चित्तध्याने वैयावृत्त्यविनयावथोत्सर्गः । स्वाध्याय इति तपः षट्प्रकारमाभ्यन्तरं भवति ॥ २ ॥" संयमश्च तपांसि च संयमतपांसि तुम्बं च अराश्च—अरकाः तुम्बाराः संयमतपांस्येव यथासंख्यं तुम्बारा यस्य तत्तथा तस्मै संयमतपस्तुम्बाराय नमः, सूत्रे षष्ठी प्राकृतलक्षणाच्चतुर्थ्यर्थे वेदितव्या, उक्तं च—'छट्ठिविहत्तीएँ भन्नइ चउत्थी,' तथा 'सम्मत्तपारियल्लस्स' सम्यक्त्वमेव पारियल्लं–बाह्यपृष्ठस्य बाह्या भ्रमिर्यस्य तत्तथा तस्मै नमः गाथार्द्धं व्याख्यातं, तथा न विद्यते प्रति–अनुरूपं समानं चक्रं यस्य तदप्रतिचक्रं, चरकादिचक्रैरसमानमित्यर्थः, तस्य जयो भवतु 'सदा' सर्वकालं, सङ्घश्चक्रमिव सङ्घचक्रं तस्य ॥ सम्प्रति सङ्घस्यैव मार्गगामितया रथरूपकेण स्तवमभिधित्सुराह—

भद्दं सीलपडागूसियस्स तवनियमतुरयजुत्तस्स । संघरहस्स भगवओ सज्झायसुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

'भद्रं' कल्याणं सङ्घरथस्य भगवतो भवत्विति योगः, किंविशिष्टस्य सतः इत्याह–'शीलोच्छ्रितपताकस्य' शीलमेव—अष्टादशशीलाङ्गसहस्ररूपमुच्छ्रिता पताका यस्य स तथा, भार्योढादेराकृतिगणतया तन्मध्यपाठाभ्युपगमादुच्छ्रितशब्दस्य परनिपातः, प्राकृतशैल्या वा, न हि प्राकृते विशेषणपूर्वापरनिपातनियमोऽस्ति, यथाकथञ्चित्पूर्वर्षिप्रणीतेषु वाक्येषु विशेषणनिपातदर्शनात्, 'तपोनियमतुरङ्गयुक्तस्य' तपःसंयमाश्वयुक्तस्य, तथा स्वाध्यायः—पञ्च-

१ षष्ठीविभक्त्या भण्यते चतुर्थी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधः, तद्यथा–वाचना प्रच्छना परावर्त्तना अनुप्रेक्षा धर्मकथा च, स्वाध्याय एव सन्–शोभनो नन्दिघोषो–द्वादशविधतूर्यनिनादो यस्य स तथा तस्य, 'सज्झायसुनेमिघोसस्से' ति क्वचित्पाठः, तत्र स्वाध्याय एव शोभनो नेमिघोषो यस्येति द्रष्टव्यम्, इह शीलाङ्गप्ररूपणे सत्यपि तपोनियमप्ररूपणं तयोः प्रधानपरलोकाङ्गत्वख्यापनार्थं, अस्ति चायं न्यायो यदुत–सामान्योक्तावपि प्राधान्यख्यापनार्थं विशेषाभिधानं क्रियते, यथा ब्राह्मणा आयाता वशिष्ठोऽप्यायात इति, एवमन्यत्रापि यथायोगं परिभावनीयम् ॥ सङ्घस्यैव लोकमध्यवर्त्तिनोऽपि लोकधर्मासंक्षेपतः पद्मरूपकेण स्तवं प्रतिपादयितुमाह— ५

कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स सुयरयणदीहनालस्स । पंचमहव्वयथिरकन्नियस्स गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥
सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स जिणसूरतेयबुद्धस्स । संघपउमस्स भद्दं समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥ संघस्य पद्मेनौपम्यं. गा. ७-८

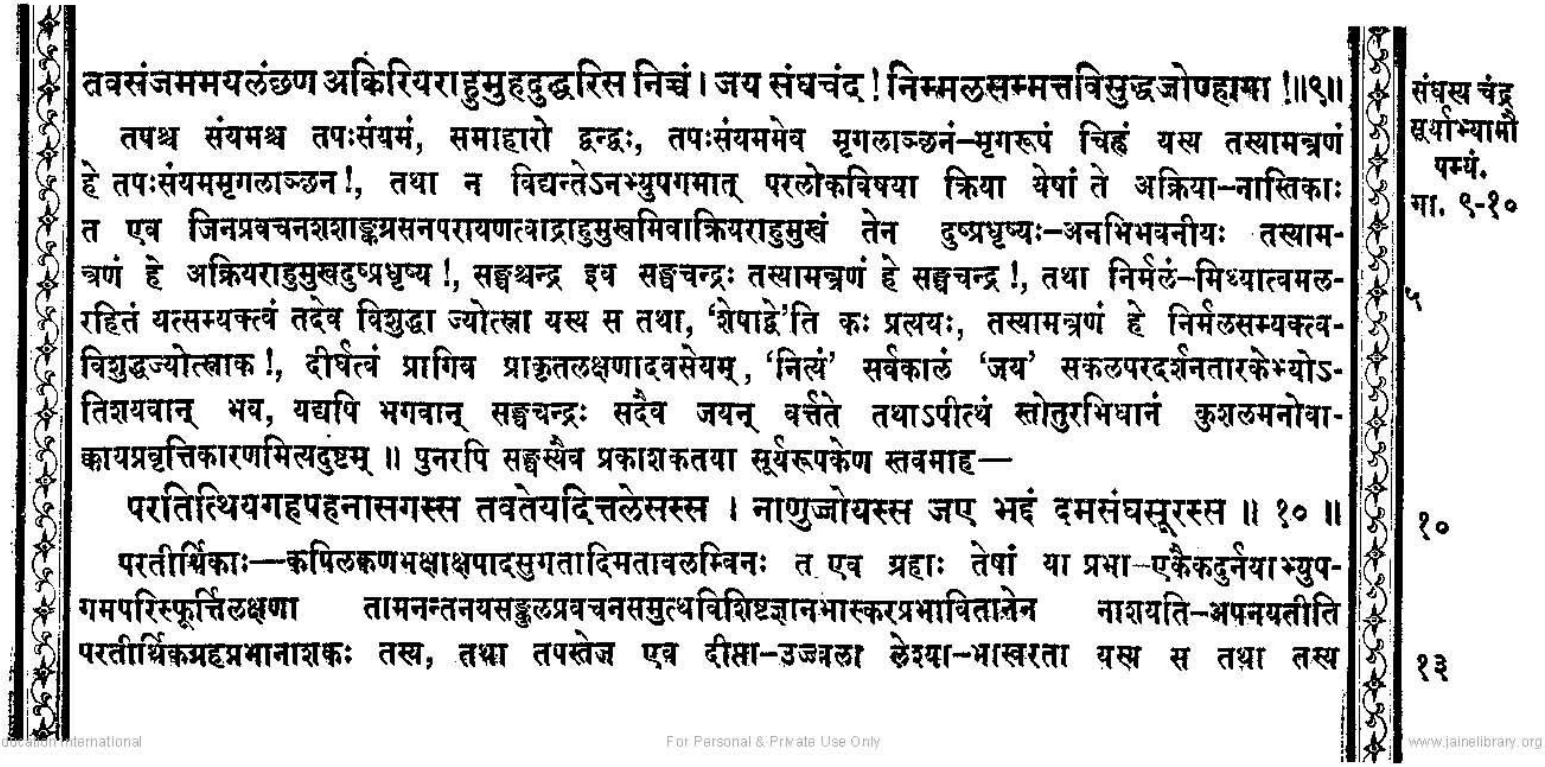
कर्म्म–ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं तदेव जीवस्य गुण्डनेन मालिन्यापादनाद्रजो भण्यते कर्म्मरज एव जन्मकारणत्वाज्जलौघः तस्माद्विनिर्गत इव विनिर्गतः कर्मरजोजलौघविनिर्गतः तस्य, इह पद्मं जलौघाद्विनिर्गतं सुप्रतीतं, जलौघस्योपरि तस्य व्यवस्थितत्वात्, सङ्घस्तु कर्म्मरजोजलौघाद्विनिर्गतोऽल्पसंसारत्वादवसेयः, तथा च अविरतसम्यग्दृष्टेरप्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तमान एव संसारः, अत एव विनिर्गत इवेति व्याख्यातं, न तु साक्षाद्विनिर्गतः, अद्यापि संसारित्वात्, तथा श्रुतरत्नमेव दीर्घो नालो यस्य स तथा तस्य, दीर्घनालतया च श्रुतरत्नस्य रूपणं कर्म्मरजो- १०, १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जलौघतः तद्वलाद्विनिर्गतेः, तथा पञ्च महाव्रतान्येव–प्राणातिपातादिविरमणलक्षणानि स्थिरा–दृढा कर्णिका–मध्यगण्डिका यस्य तत्तथा तस्य, तथा गुणाः–उत्तरगुणाः त एव पञ्चमहाव्रतरूपकर्णिकापरिकरभूतत्वात् केसरा इव गुणकेसराः ते विद्यन्ते यस्य तत्तथा तस्य, अत्र 'मतुवत्थंमि मुणिज्जह आलं इलं मणं तह य' इति प्राकृतलक्षणात् मत्वर्थे आलप्रत्ययः । तथा ये अभ्युपेतसम्यक्त्वाः प्रतिपन्नाणुव्रता अपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः साधूनामगारिणां चोत्तरोत्तरविशिष्टगुणप्रतिपत्तिहेतोः सामाचारीं शृण्वन्ति ते श्रावकाः, उक्तं च–"संपत्तदंसणाई पयदियहं जइजणा सुणेई य । सामायारिं परमं जो खलु तं सावगं विंति ॥ १ ॥" श्रावकाश्च ते जनाश्च श्रावकजनाः त एव मधुकर्यः ताभिः परिवृतस्य तस्य, तथा 'जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य' जिन एव सकलजगत्प्रकाशकतया सूर्य इव–भास्कर इव जिनसूर्यस्तस्य तेजो–विशिष्टसंवेदनप्रभवा धर्मदेशना तेन बुद्धस्य, तथा श्राम्यन्तीति श्रमणा 'नन्द्यादिभ्योऽन' इति कर्तर्यनप्रत्ययः, श्राम्यन्ति—तपस्यन्ति, किमुक्तं भवति?–प्रव्रज्याऽऽरम्भदिवसादारभ्य सकलसावद्ययोगविरता गुरूपदेशादाप्राणोपरमाद्यथाशक्त्यनशनादि तपश्चरन्ति, उक्तं च—"यः समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च । तपश्चरति शुद्धात्मा, श्रमणोऽसौ प्रकीर्त्तितः ॥ १ ॥" श्रमणानां गणः श्रमणगणः स एव सहस्रं पत्राणां यस्य तत् श्रमणगणसहस्रपत्रं तस्य (श्रीसङ्घपद्मस्य भद्रं भवतु) ॥ भूयोऽपि सङ्घस्यैव सोमतया चन्द्ररूपकेण स्तवमभिधित्सुराह—

१ संप्राप्तदर्शनादिः प्रतिदिवसं यतिभ्यो यात् शृणोति च । सामाचारीं परमां यः खलु तं श्रावकं ब्रुवते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तवसंजममयलंछण अकिरियराहुमुहदुद्धरिस निच्चं। जय संघचंद! निम्मलसम्मत्तविसुद्धजोण्हागा !॥९॥

संघस्य चंद्र सूर्याभ्यामौ पम्यं. गा. ९-१०

तपश्च संयमश्च तपःसंयमं, समाहारो द्वन्द्वः, तपःसंयममेव मृगलाञ्छनं–मृगरूपं चिह्नं यस्य तस्यामन्त्रणं हे तपःसंयममृगलाञ्छन!, तथा न विद्यन्तेऽनभ्युपगमात् परलोकविषया क्रिया येषां ते अक्रिया–नास्तिकाः त एव जिनप्रवचनशशाङ्कग्रसनपरायणत्वाद्राहुमुखमिवाक्रियराहुमुखं तेन दुष्प्रधृष्यः–अनभिभवनीयः तस्यामन्त्रणं हे अक्रियराहुमुखदुष्प्रधृष्य!, सङ्घश्चन्द्र इव सङ्घचन्द्रः तस्यामन्त्रणं हे सङ्घचन्द्र!, तथा निर्मलं–मिथ्यात्वमलरहितं यत्सम्यक्त्वं तदेव विशुद्धा ज्योत्स्ना यस्य स तथा, 'शेषाद्वे'ति कः प्रत्ययः, तस्यामन्त्रणं हे निर्मलसम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक!, दीर्घत्वं प्रागिव प्राकृतलक्षणादवसेयम्, 'नित्यं' सर्वकालं 'जय' सकलपरदर्शनतारकेभ्योऽतिशयवान् भव, यद्यपि भगवान् सङ्घचन्द्रः सदैव जयन् वर्त्तते तथाऽपीत्थं स्तोतुरभिधानं कुशलमनोवाक्कायप्रवृत्तिकारणमित्यदुष्टम् ॥ पुनरपि सङ्घस्यैव प्रकाशकतया सूर्यरूपकेण स्तवमाह—

परतित्थियगहपहनासगस्स तवतेयदित्तलेसस्स। नाणुज्जोयस्स जए भद्दं दमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

१०

परतीर्थिकाः—कपिलकणभक्षाक्षपादसुगतादिमतावलम्बिनः त एव ग्रहाः तेषां या प्रभा–एकैकदुर्नयाभ्युपगमपरिस्फूर्त्तिलक्षणा तामनन्तनयसङ्कुलप्रवचनसमुत्थविशिष्टज्ञानभास्करप्रभावितात्मना नाशयति–अपनयतीति परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकः तस्य, तथा तपस्तेज एव दीप्ता–उज्ज्वला लेश्या–भास्वरता यस्य स तथा तस्य

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१०॥

दीप अनुक्रम [१०]

तपस्तेजोदीप्तलेश्यस्य, तथा ज्ञानमेवोद्योतो–वस्तुविषयः प्रकाशो यस्य स तथा तस्य ज्ञानोद्योतस्य, 'जगति' लोके 'भद्रं' कल्याणं, भवत्विति शेषः, दमः–उपशमः तत्प्रधानः सङ्घः सूर्य इव सङ्घसूर्यः तस्य दमसङ्घसूर्यस्य ॥ १५

सम्प्रति सङ्घस्यैवाक्षोभ्यतया समुद्ररूपकेण स्तवं चिकीर्षुराह—

भद्दं धिइवेलापरिगयस्स सज्झायजोगमगरस्स । अक्खोहस्स भगवओ संघसमुद्दस्स रुंदस्स ॥ ११ ॥ संघस्य समुद्रेणौपम्यं. गा. ११

(संघ एव समुद्रः) सङ्घसमुद्रः तस्य भद्रं भवत्विति क्रिया शेषः, किंविशिष्टस्य सत इत्याह—'धृतिवेलापरिगतस्य' धृतिः–मूलोत्तरगुणविषयः प्रतिदिवसमुत्सहमान आत्मपरिणामविशेषः सैव वेला–जलवृद्धिलक्षणा तया परिगतस्य, तथा स्वाध्याययोग एव कर्म्मविदारणक्षमशक्तिसमन्विततया मकर इव मकरो यस्मिन् स तथा तस्य, तथा 'अक्षोभ्यस्य' परीषहोपसर्गसम्भवेऽपि निष्प्रकम्पस्य · 'भगवतः' समग्रैश्वर्यरूपयशोधर्मप्रयत्नश्रीसम्भारसमन्वितस्य 'रुन्दस्य' विस्तीर्णस्य ॥ भूयोऽपि सङ्घस्यैव सदास्थायितया मेरुरूपकेण स्तवमाह— २०

सम्मद्दंसणवरवइरदढरूढगाढावगाढपेढस्स । धम्मवररयणमंडिअचामीयरमेहलागस्स ॥ १२ ॥ ॥ ४५ ॥

नियमूसियकणयसिलायलुज्जलजलंतचित्तकूडस्स । नंदणवणमणहरसुरभिसीलगंधुद्धुमायस्स ॥ १३ ॥

जीवदयासुंदरकंदरुद्दरियमुणिवरमइंदइन्नस्स । हेउसयधाउपगलंतरयणदित्तोसहिगुहस्स ॥ १४ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१५॥

दीप अनुक्रम [१५]

संघस्य मन्दरेणो पम्यं. गा. १२-१७

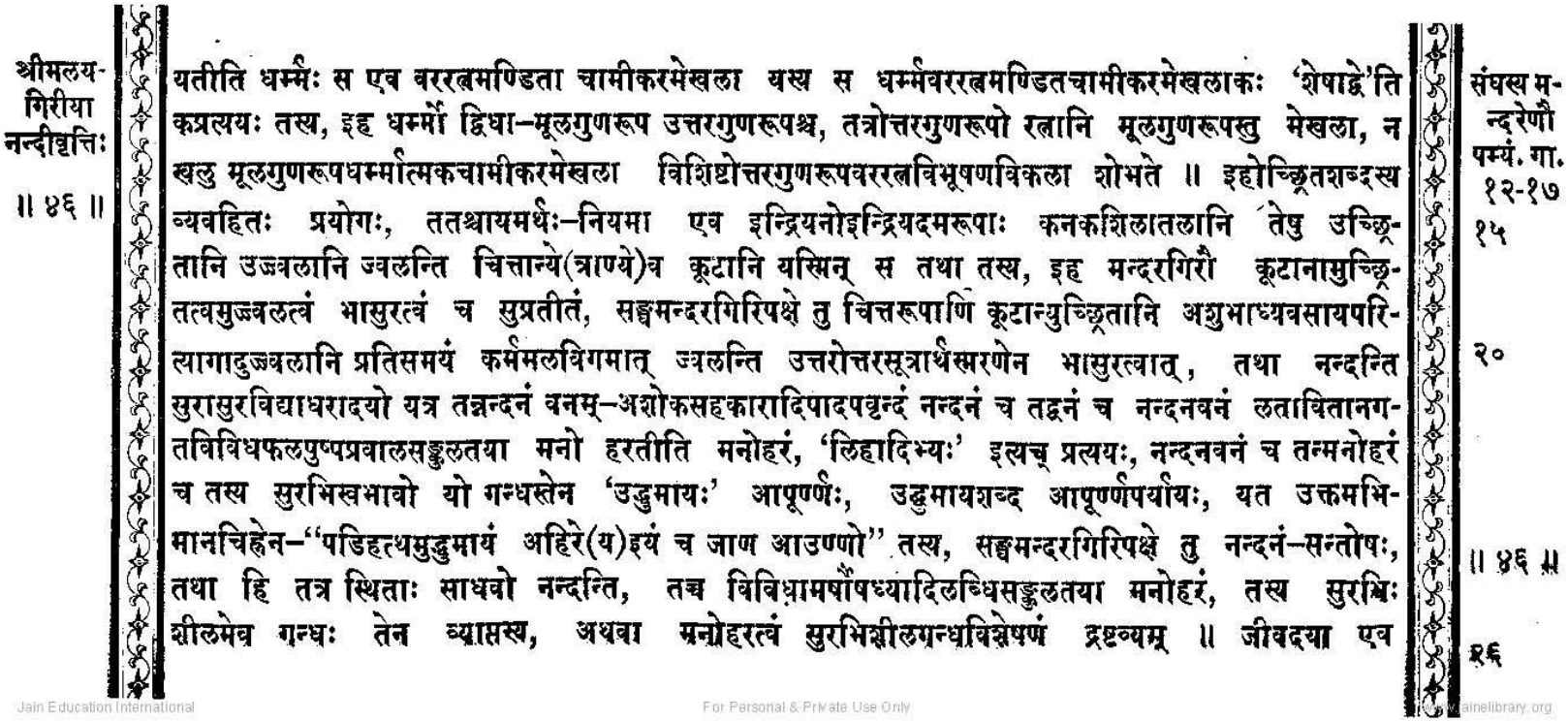
संवरवरजलपगलियउज्झरपविरायमाणहारस्स । सावगजणपउररवंतमोरनच्चंतकुहरस्स ॥ १५ ॥
विणयनयपवरमुणिवरफुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स । विविहगुणकप्परुक्खगफलभरकुसुमाउलवणस्स ॥१६
नाणवररयणदिप्पंतकंतवेरुलियविमलचूलस्स । वंदामि विणयपणओ संघमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥

गाथापट्केन सम्बन्धः, सम्यक्–अविपरीतं दर्शनं—तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं तदेव प्रथमं मोक्षाङ्गतया सारत्वाद्वरवज्रमिव सम्यग्दर्शनवरवज्रं तदेव दृढं—निष्प्रकम्पं रूढं—चिरप्ररूढं गाढं–निबिडमवगाढं—निमग्नं पीठं–प्रथमभूमिका यस्य स तथा, इह मन्दरगिरिपक्षे वज्रमयं पीठं दृढादिविशेषणं सुप्रतीतं, सङ्घमन्दरगिरिपक्षे तु सम्यग्दर्शनवरवज्रमयं पीठं दृढं शङ्कादिशुषिररहिततया परतीर्थिकवासनाजलेनान्तःप्रवेशाभावतश्चालयितुमशक्यम्, रूढं प्रतिसमयं विशुद्ध्यमानतया प्रशस्ताध्यवसायेषु चिरकालं वर्त्तनात्, गाढं तीव्रतत्त्वविषयरुच्यात्मकत्वाद्, अवगाढं जीवादिषु पदार्थेषु सम्यगवबोधरूपतया प्रविष्टं, तं वन्दे, सूत्रे प्राकृतत्वात् द्वितीयार्थे षष्ठी, यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे–'द्वितीयार्थे षष्ठी', अथवा सम्बन्धविवक्षया षष्ठी, यथा माषाणामश्नीयादित्यत्र, यद्वा इत्थंभूतस्य सङ्घमन्दरगिरेर्यत् माहात्म्यं तद् वन्दे इति माहात्म्यशब्दाध्याहारापेक्षया षष्ठी, तथा दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धार-

१ नगररह चक्क पउमे चंदे सूरे समुद्दमेरुमि । जो उवमिज्जइ सययं तं संघ गुणायरं वंदे ॥ १ ॥
गुणरयणुज्जलकंडअ सीलसुगंधितवमंडिउद्देसं । वंदामि विणयपणओ संघमहामंदरगिरिस्स ॥ २ ॥ (अधिकमिदं युग्ममन्यत्र)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१७॥ दीप अनुक्रम [१]७	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

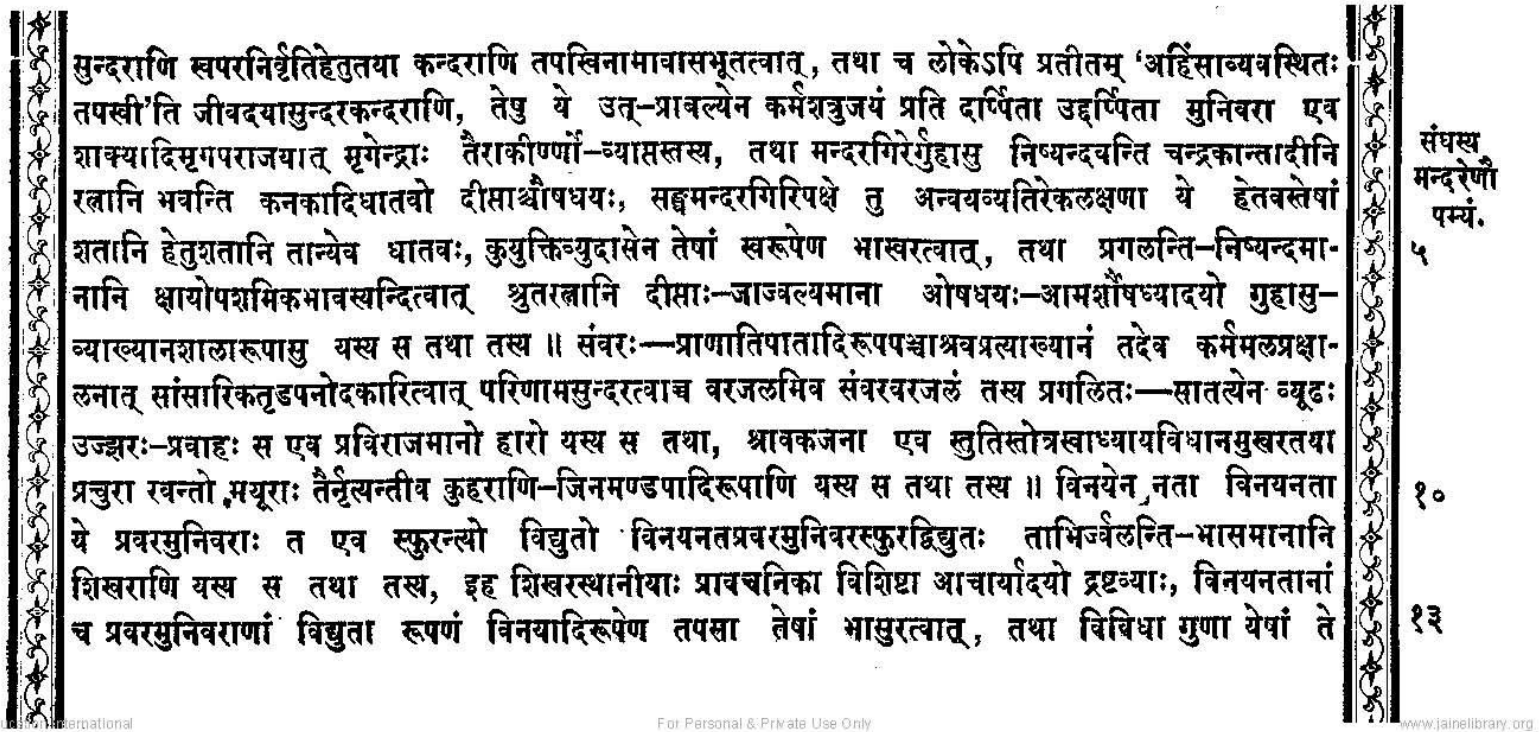


श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ४६ ॥

यतीति धर्म्मः स एव वररत्नमण्डिता चामीकरमेखला यस्य स धर्म्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकः 'शेषाद्वे'ति कप्रत्ययः तस्य, इह धर्म्मो द्विधा–मूलगुणरूप उत्तरगुणरूपश्च, तत्रोत्तरगुणरूपो रत्नानि मूलगुणरूपस्तु मेखला, न खलु मूलगुणरूपधर्म्मात्मकचामीकरमेखला विशिष्टोत्तरगुणरूपवररत्नविभूषणविकला शोभते ॥ इहोच्छ्रितशब्दस्य व्यवहितः प्रयोगः, ततश्चायमर्थः–नियमा एव इन्द्रियनोइन्द्रियदमरूपाः कनकशिलातलानि तेषु उच्छ्रितानि उज्ज्वलानि ज्वलन्ति चित्तान्ये(त्राण्ये)व कूटानि यस्मिन् स तथा तस्य, इह मन्दरगिरौ कूटानामुच्छ्रितत्वमुज्ज्वलत्वं भासुरत्वं च सुप्रतीतं, सङ्घमन्दरगिरिपक्षे तु चित्तरूपाणि कूटान्युच्छ्रितानि अशुभाध्यवसायपरित्यागादुज्ज्वलानि प्रतिसमयं कर्ममलविगमात् ज्वलन्ति उत्तरोत्तरसूत्रार्थस्मरणेन भासुरत्वात्, तथा नन्दन्ति सुरासुरविद्याधरादयो यत्र तन्नन्दनं वनम्–अशोकसहकारादिपादपवृन्दं नन्दनं च तद्वनं च नन्दनवनं लतावितानगतविविधफलपुष्पप्रवालसङ्कुलतया मनो हरतीति मनोहरं, 'लिहादिभ्यः' इत्यच् प्रत्ययः, नन्दनवनं च तन्मनोहरं च तस्य सुरभिसुखभावो यो गन्धस्तेन 'उद्धुमायः' आपूर्णः, उद्धुमायशब्द आपूर्णपर्यायः, यत उक्तमभिमानचिह्नेन–"पडिहत्थमुद्धुमायं अहिरे(य)इयं च जाण आउण्णो" तस्य, सङ्घमन्दरगिरिपक्षे तु नन्दनं–सन्तोषः, तथा हि तत्र स्थिताः साधवो नन्दन्ति, तच्च विविधामर्षौषध्यादिलब्धिसङ्कुलतया मनोहरं, तस्य सुरभिः शीलमेव गन्धः तेन व्याप्तस्य, अथवा मनोहरत्वं सुरभिशीलगन्धविशेषणं द्रष्टव्यम् ॥ जीवदया एव

संघस्य मन्दरेणौपम्यं. गा. १२-१७ १५ २० ॥ ४६ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सुन्दराणि स्वपरनिर्वृतिहेतुतया कन्दराणि तपस्विनामावासभूतत्वात्, तथा च लोकेऽपि प्रतीतम् 'अहिंसाव्यवस्थितः तपस्वी'ति जीवदयासुन्दरकन्दराणि, तेषु ये उत्–प्राबल्येन कर्मशत्रुजयं प्रति दर्पिता उद्दर्पिता मुनिवरा एव शाक्यादिमृगपराजयात् मृगेन्द्राः तैराकीर्णो–व्याप्तस्तस्य, तथा मन्दरगिरेर्गुहासु निष्यन्दवन्ति चन्द्रकान्तादीनि रत्नानि भवन्ति कनकादिधातवो दीप्ताश्चौषधयः, सह्यमन्दरगिरिपक्षे तु अन्वयव्यतिरेकलक्षणा ये हेतवस्तेषां शतानि हेतुशतानि तान्येव धातवः, कुयुक्तिव्युदासेन तेषां स्वरूपेण भास्वरत्वात्, तथा प्रगलन्ति–निष्यन्दमानानि क्षायोपशमिकभावस्यन्दित्वात् श्रुतरत्नानि दीप्ताः–जाज्वल्यमाना ओषधयः–आमर्शौषध्यादयो गुहासु–व्याख्यानशालारूपासु यस्य स तथा तस्य ॥ संवरः—प्राणातिपातादिरूपपञ्चाश्रवप्रत्याख्यानं तदेव कर्ममलप्रक्षालनात् सांसारिकतृडपनोदकारित्वात् परिणामसुन्दरत्वाच्च वरजलमिव संवरवरजलं तस्य प्रगलितः—सातत्येन व्यूढः उज्झरः–प्रवाहः स एव प्रविराजमानो हारो यस्य स तथा, श्रावकजना एव स्तुतिस्तोत्रस्वाध्यायविधानमुखरतया प्रचुरा रवन्तो मयूराः तैर्नृत्यन्तीव कुहराणि–जिनमण्डपादिरूपाणि यस्य स तथा तस्य ॥ विनयेन नता विनयनता ये प्रवरमुनिवराः त एव स्फुरन्त्यो विद्युतो विनयनतप्रवरमुनिवरस्फुरद्विद्युतः ताभिर्ज्वलन्ति–भासमानानि शिखराणि यस्य स तथा तस्य, इह शिखरस्थानीयाः प्रावचनिका विशिष्टा आचार्यादयो द्रष्टव्याः, विनयनतानां च प्रवरमुनिवराणां विद्युता रूपणं विनयादिरूपेण तपसा तेषां भासुरत्वात्, तथा विविधा गुणा येषां ते

संघस्य मन्दरेणौपम्यं.

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१७॥

दीप अनुक्रम [१]७

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ४७ ॥

विविधगुणाः, विशेषणान्यथानुपपत्त्या साधवो गृह्यन्ते, त एव विशिष्टकुलोत्पन्नत्वात् परमानन्दरूपसुखहेतुधर्म्मफलदानाच्च कल्पवृक्षा इव विविधगुणकल्पवृक्षकाः, प्राकृतत्वात् स्वार्थे कप्रत्ययः, तेषां च यः फलभरो यानि च कुसुमानि तैराकुलानि वनानि यस्य स तथा तस्य, इह फलभरस्थानीयो मूलोत्तरगुणरूपो धर्मः, कुसुमानि नानाप्रकारा ऋद्धयः, वनानि तु गच्छाः ॥ तथा—ज्ञानमेव परमनिर्वृतिहेतुत्वाद्वरं रत्नं ज्ञानवररत्नं तदेव दीप्यमाना कान्ता विमला वैडूर्यमयी चूडा यस्य स तथा, तत्र मन्दरपक्षे वैडूर्यमयी चूडा कान्ता विमला च सुप्रतीता, संघमन्दरपक्षे तु कान्ता भव्यजनमनोहारित्वाद्विमला यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपोपलम्भात्मकत्वात्, तस्य इत्थंभूतस्य सङ्घमहामन्दरगिरेर्यन्माहात्म्यं तद्विनयप्रणतो वन्दे ॥ तदेवं संघस्यानेकधा स्तवोऽभिहितः, सम्प्रत्यावलिकाः प्रतिपादनीयाः, ताश्च तिस्रः, तद्यथा–तीर्थकरावलिका गणधरावलिका स्थविरावलिका च, तत्र प्रथमतः तीर्थकरावलिकामाह—

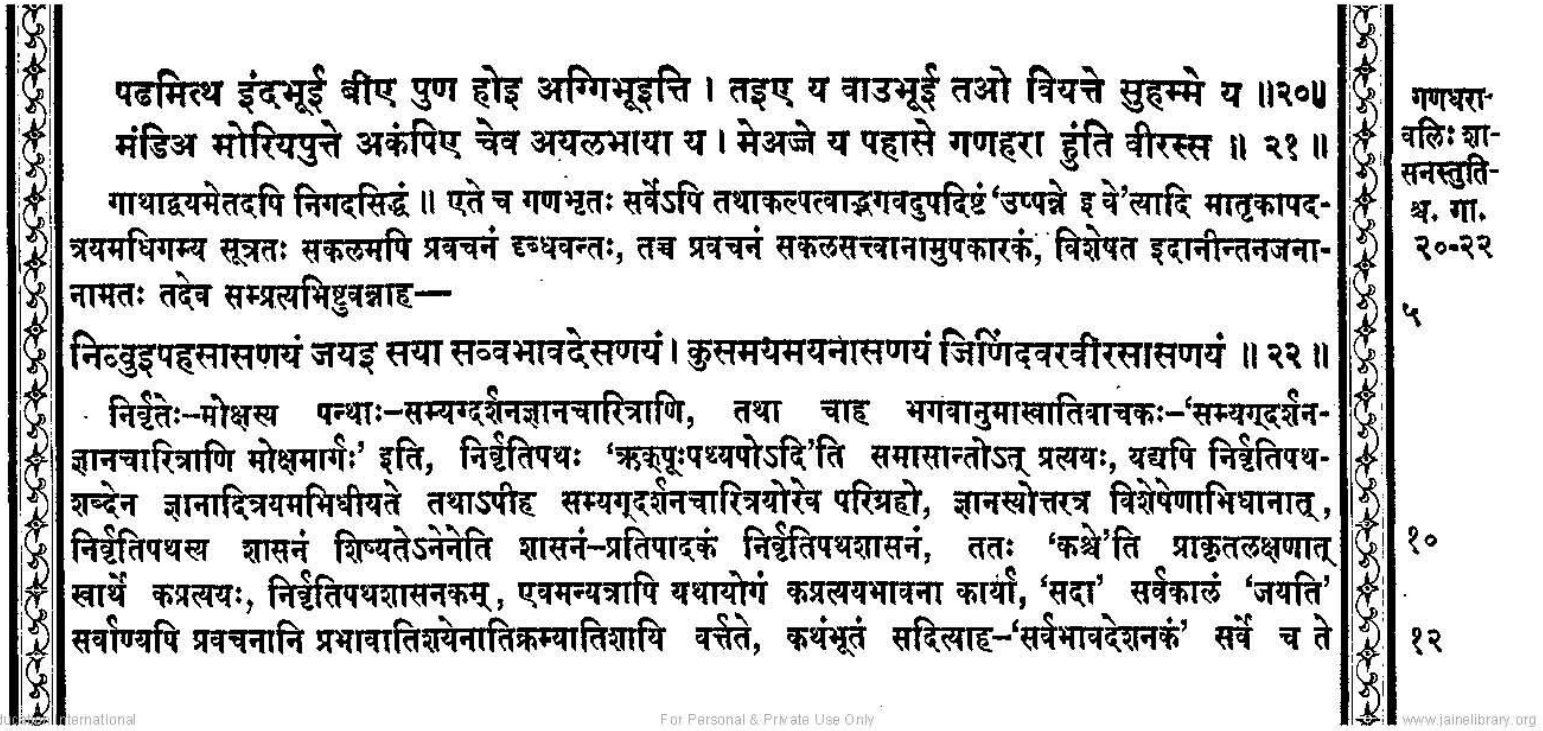
उसभं अजियं संभवमभिनंदण सुमइ सुप्पभ सुपासं । ससि पुप्फदंत सीयल सिज्जंसं वासुपुज्जं च॥१॥
विमलमणंतय धम्मं सन्तिं कुथुं अरं च मल्लिं च । मुनिसुव्वय नमि नेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥ १९॥
गाथाद्वयं निगदसिद्धं ॥ गणधरावलिका तु या यस्य तीर्थकृतः सा तस्य प्रथमानुयोगतो द्रष्टव्या, भगवद्वर्द्धमानस्वामिन आह—

१५ २० तीर्थकरावलिकथनं. गा. १८-१९ ॥ ४७ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्विंशतिः तिर्थंकराणां नामोच्चारणं.

प्रत सूत्रांक ॥२०॥ दीप अनुक्रम [२०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



पढमित्थ इंदभूई बीए पुण होइ अग्गिभूइत्ति । तइए य वाउभूई तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥२०॥
मंडिअ मोरियपुत्ते अकंपिए चेव अयलभाया य । मेअज्जे य पहासे गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २१ ॥

गाथाद्वयमेतदपि निगदसिद्धं ॥ एते च गणभृतः सर्वेऽपि तथाकल्पत्वाद्भगवदुपदिष्टं 'उप्पन्ने इ वे'त्यादि मातृकापद-त्रयमधिगम्य सूत्रतः सकलमपि प्रवचनं ग्रन्थवन्तः, तच्च प्रवचनं सकलसत्त्वानामुपकारकं, विशेषत इदानीन्तनजना-नामतः तदेव सम्प्रत्यभिष्टुवन्नाह—

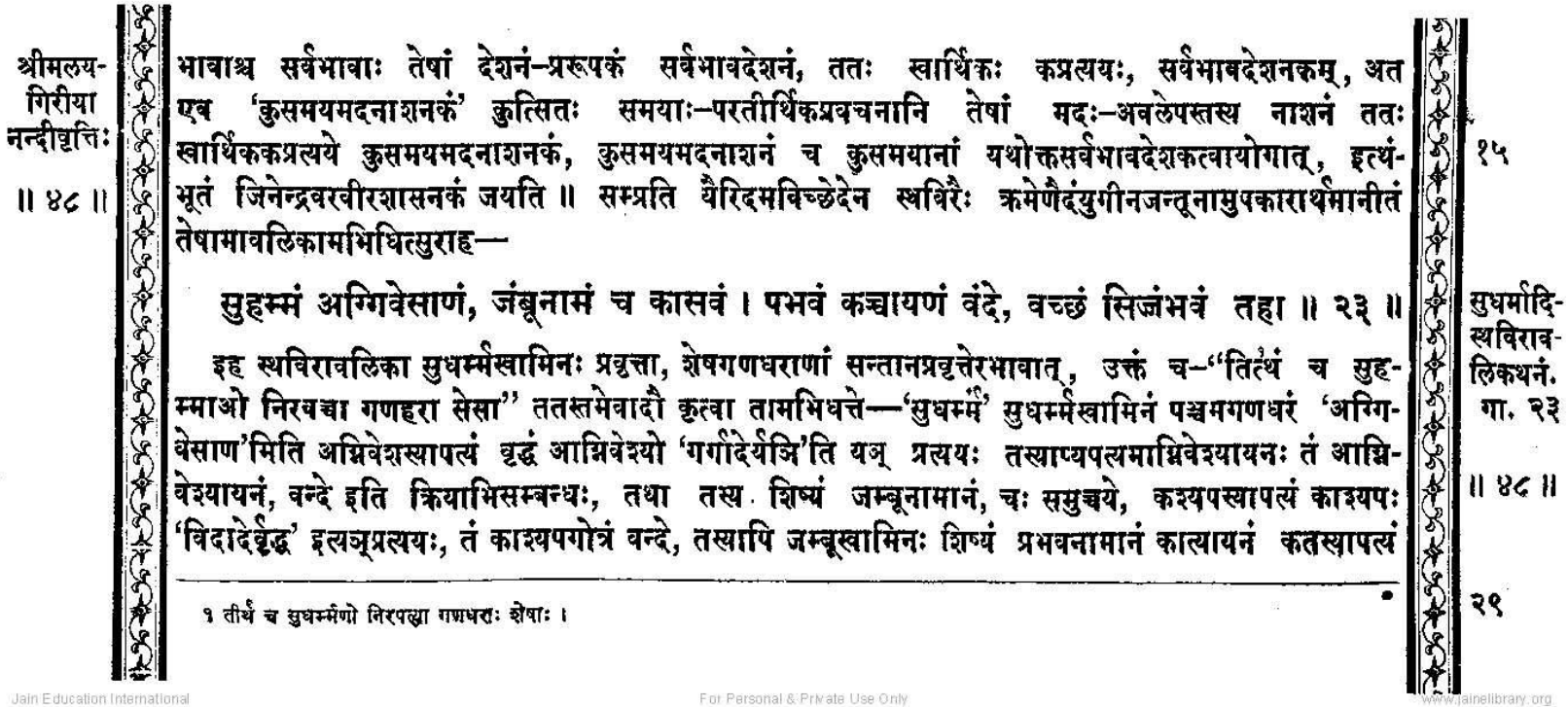
निव्वुइपहसासणयं जयइ सया सव्वभावदेसणयं । कुसमयमयनासणयं जिणिंदवरवीरसासणयं ॥ २२ ॥

निर्वृतेः–मोक्षस्य पन्थाः–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, तथा चाह भगवानुमास्वातिवाचकः–'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इति, निर्वृतिपथः 'ऋक्पूःपथ्यपोऽदि'ति समासान्तोऽत् प्रत्ययः, यद्यपि निर्वृतिपथ-शब्देन ज्ञानादित्रयमभिधीयते तथाऽपीह सम्यग्दर्शनचारित्रयोरेव परिग्रहो, ज्ञानस्योत्तरत्र विशेषेणाभिधानात्, निर्वृतिपथस्य शासनं शिष्यतेऽनेनेति शासनं–प्रतिपादकं निर्वृतिपथशासनं, ततः 'कश्चे'ति प्राकृतलक्षणात् स्वार्थे कप्रत्ययः, निर्वृतिपथशासनकम्, एवमन्यत्रापि यथायोगं कप्रत्ययभावना कार्या, 'सदा' सर्वकालं 'जयति' सर्वाण्यपि प्रवचनानि प्रभावातिशयेनातिक्रम्यातिशायि वर्त्तते, कथंभूतं सदित्याह–'सर्वभावदेशनकं' सर्वे च ते

गणधरा-वलिः शा-सनस्तुति-श्र. गा. २०-२२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	वीर भगवतः एकादश गणधराणां नामोच्चारणं एवं शासनस्य स्तुतिः



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ४८ ॥

भावाश्च सर्वभावाः तेषां देशनं-प्ररूपकं सर्वभावदेशनं, ततः स्वार्थिकः कप्रत्ययः, सर्वभावदेशनकम्, अत एव 'कुसमयमदनाशनकं' कुत्सितः समयाः–परतीर्थिकप्रवचनानि तेषां मदः–अवलेपस्तस्य नाशनं ततः स्वार्थिककप्रत्यये कुसमयमदनाशनकं, कुसमयमदनाशनं च कुसमयानां यथोक्तसर्वभावदेशकत्वायोगात्, इत्थंभूतं जिनेन्द्रवरवीरशासनकं जयति ॥ सम्प्रति यैरिदमविच्छेदेन स्थविरैः क्रमेणेदंयुगीनजन्तूनामुपकारार्थमानीतं तेषामावलिकामभिधित्सुराह—

१५

सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं । पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥ २३ ॥

सुधर्मादि-स्थविरावलिकथनं. गा. २३

इह स्थविरावलिका सुधर्म्मस्वामिनः प्रवृत्ता, शेषगणधराणां सन्तानप्रवृत्तेरभावात्, उक्तं च–"तित्थं च सुहम्माओ निरवच्चा गणहरा सेसा" ततस्तमेवादौ कृत्वा तामभिधत्ते—'सुधर्म्मं' सुधर्म्मस्वामिनं पञ्चमगणधरं 'अग्गिवेसाण'मिति अग्निवेशस्यापत्यं वृद्धं आग्निवेश्यो 'गर्गादेर्यञि'ति यञ् प्रत्ययः तस्याप्यपत्यमाग्निवेश्यायनः तं आग्निवेश्यायनं, वन्दे इति क्रियाभिसम्बन्धः, तथा तस्य शिष्यं जम्बूनामानं, चः समुच्चये, कश्यपस्यापत्यं काश्यपः 'विदादेर्वृद्ध' इत्यञ्प्रत्ययः, तं काश्यपगोत्रं वन्दे, तस्यापि जम्बूस्वामिनः शिष्यं प्रभवनामानं कात्यायनं कतस्यापत्यं

॥ ४८ ॥

१ तीर्थं च सुधर्म्मणो निरपत्या गणधराः शेषाः ।

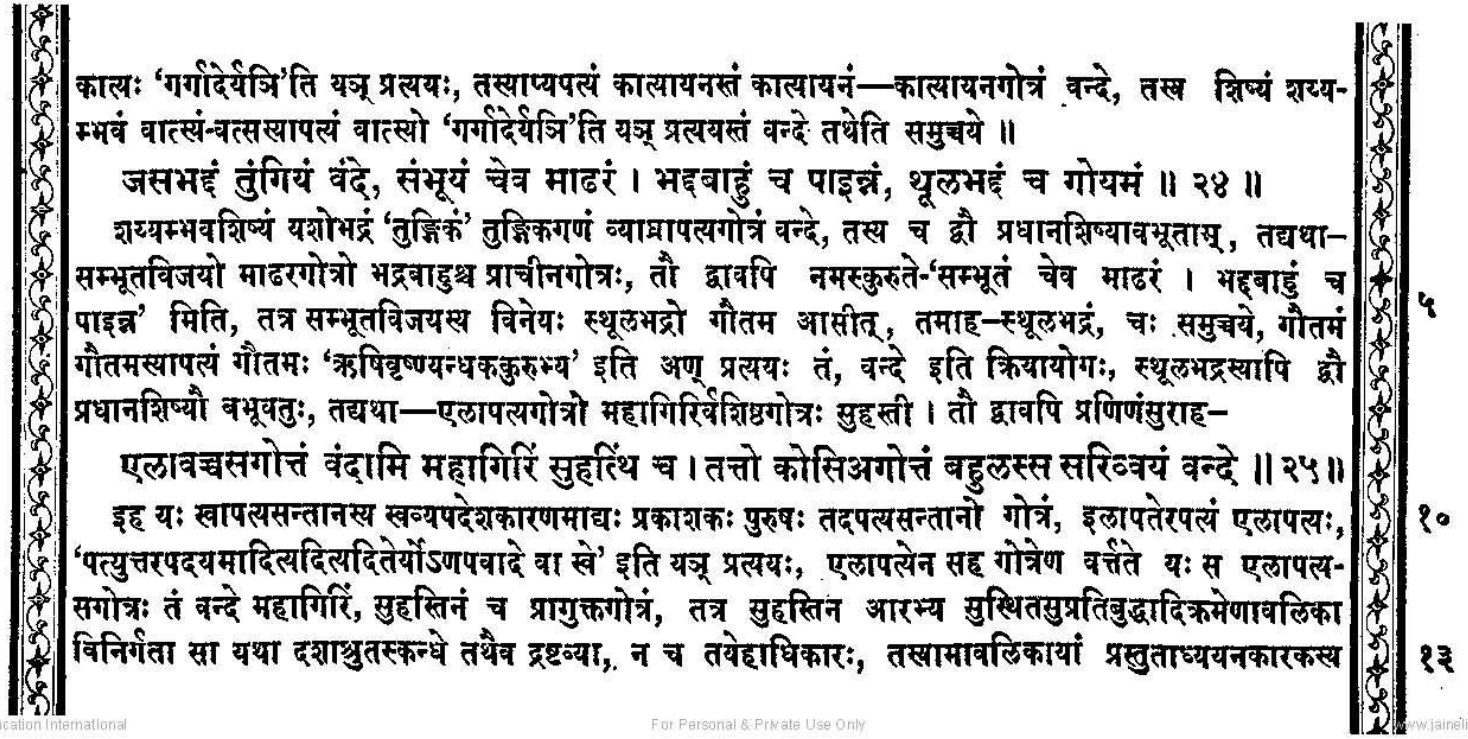
२९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ सुधर्मास्वामी आदि स्थविरावलि-वर्णनं

प्रत सूत्रांक ॥२३॥

दीप अनुक्रम [२३]



कात्यः 'गर्गादेर्यञि'ति यञ् प्रत्ययः, तस्याप्यपत्यं कात्यायनस्तं कात्यायनं—कात्यायनगोत्रं वन्दे, तस्य शिष्यं शय्यम्भवं वात्स्यं-वत्सस्यापत्यं वात्स्यो 'गर्गादेर्यञि'ति यञ् प्रत्ययस्तं वन्दे तथेति समुच्चये ॥

जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं । भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥ २४ ॥

शय्यम्भवशिष्यं यशोभद्रं 'तुङ्गिकं' तुङ्गिकगणं व्याघ्रापत्यगोत्रं वन्दे, तस्य च द्वौ प्रधानशिष्यावभूताम्, तद्यथा–सम्भूतविजयो माढरगोत्रो भद्रबाहुश्च प्राचीनगोत्रः, तौ द्वावपि नमस्कुरुते-'सम्भूतं चेव माढरं । भद्दबाहुं च पाइन्न' मिति, तत्र सम्भूतविजयस्य विनेयः स्थूलभद्रो गौतम आसीत्, तमाह–स्थूलभद्रं, चः समुच्चये, गौतमं गौतमस्यापत्यं गौतमः 'ऋषिवृष्णयन्धककुरुभ्य' इति अण् प्रत्ययः तं, वन्दे इति क्रियायोगः, स्थूलभद्रस्यापि द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः, तद्यथा—एलापत्यगोत्रो महागिरिर्वशिष्ठगोत्रः सुहस्ती । तौ द्वावपि प्रणिपंसुराह–

एलावच्चसगोत्तं वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च । तत्तो कोसिअगोत्तं बहुलस्स सरिव्वयं वन्दे ॥ २५ ॥

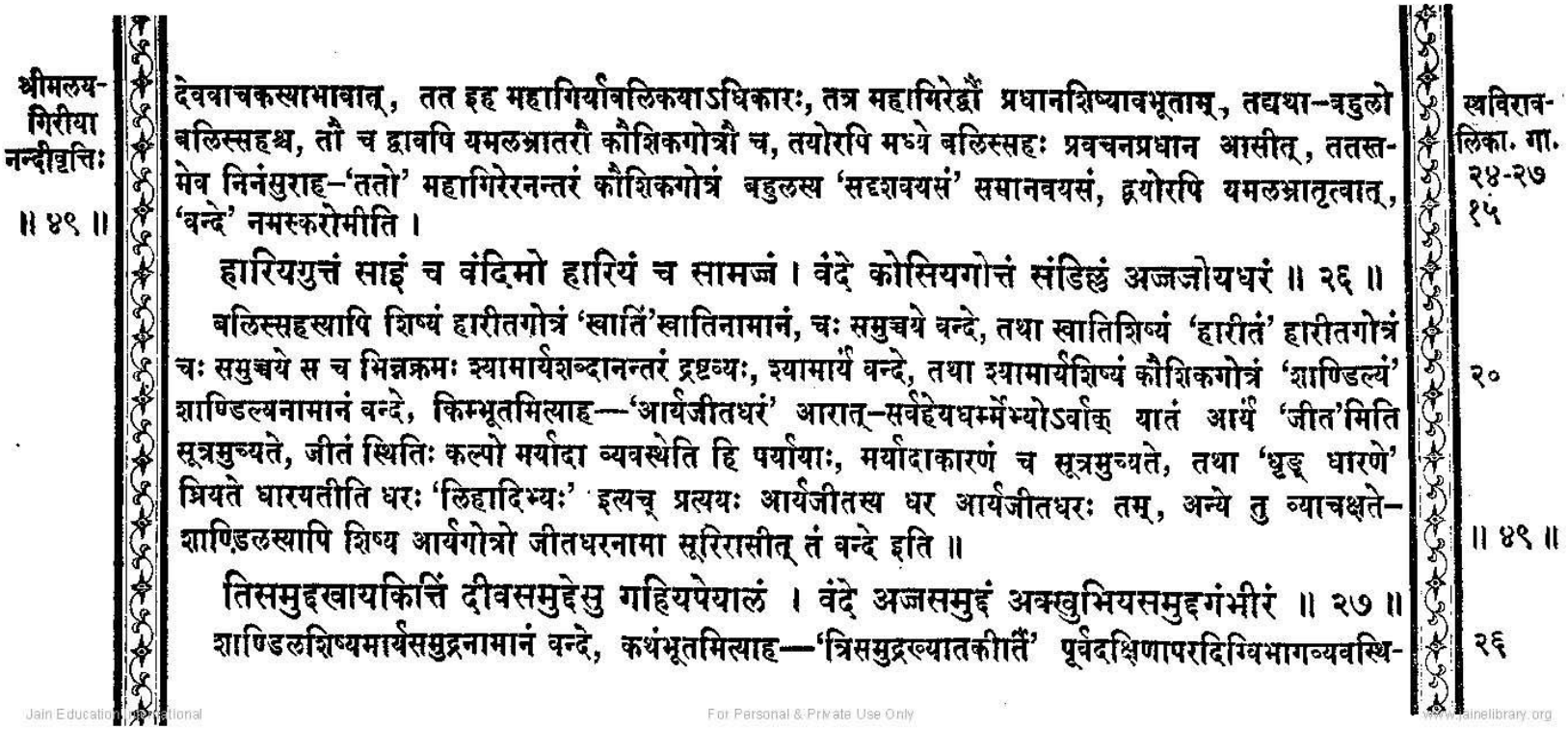
इह यः स्वापत्यसन्तानस्य स्वव्यपदेशकारणमाद्यः प्रकाशकः पुरुषः तदपत्यसन्तानो गोत्रं, इलापतेरपत्यं एलापत्यः, 'पत्युत्तरपदयमादित्यदित्यदितेर्योऽणपवादे वा स्वे' इति यञ् प्रत्ययः, एलापत्येन सह गोत्रेण वर्त्तते यः स एलापत्यसगोत्रः तं वन्दे महागिरिं, सुहस्तिनं च प्रागुक्तगोत्रं, तत्र सुहस्तिन आरभ्य सुस्थितसुप्रतिबुद्धादिक्रमेणावलिका विनिर्गता सा यथा दशाश्रुतस्कन्धे तथैव द्रष्टव्या, न च तयेहाधिकारः, तस्यामावलिकायां प्रस्तुताध्ययनकारकस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥२५॥

दीप अनुक्रम [२५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ४९ ॥

देववाचकस्याभावात्, तत इह महागिर्यावलिकयाऽधिकारः, तत्र महागिरेर्द्वौ प्रधानशिष्यावभूताम्, तद्यथा–बहुलो बलिस्सहश्च, तौ च द्वावपि यमलभ्रातरौ कौशिकगोत्रौ च, तयोरपि मध्ये बलिस्सहः प्रवचनप्रधान आसीत्, ततस्तमेव निनंसुराह–'ततो' महागिरेरनन्तरं कौशिकगोत्रं बहुलस्य 'सदृशवयसं' समानवयसं, द्वयोरपि यमलभ्रातृत्वात्, 'वन्दे' नमस्करोमीति ।

हारियगुत्तं साइं च वंदिमो हारियं च सामज्जं । वंदे कोसियगोत्तं संडिल्लं अज्जजोयधरं ॥ २६ ॥

बलिस्सहस्यापि शिष्यं हारीतगोत्रं 'स्वातिं'स्वातिनामानं, चः समुच्चये वन्दे, तथा स्वातिशिष्यं 'हारीतं' हारीतगोत्रं चः समुच्चये स च भिन्नक्रमः श्यामार्यशब्दानन्तरं द्रष्टव्यः, श्यामार्यं वन्दे, तथा श्यामार्यशिष्यं कौशिकगोत्रं 'शाण्डिल्यं' शाण्डिल्यनामानं वन्दे, किम्भूतमित्याह—'आर्यजीतधरं' आरात्–सर्वहेयधर्म्मेभ्योऽर्वाक् यातं आर्यं 'जीत'मिति सूत्रमुच्यते, जीतं स्थितिः कल्पो मर्यादा व्यवस्थेति हि पर्यायाः, मर्यादाकारणं च सूत्रमुच्यते, तथा 'धृङ् धारणे' ध्रियते धारयतीति धरः 'लिहादिभ्यः' इत्यच् प्रत्ययः आर्यजीतस्य धर आर्यजीतधरः तम्, अन्ये तु व्याचक्षते–शाण्डिलस्यापि शिष्य आर्यगोत्रो जीतधरनामा सूरिरासीत् तं वन्दे इति ॥

तिसमुद्दखायकित्तिं दीवसमुद्देसु गहियपेयालं । वंदे अज्जसमुद्दं अक्खुभियसमुद्दगंभीरं ॥ २७ ॥

शाण्डिलशिष्यमार्यसमुद्रनामानं वन्दे, कथंभूतमित्याह—'त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिं' पूर्वदक्षिणापरदिग्विभागव्यवस्थि-

स्थविरावलिका. गा. २४-२७ १५ २० ॥ ४९ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥२७॥

दीप अनुक्रम [२७]

तत्वात् पूर्वापरदक्षिणाब्धयः समुद्राश्चिसमुद्रम्, उत्तरतस्तु हिमवान् वैताढ्यो वा, त्रिसमुद्रे ख्याता कीर्तिर्यस्यासौ त्रिसमुद्रख्यातकीर्त्तिस्तं, तथा 'द्वीपसमुद्रेषु' द्वीपेषु समुद्रेषु च गृहीतं पेयालं-प्रमाणं येन स गृहीतपेयालस्तम्, अतिशयेन द्वीपसागरप्रज्ञप्तिविज्ञायकमिति भावः, तथा अक्षुभितसमुद्रवद्गम्भीरम् ॥—

भणगं करगं झरगं पभावगं णाणदंसणगुणाणं । वंदामि अज्जमंगुं सुयसागरपारगं धीरं ॥ २८ ॥

आर्यसमुद्रस्यापि शिष्यमार्यमङ्गुं वन्दे,किंभूतमित्याह—'भणकं'कालिकादिसूत्रार्थमनवरतं भणति–प्रतिपादयतीति भणः भण एव भणकः 'कश्चे'ति प्राकृतलक्षणसूत्रात् स्वार्थे कः प्रत्ययः तं, तथा 'कारकं' कालिकादिसूत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिरूपं क्रियाकलापं करोति कारयतीति वा कारकस्तं, तथा धर्म्मध्यानं ध्यायतीति ध्याता तं ध्यातारं, इह यद्यपि सामान्यतः कारकमिति वचनाद् ध्यातारमिति विशेषणं गतार्थं तथापि तस्य विशेषतोऽभिधानं ध्यानस्य प्रधानपरलोकाङ्गताख्यापनार्थं, तथा यत एव भणकं कारकं ध्यातारं वा अत एव प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानाम् 'एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणमिति' न्यायाच्चरणगुणानामपि परिग्रहः, तथा धिया राजते इति धीरस्तं, तथा श्रुतसागरपारगं ॥— ●

नाणंमि दंसणंमि अ तवविणए णिच्चकालमुज्जुत्तं । अज्जं नंदिलखमणं सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥ २९ ॥

आर्यमङ्गोरपि शिष्यमार्यनन्दिलक्षपणं प्रसन्नमनसम्—अरक्तद्विष्टान्तःकरणं शिरसा वन्दे, कथम्भूतमित्याह–'ज्ञाने'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

● अत्र द्वे प्रक्षेपे गाथे वर्तते. ते गाथे मत्संपादित "आगमसुत्ताणि" मूलं एवं सटीकं द्वयोः अपि पुस्तके मुद्रिते ।

श्रुतज्ञाने 'दर्शने' सम्यक्त्वे, चशब्दाच्चारित्रे च, तथा तपसि—यथायोगमनशनादिरूपे विनये—ज्ञानविनयादिरूपे 'नित्यकालं' सर्वकालम् 'उद्युक्तम्' अप्रमादिनं ॥—

स्थविरावलिका. गा. २८-३०

वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जनागहत्थीणं । वागरणकरणभंगियकम्मपयडीपहाणाणं ॥ ३० ॥

१७

पूर्वगतं सूत्रमन्यच्च विनेयान् वाचयन्तीति वाचकाः तेषां वंशः–क्रमभाविपुरुषपर्वप्रवाहः स 'वर्द्धतां' वृद्धिमुपयातु, मा कदाचिदपि तस्य वृद्धिमुपगच्छतो विच्छेदो भूयादितियावत्, वर्द्धतामित्यत्राशंसायां पञ्चमी, कथम्भूतो वाचकवंश इत्याह—'यशोवंशो' मूर्त्तो यशसो वंश इव–पर्वप्रवाह इव यशोवंशः, अनेनापयशःप्रधानपुरुषवंशव्यवच्छेदमाह, तथाहि–अपयशःप्रधानानामपारसंसारसरित्पतिश्रोतःपतितानां परममुनिजनोपधृतलिङ्गविडम्बकानामलं सन्तानपरिवृद्ध्येति, केषां सम्बन्धी वाचकवंशः परिवर्द्धतामित्याह–आर्यनागहस्तिनामार्यनन्दिलक्षपणशिष्याणां, कथम्भूतानामित्याह—'व्याकरणकरणभङ्गीकर्म्मप्रकृतिप्रधानानां' तत्र व्याकरणं–संस्कृतशब्दव्याकरणं प्राकृतशब्दव्याकरणं च प्रश्नव्याकरणं वा करणं—पिण्डविशुद्ध्यादि, उक्तं च—"पिंडविसोही समिई भावण पडिमा य इंदियनिरोहो । पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु ॥ १ ॥" भङ्गी—भङ्गबहुलं श्रुतं कर्म्मप्रकृतिः—प्रतीता, एतेषु प्ररूपणामधिकृत्य प्रधानानाम् ॥—

२२

॥ ५० ॥

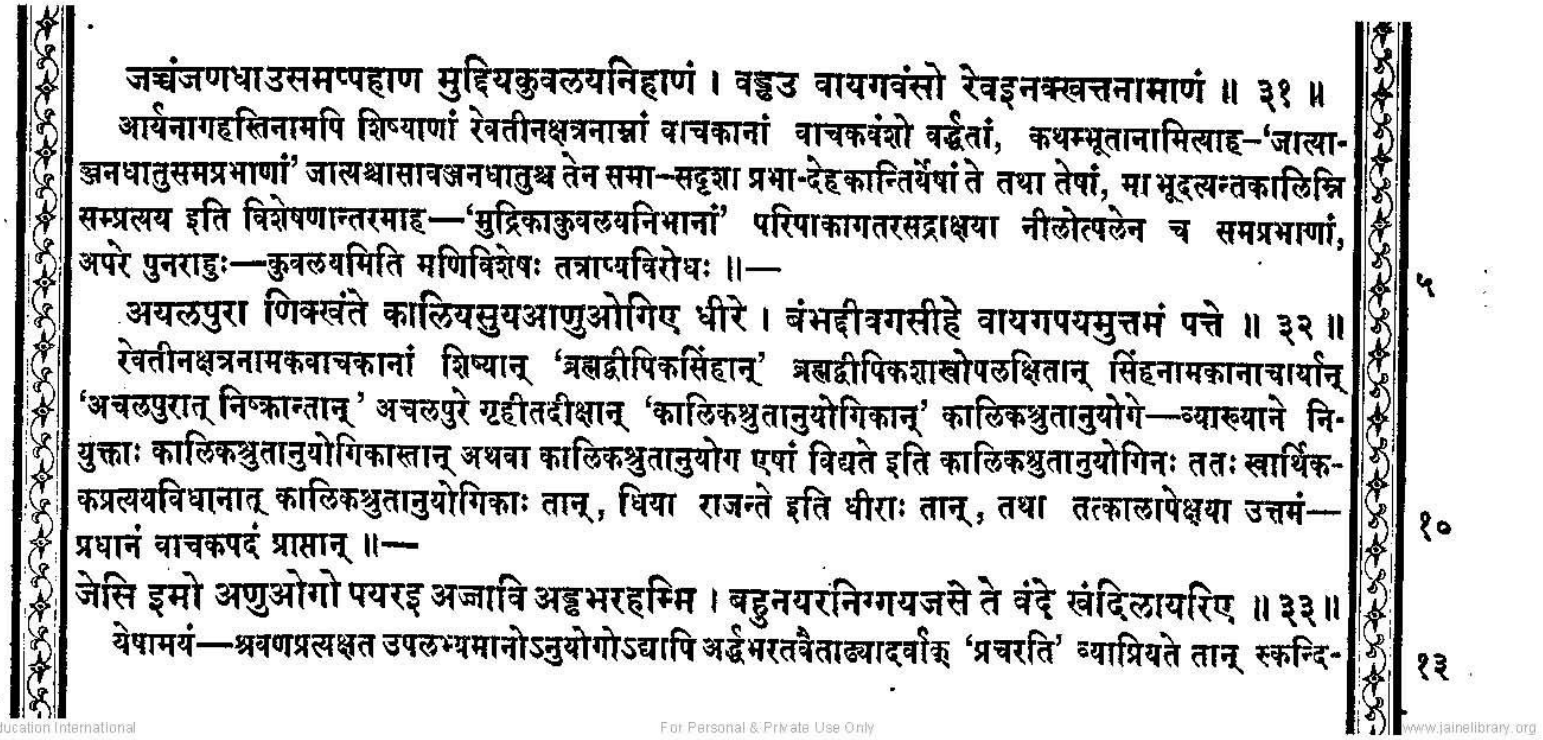
१ पिण्डविशुद्धिः समितिर्भावना प्रतिमाश्च इन्द्रियनिरोधः । प्रतिलेखना गुप्तयः अभिग्रहाश्चैव करणं तु ॥ १ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३१॥

दीप अनुक्रम [३३]



जच्चंजणधाउसमप्पहाण मुद्दियकुवलयनिहाणं । वड्ढउ वायगवंसो रेवइनक्खत्तनामाणं ॥ ३१ ॥

आर्यनागहस्तिनामपि शिष्याणां रेवतीनक्षत्रनाम्नां वाचकानां वाचकवंशो वर्द्धतां, कथम्भूतानामित्याह–'जात्याञ्जनधातुसमप्रभाणां' जात्यश्चासावञ्जनधातुश्च तेन समा–सदृशा प्रभा-देहकान्तिर्येषां ते तथा तेषां, मा भूदत्यन्तकालिन्नि सम्प्रत्यय इति विशेषणान्तरमाह—'मुद्रिकाकुवलयनिभानां' परिपाकागतरसद्राक्षया नीलोत्पलेन च समप्रभाणां, अपरे पुनराहुः—कुवलयमिति मणिविशेषः तत्राप्यविरोधः ॥—

अयलपुरा णिक्खंते कालियसुयआणुओगिए धीरे । बंभद्दीवगसीहे वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३२ ॥

रेवतीनक्षत्रनामकवाचकानां शिष्यान् 'ब्रह्मद्वीपिकसिंहान्' ब्रह्मद्वीपिकशाखोपलक्षितान् सिंहनामकानाचार्यान् 'अचलपुरात् निष्क्रान्तान्' अचलपुरे गृहीतदीक्षान् 'कालिकश्रुतानुयोगिकान्' कालिकश्रुतानुयोगे—व्याख्याने नियुक्ताः कालिकश्रुतानुयोगिकास्तान् अथवा कालिकश्रुतानुयोग एषां विद्यते इति कालिकश्रुतानुयोगिनः ततः स्वार्थिककप्रत्ययविधानात् कालिकश्रुतानुयोगिकाः तान्, धिया राजन्ते इति धीराः तान्, तथा तत्कालापेक्षया उत्तमं—प्रधानं वाचकपदं प्राप्तान् ॥—

जेसिं इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि । बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए ॥ ३३ ॥

येषामयं—श्रवणप्रत्यक्षत उपलभ्यमानोऽनुयोगोऽद्यापि अर्द्धभरतवैताढ्यादर्वाक् 'प्रचरति' व्याप्रियते तान् स्कन्दि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ५१ ॥

लाचार्यान् सिंहवाचकसूरिशिष्यान् बहुषु नगरेषु निर्गतं–प्रसृतं यशो येषां ते बहुनगरनिर्गतयशसस्तान् वन्दे । अथायमनुयोगोऽर्द्धभरते व्याप्रियमाणः कथं तेषां स्कन्दिलनाम्नामाचार्याणां सम्बन्धी?, उच्यते, इह स्कन्दिलाचार्यप्रतिपत्तौ दुष्षमसुषमाप्रतिपन्थिन्याः तद्भवसकलशुभभावग्रसनैकसमारम्भायाः दुष्षमायाः साहायकमाधातुं परमसुहृदिव द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षमुदपादि, तत्र चैवंरूपे महति दुर्भिक्षे भिक्षालाभस्यासम्भवादवसीदतां साधूनामपूर्वार्थग्रहणपूर्वार्थस्मरणश्रुतपरावर्त्तनानि मूलत एवापजग्मुः, श्रुतमपि चातिशायि प्रभूतमनेशत्, अङ्गोपाङ्गादिगतमपि भावतो विप्रनष्टम्, तत्परावर्त्तनादेरभावात्, ततो द्वादशवर्षानन्तरमुत्पन्ने सुभिक्षे मथुरापुरि स्कन्दिलाचार्यप्रमुखश्रमणसङ्घेनैकत्र मिलित्वा यो यत्स्मरति स तत्कथयतीत्येवं कालिकश्रुतं पूर्वगतं च किञ्चिदनुसन्धाय घटितं, यतश्चैतन्मथुरापुरि सङ्घटितमत इयं वाचना माथुरीत्यभिधीयते, सा च तत्कालयुगप्रधानानां स्कन्दिलाचार्याणामभिमता तैरेव चार्थतः शिष्यबुद्धिं प्रापितेति तदनुयोगः तेषामाचार्याणां सम्बन्धीति व्यपदिश्यते । अपरे पुनरेवमाहुः—न किमपि श्रुतं दुर्भिक्षवशात् अनेशत्, किन्तु तावदेव तत्काले श्रुतमनुवर्त्तते स्म, केवलमन्ये प्रधाना येऽनुयोगधराः ते सर्वेऽपि दुर्भिक्षकालकवलीकृताः, एक एव स्कन्दिलसूरयो विद्यन्ते स्म, ततस्तैर्दुर्भिक्षापगमे मथुरापुरि पुनरनुयोगः प्रवर्त्तित इति वाचना माथुरीति व्यपदिश्यते, अनुयोगश्च तेषामाचार्याणामिति ॥—

तत्तो हिमवन्तमहंतविक्कमे धिइपरक्कममणंते । सज्झायमणंतधरे हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥ ३४॥

स्थविरावलिका. गा. ३१-३४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३४॥ दीप अनुक्रम [३६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

'ततः' स्कन्दिलाचार्यानन्तरं तच्छिष्यान् हिमवतो—हिमवन्नामकान् 'हिमवन्महाविक्रमान्' हिमवत इव महान् विक्रमो–विहारक्रमेण प्रभूतक्षेत्रव्याप्तिरूपो येषां ते तथा तान्, 'धिइपरक्कममणंते' इति अनन्तधृतिपराक्रमान्, प्राकृतशैल्याऽनन्तशब्दस्यान्यथोपन्यासः सूत्रे,अनन्तः—अपरिमितो धृतिप्रधानः पराक्रमः कर्मशत्रून् प्रति येषां ते तथाविधास्तान्, तथा—'सज्झायमणंतधरे'त्ति अत्रापि प्राकृतशैल्याऽनन्तशब्दस्य परनिपातो मकारस्त्वलाक्षणिकः, तत एवं तात्त्विको निर्देशः 'अनन्तस्वाध्यायधरान्' तत्रानन्तगमपर्यायात्मकत्वादनन्तं सूत्रं तस्य स्वाध्यायं धरन्तीति धराः अनन्तस्वाध्यायस्य धरा अनन्तस्वाध्यायधरास्तान् ॥ भूयोऽपि हिमवदाचार्याणां स्तुतिमाह— ५

कालियसुय अणुओगस्स धारए धारए य पुव्वाणं । हिमवंतखमासमणे वंदे णागज्जुणायरिए ॥३५॥

कालिकश्रुतानुयोगस्य धारकान् 'धारकांश्च पूर्वाणाम्' उत्पादादीनां धारकान् हिमवतः क्षमाश्रमणान् वन्दे । ततः तच्छिष्यान् वन्दे नागार्जुनाचार्यान्, कथम्भूतानित्याह–

मिउमद्दवसंपन्ने अणुपुव्वी वायगत्तणं पत्ते । ओहसुयसमायारे नागज्जुणवायए वंदे ॥ ३६ ॥ १०

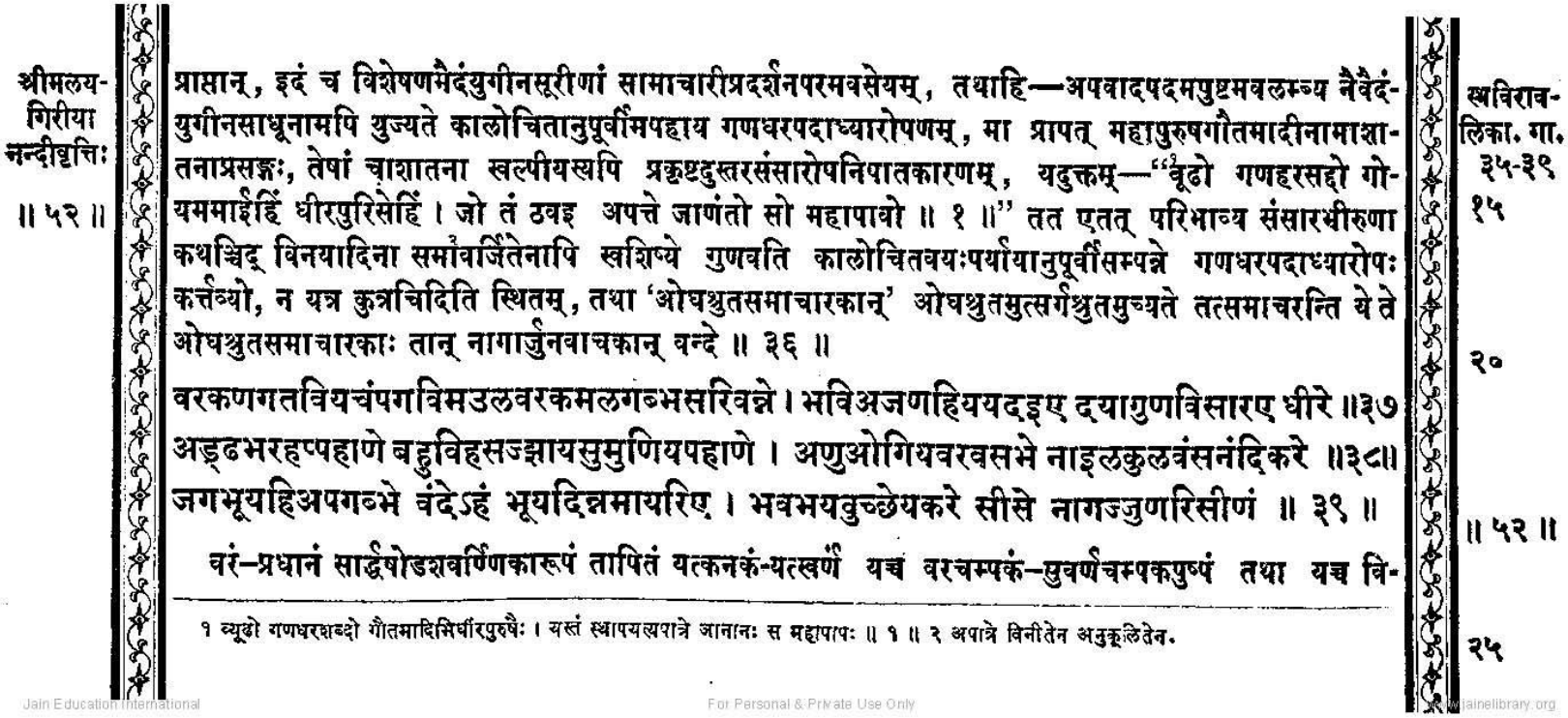
'मृदुमार्दवसम्पन्नान्' मृदु–कोमलं मनोज्ञं सकलभव्यजनमनःसन्तोषहेतुत्वात् यत् मार्दवं तेन सम्पन्नान्, मार्दवं चोपलक्षणं तेन क्षान्तिमार्दवार्जवसन्तोषसम्पन्नानिति द्रष्टव्यम्, तथा 'आनुपूर्व्या' वयःपर्यायपरिपाट्या वाचकत्वं १३

१ सदृशपाठाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३६॥

दीप अनुक्रम [३८]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ५२ ॥

प्राप्तान्, इदं च विशेषणमेदंयुगीनसूरीणां सामाचारीप्रदर्शनपरमवसेयम्, तथाहि—अपवादपदमपुष्टमवलम्ब्य नैवैदंयुगीनसाधूनामपि युज्यते कालोचितानुपूर्वीमपहाय गणधरपदाध्यारोपणम्, मा प्रापत् महापुरुषगौतमादीनामाशातनाप्रसङ्गः, तेषां चाशातना स्वल्पीयस्यपि प्रकृष्टदुस्तरसंसारोपनिपातकारणम्, यदुक्तम्—"[1]वूढो गणहरसद्दो गोयममाईहिं धीरपुरिसेहिं । जो तं ठवइ अपत्ते जाणंतो सो महापावो ॥ १ ॥" तत एतत् परिभाव्य संसारभीरुणा कथञ्चिद् विनयादिना समावर्जितेनापि स्वशिष्ये गुणवति कालोचितवयःपर्यायानुपूर्वीसम्पन्ने गणधरपदाध्यारोपः कर्त्तव्यो, न यत्र कुत्रचिदिति स्थितम्, तथा 'ओघश्रुतसमाचारकान्' ओघश्रुतमुत्सर्गश्रुतमुच्यते तत्समाचरन्ति ये ते ओघश्रुतसमाचारकाः तान् नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ३६ ॥

वरकणगतविचंपगविमउलवरकमलगब्भसरिवन्ने । भविअजणहिययदइए दयागुणविसारए धीरे ॥३७
अड्ढभरहप्पहाणे बहुविहसज्झायसुमुणियपहाणे । अणुओगियवरवसभे नाइलकुलवंसनंदिकरे ॥३८॥
जगभूयहिअपगब्भे वंदेऽहं भूयदिन्नमायरिए । भवभयवुच्छेयकरे सीसे नागज्जुणरिसीणं ॥ ३९ ॥

वरं–प्रधानं सार्द्धषोडशवर्णिकारूपं तापितं यत्कनकं-यत्स्वर्णं यच्च वरचम्पकं–सुवर्णचम्पकपुष्पं तथा यच्च वि-

१ व्यूढो गणधरशब्दो गौतमादिभिर्धीरपुरुषैः । यस्तं स्थापयत्यपात्रे जानानः स महापापः ॥ १ ॥ २ अपात्रे विनीतेन अनुकूलितेन.

स्थविरावलिका. गा. ३५-३९ १५ २० ॥ ५२ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥३९॥

दीप अनुक्रम [४१]

मुकुलं-विकसितं वरं-प्रधानं कमलम्–अम्भोजं तस्य यो गर्भः तत्सदृशवर्णान्-तत्समदेहकान्तीन्, तथा 'भव्यजनहृदयदयितान्' भव्यजनहृदयवल्लभान्, तथा 'दयागुणविशारदान्' सकलजगज्जन्तुदयाविधिविधापनयोरतीव कुशलान्, तथा धिया राजन्ते-शोभन्ते इति धीरास्तान्। तथा 'अर्द्धभरतप्रधानान्' तत्कालापेक्षया सकलार्द्धभरतमध्ये युगप्रधानान् तथा 'सुविज्ञातबहुविधस्वाध्यायप्रधानान्' बहुविध आचारादिभेदात् स्वाध्यायः ततः सुविज्ञातो बहुविधः स्वाध्यायो यैस्ते तथोक्ताः तेषां मध्ये प्रधानान्–उत्तमान्, तथा अनुयोजिताः-प्रवर्त्तिता यथोचिते वैयावृत्त्यादौ वरवृषभाः–सुसाधवो यैस्ते तथोक्तास्तान्, तथा नागेन्द्रकुलवंशस्य नन्दिकरान्, प्रमोदकरानित्यर्थः। तथा 'जगद्भूतहितप्रगल्भान्' अनेकधासकलसत्त्वहितोपदेशदानसमर्थान् 'भवभयव्यवच्छेदकरान्' सदुपदेशादिना संसारभयव्यवच्छेदकरणशीलान्, 'नागार्जुनऋषीणां' नागार्जुनमहर्षिसूरीणां शिष्यान्, भूतदिन्ननामकान् आचार्यानहं वन्दे। सूत्रे च भूतदिन्नशब्दात् मकारोऽलाक्षणिकः ॥—

सुमुणियनिच्चानिच्चं सुमुणियसुत्तत्थधारयं वंदे। सब्भावुब्भावणयातत्थं लोहिच्चणामाणं ॥ ४० ॥

सुष्ठु–यथावस्थिततया मुणितं–ज्ञातं, 'ज्ञो जाणमुणा'विति प्राकृतलक्षणाज्ज्ञानातेर्मुण आदेशः, नित्यानित्यं सामर्थ्याद्वस्त्विति गम्यते, येन स सुज्ञातनित्यानित्यः तं, यथा च वस्तुनो नित्यानित्यता तथा धर्मसंग्रहणिटीकायां सविस्तरमभिहितमिति नेह भूयोऽभिधीयते, मा भूद्ग्रन्थगौरवमितिकृत्वा, एतेन न्यायवेदिता तस्यावेदिता, तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४०॥

दीप अनुक्रम [४२]

सुष्ठु–अतिशयेन ज्ञातं यत्सूत्रमर्थश्च तस्य धारकम्, अनेन सदैवाभ्यस्तसूत्रार्थता तस्यावेद्यते, तथा सन्तो–यथावस्थिता विद्यमाना भावाः–सद्भावाः तेषामुद्भावना—प्रकाशनं सद्भावोद्भावना तस्यां तथ्यम्–अविसंवादिनं सद्भावोद्भावनातथ्यम्, एतेन तस्य सम्यक्प्ररूपकत्वमुक्तम्, इत्थम्भूतं भूतदिन्नाचार्यशिष्यं लोहित्यनामानमहं वन्दे ॥

अत्थमहत्थक्खाणिं सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं। पयईइ महुरवाणिं पयओ पणमामि दूसगणिं ॥४१

तत्र भाषाभिधेया अर्था विभाषावार्तिकाभिधेया महार्थाः तेषामर्थमहार्थानां खानिरिव अर्थमहार्थखानिः तं, एतेन भाषाविभाषावार्त्तिकरूपानुयोगविधावतीव पटीयस्त्वमावेदयति, तथा सुश्रमणानां–विशिष्टमूलोत्तरगुणकलितसंयतानामपूर्वशास्त्रार्थव्याख्याने पृष्टार्थकथने च निर्वृतिः–समाधिर्यस्य स तथा तं, तथा प्रकृत्या–स्वभावेन मधुरवाचं–मधुरगिरं न शिष्यगतमनाक्प्रमादादिरूपकोपहेतुसम्पत्तावपि कोपोदयवशतो निष्ठुरभाषणम्, एतेन शिष्यानुवर्त्तनायामतिकौशलमाह, तथाहि–गुणसम्पद्योग्यान् कथञ्चित् प्रमादिनोऽपि दृष्ट्वा धर्मानुगतैः मधुरवचोभिराचार्यस्तान् शिक्षयेत् यथा तेषां मनःप्रसादमेव विशिष्टगुणप्रतिपत्त्यभिमुखमश्नुते, न कोपं प्रतिपन्नगुणभ्रंशकारणमिति, उक्तं च—"धम्ममइएहिं अइसुन्दरेहिं कारणगुणोवणीएहिं। पल्हायन्तो य मणं सीसं चोएइ आयरिओ ॥ १ ॥" तत इत्थं

१ धर्ममयैरतिसुन्दरैः गुणकारणोपनीतैः। प्रह्लादयंश्च मनः शिष्यं नोदयत्याचार्यः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४१॥

दीप अनुक्रम [४३]

शिष्यानुवर्त्तनाकौशल्यख्यापनार्थमुक्तं 'प्रकृत्या मधुरवाच'मिति, तं दूष्यगणिनं 'प्रयतः' प्रयत्नपरः प्रणमामि। पुनरपि दूष्यगणिन एव स्तुतिमाह—

सुकुमालकोमलतले तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे। पाए पावयणीणं पडिच्छयसएहि पणिवइए ॥४२॥

तेषां दूष्यगणिनां 'प्रावचनिकानां' प्रवचने–प्रवचनार्थकथने नियुक्ताः प्रावचनिकास्तेषां, तत्कालापेक्षया युगप्रधानामित्यर्थः, पादान् लक्षणैः–शङ्खचक्रादिभिः प्रशस्तान्–श्रेष्ठान्, तथा सुकुमारम्–अकर्कशं कोमलं–मनोज्ञं तलं येषां तान्, पुनः किम्भूतानित्याह–प्रातीच्छिकशतैः प्रणिपतितान्, इह ये गच्छान्तरवासिनः स्वाचार्यं पृष्ट्वा गच्छान्तरेऽनुयोगश्रवणाय समागच्छन्ति अनुयोगाचार्येण च प्रतीच्छ्यन्ते–अनुमन्यन्ते ते प्रातीच्छिका उच्यन्ते, स्वाचार्यानुज्ञापुरःसरमनुयोगाचार्यप्रतीच्छया चरन्तीति प्रातीच्छिका इति व्युत्पत्तेः, तेषां शतैः प्रणिपतितान्–नमस्कृतान् 'प्रणिपतामि' नमस्करोमि ॥ तदेवमावलिकाक्रमेण महापुरुषाणां स्तवमभिधाय सम्प्रति सामान्येन श्रुतधरनमस्कारमाह—

जे अन्ने भगवंते कालिअसुयआणुओगिए धीरे। ते पणमिऊण सिरसा नाणस्स परूवणं वोच्छं ॥४३॥

ये अन्येऽतीता भाविनश्च भगवन्तः–श्रुतरत्ननिकरपूरितत्वात् समग्रैश्वर्यादिमन्तः कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराविशिष्टधिया राजमानाः तान् 'शिरसा' उत्तमाङ्गेन प्रणम्य 'ज्ञानस्य' आभिनिबोधिकादेः 'प्ररूपणां' प्ररूपणाका-

१ तवनियमसच्चसंजमविणयज्जवखंतिमद्दवरयाणं। सीलं गुणगद्दिआणं अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ १ ॥ (प्र.)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	सामान्येन श्रुतधरमहर्षीणां नमस्कारम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४३॥

दीप अनुक्रम [४५]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ५४ ॥

रकमध्ययनं वक्ष्ये, क एवमाह ?, उच्यते–दूष्यगणिशिष्यो देववाचकः ॥ इह ज्ञानस्य प्ररूपणां वक्ष्य इत्युक्तम्, सा च प्ररूपणा शिष्यानधिकृत्य कर्त्तव्या, शिष्याश्च द्विधा–योग्या अयोग्याश्च, तत्र योग्यानधिकृत्य कर्त्तव्या नायोग्यानिति प्रथमतो योग्यायोग्यविभागोपदर्शनार्थं तावदिदमाह–

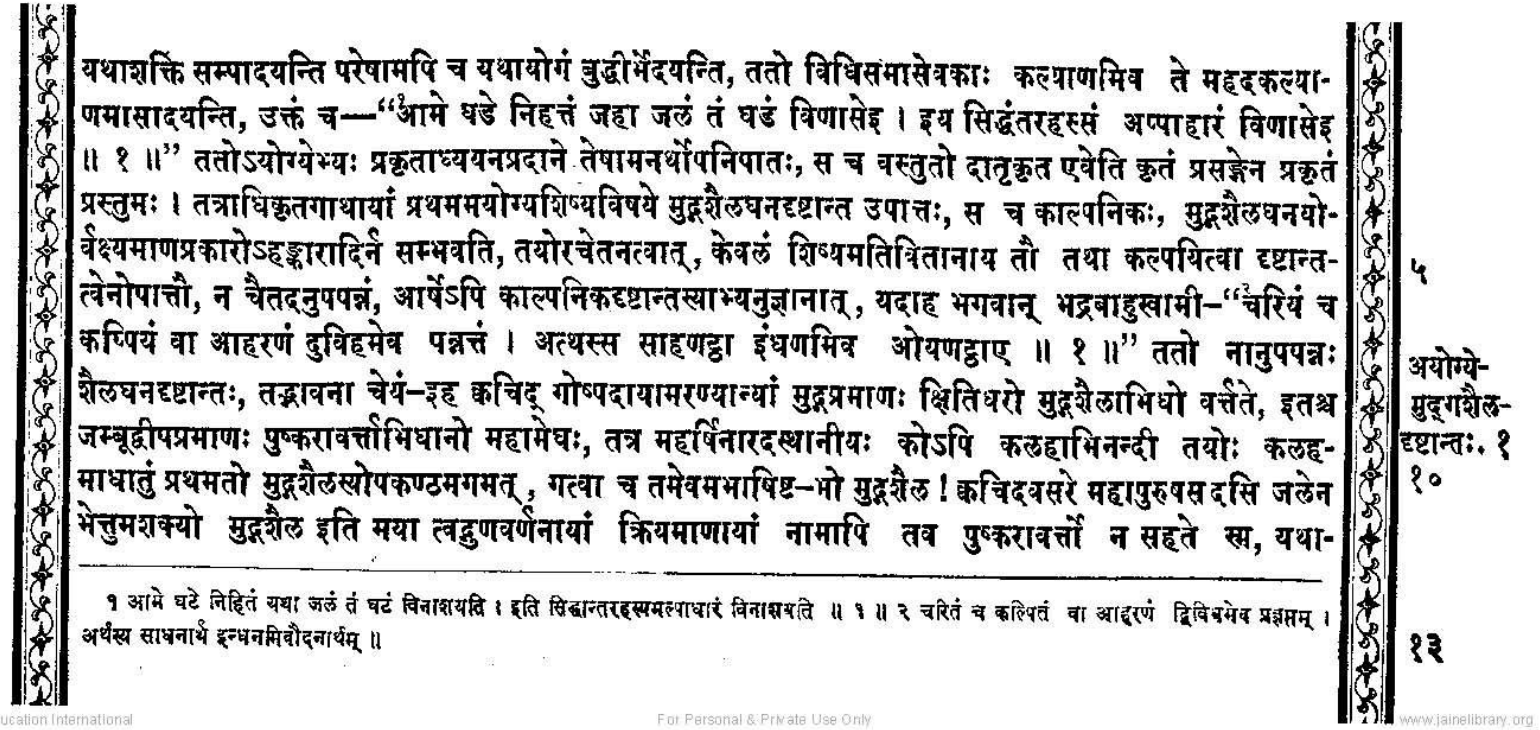
सेलघण १ कुडग २ चालणि ३ परिपूणग ४ हंस ५ महिस ६ मेसे य ७। मसग ८ जलूग ९ विराली १० जाहग ११ गो १२ भेरि १३ आभीरी १४ ॥ ४४ ॥

अत्र पर आह–ननु ये देववाचकनामानः सूरयस्ते महापुरुषाः सदैव समभावव्यवस्थिताः कृपालवः अत एव सकलसत्त्वहितसम्पादनाय कृतोद्यमाः तत्कथमिदमध्ययनं दातुमुद्यता योग्यायोग्यविभागनिरीक्षणमारभन्ते ?, न हि परहितकरणप्रवृत्तमनसो महीयांसो महादानं दातुकामा मार्गणकगुणमपेक्ष्य दानक्रियायां प्रवर्त्तन्ते दयालवः, किन्तु प्रावृषेण्यजलभृत इवाविशेषेण, अत्रोच्यते, यत एव देववाचकसूरयः समभावव्यवस्थिताः सकलसत्त्वहितसम्पादनाय कृतोद्यमा महीयांसः कृपालवश्च अत एव शुभमिदमध्ययनं दातुमुद्यता योग्यायोग्यविनेयजनविभागोपदर्शनमारभन्ते, मा भूदयोग्येभ्यः प्रदाने तेषामनर्थोपनिपात इतिकृत्वा, अथ कथं तेषामेतदध्ययनप्रदाने महानर्थोपनिपातः ?, उच्यते, ते हि तथास्वाभाव्यादेव अचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमज्ञानतमःसमूहभास्करमनेकभवशतसहस्रपरम्परासङ्कलितकर्मराशिविच्छेदकमपीदमध्ययनमवाप्य न विधिवदासेवन्ते, नापि मनसा बहुमन्यन्ते, लाघवमपि चास्य

स्थविरावलिका. गा. ४२-४४ १५ २० ॥ ५४ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानप्ररुपणा संबंधे शिष्याणां योग्यायोग्य विभाग-दर्शनार्थे १४ दृष्टान्ताः



यथाशक्ति सम्पादयन्ति परेषामपि च यथायोगं बुद्धीर्भेदयन्ति, ततो विधिसमासेवकाः कल्याणमिव ते महदकल्याणमासादयन्ति, उक्तं च—"[1]आमे घडे निहत्तं जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्धंतरहस्सं अप्पाहारं विणासेइ ॥ १ ॥" ततोऽयोग्येभ्यः प्रकृताध्ययनप्रदाने तेषामनर्थोपनिपातः, स च वस्तुतो दातृकृत एवेति कृतं प्रसङ्गेन प्रकृतं प्रस्तुमः । तत्राधिकृतगाथायां प्रथममयोग्यशिष्यविषये मुद्गशैलघनदृष्टान्त उपात्तः, स च काल्पनिकः, मुद्गशैलघनयोर्वक्ष्यमाणप्रकारोऽहङ्कारादिर्न सम्भवति, तयोरचेतनत्वात्, केवलं शिष्यमतिवितानाय तौ तथा कल्पयित्वा दृष्टान्तत्वेनोपात्तौ, न चैतदनुपपन्नं, आर्षेऽपि काल्पनिकदृष्टान्तस्याभ्यनुज्ञानात्, यदाह भगवान् भद्रबाहुस्वामी–"[2]चरियं च कप्पियं वा आहरणं दुविहमेव पन्नत्तं । अत्थस्स साहणट्ठा इंधणमिव ओयणट्ठाए ॥ १ ॥" ततो नानुपपन्नः शैलघनदृष्टान्तः, तद्भावना चेयं–इह क्वचिद् गोष्पदायामरण्यान्यां मुद्गप्रमाणः क्षितिधरो मुद्गशैलाभिधो वर्त्तते, इतश्च जम्बूद्वीपप्रमाणः पुष्करावर्त्ताभिधानो महामेघः, तत्र महर्षिनारदस्थानीयः कोऽपि कलहाभिनन्दी तयोः कलहमाधातुं प्रथमतो मुद्गशैलस्योपकण्ठमगमत्, गत्वा च तमेवमभाषिष्ट–भो मुद्गशैल ! क्वचिदवसरे महापुरुषसदसि जलेन भेत्तुमशक्यो मुद्गशैल इति मया त्वद्गुणवर्णनायां क्रियमाणायां नामापि तव पुष्करावर्त्तो न सहते स्म, यथा-

१ आमे घटे निहितं यथा जलं तं घटं विनाशयति । इति सिद्धान्तरहस्यमल्पाधारं विनाशयति ॥ १ ॥ २ चरितं च कल्पितं वा आहरणं द्विविधमेव प्रज्ञप्तम् । अर्थस्य साधनार्थं इन्धनमिवौदनार्थम् ॥

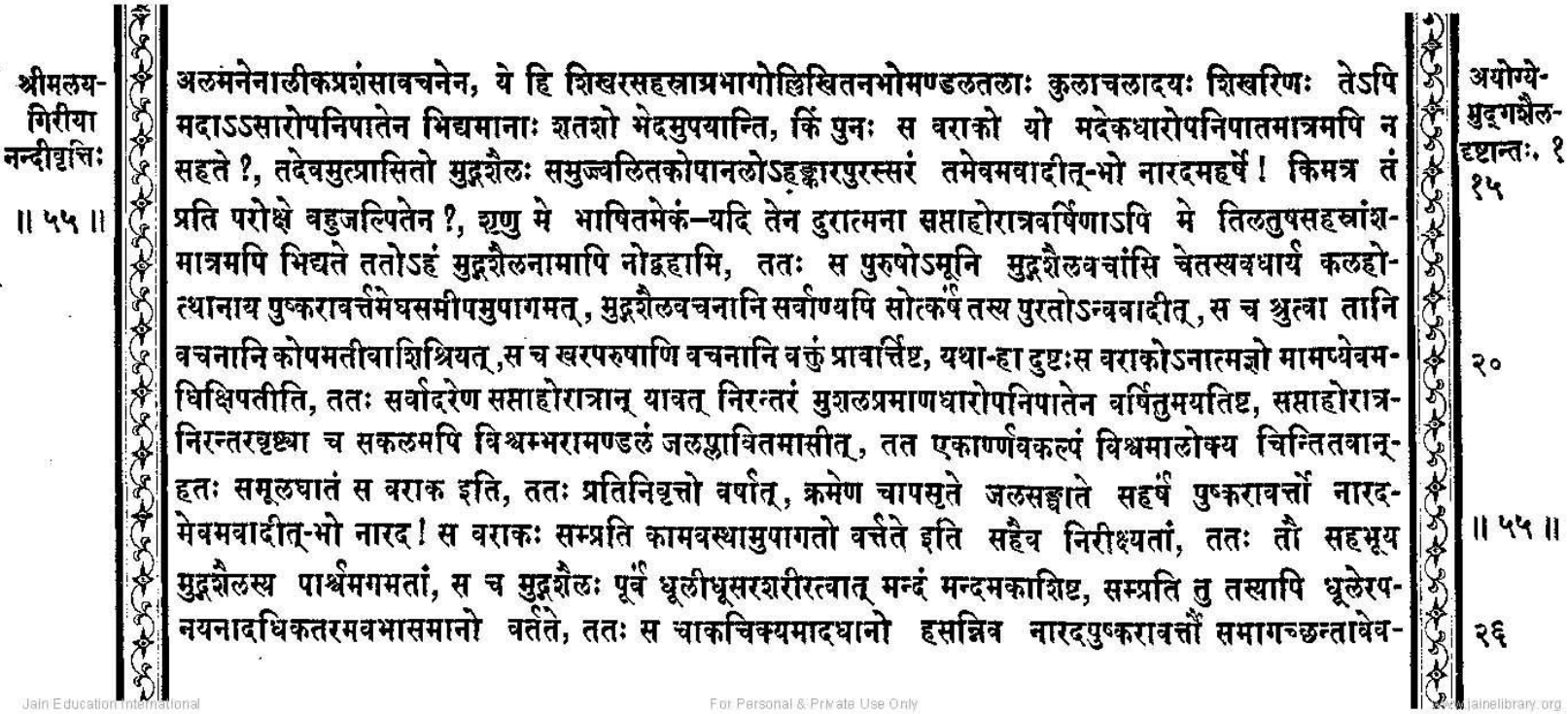
५

अयोग्ये-मुद्गशैल-दृष्टान्तः. १

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



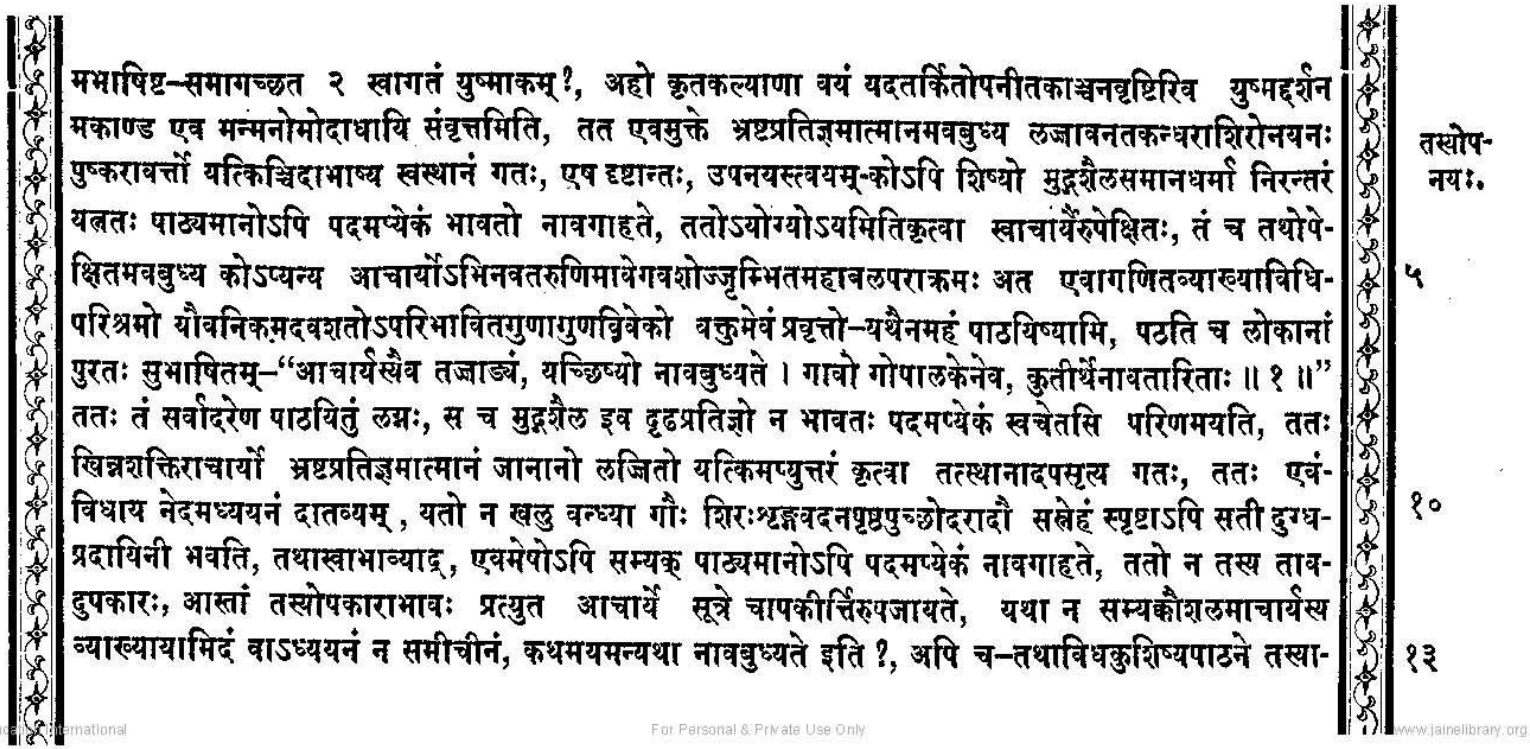
श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ५५ ॥

अलमनेनालीकप्रशंसावचनेन, ये हि शिखरसहस्राग्रभागोल्लिखितनभोमण्डलतलाः कुलाचलादयः शिखरिणः तेऽपि मदाऽऽसारोपनिपातेन भिद्यमानाः शतशो भेदमुपयान्ति, किं पुनः स वराको यो मदेकधारोपनिपातमात्रमपि न सहते ?, तदेवमुत्प्रासितो मुद्गशैलः समुज्वलितकोपानलोऽहङ्कारपुरस्सरं तमेवमवादीत्-भो नारदमहर्षे! किमत्र तं प्रति परोक्षे बहुजल्पितेन ?, शृणु मे भाषितमेकं–यदि तेन दुरात्मना सप्ताहोरात्रवर्षिणाऽपि मे तिलतुषसहस्रांशमात्रमपि भिद्यते ततोऽहं मुद्गशैलनामापि नोद्वहामि, ततः स पुरुषोऽमूनि मुद्गशैलवचांसि चेतस्यवधार्य कलहोत्थानाय पुष्करावर्त्तमेघसमीपमुपागमत्, मुद्गशैलवचनानि सर्वाण्यपि सोत्कर्षं तस्य पुरतोऽन्ववादीत्, स च श्रुत्वा तानि वचनानि कोपमतीवाशिश्रियत्, स च खरपरुषाणि वचनानि वक्तुं प्रावर्त्तिष्ट, यथा-हा दुष्टःस वराकोऽनात्मज्ञो मामप्येवमधिक्षिपतीति, ततः सर्वादरेण सप्ताहोरात्रान् यावत् निरन्तरं मुशलप्रमाणधारोपनिपातेन वर्षितुमयतिष्ट, सप्ताहोरात्रनिरन्तरवृष्ट्या च सकलमपि विश्वम्भरामण्डलं जलप्लावितमासीत्, तत एकार्णवकल्पं विश्वमालोक्य चिन्तितवान्-हतः समूलघातं स वराक इति, ततः प्रतिनिवृत्तो वर्षात्, क्रमेण चापसृते जलसङ्घाते सहर्षं पुष्करावर्त्तो नारदमेवमवादीत्-भो नारद! स वराकः सम्प्रति कामवस्थामुपागतो वर्त्तते इति सहैव निरीक्ष्यतां, ततः तौ सहभूय मुद्गशैलस्य पार्श्वमगमतां, स च मुद्गशैलः पूर्वं धूलीधूसरशरीरत्वात् मन्दं मन्दमकाशिष्ट, सम्प्रति तु तस्यापि धूलेरपनयनादधिकतरमवभासमानो वर्तते, ततः स चाकचिक्यमादधानो हसन्निव नारदपुष्करावर्त्तौ समागच्छन्तावेव-

अयोग्ये-मुद्गशैल-दृष्टान्तः. १ १५ २० ॥ ५५ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४४॥ दीप अनुक्रम [४६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



मभाषिष्ट–समागच्छत २ स्वागतं युष्माकम्?, अहो कृतकल्याणा वयं यदतर्कितोपनीतकाञ्चनवृष्टिरिव युष्मद्दर्शन
मकाण्ड एव मन्मनोमोदाधायि संवृत्तमिति, तत एवमुक्ते भ्रष्टप्रतिज्ञमात्मानमवबुध्य लज्जावनतकन्धराशिरोनयनः
पुष्करावर्त्तो यत्किञ्चिदाभाष्य स्वस्थानं गतः, एष दृष्टान्तः, उपनयस्त्वयम्-कोऽपि शिष्यो मुद्गशैलसमानधर्मा निरन्तरं
यत्नतः पाठ्यमानोऽपि पदमप्येकं भावतो नावगाहते, ततोऽयोग्योऽयमितिकृत्वा स्वाचार्यैरुपेक्षितः, तं च तथोपे-
क्षितमवबुध्य कोऽप्यन्य आचार्योऽभिनवतरुणिमावेगवशोज्जृम्भितमहाबलपराक्रमः अत एवागणितव्याख्याविधि-
परिश्रमो यौवनिकमदवशतोऽपरिभावितगुणागुणविवेको वक्तुमेवं प्रवृत्तो–यथैनमहं पाठयिष्यामि, पठति च लोकानां
पुरतः सुभाषितम्–"आचार्यस्यैव तज्जाड्यं, यच्छिष्यो नावबुध्यते । गावो गोपालकेनेव, कुतीर्थेनावतारिताः ॥ १ ॥"
ततः तं सर्वादरेण पाठयितुं लग्नः, स च मुद्गशैल इव दृढप्रतिज्ञो न भावतः पदमप्येकं स्वचेतसि परिणमयति, ततः
खिन्नशक्तिराचार्यो भ्रष्टप्रतिज्ञमात्मानं जानानो लज्जितो यत्किमप्युत्तरं कृत्वा तत्स्थानादपसृत्य गतः, ततः एवं-
विधाय नेदमध्ययनं दातव्यम् , यतो न खलु वन्ध्या गौः शिरःश्रृङ्गवदनपृष्ठपुच्छोदरादौ सस्नेहं स्पृष्टाऽपि सती दुग्ध-
प्रदायिनी भवति, तथास्वाभाव्याद्, एवमेषोऽपि सम्यक् पाठ्यमानोऽपि पदमप्येकं नावगाहते, ततो न तस्य ताव-
दुपकारः, आस्तां तस्योपकाराभावः प्रत्युत आचार्ये सूत्रे चापकीर्त्तिरुपजायते, यथा न सम्यक्कौशलमाचार्यस्य
व्याख्यायामिदं वाऽध्ययनं न समीचीनं, कथमयमन्यथा नावबुध्यते इति ?, अपि च–तथाविधकुशिष्यपाठने तस्या-

तस्योप-
नयः.

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

दीप अनुक्रम [४६]

बबोधाभावात् उत्तरोत्तरसूत्रार्थानवगाहने सूरेः सकलावपि शास्त्रान्तरगतौ सूत्रार्थौ भ्रंशमाविशतः, अन्येषामपि च पटुश्रोतृणामुत्तरोत्तरसूत्रार्थावगाहनहानिप्रसङ्गः, उक्तं च भाष्यकारेण–"आयरिए सुत्तंमि य परिवाओ सुत्तअत्थपलिमन्थो। अन्नेसिंपि य हाणी पुट्ठावि न दुद्धया वंझा ॥१॥"१॥ मुद्गशैलप्रतिपक्षभूतो योग्यशिष्यविषयो दृष्टान्तः कृष्णभूमिप्रदेशः, तत्र हि प्रभूतमपि जलं निपतितं तत्रैवान्तः परिणमति, न पुनः किञ्चिदपि ततो बहिरपगच्छति, एवं यो विनेयः सकलसूत्रार्थग्रहणधारणासमर्थः स कृष्णभूमिप्रदेशतुल्यः, स च योग्यः, ततस्तस्मै दातव्यमिदमध्ययनमिति, आह च भाष्यकृत्–"वुट्ठेऽवि दोणमेहे न कण्हभोमाउ लोट्टए उदयं। गहणधरणासमत्थे इय देयमछित्तिकारंमि ॥१॥"२॥ सम्प्रति कुटदृष्टान्तभावना क्रियते–कुटा घटाः, ते द्विधा-नवीना जीर्णाश्च, तत्र नवीना नाम ये सम्प्रत्येवाऽऽपाकतः समानीता, जीर्णा द्विधा–भाविता अभाविताश्च, भाविता द्विधा–प्रशस्तद्रव्यभाविता अप्रशस्तद्रव्यभाविताश्च, तत्र ये कर्पूरागुरुचन्दनादिभिः प्रशस्तैर्द्रव्यैर्भाविताः ते प्रशस्तद्रव्यभाविताः, ये पुनः पलाण्डुलशुनसुरातैलादिभिर्भाविताः तेऽप्रशस्तद्रव्यभाविताः, प्रशस्तद्रव्यभाविता अपि द्विधा–वाम्या अवाम्याश्च, अभाविता नाम ये केनापि द्रव्येण न वासिताः, एवं शिष्या अपि प्रथमतो द्विधा–नवीना जीर्णाश्च, तत्र प्रथमतो ये बालभाव एवाद्यापि वर्त्तन्ते अज्ञा-

१ आचार्ये सूत्रे च परिवादः सूत्रार्थपलिमन्थः। अन्येषामपि च हानिः स्पृष्टाऽपि न दुग्धदा वन्ध्या ॥ १ ॥ २ वृष्टेऽपि द्रोणमेघे न कृष्णभूमात् लुठत्युदकम्। ग्रहणधारणसमर्थे इति देयमच्छित्तिकरे ॥ १ ॥

योग्ये-कृष्णभूमिदृष्टान्तः नवादिघटदृष्टान्तश्च. ३

२२

॥ ५६ ॥

शिष्ये उपनयः.

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

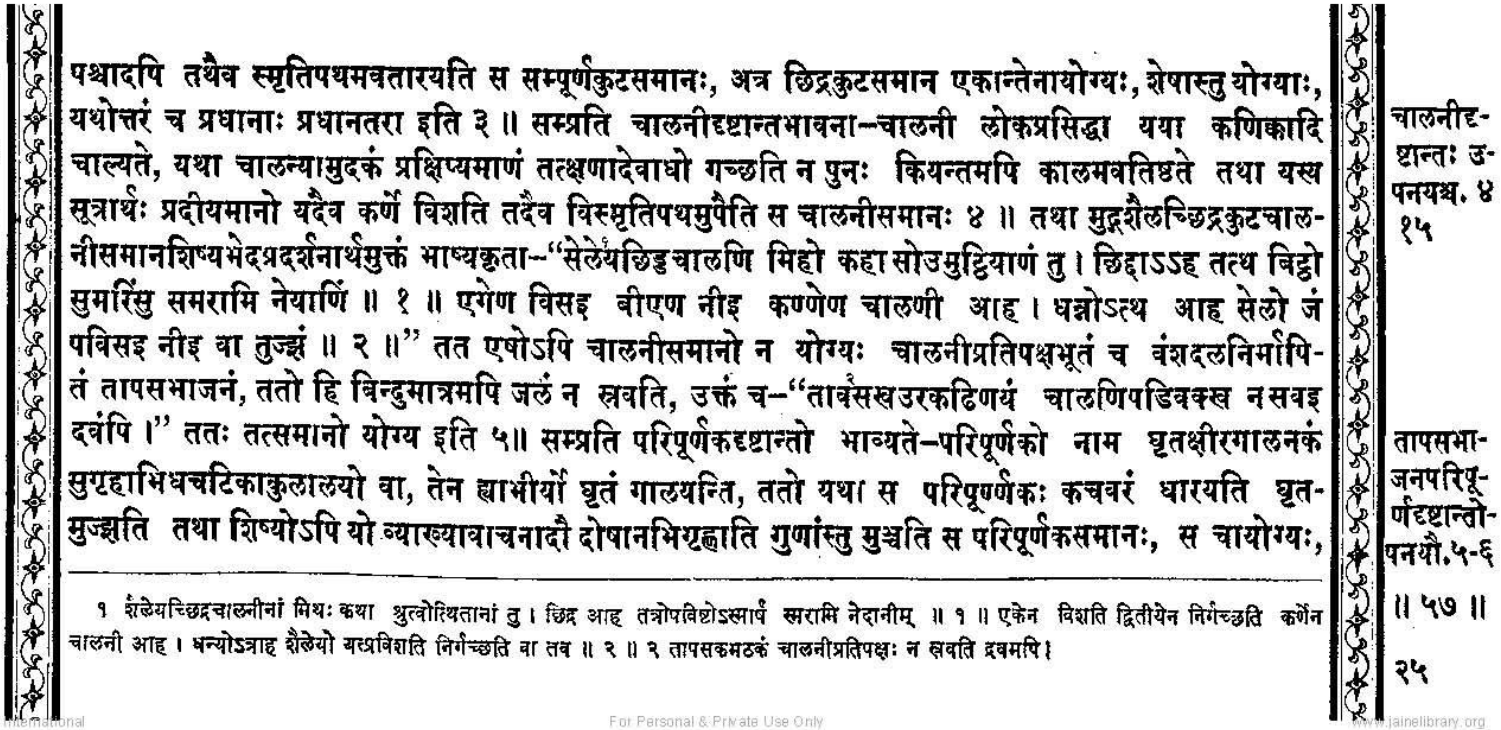
प्रत सूत्रांक ॥४४॥ दीप अनुक्रम [४६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

निनः सम्प्रत्येव च बोधयितुमारब्धास्ते नवीनाः, जीर्णा द्विधा–भाविता अभाविताश्च, तत्राभाविता ये केनापि दर्शनेन न वासिताः, भाविता द्विधा–कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभिः संविग्नैश्च, कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभिरपि भाविता द्विधा–वाम्या अवाम्याश्च, संविग्नैरपि भाविता द्विधा–वाम्या अवाम्याश्च, तत्र ये नवीना ये जीर्णा अभाविता ये च कुप्रावचनिकादिभाविता अपि वाम्याः ये च संविग्नभाविता अवाम्याः ते सर्वेऽपि योग्याः, शेषाः अयोग्याः । अथवा अन्यथा कुटदृष्टान्तभावना–इह चत्वारः कुटाः, तद्यथा–छिद्रकुटः कण्ठहीनकुटः खण्डकुटः सम्पूर्णकुटश्च, तत्र यस्याधो बुध्ने छिद्रं स छिद्रकुटः, यस्य पुनरोष्ठपरिमण्डलाभावः स कण्ठहीनकुटः, यस्य पुनरेकपार्श्वे खण्डेन हीनः स खण्डकुटः, यः पुनः सम्पूर्णावयवः स सम्पूर्णकुटः, एवं शिष्या अपि चत्वारो वेदितव्याः, तत्र यो व्याख्यानमण्डल्यामुपविष्टः सर्वमवबुध्यते व्याख्यानादुत्थितश्च न किमपि स्मरति स छिद्रकुटसमानो, यथा हि छिद्रकुटो यावत्तदवस्थ एव गाढवमवनितलसंलग्नोऽवतिष्ठते तावत् न किमपि जलं ततः स्रवति, स्तोकं वा किञ्चिदिति, एवमेषोऽपि यावदाचार्यः पूर्वापरानुसन्धानेन सूत्रार्थमुपदिशति तावदवबुध्यते, उत्थितश्चेद् व्याख्यानमण्डल्याः तर्हि स्वयं पूर्वापरानुसन्धानशक्तिविकलत्वात् न किमप्यनुस्मरतीति, यस्तु व्याख्यानमण्डल्यामप्युपविष्टोऽर्द्धमात्रं त्रिभागं चतुर्भागं हीनं वा सूत्रार्थमवधारयति यथाऽवधारितं च स्मरति स खण्डकुटसमानः,यस्तु किञ्चिदूनं सूत्रार्थमवधारयति पश्चादपि तथैव स्मरति स कण्ठहीनकुटसमानः, यस्तु सकलमपि सूत्रार्थमाचार्योक्तं यथावदवधारयति

छिद्रादि-घटदृष्टान्तभावना, शिष्योपनयश्च. १०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ५७ ॥

पश्चादपि तथैव स्मृतिपथमवतारयति स सम्पूर्णकुटसमानः, अत्र छिद्रकुटसमान एकान्तेनायोग्यः, शेषास्तु योग्याः, यथोत्तरं च प्रधानाः प्रधानतरा इति ३ ॥ सम्प्रति चालनीदृष्टान्तभावना–चालनी लोकप्रसिद्धा यया कणिकादि चाल्यते, यथा चालन्यामुदकं प्रक्षिप्यमाणं तत्क्षणादेवाधो गच्छति न पुनः कियन्तमपि कालमवतिष्ठते तथा यस्य सूत्रार्थः प्रदीयमानो यदैव कर्णे विशति तदैव विस्मृतिपथमुपैति स चालनीसमानः ४ ॥ तथा मुद्गशैलच्छिद्रकुटचालनीसमानशिष्यभेदप्रदर्शनार्थमुक्तं भाष्यकृता–"सेलेयछिड्डचालणि मिहो कहा सोउमुट्ठियाणं तु। छिद्दाऽऽह तत्थ विट्ठो सुमरिंसु समरामि नेयाणिं ॥ १ ॥ एगेण विसइ बीएण नीइ कण्णेण चालणी आह। धन्नोऽत्थ आह सेलो जं पविसइ नीइ वा तुज्झं ॥ २ ॥" तत एषोऽपि चालनीसमानो न योग्यः चालनीप्रतिपक्षभूतं च वंशदलनिर्मापितं तापसभाजनं, ततो हि बिन्दुमात्रमपि जलं न स्रवति, उक्तं च–"तावंसखउरकढिणयं चालणिपडिवक्खं नसवइ दवंपि।" ततः तत्समानो योग्य इति ५॥ सम्प्रति परिपूर्णकदृष्टान्तो भाव्यते–परिपूर्णको नाम घृतक्षीरगालनकं सुगृहाभिधचटिकाकुलालयो वा, तेन ह्याभीर्यो घृतं गालयन्ति, ततो यथा स परिपूर्णकः कचवरं धारयति घृतमुज्झति तथा शिष्योऽपि यो व्याख्यावाचनादौ दोषानभिगृह्णाति गुणांस्तु मुञ्चति स परिपूर्णकसमानः, स चायोग्यः,

१ शैलेयच्छिद्रचालनीनां मिथः कथा श्रुत्वोत्थितानां तु। छिद्र आह तत्रोपविष्टोऽस्मार्षं स्मरामि नेदानीम् ॥ १ ॥ एकेन विशति द्वितीयेन निर्गच्छति कर्णेन चालनी आह। धन्योऽवाह शैलेयो यत्प्रविशति निर्गच्छति वा तव ॥ २ ॥ २ तापसकमठकं चालनीप्रतिपक्षः न स्रवति द्रवमपि।

चालनीदृष्टान्तः उपनयश्च. ४ १५

तापसभाजनपरिपूर्णदृष्टान्तोपनयौ.५-६

॥ ५७ ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

दीप अनुक्रम [४६]

आह च आवश्यकचूर्णिकृत् "वक्खाणाइसु दोसे हिययंमि ठवेइ मुयइ गुणजालं । सो सीसो उ अजोग्गो भणिओ परिपूणगसमाणो ॥ १ ॥" आह–सर्वज्ञमतेऽपि दोषाः सम्भवन्तीत्यश्रद्धेयमेतत्, सत्यम्, उक्तमत्र भाष्यकृता–"[२]सव्वण्णुप्पामण्णा दोसा हु न संति जिणमए केऽवि । जं अणुवउत्तवकहणं अपत्तमासज्ज व हवंति ॥१॥"६॥ सम्प्रति हंसदृष्टान्तभावना, यथा हंसः क्षीरमुदकमिश्रितमप्युदकमपहाय क्षीरमापिबति तथा शिष्योऽपि यो गुरोरनुपयोगसम्भवान् दोषानवधूय गुणानेव केवलानादत्ते स हंससमानः, स चैकान्तेन योग्यः । ननु हंसः क्षीरमुदकमिश्रितमपि कथं विभक्तीकरोति?, येन क्षीरमेव केवलमापिबति न तूदकमिति, उच्यते, तज्जिह्वाया अम्लत्वेन क्षीरस्य कूर्चिकीभूय पृथग्भवनात्, उक्तं च–"[३]अम्बत्तणेण जीहाए कूचिया होइ खीरमुदयंमि । हंसो मोत्तूण जलं आवियइ पय तह सुसीसो ॥ १ ॥ मोत्तूण दढं दोसे गुरुणोऽणुवउत्तभासियाइंपि । गिण्हइ गुणे उ जो सो जोग्गो समयत्थसारस्स ॥२॥"७॥ इदानीं महिषदृष्टान्तभावना—यथा महिषो निपातस्थानमवाप्तः सन् उदकमध्ये प्रविश्य तदुदकं मुहुर्मुहुः शृङ्गाभ्यां ताडयन्नवगाहमानश्च सकलमपि कलुषीकरोति, ततो न स्वयं पातुं शक्नोति नापि यूथं, तद्वत्

हंसदृष्टान्त उपनयश्च.७

महिषदृष्टान्त उपनयश्च.८

१३

१ व्याख्यानादिषु दोषान् हृदये स्थापयति मुञ्चति गुणजालम् । स शिष्यस्तु अयोग्यो भणितः परिपूर्णकसमानः॥१॥ २ सर्वज्ञप्रामाण्यात् दोषा नैव सन्ति जिनमते केऽपि । यदनुपयुक्तकथनं अपात्रमासाद्य वा भवन्ति ॥ १ ॥ ३ अम्लत्वेन जिह्वायाः कूर्चिका भवति क्षीरमुदके । हंसो मुक्त्वा जलमापिबति पयः तथा सुशिष्यः ॥ १ ॥ ४ मुक्त्वा दृढं दोषान् गुरोरनुपयुक्तभाषितादीनपि । गृह्णाति गुणान् तु यः स योग्यः समयार्थसारस्य ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

दीप अनुक्रम [४६]

शिष्योऽपि यो व्याख्यानप्रबन्धावसरेऽकाण्ड एव क्षुद्रपृच्छादिभिः कलहविकथादिभिर्वाऽऽत्मनः परेषां चानुयोग-श्रवणविघातमाधत्ते स महिषसमानः, स चैकान्तेनायोग्यः, उक्तं च–"[1]सयमवि न पियइ महिसो न य जूहं पिबति लोलियं उदयं । विग्गहविकहाहि तहा अथकपुच्छाहि य कुसीसो ॥१॥"८॥ मेषोदाहरणभावना–यथा मेषो वदनस्य तनुत्वात् स्वयं च निभृतात्मा गोष्पदमात्रस्थितमपि जलमकलुषीकुर्वन् पिबति तथा शिष्योऽपि यः पदमात्रमपि विनयपुरस्सरमाचार्यचित्तं प्रसादयन् पृच्छति स मेषसमानः, स चैकान्तेन योग्यः ९ ॥ मसकदृष्टान्तभावना–यः शिष्यो मसक इव जात्यादिदोषानुद्घट्टयन् गुरोर्मनसि व्यथामुत्पादयति स मसकसमानः, स चायोग्यः १० ॥ जलौकादृष्टा-न्तभावना–यथा जलौकाः शरीरमदुन्वती रुधिरमाकर्षति तथा शिष्योऽपि यो गुरुमदुन्वन् श्रुतज्ञानं पिबति स जलौ-कासमानः, उक्तं च–"[2]जलुगा व अदूमितो पियइ सुसीसोऽवि सुयनाणं।" ११॥ बिडालीदृष्टान्तभावना–यथा बिडाली भाजनसंस्थं क्षीरं भूमौ विनिपात्य पिबति,तथादुष्टस्वभावत्वाद्, एवं शिष्योऽपि यो विनयकरणादिहीनतया न साक्षाद् गुरुसमीपे गत्वा शृणोति, किन्तु व्याख्यानादुत्थितेभ्यः केभ्यश्चित्, स बिडालीसमानः, स चायोग्यः १२ ॥ तथा जाहकः–तिर्यग्विशेषः, तत्र दृष्टान्तभावना–यथा जाहकः स्तोकं २ क्षीरं पीत्वा पार्श्वाणि लेढि तथा शिष्योऽपि यः पूर्वं

१ स्वयमपि न पिबति महिषो न च यूथं पिबति लोडितमुदकम् । विग्रहविकथादिभिस्तथाऽकाण्डपृच्छादिभिश्च कुशिष्यः ॥१॥ २ जलौका इव अदुन्वन् पिबति सुशिष्योऽपि श्रुतज्ञानम् ॥

१५ मेषमसक-जलौका-बिडाली-जाहकदृष्टा-न्ताः उप-नयाश्च.१३ २० ॥ ५८ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

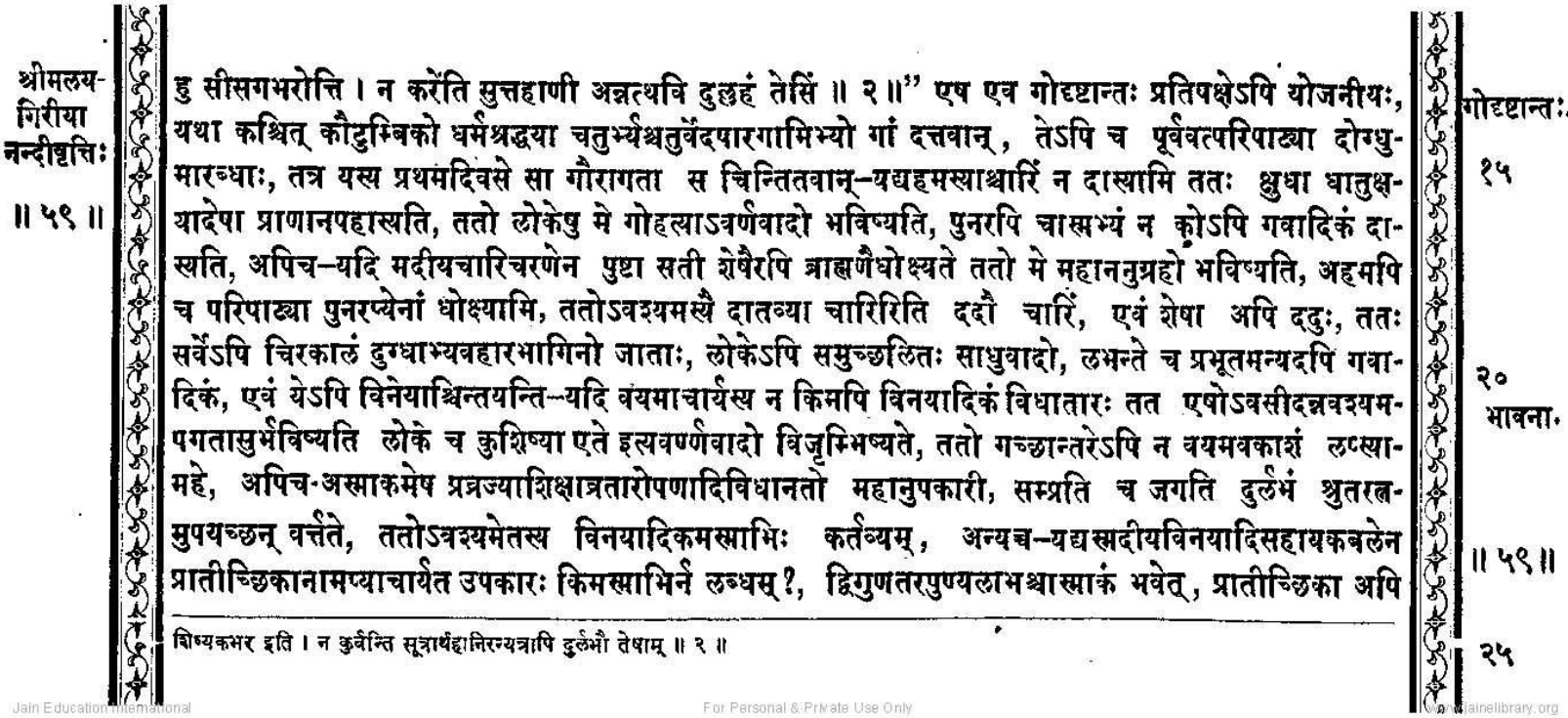
दीप अनुक्रम [४६]

गृहीतं सूत्रमर्थं वाऽतिपरिचितं कृत्वाऽन्यत्पृच्छति स जाहकसमानः, स च योग्यः १३ ॥ सम्प्रति गोदृष्टान्तभावना क्रियते–यथा केनापि कौटुम्बिकेन कस्मिंश्चित् पर्वणि चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिकेभ्यो विप्रेभ्यो गौर्दत्ता, ततः ते परस्परमेवं चिन्तयामासुः–यथेयमेका गौश्चतुर्णामस्माकं ततः कथं कर्त्तव्या ?, तत्रैकेनोक्तं–परिपाट्या दुह्यतामिति, तच्च समीचीनं प्रतिभातमिति सर्वैः प्रतिपन्नं, ततो यस्य प्रथमदिवसे गौरागता तेन चिन्तितं–यथाऽहमद्यैव धोक्ष्यामि, कल्ये पुनरन्यो धोक्ष्यति, ततः किं निरर्थिकामस्याश्चारिं वहामि, ततो न किञ्चिदपि तस्यै तेन दत्तं, एवं शेषैरपि, ततः सा श्वपाककुलनिपतितेव तृणसलिलादिविरहिता गतासुरभूत्, ततः समुत्थितः तेषां धिग्जातीयानामवर्णवादो लोके शेषगोदानादिलाभव्यवच्छेदश्च,एवं शिष्या अपि ये चिन्तयन्ति–न खलु केवलानामस्माकमाचार्यो व्याख्यानयति, किन्तु प्रातीच्छिकानामपि, ततस्त एव विनयादिकं करिष्यन्ति, किमस्माकमिति ?, प्रातीच्छिका अप्येवं चिन्तयन्ति–निजशिष्याः सर्वं करिष्यन्ति, किमस्माकं कियत्कालावस्थायिनामिति ?, ततस्तेषामेवं चिन्तयतामपान्तराल एवाचार्योऽवसीदति, लोके च तेषामवर्णवादो जायते, अन्यत्रापि च गच्छान्तरे दुर्लभौ तेषां सूत्रार्थौ, ततस्ते गोप्रतिग्राहकचतुर्द्विजातय इवायोग्याः द्रष्टव्याः, उक्तं च–"[1]अन्नो दुज्जिहि कल्लं निरत्थयं से वहामि किं चारिं? । चउचरणगविउ मया अवण्ण हाणी उ बहुआणं ॥१॥ सीसा पडिच्छगाणं भरोत्ति तेऽवि

१ अन्यो धोक्ष्यति कल्ये निरर्थिकां अस्या वहामि किं चारिम्? । चतुश्चरणा गौर्मृता अवर्णो हानिस्तु बहूकानाम् ॥१॥ शिष्याः प्रतीच्छकानां भर इति तेऽपि च ॥

गोदृष्टान्तः. १४ ५ भावना. १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ५९ ॥

हु सीसगभरोत्ति । न करेंति सुत्तहाणी अन्नत्थवि दुल्लहं तेसिं ॥ २ ॥" एष एव गोदृष्टान्तः प्रतिपक्षेऽपि योजनीयः, यथा कश्चित् कौटुम्बिको धर्मश्रद्धया चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिभ्यो गां दत्तवान्, तेऽपि च पूर्ववत्परिपाट्या दोग्धुमारब्धाः, तत्र यस्य प्रथमदिवसे सा गौरागता स चिन्तितवान्–यद्यहमस्माश्चारिं न दास्यामि ततः क्षुधा धातुक्षयादेषा प्राणानपहास्यति, ततो लोकेषु मे गोहत्याऽवर्णवादो भविष्यति, पुनरपि चास्मभ्यं न कोऽपि गवादिकं दास्यति, अपिच–यदि मदीयचारिचरणेन पुष्टा सती शेषैरपि ब्राह्मणैर्धोक्ष्यते ततो मे महाननुग्रहो भविष्यति, अहमपि च परिपाट्या पुनरप्येनां धोक्ष्यामि, ततोऽवश्यमस्यै दातव्या चारिरिति ददौ चारिं, एवं शेषा अपि ददुः, ततः सर्वेऽपि चिरकालं दुग्धाभ्यवहारभागिनो जाताः, लोकेऽपि समुच्छलितः साधुवादो, लभन्ते च प्रभूतमन्यदपि गवादिकं, एवं येऽपि विनेयाश्चिन्तयन्ति–यदि वयमाचार्यस्य न किमपि विनयादिकं विधातारः तत एषोऽवसीदन्नवश्यमपगतासुर्भविष्यति लोके च कुशिष्या एते इत्यवर्णवादो विजृम्भिष्यते, ततो गच्छान्तरेऽपि न वयमवकाशं लप्स्यामहे, अपिच-अस्माकमेष प्रव्रज्याशिक्षात्रतारोपणादिविधानतो महानुपकारी, सम्प्रति च जगति दुर्लभं श्रुतरत्नमुपयच्छन् वर्त्तते, ततोऽवश्यमेतस्य विनयादिकमस्माभिः कर्तव्यम्, अन्यच्च–यद्यस्मदीयविनयादिसहायकबलेन प्रातीच्छिकानामप्याचार्यत उपकारः किमस्माभिर्न लब्धम्?, द्विगुणतरपुण्यलाभश्चास्माकं भवेत्, प्रातीच्छिका अपि

शिष्यकभर इति । न कुर्वन्ति सूत्रार्थहानिरन्यत्रापि दुर्लभौ तेषाम् ॥ २ ॥

गोदृष्टान्तः. १५ २० भावना. ॥ ५९ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये चिन्तयन्ति–अनुपकृतोपकारी भगवानाचार्योऽस्माकं, को नामान्यो महान्तमेवं व्याख्याप्रयासमस्मन्निमित्तं विद-
धाति ?, ततः किमेतेषां वयं प्रत्युपकर्त्तुं शक्ताः ?, तथापि यत् कुर्म्मः सोऽस्माकं महान् लाभ इति परनिरपेक्षं विन-
यादिकमादधते, तेषां नावसीदत्याचार्यः अव्यवच्छिन्ना सूत्रार्थप्रवृत्तिः समुच्छलति च सर्वत्र साधुवादः गच्छान्तरे च
तेषां सुलभं श्रुतज्ञानं परलोके च सुगत्यादिलाभ इति १४ ॥ सम्प्रति भेरीदृष्टान्तभावना–इह शक्रादेशेन वैश्रवण- भेरीदृष्टा-
यक्षनिर्मापितायां काञ्चनमयप्राकारादिपरिकरितायां पुरि द्वारवत्यां त्रिखण्डभरतार्द्धाधिपत्वमनुभवति केशवे कदाचि- न्तः. १५
दशिवमुपतस्थौ। इतश्च द्वात्रिंशद्विमानशतसहस्रसङ्कुले सौधर्म्मकल्पे सुधर्माभिधसभोपविष्टः सर्वतो दिवौकःपर्युपा- ५
स्यमानः शक्राभिधानो मघवा पुरुषगुणविचारणाधिकारे केशवमिहावस्थितमवधिना समधिगम्य सामान्यतः तत्-
प्रशंसामकार्षीत्–अहो महानुभावा विष्णवो यद्दोषबहुलेऽपि वस्तुनि स्वभावतो गुणमेव गृह्णन्ति, न दोषलेशमपि, न
च नीचयुद्धेन युध्यन्ते इति, इत्थं च मघवता केशवस्तुतिमभिधीयमानामसहमानः कोऽपि दिवौकाः परीक्षार्थ-
मिहावतीर्य येन पथा भगवदरिष्टनेमिनमस्करणाय केशवो यास्यति तस्मिन् पथि अपान्तराले क्वचित् प्रदेशे समु- १०
त्रासितसकलजनमहादुरभिगन्धसङ्कुलमतीव दीप्यमानमहाकालिमकलितं विवृतमुखमुत्पादितश्वेतदन्तपङ्क्तिं गतप्रा-
णमिव शुनो रूपं विधाय प्रातरवतस्थे, केशवोऽपि चोज्जयन्तगिरिसमवसृतभगवदरिष्टनेमिनमस्कृतये तेन पथा गन्तुं
प्रवृत्ते, पुरोयायी च पदात्यादिवर्गः समस्तोऽपि तद्गन्धसमुत्रासितो वस्त्राञ्चलपिहितनासिकस्त्वरितमितस्ततो गन्तु- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मारेभे, ततः पृष्टं केशवेन–किमिति पुरोयायिनः सर्वे पिहितनासिकाः समुत्रासमादधते?, ततः कोऽपि विदितवेद्यो विज्ञपयामास–देव! पुरो महापूतिगन्धिः श्वा मृतो वर्त्तते, तद्गन्धमसहमानः सर्वोऽपि त्रासमगमत्, केशवो महोत्तमतया तद्गन्धादनुत्रस्यन् तेन पथा गन्तुं प्रवृत्तः, अवैक्षिष्ट च तं मृतं श्वानं, परिभावयामास च सकलमपि तस्य रूपं, ततो गुणप्रशंसामकर्तुमशक्नुवन् प्रशंसितुमारभते स्म-अहो जात्यमरकतमयभाजनविनिवेशितमुक्तामणिश्रेणिरिव शोभते अस्य वपुषि कालिमकलिते श्वेतदन्तपङ्क्तिरिति, तां च प्रशंसां श्रुत्वा सविस्मयं सुरसङ्घजन्मा चिन्तयामास-अहो यथोक्तं मघवता तथैवेति। ततो दूरं गते केशवे तद्रूपमुपसंहृत्य कियत्कालं स्थित्वा गृहमागते केशवे युद्धपरीक्षानिमित्तं मन्दुरागतमेकमश्वरत्नं सकललोकसमक्षमपहृतवान्, धावितश्च मार्गतः सर्वोऽप्युद्गीर्णखड्गकुन्तादिरङ्गरक्षकादिपदातिवर्गः, समुच्छलितश्च महान् कोलाहलो, ज्ञातश्चायं व्यतिकरः केशवेन, प्रधावितश्च सकोपं दिशोदिशं सर्वेऽपि कुमाराः, मुञ्चन्ति च यथाशक्ति प्रहारान्, परं सुरो दिव्यशक्त्या तान् सर्वानपि लीलया विजित्य मन्दं मन्दं गन्तुं प्रवृत्तः, ततः प्राप्तः केशवः, पृष्टश्च तेनाश्वापहारी–भोः किं मदीयमश्वरत्नमपहरसि?, तेनोक्तं–शक्नोम्यपहर्तुं, यदि पुनरस्ति ते काऽपि शक्तिस्तर्हि मां युद्धे विनिर्जित्य परिगृहाण, ततः केशवः तत्पौरुषरञ्जितमनस्कः सहर्षमेवमवादीत्–भो महापुरुष! येन युद्धेन ब्रूषे तेन युद्धेऽहं, ततः सर्वाण्यपि युद्धानि केशवो नामग्राहं वक्तुं प्रवृत्तः, प्रतिषेधति च सर्वाण्यपि सुरसङ्घजन्मा, ततो भूयः केशवो वदति–कथय केन युद्धेन युद्धेऽहमिति?, ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

दीप अनुक्रम [४६]

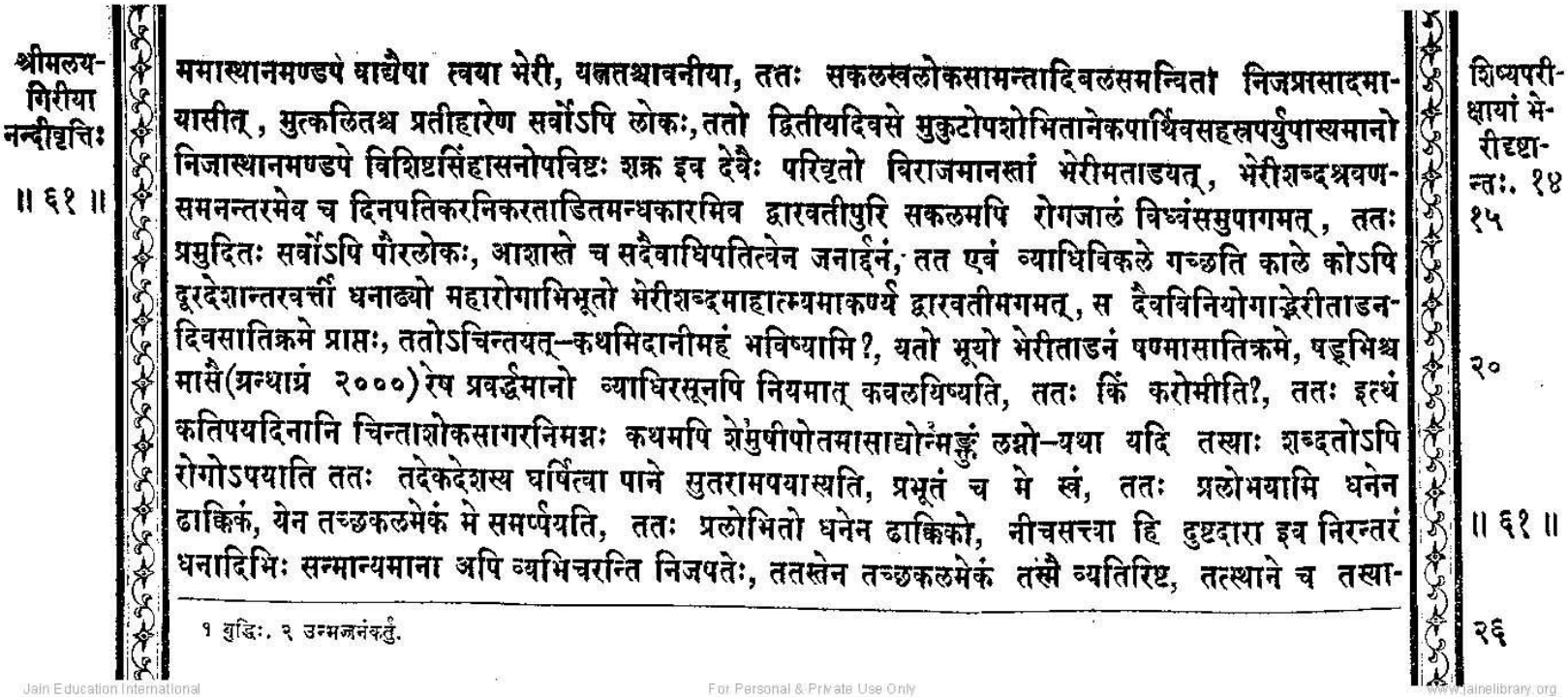
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

स प्राह–पुतयुद्धेन, ततः कर्णौ पिधाय शल्यितहृदय इव हाशब्दव्याहारपुरस्सरं तं प्रत्येवमवादीत्–गच्छ गच्छाश्वरत्नमपि गृहीत्वा, नाहं नीचयुद्धेन युध्ये इति, तत एतत् श्रुत्वा हर्षवशोज्जृम्भितपुलकमालोशपोभितं वपुरादधानः सविस्मयं सुरसङ्घजन्मा स्वचेतसि चिन्तयामास–अहो महोत्तमता केशवानाम्, अत एव शतसहस्रसङ्ख्यनमदमरकिरीटकोटीसङ्घर्षमसृणीकृतपादपीठानां मघवतामप्येते प्रशंसार्हाः, तत एवं चिन्तयित्वा सानन्दमवेक्षमाणो वक्तुं प्रवृत्तो–भोः केशव! नाहमश्वापहारी, किन्तु त्वद्गुणपरीक्षानिमित्तमेवं कृतवान्, ततः सकलमपि शक्रप्रशंसादिकं पूर्ववृत्तान्तमचकथत्, ततः स्वगुणप्रशंसाश्रवणलज्जितोऽवनतमनाकन्धरः कुड्मलितकरसम्पुटो जनार्दनः तमुदन्तपर्यन्ते मुत्कलयामास स्वस्थाने, सुरोऽपि च सकलविश्वासाधारणकेशवगुणदर्शनतो हृष्टमनास्तं प्रत्येवमवादीत्–महापुरुष! देवदर्शनममोघं मनुजजन्मनामिति प्रवादो जगति प्रसिद्धो मा विफलतामापदिति वद किञ्चिदभीष्टं येन करोमीति, ततः केशवोऽब्रवीद्–वर्त्तते सम्प्रति द्वारवत्यामशिवं ततस्तत् प्रतिविधानमातिष्ठ येन भूयोऽपि न भवति, ततो गोशीर्षचन्दनमयीमशिवोपशमिनीं देवो भेरीमदात्, कल्पं चास्याः कथयामास–यथा षण्मासषण्मासपर्यन्ते निजाऽऽस्थानमण्डपे वाद्यैषाभेरी, शब्दश्चास्याः सर्वतो द्वादशयोजनव्यापी जलभृतमेघध्वनिरिव गम्भीरो विजृम्भिष्यते, यश्च शब्दं श्रोष्यति तस्य प्राक्तनो व्याधिर्नियमतोऽपयास्यति, भावी च भूयः षण्मासादर्वाक् न भविष्यति, ततः एवमुक्त्वा देवः स्वस्थानमगमत्। वासुदेवोऽपि तां भेरीं सदैव भेरीताडननियुक्ताय समर्पितवान्, शिक्षां चास्मै ददौ यथा–षण्मासषण्मासपर्यन्ते

शिष्यपरीक्षायां भेरीदृष्टान्तः. १४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४४॥ दीप अनुक्रम [४६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ६१ ॥

ममास्थानमण्डपे यद्येषा त्वया भेरी, यन्नतश्रावनीया, ततः सकलस्वलोकसामन्तादिबलसमन्विता निजप्रासादमायासीत्, मुत्कलितश्च प्रतीहारेण सर्वोऽपि लोकः, ततो द्वितीयदिवसे मुकुटोपशोभितानेकपार्थिवसहस्रपर्युपास्यमानो निजास्थानमण्डपे विशिष्टसिंहासनोपविष्टः शक्र इव देवैः परिवृतो विराजमानस्तां भेरीमताडयत्, भेरीशब्दश्रवणसमनन्तरमेव च दिनपतिकरनिकरताडितमन्धकारमिव द्वारवतीपुरि सकलमपि रोगजालं विध्वंसमुपागमत्, ततः प्रमुदितः सर्वोऽपि पौरलोकः, आशास्ते च सदैवाधिपतित्वेन जनार्दनं, तत एवं व्याधिविकले गच्छति काले कोऽपि दूरदेशान्तरवर्त्ती धनाढ्यो महारोगाभिभूतो भेरीशब्दमाहात्म्यमाकर्ण्य द्वारवतीमगमत्, स दैवविनियोगाद्भेरीताडनदिवसातिक्रमे प्राप्तः, ततोऽचिन्तयत्–कथमिदानीमहं भविष्यामि?, यतो भूयो भेरीताडनं षण्मासातिक्रमे, षड्भिश्च मासै(ग्रन्थाग्रं २०००)रेष प्रवर्द्धमानो व्याधिरसूनपि नियमात् कवलयिष्यति, ततः किं करोमीति?, ततः इत्थं कतिपयदिनानि चिन्ताशोकसागरनिमग्नः कथमपि शेमुषीपोतमासाद्योन्मज्जुं[2] लग्नो–यथा यदि तस्याः शब्दतोऽपि रोगोऽपयाति ततः तदेकदेशस्य घर्षित्वा पाने सुतरामपयास्यति, प्रभूतं च मे स्वं, ततः प्रलोभयामि धनेन ढाक्किकं, येन तच्छकलमेकं मे समर्पयति, ततः प्रलोभितो धनेन ढाक्किको, नीचसत्त्वा हि दुष्टदारा इव निरन्तरं धनादिभिः सन्मान्यमाना अपि व्यभिचरन्ति निजपतेः, ततस्तेन तच्छकलमेकं तस्मै व्यतिरिष्ट, तत्स्थाने च तस्या-

१ बुद्धिः. २ उन्मज्जनंकर्तुं.

शिष्यपरीक्षायां भेरीदृष्टान्तः. १४ १५ २० ॥ ६१ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्यच्छकलं योजितम्, एवमन्यान्यदेशान्तरायातरोगिजनेभ्यो धनलुब्धतया खण्डखण्डप्रदाने सकलापि भेरी कन्थेव खण्डसङ्घातात्मिका कृता, ततोऽपगतो दिव्यप्रभावः, ततस्तदवस्थमेवाशिवं प्रावर्त्तिष्ट, समुत्थितश्च रावोऽशिव-प्रादुर्भावविषयः पौरजनानां, विज्ञप्तश्च महत्तरैर्जनार्दनो–देव ! भूयोऽपि विजृम्भते वर्षासु कृष्णशर्वर्यामन्धकारमिव पुरि द्वारवत्यां महदशिवं, ततः प्रातरास्थानमण्डपे सिंहासने समुपविश्याकारितो भेरीताडननियुक्तः पुमान्, दत्त-श्चादेशोऽस्यै भेरीताडने, ततस्ताडिता तेन भेरी, साऽपगतदिव्यप्रभावा न भाङ्कारशब्देनास्थानमण्डपमात्रमपि पूरयति, ततो विस्मितो जनार्दनो–यथा किमेषा नास्थानमण्डपमपि भाङ्कारशब्देन पूरयितुं शक्नवती?, ततः स्वयं निभालयामास तां भेरीं, दृष्ट्वा च सा महादरिद्रकन्थेव लघुलघुतरशकलसहस्रसङ्घातात्मिका, ततश्चुकोप तस्यै जनार्दनो–रे दुष्टाधम! किमिदमकार्षीः?, ततः स प्राणभयात् सकलमपि यथावस्थितमचीकथत्, ततो महानर्थकारित्वात् स तत्कालमेव निरोपितो विनाशाय, ततो भूयोऽपि जनार्दनो जनानुकम्पया पौषधशालामुपगम्याष्टमभक्त-विधानतस्तं देवमाराधयामास, ततः प्रत्यक्षीबभूव देवः, कथितवांश्च जनार्दनः प्रयोजनं, ततो भूयोऽपि दत्तवान् अशिवोपशमनीं भेरीं, तां च आप्तत्वेन सुनिश्चिताय कृष्णः समर्पयामास । एष दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—यथा भेरी तथा प्रवचनावगतौ सूत्रार्थौ, यथा भेरीशब्दश्रवणतो रोगापगमः तथा सिद्धान्तस्य प्रभावश्रवणतो जन्तूनां कर्मविनाशः, ततो यः सूत्रार्थावपान्तराले विस्मृत्य विस्मृत्यान्यतः सूत्रमर्थं वा सं-

शिष्यपरीक्षायां भेरीदृष्टान्तः. १४

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योज्य कन्थासमानौ करोति स भेरीताडननियुक्तप्रथमपुरुषसमानः, स चैकान्तेनायोग्यः, यस्त्वाचार्यप्रणीतौ सूत्रार्थौ यथावदवधारयति स भेरीताडननियुक्तपाश्चात्यपुरुष इव कल्याणसम्पदे योग्यः १४ ॥ सम्प्रत्याभीरीदृष्टान्तभावना—कश्चिदाभीरो निजभार्यया सह विक्रयाय घृतं गव्यया गृहीत्वा पत्तनमवतीर्णः, चतुष्पथे समागत्य वणिगापणेषु पणायितुं प्रवृत्तो, घटितश्च पणाय संटङ्कः, ततः समारब्धे घृतमापे गव्या अधस्तादवस्थिता आभीरी, घृतं भर्त्रा वारकेण समर्प्यमाणं प्रतीच्छतीति, ततः कथमप्यर्पणे ग्रहणे वाऽनुपयोगतोऽपान्तराले वारकापरपर्यायो लघुघृतघटो भूमौ निपत्य खण्डशो भग्नः, ततो घृतहानिदूनमनाः पतिरुल्लपितुं खरपरुषवाक्यानि प्रावर्त्तत, यथा हा पापीयसि! दुःशीले कामविडम्बितमानसा तरुणतरुणिमाभिरमणीयं पुरुषान्तरमवलोकसे न सम्यग् घृतघटमभिगृह्णासि- ततः सा खरपरुषवाक्यश्रवणतः समुद्भूतकोपावेशवशोच्छलितकम्पकम्पितपीनपयोधरा स्फुरदधरबिम्बोष्ठी दूरोत्पा, टितभ्रूरेखाधनुरवष्टम्भतो नाराचश्रेणिमिव कृष्णकटाक्षसन्ततिमविरतं प्रतिक्षिपन्ती प्रत्युवाच–हा ग्रामेयकाधम! घृतघटमप्यवगणय्य विदग्धमत्तकामिनीनां मुखारविन्दान्यवलोकसे, न चैतावताऽवतिष्ठसे, ततः खरपरुषवाक्यैर्मामप्यधिक्षिपसि, ततः स एवं प्रत्युक्तोऽतीव ज्वलितकोपानलोऽपि यत् किञ्चिदसम्बद्धं भाषितुं लग्नः, साऽप्येवं, ततः समभूत्तयोः केशाकेशि, ततो विसंस्थुलपादादिन्यासतः सकलमपि प्रायो गव्यीघृतं भूमौ पतितं, तच्च किञ्चिच्छोषमुपगतमवशेषं चावलीढं श्वभिः, गव्यीघृतमपि शेषीभूतमपवृतं पश्यतोहरैः, सार्थिका अपि स्वं स्वं घृतं विक्रीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वग्रामगमनं प्रपन्नाः, ततः प्रभूतदिवसभागातिक्रमेणापसृते युद्धे स्वास्थ्ये च लब्धे यत् किञ्चित्प्रथमतो विक्रयामासतुर्घृतं तद्द्रव्यमादाय तयोः स्वग्रामं गच्छतोरपान्तरालेऽस्तं गते सहस्रभानौ सर्वतः प्रसरमभिगृह्णति तमोवितानेपरास्कन्दिनः समागत्य वासांसि द्रव्यं बलीवर्दौ चापहृतवन्तः, तत एवं तौ महतो दुःखस्य भाजनमजायेताम् । एष दृष्टान्तोऽयमर्थोपनयः–यो विनेयोऽन्यथा प्ररूपयन् अधीयानो वा कथमपि स्वरपरुषवाक्यैराचार्येण शिक्षितोऽधिक्षेपपुरस्सरं प्रतिवदति–यथा त्वयैवेत्थमहं शिक्षितः, किमिदानीं निह्नुषे ? इत्यादि, स न केवलमात्मानं संसारे पातयति, किन्त्वाचार्यमपि स्वरपरुषप्रत्युच्चारणादिना तीव्रतीव्रतरकोपानलज्वालनात्, भवन्ति च कुविनेया मृदोरपि गुरोः स्वरपरुषप्रत्युच्चारणादिना कोपप्रकोपकाः, यत उक्तमुत्तराध्ययनेषु–"अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरेंति सीसा" इति ॥ अपि च–गुणगुरवो गुरवः, ततस्ते यदि कथमपि दुष्टशिष्यशिक्षापनेन कोपमुपागमत् तथापि तेषां भगवदाज्ञाविलोपतो गुर्व्याशातना ततश्चोपचिताशुभगुरुकर्मा नियमतो दीर्घतरसंसारभागी, किञ्च–एवं स वर्त्तमानो मतिमानपि श्रुतरत्नाद्बहिर्भवति, अन्यत्रापि तस्य दुर्लभश्रुतत्वात्, को हि नाम सचेतनो दीर्घतरजीविताभिलाषी सर्पमुखे स्वहस्तेन पयोबिन्दून् प्रक्षिपतीति, स चैकान्तेनायोग्यः १५ । प्रतिपक्षभावनायामपीदमेव कथानकं परिभावनीयं, केवलमिह घृतघटे भग्ने सति द्वावपि तौ दम्पतीत्वरितं २ कर्परे यथाशक्तिघृतं गृहीतवन्तौ, स्तोकमेव विननाश,

१ अनाश्रवाः स्थूलवचसः कुशीला मृदुमपि चण्डं प्रकुर्वन्ति शिष्याः । २ अनादरे इत्यध्याहार्यम् ।

दृष्टान्तोपनयः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४४॥

दीप अनुक्रम [४६]

निन्दति चात्मानमाभीरो यथा–ही न मया घृतघटस्ते सम्यक् समर्पितः, आभीर्यपि वदति–समर्पितस्त्वया सम्यक्, परं न स मया सम्यक् गृहीतः,ततः एवं तयोर्न कोपावेशदुःखं नापि घृतहानिर्नापि सकाल एवान्यसार्थिकैः सह स्वग्राममभिसमर्पतामपान्तराले तस्करावस्कन्दः, ततस्तौ सुखभाजनं जातौ, एवमिहापि कथञ्चिदनुपयोगादिनाऽन्यथारूपव्याख्याने कृते सति पश्चादनुस्मृतयथावस्थितव्याख्यानेन सूरिणा शिष्यं पूर्वमुक्तं व्याख्यानं चिन्तयन्तं प्रत्येवं वक्तव्यम्–वत्स ! मैवं व्याख्यः, मया तदानीमनुपयुक्तेन व्याख्यातं, तत एवं व्याख्याहि, तत एवमुक्ते सति यो विनेयः कुलीनो विनीतात्मा स एवं प्रतिवदति–यथा भगवन्तः ! किमन्यथा परूपयन्ति ?, केवलमहं मतिदौर्बल्यादन्यथाऽवगतवानिति, स चैकान्तेन योग्यः १६ । एवंविधाश्च विनेयाः ग्रहादितगुरुमनसः श्रुतार्णवपारगामिनो जायन्ते, चारित्रसम्पदश्च भागिनः, तदेवमेकैकं शिष्यमधिकृत्य योग्यायोग्यत्वविभागोपदर्शनं कृतम्, सम्प्रति सामान्यतः पर्षदो योग्यायोग्यरूपतया निरूपयति—

सा समासओ तिविहा पन्नत्ता, तंजहा-जाणिआ अजाणिआ दुव्विअड्ढा, जाणिआ जहा-खीरमिव जहा हंसा जे घुट्टंति इह गुरुगुणसमिद्धा । दोसे अ विवज्जंति तं जाणसु जाणिअं परिसं ॥ ४५ ॥

अजाणिआ जहा-जा होइ पगइमहुरा मियछावयसीहकुक्कुडयभूआ । रयणमिव असंठविआ अजाणिआ सा भवे परिसा ॥ ४६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्षदः योग्यायोग्यता निरूपणं

'सा' पर्षत् 'समासतः' संक्षेपेण 'त्रिविधा' त्रिप्रकारा प्रज्ञप्ता, तीर्थकरगणधरैरिति गम्यते, पर्षदिति कथं लभ्यते इति चेत्?, उच्यते, इह प्रागुक्तं–प्रारम्भणीयः प्रवचनानुयोग इति, अनुयोगश्च शिष्यमधिकृत्य प्रवर्त्तते, निरालम्बनस्य तस्याभावात्, ततः सामर्थ्यात् सेत्युक्ते पर्षदिति लभ्यते, 'तद्यथे'त्युदाहरणोपदर्शनार्थं, 'जाणिय'त्ति 'ज्ञा अवबोधने' जानातीति ज्ञा, 'इगुपान्त्यज्ञीकृगृज्ञः' इति कप्रत्ययः, 'इति धातो लोप' इत्याकारलोपः, ततो 'अजाद्यत' इति स्त्रियामाप्, ज्ञैव ज्ञिका, स्वार्थिकः कः प्रत्ययः, 'स्वज्ञाजभस्त्राधातुत्ययकादि'त्यापः स्थाने इकारादेशः, कप्रत्ययाच्च परतः स्त्रियामाप्, तत्सिद्धं ज्ञिकेति, ज्ञिका नाम परिज्ञानवती, किमुक्तं भवति?–कुपथप्रवृत्तपाषण्डमतेनादिग्धान्तःकरणा गुणदोषविशेषपरिज्ञानकुशला सतामपि दोषाणामपरिग्राहिका केवलगुणग्रहणयत्नवतीति, उक्तं च– "गुणदोसविसेसण्णू अणभिग्गहिया य कुस्सुइमएसुं। एसा जाणगपरिसा गुणतत्तिल्ला अगुणवज्जा ॥ १ ॥" तत्र 'गुणतत्तिल्ले'ति गुणेषु यत्नवती गुणग्रहणपरायणा इत्यर्थः, 'अगुणवज्जि'त्ति अगुणान्–दोषान् वर्जयति, सतोऽपि न गृह्णातीत्यगुणवर्जा। तथा 'अज्झिका' अज्झिका ज्ञिकाविलक्षणा, सम्यक्परिज्ञानरहिता, किमुक्तं भवति?–या ताम्रचूडकण्ठीरवकुरङ्गपोतवत्प्रकृत्या मुग्धस्वभावा असंस्थापितजात्यरत्नमिवान्तर्विशिष्टगुणसमृद्धा सुखप्रज्ञापनीया पर्षत् सा अज्झिका, उक्तं च–"पगईमुद्ध अयाणिय मिगच्छावगसीहकुक्कुडगभूया। रयणमिव असंठविया सुहसंणप्पा

१ गुणदोषविशेषज्ञा अनभिगृहीता च कुश्रुतिमतैः। एषा ज्ञिकापर्षद् गुणतत्परा अगुणवर्जा ॥ १ ॥ २ प्रकृतिमुग्धा अज्झिका मृगसिंहकुक्कुटशावकभूता। रत्नमिवासंस्थिता सुखसंज्ञप्या गुणसमृद्धा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणसमिद्धा ॥ १ ॥" इह 'मिगसावगसीहकुक्कुडगभूय'त्ति सावगशब्दोऽग्रे सम्बध्यते, ततो मृगसिंहकुर्कुटशावभूता इत्यर्थः 'असंठविय'त्ति असंस्थापिता, असंस्कृता इत्यर्थः, 'सुखसंज्ञाप्या'सुखेन प्रज्ञापनीया । तथा—

दुव्विअड्ढा जहा–न य कत्थइ निम्माओ न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं । वत्थिव्व वायपुण्णो फुट्टइ गामिल्लयविअड्ढो' ॥ ४७ ॥

'दुर्विदग्धा' मिथ्याऽहङ्कारविडम्बिता, किमुक्तं भवति?–या तत्तद्गुणज्ञपार्श्वोपगमनेन कतिपयपदान्युपजीव्य पाण्डित्याभिमानिनी किञ्चिन्मात्रमर्थपदं[1] सारं पल्लवमात्रं वा श्रुत्वा तत ऊर्ध्वं निजपाण्डित्यख्यापनायामभिमानतोऽवज्ञया पश्यति अर्द्धकथ्यमानं चात्मनो बहुज्ञतासूचनाय या त्वरितं पठति सा पर्षत् दुर्विदग्धेत्युच्यते, उक्तं च–"किञ्चिम्मत्तग्गाही[2] पल्लवगाही य तुरियगाही य। दुवियड्ढिया उ एसा भणिया तिविहा भवे परिसा ॥१॥" अमूषां च तिसृणां पर्षदां मध्ये आद्ये द्वे पर्षदावनुयोगयोग्ये, तृतीया त्वयोग्या, यदाह चूर्णिकृत्—एत्थं[3] जाणिया अजाणिया य अरिहा, दुविअड्ढा अणरिहा" इति, तत आद्ये एव द्वे अधिकृत्यानुयोगः प्रारम्भणीयो,न तु दुर्विदग्धां,मा भूदाचार्यस्य निष्फलः परिश्रमः, तस्याश्च दुरन्तसंसारोपनिपातः, सा हि तथास्वाभाव्यात् यत्किमप्यर्थपदं शृणोति

१ पर्षत्त्रयनिरूपणगाथा न व्याख्याताः । २ किञ्चिन्मात्रग्राहिणी पल्लवमात्रग्राहिणी च त्वरितग्राहिणी च । दुर्विदग्धिका एवैव भणिता त्रिविधा भवेत्पर्षद् ॥ १ ॥
३ अत्र ह्रिका अह्रिका च अर्हा, दुर्विदग्धा अनर्हा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४७॥ दीप अनुक्रम [५१-५२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

तदप्यवज्ञया, श्रुत्वा च सारपदमन्यत्र सर्वजनातिशायिनिजपाण्डित्याभिमानतो महतो महीयसोऽवमन्यते, तदवज्ञया च दुरन्तसंसाराभिष्वङ्ग इति स्थितम् ॥ तदेवमभीष्टदेतास्तवादिसम्पादितसकलसौहित्यो भगवान् दूष्यगणिपादोपसेवी पूर्वान्तर्गतसूत्रार्थधारको देववाचको योग्यविनेयपरीक्षां कृत्वा सम्प्रत्यधिकृताध्ययनविषयस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां विदधाति—

नाणं पंचविहं पन्नत्तं,तंजहा-आभिणिबोहिअनाणं सुअनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणंकेवलनाणं। (सू०१)

ज्ञातिर्ज्ञानं, भावे अनदप्रत्ययः अथवा ज्ञायते–वस्तु परिच्छिद्यते अनेनेति ज्ञानं, करणे अनद्, शेषास्तु व्युत्पत्तयो मन्दमतीनां सम्मोहहेतुत्वात् नोपदिश्यन्ते, 'पञ्चे'ति सङ्ख्यावाचकं विधानं विधा 'उपसर्गादात' इत्यङ् प्रत्ययः, पञ्च विधाः–प्रकारा यस्य तत्पञ्चविधं–पञ्चप्रकारं 'प्रज्ञप्तं'प्ररूपितं तीर्थकरगणधरैरिति सामर्थ्यादवसीयते, अन्यस्य स्वयंप्ररूपकत्वेन प्ररूपणाऽसम्भात्, उक्तं च–"[1]अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं। सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तइ ॥ १ ॥" एतेन स्वमनीषिकाव्युदासमाह, अथवा प्रज्ञा–बुद्धिः तया आप्तं–प्राप्तं तीर्थकरगणधरैरिति गम्यते, प्रज्ञाप्तं, किमुक्तं भवति?–'सर्वं वाक्यं सावधारणं भवतीति' न्यायात् अवश्यमिदं वाक्यमवधारणीयं, ततोऽयमर्थः–ज्ञानं तीर्थकरैरपि सकलकालावलम्बिसमस्तवस्तुस्तोमसाक्षात्कारिकेवलप्रज्ञया पञ्च-

१ अर्थं भाषतेऽर्हान् सूत्रं ग्रन्थन्ति गणधरा निपुणम् । शासनस्य हितार्थाय ततः सूत्रं प्रवर्त्तते ॥ १ ॥

ज्ञानपञ्चकोद्देशः सू. १

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	ज्ञानस्य पञ्चविध-भेदानाम् कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

विधमेव प्राप्तं, गणधरैरपि तीर्थकृद्भिरुपदिश्यमानं निजप्रज्ञया पञ्चविधमेव प्राप्तं, न तु वक्ष्यमाणनीत्या द्विभेदमेवेति, अथवा प्राज्ञात्–तीर्थकरादाप्तं प्राज्ञाप्तं गणधरैरिति गम्यते, अथवा प्राज्ञैः–गणधरैराप्तं प्राज्ञाप्तं, तीर्थकरादित्यनुमीयते, 'तद्यथे'त्युदाहरणोपदर्शनार्थः, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानं, तत्रार्थाभिमुखो नियतः–प्रतिनियतस्वरूपो बोधो–बोधविशेषोऽभिनिबोधः अभिनिबोध एवाभिनिबोधिकं, अभिनिबोधशब्दस्य विनयादिपाठाभ्युपगमाद् 'विनयादिभ्य' इत्यनेन स्वार्थे इकण्प्रत्ययः 'अतिवर्त्तन्ते स्वार्थे प्रत्ययकाः प्रकृतिलिङ्गवचनानी'ति वचनात् अत्र नपुंसकता, यथा विनय एव वैनयिकमित्यत्र, अथवा अभिनिबुध्यते अनेनास्मादस्मिन् वेति अभिनिबोधः–तदावरणकर्मक्षयोपशमः, तेन निर्वृत्तमाभिनिबोधिकं, आभिनिबोधिकं च तद् ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं–इन्द्रियमनोनिमित्तो योग्यदेशावस्थितवस्तुविषयः स्फुटप्रतिभासो बोधविशेष इत्यर्थः १ तथा श्रवणं श्रुतं–वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः,एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दवाच्यमित्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः,श्रुतं च तद् ज्ञानं च श्रुतज्ञानं २,तथा अवशब्दोऽधःशब्दार्थः,अव–अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते-परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः,अथवा अवधिर्मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः यद्वा अवधानम्–आत्मनोऽर्थसाक्षात्करणव्यापारोऽवधिः, अवधिश्चासौ ज्ञानं चावधिज्ञानं ३, तथा परिः–सर्वतो भावे

१५ २० ॥ ६५ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

ज्ञानपञ्च-कस्वरूपम्.

अवनं अवः 'तुदादिभ्यो न क्का'वित्यधिकारे 'अकर्तरि चे'त्यनेनौणादिकोऽकारप्रत्ययः, अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः,मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः–सर्वतो मनोद्रव्यपरिच्छेद इत्यर्थः,अथवा मनःपर्यय इति पाठः, तत्र पर्ययणं पर्ययः, भावेऽल् प्रत्ययः, मनसि मनसो वा पर्ययो मनःपर्ययः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानं, अथवा मनःपर्यायज्ञानमिति पाठः, ततः मनांसि–मनोद्रव्याणि पर्येति–सर्वात्मना परिच्छिनत्ति मनःपर्यायं, 'कर्मणोऽणि'ति अण्प्रत्ययः, मनःपर्यायं च तज्ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानं, यद्वा मनसः पर्यायाः मनःपर्यायाः, पर्याया भेदा धर्म्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यर्थः, तेषु तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं ४, तथा केवलम्— ५
एकमसहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात् केवलज्ञानप्रादुर्भावे मत्यादीनामसम्भवात्,ननु कथमसम्भवो यावता मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशमेऽपि प्रादुष्यन्ति, ततो निर्मूलस्वस्वावरणविलये तानि सुतरां भविष्यन्ति, चारित्रपरिणामवत्, उक्तं च–"[1]आवरणदेसविगमे जाइवि जायंति मइसुयाईणि । आवरणसव्वविगमे कह ताइ न होंति जीवस्स ? ॥ १ ॥" उच्यते, इह यथा जात्यस्य मरकतादिमणेर्मलोपदिग्धस्य यावन्नाद्यापि समूलमलापगमस्तावद्यथा यथा देशतो मलविलयः तथा तथा देशतोऽभिव्यक्तिरुपजायते, सा च क्वचित्कदाचित् कथञ्चित् भवतीत्यनेकप्रकारा, तथाऽऽत्मनोऽपि सकलकालकलापावलम्बिनिखिलपदार्थपरिच्छेदकरणैकपारमार्थिकस्वरूपस्याप्यावरणमलपटलतिरोहितस्वरूपस्य यावत् १०

१ आवरणदेशविगमे यान्यपि जायन्ते मतिश्रुतादीनि । सर्वावरणविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य ? ॥ १ ॥ १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाद्यापि निखिलकर्ममलापगमः तावद्यथा यथा देशतः कर्ममलोच्छेदः तथा तथा देशतः तस्य विज्ञप्तिरुज्जृम्भते, सा च क्वचित्कदाचित्कथञ्चिदित्यनेकप्रकारा, उक्तं च–"मलविद्धमणेर्व्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः । कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥" सा चानेकप्रकारता मतिश्रुतादिभेदेनावसेया, ततो यथा मरकतादिमणेरशेषमलापगमसम्भवे समस्तास्पष्टदेशव्यक्तिव्यवच्छेदेन परिस्फुटरूपैकाऽभिव्यक्तिरुपजायते तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रप्रभावतो निःशेषावरणप्रहाणादशेषज्ञानव्यवच्छेदेनैकरूपा अतिस्फुटा सर्ववस्तुपर्यायसाक्षात्कारिणी विज्ञप्तिरुल्लसति, तथा चोक्तम्–"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः । स्फुटैकरूपाऽभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः ॥ १ ॥" ततो मत्यादिनिरपेक्षं केवलज्ञानं, अथवा शुद्धं केवलं, तदावरणमलकलङ्कस्य निःशेषतोऽपगमात्, सकलं वा केवलं, प्रथमत एवाशेषतदावरणापगमतः सम्पूर्णोत्पत्तेः, असाधारणं वा केवलमनन्यसदृशत्वात्, अनन्तं वा केवलं ज्ञेयानन्तत्वात्, केवलं च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानं ५॥ ननु सकलमपीदं ज्ञानं ज्ञप्त्येकस्वभावं, ततो ज्ञप्त्येकस्वभावत्वाविशेषे किंकृत एष आभिनिबोधकादिभेदो?, ज्ञेयभेदकृत इति चेत्, तथाहि–वार्त्तमानिकं वस्त्वाभिनिबोधिकज्ञानस्य ज्ञेयं, त्रिकालसाधारणः समानपरिणामो ध्वनिर्गोचरः श्रुतज्ञानस्य, रूपिद्रव्याण्यवधिज्ञानस्य, मनोद्रव्याणि मनःपर्यायज्ञानस्य, समस्तपर्यायान्वितं सर्वं वस्तु केवलज्ञानस्य, तदेतदसमीचीनम्, एवं सति केवलज्ञानस्य भेदवाहुल्यप्रसक्तेः, तथाहि–ज्ञेयभेदात् ज्ञानस्य भेदः, यानि च ज्ञेयानि प्रत्येकमाभिनिबोधिकादिज्ञानानामिष्यन्ते तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वाण्यपि केवलज्ञानेऽपि विद्यन्ते, अन्यथा केवलज्ञानेन तेषामग्रहणप्रसङ्गाद्, अविषयत्वात्, तथा च सति केवलिनोऽप्यसर्वज्ञत्वप्रसङ्गः, आभिनिबोधिकादिज्ञानचतुष्टयविषयजातस्य तेनाग्रहणात्, न चैतदिष्टमिति, अथोच्येत- प्रतिपत्तिप्रकारभेदत आभिनिबोधिकादिभेदः, तथाहि—न यादृशी प्रतिपत्तिराभिनिबोधिकज्ञानस्य तादृशी श्रुतज्ञानस्य किन्त्वन्यादृशी, एवमवध्यादिज्ञानानामपि प्रतिपत्तव्यम्, ततो भवत्येव प्रतिपत्तिभेदतो ज्ञानभेदः, तदप्ययुक्तम्, एवं सत्येकस्मिन्नपि ज्ञानेऽनेकभेदप्रसक्तेः, तथाहि—ततदेशकालपुरुषस्वरूपभेदेन विविच्यमानमेकैकं ज्ञानं प्रतिपत्तिप्रकारानन्त्यं प्रतिपद्यते, तन्नैषोऽपि पक्षः श्रेयान्, स्यादेतद्–अस्त्यावारकं कर्म्म, तच्चानेकप्रकारं, ततः तद्भेदात् तदावार्यं ज्ञानमप्यनेकतां प्रतिपद्यते, ज्ञानावारकं च कर्म्म पञ्चधा, प्रज्ञापनादौ तथाऽभिधानात्, ततो ज्ञानमपि पञ्चधा प्ररूप्यते, तदेतदतीव युक्तयसङ्गतं, यत आवार्यापेक्षमावारकमत आवार्यभेदादेव तद्भेदः, आवार्यं च ज्ञप्तिरूपापेक्षया सकलमप्येकरूपं, ततः कथमावारकस्य पञ्चरूपता ?, येन तद्भेदात् ज्ञानस्यापि पञ्चविधो भेद उद्गीर्येत, अथ स्वभावत एवाभिनिबोधिकादिको ज्ञानस्य भेदो, न च स्वभावः पर्यनुयोगमर्हति, न खलु किं दहनो दहति नाकाशमिति कोऽपि पर्यनुयोगमाचरति, अहो महती महीयसो भवतः शेमुषी, ननु यदि स्वभावत एवाभिनिबोधादिको ज्ञानस्य भेदस्तर्हि भगवतः सर्वज्ञत्वहानिप्रसङ्गः, तथाहि—ज्ञानमात्मनो धर्मः, तस्य चाभिनिबोधादिको भेदः स्वभावत एव व्यवस्थितः, क्षीणावरणस्यापि तद्भावप्रसङ्गः, सति च तद्भावेऽस्मादृशस्येव भगवतोऽप्यसर्वज्ञत्वमापद्यते, केवलज्ञान-

ज्ञानस्य भेदपञ्चकसिद्धिः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

भावतः समस्तवस्तुपरिच्छेदान्नासर्वज्ञत्वमिति चेत्, ननु यदा केवलोपयोगसम्भवः तदा तस्य भवतु भगवतः सर्वज्ञत्वं, यदा त्वाभिनिबोधिकादिज्ञानोपयोगसम्भवः तदा देशतः परिच्छेदसम्भवादस्मादृशस्येव तस्यापि बलादेवासर्वज्ञत्वमापद्यते, न च वाच्यं–तस्य तदुपयोग एव न भविष्यति, आत्मस्वभावत्वेन तस्यापि क्रमेणोपयोगस्य निवारयितुमशक्यत्वात्, केवलज्ञानानन्तरं केवलदर्शनोपयोगवत्, ततः केवलज्ञानोपयोगकाले सर्वज्ञत्वं शेषज्ञानोपयोगकाले चासर्वज्ञत्वमापद्यते, तच्च विरुद्धमतोऽनिष्टमिति, आह च—"[1]नत्तेगसहावत्ते आभिणिबोहाइ किंकओ भेदो ?। नेयविसेसाओ चे न सव्वविसयं जओ चरिमं ॥ १ ॥ अह पडिवत्तिविसेसा नेगंमि अणेगभेयभावाओ । आवरणविभेओवि हु सभावभेयं विणा न भवे ॥ २ ॥ तम्मि य सइ सव्वेसिं खीणावरणस्स पावई भावो । तद्धम्मत्ताउ चिय जुत्तिविरोहा स चाणिट्ठो ॥ ६ ॥ अरहावि असव्वन्नू आभिणिबोहाइभावओ नियमा । केवलभावाओ चे सव्वण्णू नणु विरुद्धमिणं ॥ ४ ॥" तस्मादिदमेव युक्तियुक्तं पश्यामो–यदुतावग्रहज्ञानादारभ्य यावदुत्कर्षप्राप्तं परमावधिज्ञानं तावत् सकलमप्येकं, तच्चासकलसंज्ञितम्, अशेषवस्तुविषयत्वाभावात्, अपरं च केवलिनः, तच्च सकलसं-

१ इत्येकस्वभावत्वे आभिनिबोधादिः किंकृतो भेदः ? । ज्ञेयविशेषाच्चेत् न सर्वविषयं यतश्चरमम् ॥ १ ॥ अथ प्रतिपत्तिविशेषात् न एकस्मिन् अनेकभेदभावात् । आवरणविभेदोऽपि च स्वभावभेदं विना न भवेत् ॥ २ ॥ तस्मिंश्च सति सर्वेषां क्षीणावरणस्य प्राप्नोति भावः । तद्धर्मत्वादेव युक्तिविरोधात् स चानिष्टः ॥ ३ ॥ अर्हन्नपि असर्वज्ञ आभिनिबोधादिभावतो नियमात् । केवलभावात् चेत् सर्वज्ञो ननु विरुद्धमिदम् ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

ज्ञितमिति द्वावेव भेदौ, उक्तं च–'तम्हा अवग्गहाओ आरब्भ इहेगमेव नाणन्ति । जुत्तं छउमत्थस्सासगलं इयरं च केवलिणो ॥ १ ॥' अत्र प्रतिविधीयते, तत्र यत्तावदुक्तं–'सकलमपीदं ज्ञानं, ज्ञस्यैकस्वभावत्वाविशेषे किंकृत एष आभिनिबोधादिको भेद इति ?' तत्र ज्ञस्यैकस्वभावता किं सामान्यतो भवताऽभ्युपगम्यते विशेषतो वा ?, तत्र न तावदाद्यः पक्षः क्षितिमाधत्ते, सिद्धसाध्यतया तस्य बाधकत्वायोगात्, बोधस्वरूपसामान्यापेक्षया हि सकलमपि ज्ञानमस्माभिरेकमभ्युपगम्यत एव, ततः का नो हानिरिति । अथ द्वितीयपक्षः, तदयुक्तम्, असिद्धत्वात्, न हि नाम विशेषतो विज्ञानमेकमेवोपलभ्यते,प्रतिप्राणि स्वसंवेदनप्रत्यक्षेणोत्कर्षापकर्षदर्शनात्, अथ यद्युत्कर्षापकर्षमात्रभेददर्शनात् ज्ञानभेदः तर्हि तावुत्कर्षापकर्षौ प्रतिप्राणि देशकालाद्यपेक्षया शतसहस्रशो भिद्येते, ततः कथं पञ्चरूपता?, नैष दोषः, परिस्थूरनिमित्तभेदतः पञ्चधात्वस्य प्रतिपादनात्, तथाहि–सकलघातिक्षयो निमित्तं केवलज्ञानस्य मनःपर्यायज्ञानस्य त्वामर्षौषध्यादिलब्ध्युपेतस्य प्रमादलेशेनाप्यकलङ्कितस्य विशिष्टो विशिष्टाध्यवसायानुगतोऽप्रमादः 'तं संजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविहरिद्धिमतो'इति वचनप्रामाण्याद्, अवधिज्ञानस्य पुनः तथाविधानिन्द्रियरूपिद्रव्यसाक्षादवगमनिबन्धनः क्षयोपशमविशेषः,मतिश्रुतज्ञानयोस्तु लक्षणभेदादिकं, तच्चाग्रे वक्ष्यते, उक्तं च–"नत्तेगसहावत्तं ओहेण विसेसओ

१ तस्मादवग्रहादारभ्य इहैकमेव ज्ञानमिति । युक्तं छद्मस्थस्यासकलमितरच्च केवलिनः ॥ १ ॥ २ तत् संयतस्य सर्वप्रमादरहितस्य विविधर्धिमतः ॥ ३ ज्ञस्यैकस्वभावत्वमोघेन विशेषतः पुनरसिद्धम् । एकान्ततस्तस्वभावत्वात् कथं हानिरुद्वौ ॥ १ ॥ यद् अविचलितस्वभावे तत्त्वे एकान्ततस्तस्वभावत्वम् । न च तत् तथोपलभ्यते उत्कर्षापकर्षविशेषात् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ६८ ॥

पुण असिद्धं । एगंततस्सहावत्तणओ कह हाणिवुड्ढीओ ॥ १ ॥ जं अविचलियसहावे तत्ते एगंततस्सहावत्तं । न य तं तहोवलद्धा उक्करिसावगरिसविसेसा ॥ २ ॥ तम्हा परिथूराओ निमित्तभेयाओ[1] समयसिद्धाओ । उववत्तिसंगओचिय आभिणिबोहाइओ भेओ ॥ ३ ॥ घाइक्खओ निमित्तं केवलनाणस्स वन्निओ समए । मणपज्जवनाणस्स उ तहाविहो अप्पमाउत्ति ॥ ४ ॥ ओहीनाणस्स तहा अणिंदिएसुंपि जो खओवसमो । मइसुयनाणाणं पुण लक्खणभेयादिओ भेओ ॥ ५ ॥" यदप्युक्तम्—'ज्ञेयभेदकृतमित्यादि' तदप्यनभ्युपगमतिरस्कृतत्वादूरापास्तप्रसरं, न हि वयं ज्ञेयभेदमात्रतो ज्ञानस्य भेदमिच्छामः, एकेनाप्यवग्रहादिना बहुबहुविधवस्तुग्रहणोपलम्भात्, यदपि च प्रत्यपादि–'प्रतिपत्तिप्रकारभेदकृत' इत्यादि तदपि न नो बाधामाधातुमलं, यतस्ते प्रतिपत्तिप्रकारा देशकालादिभेदेनानन्त्यमपि प्रतिपद्यमाना न परिस्थूरनिमित्तभेदेन व्यवस्थापितानाभिनिबोधिकादीन् जातिभेदानतिक्रामन्ति, ततः कथमेकस्मिन् अनेकभेदभावप्रसङ्गः ?, उक्तं च–'नै य पडिवत्तिविसेसा एगंमि य णेगभेयभावेऽवि । जं ते तहाविसिट्ठे न जाइभेए विलंघेइ ॥ १ ॥' यदप्यवादीद्–'आवार्यापेक्षं ह्यावरकं'मित्यादि तदपि न नो मनोबाधायै, यतः परिस्थूरनिमित्त-

१ तस्मात् परिस्थूरात् निमित्तभेदात् समयसिद्धात् । उपपत्तिसंगतादेव आभिनिबोधादिको भेदः ॥ ३ ॥ घातिक्षयो निमित्तं केवलज्ञानस्य वर्णितः समये । मनःपर्यवज्ञानस्य तु तथाविधोऽप्रमाद इति ॥ ४ ॥ अवधिज्ञानस्य तथा अनिन्द्रियेष्वपि यः क्षयोपशमः । मतिश्रुतज्ञानयोः पुनर्लक्षणभेदादिको भेदः ॥ ५ ॥ २ न च प्रतिपत्तिविशेषादेकस्मिन्नानेकभावेऽपि । यते तथा विशिष्टा न जातिभेदान् विलङ्घन्ते ॥ १ ॥

ज्ञानस्य भेदपक्षकसिद्धिः. १५ २० ॥ ६८ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

भेदमधिकृत्य व्यवस्थापितो ज्ञानस्य भेदः, ततस्तदपेक्षमावारकमपि तथा भिद्यमानं न युष्मादृशदुर्जनवचनीयतामा- स्कन्दति । एवमुत्तेजितो भूयः सावष्टम्भं परः प्रश्नयति–ननु परिस्थूरनिमित्तभेदव्यवस्थापिता अप्यमी आभिनिबोधिका- दयो भेदा ज्ञानस्यात्मभूता उतानात्मभूताः किञ्चातः ?, उभयथापि दोषः, तथाहि–यद्यात्मभूतास्ततः क्षीणावरणेऽपि तद्भावप्रसङ्गः, तथा चासर्वज्ञत्वं प्रागुक्तनीत्या तस्यापद्यते, अथानात्मभूतास्तर्हि न ते पारमार्थिकाः, कथमावार्यापेक्षो वास्तव आवारकभेदः ?, तदपि न मनोरमं, सम्यक् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानाद्, इह हि सकलघनपटलविनिर्मुक्तशारददि- नमणिरिव समन्ततः समस्तवस्तुस्तोमप्रकाशनैकस्वभावो जीवः, तस्य च तथाभूतः स्वभावः केवलज्ञानमिति व्यपदि- श्यते, स च यद्यपि सर्वघातिना केवलज्ञानावरणेनावियते तथापि तस्यानन्ततमो भागो नित्योद्घाटित एव "अक्ख- रस्स अणंतो भागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तणं पाविज्जा" इत्यादि वक्ष्य- माणप्रवचनप्रामाण्यात्, ततस्तस्य केवलज्ञानावरणावृतस्य घनपटलाच्छादितस्येव सूर्यस्य यो मन्दः प्रकाशः सोऽपा- न्तरालावस्थितमतिज्ञानाद्यावरणक्षयोपशमभेदसम्पादितं नानात्वं भजते, यथा घनपटलावृतसूर्यमन्दप्रकाशोऽपान्तराला- वस्थितकटकुड्याद्यावरणविवरप्रदेशभेदतः, स च नानात्वं क्षयोपशमानुरूपं तथा तथा प्रतिपद्यमानः स्वस्वक्षयोप- शमानुसारेणाभिधानभेदमश्नुते, यथा मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितः स मन्दप्रकाशो मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानावरणक्षयो-

१ अक्षरस्यानन्ततमो भागो नित्योद्घाटितः, यदि पुनः सोऽप्यावियेत तेन जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात् ॥

ज्ञानस्य भेदपक्ष- कसिद्धि.

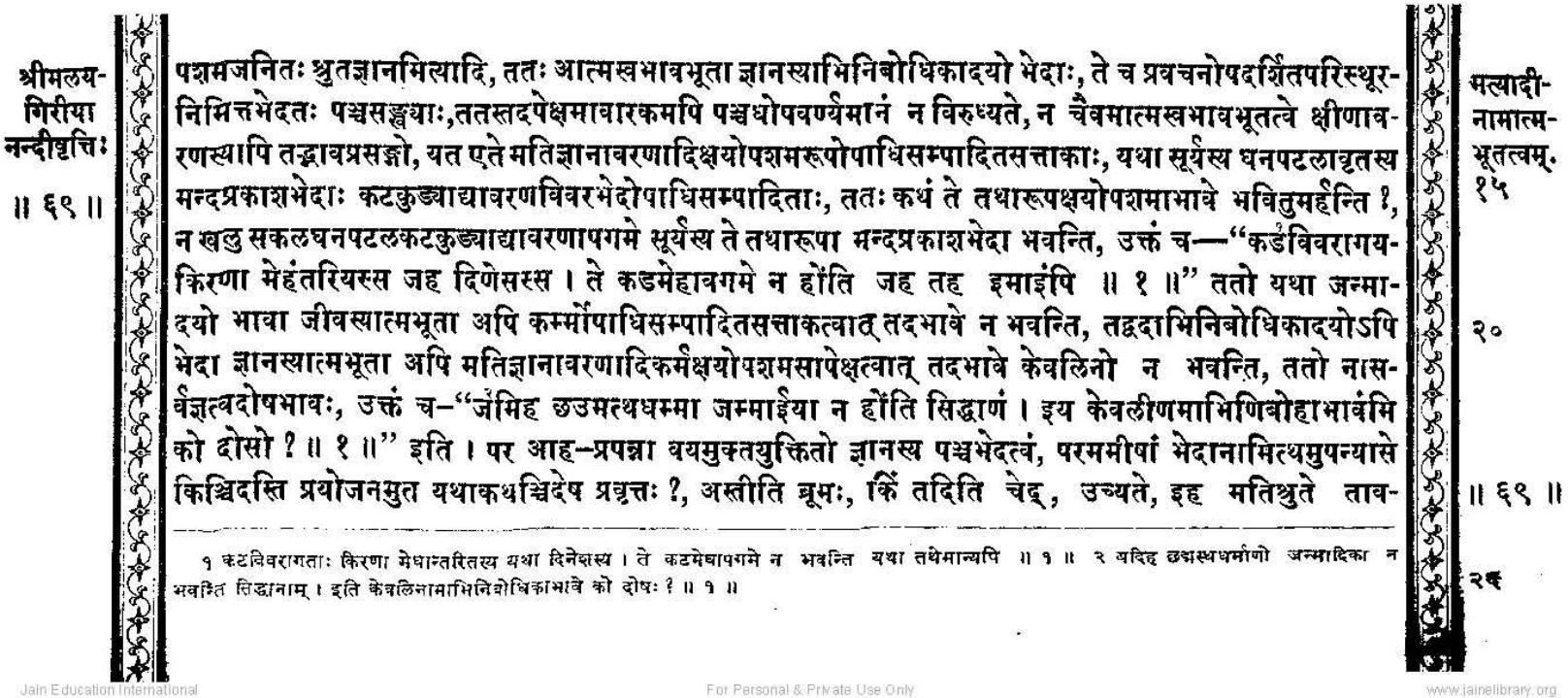
५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [५३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ६९ ॥

पशमजनितः श्रुतज्ञानमित्यादि, ततः आत्मस्वभावभूता ज्ञानस्याभिनिबोधिकादयो भेदाः, ते च प्रवचनोपदर्शितपरिस्थूरनिमित्तभेदतः पञ्चसङ्ख्याः, ततस्तदपेक्षमावारकमपि पञ्चधोपवर्ण्यमानं न विरुध्यते, न चैवमात्मस्वभावभूतत्वे क्षीणावरणस्यापि तद्भावप्रसङ्गो, यत एते मतिज्ञानावरणादिक्षयोपशमरूपोपाधिसम्पादितसत्ताकाः, यथा सूर्यस्य घनपटलावृतस्य मन्दप्रकाशभेदाः कटकुड्याद्यावरणविवरभेदोपाधिसम्पादिताः, ततः कथं ते तथारूपक्षयोपशमाभावे भवितुमर्हन्ति ?, न खलु सकलघनपटलकटकुड्याद्यावरणापगमे सूर्यस्य ते तथारूपा मन्दप्रकाशभेदा भवन्ति, उक्तं च—"कडविवरागयकिरणा मेहंतरियस्स जह दिणेसस्स । ते कडमेहावगमे न होंति जह तह इमाइंपि ॥ १ ॥" ततो यथा जन्मादयो भावा जीवस्यात्मभूता अपि कर्मोपाधिसम्पादितसत्ताकत्वात् तदभावे न भवन्ति, तद्वदाभिनिबोधिकादयोऽपि भेदा ज्ञानस्यात्मभूता अपि मतिज्ञानावरणादिकर्मक्षयोपशमसापेक्षत्वात् तदभावे केवलिनो न भवन्ति, ततो नासर्वज्ञत्वदोषभावः, उक्तं च–"जंमिह छउमत्थधम्मा जम्माईया न होंति सिद्धाणं । इय केवलीणमाभिणिबोहाभावंमि को दोसो ? ॥ १ ॥" इति । पर आह–प्रपन्ना वयमुक्तयुक्तितो ज्ञानस्य पञ्चभेदत्वं, परममीषां भेदानामित्थमुपन्यासे किञ्चिदस्ति प्रयोजनमुत यथाकथञ्चिदेष प्रवृत्तः ?, अस्तीति ब्रूमः, किं तदिति चेद्, उच्यते, इह मतिश्रुते ताव-

१ कटविवरागताः किरणा मेघान्तरितस्य यथा दिनेशस्य । ते कटमेघापगमे न भवन्ति यथा तथेमान्यपि ॥ १ ॥ २ यदिह छद्मस्थधर्माणो जन्मादिका न भवन्ति सिद्धानाम् । इति केवलिनामाभिनिबोधिकाभावे को दोषः ? ॥ १ ॥

मत्यादीनामात्मभूतत्वम्. १५ २० ॥ ६९ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देकत्र वक्तव्ये, पररूपरमनयोः स्वामिकालकारणविषयपरोक्षत्वसाधर्म्यात्, तथाहि–य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्यापि 'जत्थं मइनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थ मइनाण'मित्यादिवक्ष्यमाणवचनप्रामाण्यात् ततः स्वामिसाधर्म्यं, तथा यावानेव मतिज्ञानस्य स्थितिकालस्तावानेव श्रुतज्ञानस्यापि, तत्र प्रवाहापेक्षया अतीतानागतवर्त्तमानरूपः सर्व एव कालः, अप्रतिपतितैकजीवापेक्षया तु षट्षष्टिसागरोपमाणि समधिकानि, उक्तं च– "दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नच्चुए अहव ताइं । अइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सव्वद्धा ॥ १ ॥" इति कालसाधर्म्यं, यथेन्द्रियनिमित्तं मतिज्ञानं तथा श्रुतज्ञानमपीति कारणसाधर्म्यम् तथा यथा मतिज्ञानमादेशतः सर्वद्रव्यादिविषयमेवं श्रुतज्ञानमपीति विषयसाधर्म्यम्, यथा च मतिज्ञानं परोक्षं तथा श्रुतज्ञानमपि परोक्षं, परोक्षता चानयोरग्रे स्वयमेव सूत्रकृता वक्ष्यते इति परोक्षत्वसाधर्म्यम्, तत इत्थं स्वाम्यादिसाधर्म्यादेव मतिश्रुते नियमादेकत्र वक्तव्ये, ते चावध्यादिज्ञानेभ्यः प्रागेव, तद्भाव एवावध्यादिज्ञानसद्भावात्, उक्तं च–"जं सामिकालकारणविसयपरोक्खत्तणेहिं तुल्लाइं । तब्भावे सेसाणि य तेणाईए मइसुयाइं ॥ १ ॥" ननु भवतामेकत्र मतिश्रुते प्रागेव चावध्यादिभ्यः, परमेतयोरेव मतिश्रुतयोर्मध्ये पूर्वं मतिः पश्चात् श्रुतमित्येतत्कथम् ?, उच्यते, मतिपूर्वकत्वात् श्रुतज्ञानस्य,

१ यत्र मतिज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानं यत्र श्रुतज्ञानं तत्र मतिज्ञानं । २ द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य त्रीन् अच्युतेऽथवा तानि । अतिरिक्तं नरभविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥ ३ यत् स्वामिकालकारणविषयपरोक्षत्वैः तुल्ये । तद्भावे शेषाणि च तेनादौ मतिश्रुते ॥ १ ॥

मत्यादिक्रमस्थापना.

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

तथाहि–सर्वत्रापि पूर्वमवग्रहादिरूपं मतिज्ञानमुदयते पश्चाच्छ्रुतं, तथा चोक्तं चूर्णावपि—"तेसुऽवि य मइपुव्वयं सुयंतिकिच्चा पुव्वं मइणाणं कयं, तस्स पिट्ठओ सुयं" ति । नन्वेते मतिश्रुते सम्यक्त्वोत्पादकाले युगपदुत्पत्तिमासादयतः, अन्यथा मतिज्ञानभावेऽपि श्रुताज्ञानभावप्रसङ्गः, स चानिष्टः, तथा मिथ्यात्वप्रतिपत्तौ युगपदेव चाज्ञानरूपतया परिणमतः, ततः कथं मतिपूर्वं श्रुतमुद्दीर्यते ?, उक्तं च–"णाणाणंऽण्णाणाणि य समकालाइं जओ मइसुयाइं । तो न सुयं मइपुवं मइनाणे वा सुयअन्नाणं ॥ १ ॥" नैष दोषो, यतः सम्यक्त्वोत्पत्तिकाले समकालं मतिश्रुते लब्धिमात्रमेवाङ्गीकृत्य प्रोच्येते, न तूपयोगम्, उपयोगस्य तथाजीवस्वाभाव्यतः क्रमेणैव सम्भवात्, मतिपूर्वं च श्रुतमुच्यते उपयोगापेक्षया, न खलु मत्युपयोगेनासञ्चिन्त्य श्रुतग्रन्थानुसारि विज्ञानमासादयति जन्तुः, ततो न कश्चिद्दोषः, आह च भाष्यकृत्–"[3]इह लद्धिमइसुयाइं समकालाइं न तूवओगो सिं । मइपुव्वं सुयमिह पुण सुओवओगो मइप्पभवो ॥ १ ॥" । तथा कालविपर्ययस्वामित्वलाभसाधर्म्यात् मतिश्रुतानन्तरमवधिज्ञानमुक्तं, तत्र प्रवाहापेक्षया अप्रतिपतितैकसन्त्वाधारापेक्षया यावान् मतिश्रुतयोः स्थितिकालः तावानेवावधिज्ञानस्यापि, तथा यथैव मतिश्रुते ज्ञाने मिथ्यादर्शनोदयतो विपर्ययरूपतामासादयतः तथाऽवधिज्ञानमपि, तथाहि–मिथ्यादृष्टेः सतः

१ तथोरपि च मतिपूर्वकं श्रुतमितिकृत्वा पूर्वं मतिज्ञानं कृतं तस्य पृष्ठतः श्रुतमिति । २ ज्ञाने अज्ञाने च समकाले यतो मतिश्रुते । ततो न श्रुतं मतिपूर्वं मतिज्ञाने वा श्रुताज्ञानम् ॥ १ ॥ ३ इह लब्धितो मतिश्रुते समकाले न तूपयोगोऽनयोः । मतिपूर्वं श्रुतमिह पुनः श्रुतोपयोगो मतिप्रभवः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

तान्येव मतिश्रुतावधिज्ञानानि मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानानि भवन्ति, उक्तं च–"आद्यत्रयमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्त"मिति, तथा य एव मतिश्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानस्यापि, तथा विभङ्गज्ञानिनस्त्रिदशादेः सम्यग्दर्शनावासौ युगपदेव मतिश्रुतावधिज्ञानानां लाभसम्भवः ततो लाभसाधर्म्यम्। अवधिज्ञानानन्तरं च छद्मस्थविषयभावप्रत्यक्षत्वसाधर्म्यात् मनःपर्यायज्ञानमुक्तं,तथाहि–यथाऽवधिज्ञानं छद्मस्थस्य भवति तथा मनःपर्यवज्ञानमपीति छद्मस्थसाधर्म्यं, तथा यथाऽवधिज्ञानं रूपिद्रव्यविषयं तथा मनःपर्यायज्ञानमपि, तस्य मनःपुद्गलालम्बनत्वादिति विषयसाधर्म्यं,तथा यथाऽवधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्त्तते तथा मनःपर्यायज्ञानमपीति भावसाधर्म्यं, यथा चावधिज्ञानं प्रत्यक्षं तथा मनःपर्यायज्ञानमपीति प्रत्यक्षत्वसाधर्म्यम्, उक्तं च–"[1]कालविवज्जयसामित्तलाभसाहम्मओऽवही तत्तो। माणसमित्तो छउमत्थविसयभावाइसाहम्मा ॥१॥"तथा मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानस्योपन्यासः सर्वोत्तमत्वादप्रमत्ततयतिस्वामिसाधर्म्यात् सर्वावसाने लाभाच्च, तथाहि–सर्वाण्यपि मतिज्ञानादीनि ज्ञानानि देशतः परिच्छेदकानि, केवलज्ञानं तु सकलवस्तुस्तोमपरिच्छेदकं, सर्वोत्तमं सर्वोत्तमत्वाच्चान्ते सर्वशिरःशिखरकल्पं उपन्यस्तं, तथा यथा मनःपर्यायज्ञानमप्रमत्ततयतेरेवोदयते तथा केवलज्ञानमप्यप्रमादभावमुपगतस्यैव यतेर्भवति, नान्यस्य, ततोऽप्रमत्ततयतिसाधर्म्यं, यथा यः सर्वाण्यपि ज्ञानानि समासादयितुं योग्यः स नियमात् सर्वज्ञानावसाने केवलज्ञानमवाप्नोति, ततः सर्वान्ते

१ कालविपर्ययस्वामित्वलाभसाधर्म्यतोऽवधिः ततः। मनःपर्यायं इतः छद्मस्थविषयभावादिसाधर्म्यात् ॥ १ ॥

मत्यादिक्रमस्थापना.

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [५३]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ७१ ॥

केवलमुक्तम् , उक्तं च–"[1]अंते केवलमुत्तमजइसामित्तावसाणलाभाओ" इति, तथा यथा मनःपर्यायज्ञानं न विपर्ययमासादयति तथा केवलज्ञानमपीति विपर्ययाभावसाधर्म्याच्च मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानमुक्तमिति कृतं प्रसङ्गेन ॥—

तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–पच्चक्खं च परोक्खं च (सू. २)

'तत्' पञ्चप्रकारमपि ज्ञानं 'समासतः' संक्षेपेण 'द्विविधं' द्विप्रकारं प्रज्ञप्तं, 'तद्यथे'त्युदाहरणोपन्यासार्थः, प्रत्यक्षं च परोक्षं च, तत्र 'अशुङ् व्याप्तौ' अश्नुते ज्ञानात्मना सर्वानर्थान् व्याप्नोतीत्यक्षः, अथवा 'अश् भोजने' अश्नाति सर्वान् अर्थान् यथायोगं भुङ्क्ते पालयति वेत्यक्षो–जीवः, उभयत्राप्यौणादिकः सक्प्रत्ययः, तं अक्षं–जीवं प्रति साक्षाद्वर्त्तते यत् ज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्—इन्द्रियमनोनिरपेक्षमात्मनः साक्षात्प्रवृत्तिमदवध्यादिकं त्रिप्रकारं, उक्तं च–"जीवो अक्खो अत्थव्वावणभोयणगुणन्निओ जेणं । तं पइ वट्टइ नाणं जं पच्चक्खं तयं तिविहं ॥ १ ॥" चशब्दः स्वगतानेकावध्यादिभेदसूचकः, तथा अक्षस्य–आत्मनो द्रव्येन्द्रियाणि द्रव्यमनश्च पुद्गलमयत्वात् पराणि वर्त्तन्ते–पृथग्वर्त्तन्ते इत्यर्थः, तेभ्यो यदक्षस्य ज्ञानमुदयते तत्परोक्षं, पृषोदरादय इति रूपसिद्धिः, अथवा परैः–इन्द्रियादिभिः सह उक्षः–सम्बन्धो विषयविषयिभावलक्षणो यस्मिन् ज्ञाने, न तु साक्षा-

१ अन्ते केवलमुत्तमयतिखामिलावसानलाभात् २ जीवोऽक्षोऽर्थव्यापनभोजनगुणान्वितो येन । तं प्रति वर्तते ज्ञानं यत् प्रत्यक्षं तकत् त्रिविधम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षपरोक्षभेदौ. सू. २ १५ २० ॥ ७१ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मत्यादि पञ्चविध-ज्ञानस्य द्विविधत्वम् कथनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [५४]

दात्मनो, धूमादग्निज्ञानमिव, तत्परोक्षम्, उभयत्रापि इन्द्रियमनोनिमित्तं ज्ञानमभिधेयम् । आह–इन्द्रियमनोनिमित्ताधीनं कथं परोक्षम् ?, उच्यते, पराश्रयत्वात्, तथाहि–पुद्गलमयत्वाद्द्रव्येन्द्रियमनांस्यात्मनः पृथग्भूतानि, ततः तदाश्रयेणोपजायमानं ज्ञानमात्मनो न साक्षात्, किन्तु परम्परया, इतीन्द्रियमनोनिमित्तं ज्ञानं धूमादग्निज्ञानमिव परोक्षं, उक्तं च–"[१]अक्खस्स पोग्गलमया जं दव्विंदियमणा परा होंति। तेहिंतो जं नाणं परोक्खमिह तमणुमाणं व ॥ १ ॥" अत्र वैशेषिकादयः प्राहुः—'नन्वक्षमिन्द्रियं श्रोतो हृषीकं करणं स्मृतं,' ततोऽक्षाणाम्–इन्द्रियाणां या साक्षादुपलब्धिः सा प्रत्यक्षं, अक्षम्–इन्द्रियं प्रति वर्त्तते इति प्रत्यक्षव्युत्पत्तेः, तथा च सति सकललोके प्रसिद्धं साक्षादिन्द्रियाश्रितं घटादि ज्ञानं प्रत्यक्षमिति सिद्धं, तदेतदयुक्तम्, इन्द्रियाणामुपलब्धृत्वासम्भवात्, तदसंभवश्चाचेतनत्वात्, तथा चात्र प्रयोगः–यदचेतनं तन्नोपलब्धृ, यथा घटः, अचेतनानि च द्रव्येन्द्रियाणि, न चायमसिद्धो हेतुः, यतो नाम द्रव्येन्द्रियाणि निर्वृत्त्युपकरणरूपाणि, 'निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रिय'मिति(त०अ०२–सू०१७)वचनात्, निर्वृत्त्युपकरणे च पुद्गलमये, यथा चानयोः पुद्गलमयता तथाऽग्रे वक्ष्यते, पुद्गलमयं च सर्वमचेतनं, पुद्गलानां काठिन्यानवबोधरूपतया चैतन्यं प्रति धर्मित्वायोगात्, धर्मानुरूपो हि सर्वत्रापि धर्म्मी, यथा काठिन्यं प्रति पृथिवी, यदि पुनरनुरूपत्वाभावेऽपि धर्मधर्म्मिभावो भवेत् ततः काठिन्यजलयोरपि स भवेत्, न च भवति तस्मादचेतनाः पुद्गलाः, उक्तं च—

[१] अक्षस्य पुद्गलमयानि यद्द्रव्येन्द्रियमनांसि पराणि भवन्ति । तेभ्यो यज्ज्ञानं परोक्षमिह तद् अनुमानमिव ॥ १ ॥

ऐन्द्रियकस्य परोक्षता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [५४]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ७२ ॥

"बोहेसहावममुत्तं विसयपरिच्छेयगं च चेयन्नं । विवरीयसहावाणि य भूयाणि जगप्पसिद्धाणि ॥ १ ॥ ता धम्मधम्मिभावो कहमेसिं घडइ तहऽब्भुवगमेऽवि । अणुरूवत्ताभावे काठिन्नजलाण किन्न भवे ? ॥ २ ॥" इति, नापि सन्दिग्धानैकान्तिकता हेतोः शङ्कनीया, अचेतनस्योपलम्भकत्वशक्त्ययोगाद्, उपलम्भकत्वं हि चेतनाया धर्मः, ततः स कथं तदभावे भवितुमर्हति ?, आह–प्रत्यक्षबाधितेयं प्रतिज्ञा, साक्षादिन्द्रियाणामुपलम्भकत्वेन प्रतीतेः, तथाहि—चक्षू रूपं गृह्णदुपलभ्यते, शब्दं कर्णौ, नासिका गन्धमित्यादि, तदेतत् मोहावष्टब्धान्तःकरणताविलसितं, तथाहि–आत्मा शरीरेन्द्रियैः सहान्योऽन्यानुवेधेन व्यवस्थितः, ततोऽयमात्मा अमूनि चेन्द्रियाणीति विवेक्तुमशक्नुवन्तो बालिशजन्तवः, तत्रापि युष्मादृशां कुशास्त्रसम्पर्कतः कुवासनासङ्गमः, ततः साक्षादुपलम्भकानीन्द्रियाणीति मन्यन्ते, परमार्थतः पुनरुपलब्धा तत्रात्मैव, कथमेतदवसीयत इति चेत्, उच्यते, तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्, तथाहि–कोऽपि पूर्वं चक्षुषा विवक्षितमर्थं गृहीतवान्, ततः कालान्तरे दैवविनियोगतः चक्षुषोऽपगमेऽपि स तमर्थमनुस्मरति, तत्र यदि चक्षुरेव द्रष्टृ स्यात् ततः चक्षुषोऽभावे तदुपलब्धार्थानुस्मरणं न भवेत्, न ह्यात्मना सोऽर्थोऽनुभूतः, किन्तु चक्षुषा, चक्षुष एव साक्षाद्द्रष्टृत्वेनोपगमात्, न चान्येनानुभूतेऽर्थेऽन्यस्य स्मरणं, मा प्रापदतिप्रसङ्गः, अपि च–

१ बोधस्वभावममूर्त्तं विषयपरिच्छेदकं च चैतन्यम् । विपरीतस्वभावानि च भूतानि जगत्प्रसिद्धानि ॥१॥ तत् धर्मैधर्मिभावः कथमेतेषां घटते तथाऽभ्युपगमेऽपि । अनुरूपत्वाभावे काठिन्यजलयोः किं न भवेत् ? ॥ २ ॥

ऐन्द्रियकस्य परोक्षता. १५ २० ॥ ७२ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [५४]

मा भूच्चक्षुषोऽपगमः तथापि यदि चक्षुरेव द्रष्टृ ततः स्मरणमात्मनो न भवेत्, अन्येनानुभूतेऽर्थेऽन्यस्य स्मरणायोगात्, भवति च स्मरणमात्मनः चक्षुषः स्मर्तृत्वेनाप्रतीतेरनभ्युपगमाच्च, तस्मादात्मैवोपलब्धा नेन्द्रियमिति । तथा चात्र प्रयोगः–यो येषूपरतेष्वपि तदुपलब्धानर्थान् स्मरति स तत्रोपलब्धा, यथा गवाक्षोपलब्धानामर्थानामनुस्मर्त्ता देवदत्तः, अनुस्मरति च द्रव्येन्द्रियोपलब्धानर्थान् द्रव्येन्द्रियापगमेऽप्यात्मा, इह स्मरणमनुभवपूर्वकतया व्याप्यं, व्याप्यव्यापकभावश्चानुभवस्मरणयोः प्रत्यक्षेणैव प्रतिपन्नः, तथाहि—योऽर्थोऽनुभूतः स स्मर्यते न शेषः, तथा स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण प्रतीतेः, विपक्षे चातिप्रसङ्गो बाधकं प्रमाणं, अननुभूतेऽपि विषये यदि स्मरणं भवेत् ततोऽननुभूतत्वाविशेषात् खरविषाणादेरपि स्मरणं भवेदित्यतिप्रसङ्गः, तस्मात् द्रव्येन्द्रियापगमेऽपि तदुलब्धार्थानुस्मरणादात्मा उपलब्धेति स्थितं, उक्तं च—"केसिंचिं इंदियाइं अक्खाइं तदुवलद्धि पच्चक्खं। तन्नो ताइं जमचेयणाइं जाणंति न घडोव्व ॥ १ ॥ उवलद्धा तत्थाया तद्विगमे तदुवलद्धसरणाओ। गेहगवक्खोवरमेवि तदुवलद्धाणुसरिया वा ॥ २ ॥" अत्र वाशब्द उपमार्थः। अपरे पुनराहुः–न वयमिन्द्रियाणामुपलब्धृत्वं प्रतिजानीमहे, किन्त्वेतदेव ब्रूमो–यदिन्द्रियद्वारेण प्रवर्तते ज्ञानमात्मनि तत्प्रत्यक्षं, न चेन्द्रियव्यापारव्यवहितत्वादात्मा साक्षान्नोपलब्धेति वक्तव्यम्, इन्द्रियाणामुपलब्धि

आत्मनो द्रष्टृत्वम्.

५

१०

१३

१ केषांचिदिन्द्रियाणि अक्षाणि तदुपलब्धिः प्रत्यक्षम्। तत्र तानि यदचेतनानि जानन्ति न घट इव ॥ १ ॥ उपलब्धा तत्रात्मा तद्विगमे तदुपलब्धस्मरणात्। गृहगवाक्षोपरमेऽपि तदुपलब्धानुस्मर्त्ता इव ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [५४]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ७३ ॥

प्रति करणतया व्यवधायकत्वायोगात्, न खलु देवदत्तो हस्तेन भुञ्जानो हस्तव्यापारव्यवहितत्वात् साक्षान्न भोक्तेति व्यपदेष्टुं शक्यम्, तदेतदसमीचीनं, सम्यग्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, इह हि यदाऽऽत्मा चक्षुरादिकमपेक्ष्य बाह्यमर्थमवबुध्यते तदाऽवश्यं चक्षुरादेः साद्गुण्याद्यपेक्षते, तथाहि—यदा सद्गुणं चक्षुः तदा बाह्यमर्थं स्पष्टं यथावस्थितं चोपलभते, यदा तु तिमिराशुभ्रमणनौयानपित्तादिसंक्षोभदेशदवीयस्त्वाद्यापादितविभ्रमं तदा विपरीतं संशयितं वा, ततोऽवश्यमात्मा अर्थोपलब्धौ पराधीनः, तथा च सति यथा राजा निजराजदौवारिकेणोपदर्शितं परराष्ट्रराजकीयं पुरुषं पश्यन्नपि समीचीनमसमीचीनं वा निजराजदौवारिकवचनत एव प्रत्येति न साक्षात्, तद्वदात्मापि चक्षुरादिनोपदर्शितं बाह्यमर्थं चक्षुरादिप्रत्ययत एव समीचीनमसमीचीनं वा वेत्ति, न साक्षात्, तथाहि–चक्षुरादिना दर्शितेऽपि बाह्येऽर्थे यदि संशयमधिरूढो भवति तर्हि चक्षुरादिसाद्गुण्यमेव प्रतीत्य निश्चयं विदधाति, यथा न मे चक्षुस्तिमिरोपप्लुतं, न नौयानाशुभ्रमणाद्यापादितविभ्रमं, ततोऽयमर्थः समीचीन इति, ततो यथा राज्ञो नायं मम राजदौवारिकोऽसत्यालापी कदाचनाप्यस्य व्यभिचारानुपलम्भादिति निजदौवारिकस्य साद्गुण्यमवगम्य परराष्ट्रराजकीयपुरुषसमीचीनतावधारणं परमार्थतः परोक्षं तद्वदात्मनोऽपि चक्षुरादिसाद्गुण्यावधारणतो वस्तुयाथात्म्यावधारणं परमार्थतः परोक्षं, नन्विदमिन्द्रियसाद्गुण्यावधारणतो वस्तुयाथात्म्यावधारणमनभ्यासदशामापन्नस्योपलभ्यते नाभ्यासदशामुपागतस्य, अभ्यासदशामापन्नो ह्यभ्यासप्रकर्षसामर्थ्यादिन्द्रियसाद्गुण्यमनपेक्ष्यैव साक्षादवबुध्यते, ततस्तस्येन्द्रियाश्रितं ज्ञानं कथं प्रत्यक्षं न भवति ?, तदयु-

इन्द्रिय-साद्गुण्याज्ज्ञानम्. १५ २० ॥ ७३ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्तम्, अभ्यासदशामापन्नस्यापि साक्षादनवबोधात्, तस्यापीन्द्रियद्वारेणावबोधप्रवृत्तेरवश्यमिन्द्रियसाद्गुण्यापेक्षणात्, केवलमभ्यासप्रकर्षवशात्तदिन्द्रियसाद्गुण्यं झटित्येवावधारयति, पूर्वावधृतं च झटित्येव निश्चिनोति, ततः कालसौक्ष्म्यात्तन्नोपलभ्यते, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, यतोऽवश्यमवायज्ञानमवग्रहेहापूर्वं, ईहा च विचारणात्मिका, विचारश्चेन्द्रियसाद्गुण्यसद्भूतवस्तुधर्म्माश्रितः, अन्यथैकतरविचाराभावेऽवायज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानत्वायोगात्, न खल्विन्द्रिये वस्तुनि वा सम्यगविचारितेऽवायज्ञानं समीचीनं भवति, ततोऽभ्यासदशापन्नेऽपीन्द्रियसाद्गुण्यावधारणमवसेयं, यदपि चोक्तम्—'न खलु देवदत्तो हस्तेन भुञ्जानो हस्तव्यापारव्यवहितत्वात्साक्षान्न भोक्तेति व्यपदेष्टुं शक्यमिति' तदप्ययुक्तं, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकार्थवैषम्याद्, भोक्ता हि भुजिक्रियानुभवभागी भण्यते, भुजिक्रियाऽनुभवश्च देवदत्तस्य न हस्तेन व्यवधीयते, किन्तु साक्षात्, हस्तो हि कवलप्रक्षेप एव व्याप्रियते न परिच्छेदक्रियायामिन्द्रियमिवाहारक्रियानुभवेऽपि येन व्यवधानं भवेत्, ततः साक्षाद्देवदत्तो भोक्तेति व्यवहियते, इह तु वस्तूनामुपलब्धिरुक्तनीत्या चक्षुरादीन्द्रियसाद्गुण्यावगमानुसारेणोपजायते, ततो व्यवधानान्न साक्षादुपलम्भक आत्मेति। नन्विदं सर्वमप्युत्सूत्रप्ररूपणं, सूत्रे ह्यनन्तरमेवेन्द्रियाश्रितं ज्ञानं प्रत्यक्षमुपदेक्ष्यते—'पच्चक्खं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा-इंदियपच्चक्खं नोइंदियपच्चक्खं चे'ति सत्यमेतत्, किन्त्विदं लोकव्यवहारमधिकृत्योक्तं, न परमार्थतः, तथाहि—यदिन्द्रियाश्रितमपरव्यवधानरहितं ज्ञानमुदयते तल्लोके प्रत्यक्षमिति व्यवहृतं, अपरधूमादिलिङ्गनिरपेक्षतया साक्षादिन्द्रियमधिकृत्य प्रवर्त्तनात्, यत्पुन-

ऐन्द्रिय-कस्य परो- ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिन्द्रियव्यापारेऽप्यपरं धूमादिकमपेक्ष्याऽग्न्यादिविषयं ज्ञानमुदयते तल्लोके परोक्षं, तत्र साक्षादिन्द्रियव्यापारासम्भवात्, यत्पुनरात्मनः इन्द्रियमप्यनपेक्ष्य साक्षादुपजायते तत्परमार्थतः प्रत्यक्षं, तच्चावध्यादिकं त्रिप्रकारं, ततो लोकव्यवहारमधिकृत्येन्द्रियाश्रितं ज्ञानमनन्तरसूत्रे प्रत्यक्षमुक्तं, न परमार्थतः, अथोच्येत–अनन्तरसूत्रे न किमपि विशेषसूचकं पदमीक्षामहे, ततः कथमिदमवसीयते–संव्यवहारमधिकृत्येन्द्रियाश्रितं ज्ञानं प्रत्यक्षमुक्तं, न परमार्थत इति ?, उच्यते, उत्तरसूत्रार्थपर्यालोचनात्, प्रत्यक्षभेदाभिधानानन्तरं हि सूत्रमाचार्यो वक्ष्यति–'परोक्खं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा-आभिणिबोहियनाणं सुयनाण'मित्यादि, तत्राभिनिबोधिकमवग्रहादिरूपम्, अवग्रहादयश्च श्रोत्रेन्द्रियाद्याश्रिता वर्णयिष्यति, तद्यदि श्रोत्रादीन्द्रियाश्रितं ज्ञानं परमार्थतः प्रत्यक्षं तत्कथमवग्रहादयः परोक्षज्ञानत्वेनाग्रेऽभिधीयन्ते ?, तस्मादुत्तरत्रेन्द्रियाश्रितज्ञानस्य परोक्षत्वेनाभिधानादवसीयते–अनन्तरसूत्रेणोच्यमानमिन्द्रियाश्रितं ज्ञानं व्यवहारप्रत्यक्षमुक्तं, न परमार्थत इति स्थितं, आह च—"एगंतेण परोक्खं लिंगियमोहाइयं च पच्चक्खं । इंदियमणोभवं जं तं संववहारपच्चक्खं ॥ १ ॥" अकलङ्कोऽप्याह–"द्विविधं प्रत्यक्षज्ञानं-सांव्यवहारिकं मुख्यं च, तत्र सांव्यवहारिकमिन्द्रियानिन्द्रियप्रत्यक्षं, मुख्यमतीन्द्रियज्ञान"मिति, केवलमनोमात्रनिमित्तं श्रुतज्ञानं च लोकेऽपि परोक्षमिति प्रतीतं,

१ एकान्तेन परोक्षं लैङ्गिकमवध्यादिकं च प्रत्यक्षम् । इन्द्रियमनोभवं यत् तत् संव्यवहारप्रत्यक्षम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२] दीप अनुक्रम [५४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

नापि सूत्रे क्वचिदपि प्रत्यक्षमिति व्यवहृतं, ततो न तत्र कश्चिद्विवादः ॥ तदेवं प्रत्यक्षं परोक्षं चेति भेदद्वयोपन्यासे कृते सति शिष्योऽनवबुध्यमानः प्रश्नं विधत्ते—

से किं तं पच्चक्खं ?, पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-इंदियपच्चक्खं नोइंदियपच्चक्खं च । (सू० ३)

सेशब्दो मागधदेशीयप्रसिद्धो निपातोऽथशब्दार्थे वर्त्तते, अथशब्दार्थ[ब्द]श्च प्रक्रियाद्यर्थाभिधायी, यत उक्तं—"अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेष्वि"ति, इह चोपन्यासार्थो वेदितव्यः, 'किं'मिति परप्रश्ने, तत्प्रागुपदिष्टं प्रत्यक्ष (क्षं कि)मिति ?, एवं शिष्येण प्रश्ने कृते सति न्यायमार्गोपदर्शनार्थमाचार्यः शिष्यपृष्टपदानुवाद-पुरस्सरीकारेण प्रतिवचनमभिधातुकाम आह—'पच्चक्ख'मित्यादि, एवमन्यत्रापि यथायोगं प्रश्ननिर्वचनसूत्राणां पातनिका भावनीया । प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च, तत्र 'इदु पर-मैश्वर्ये' 'उदितो न'मिति नम् इन्दनादिन्द्रः–आत्मा सर्वद्रव्योपलब्धिरूपपरमैश्वर्ययोगात्, तस्य लिङ्ग–चि-ह्नमविनाभावि इन्द्रियम् 'इन्द्रिय'मितिनिपातनसूत्राद्रूपनिष्पत्तिः, तत् द्विधा–द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, तत्र द्रव्येन्द्रियं द्विधा–निर्वृत्तिरुपकरणं च, निर्वृत्तिर्नाम प्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, सापि द्विधा–बाह्या अभ्य-न्तरा च, तत्र बाह्या कर्णपर्पटकादिरूपा, सापि विचित्रा-न प्रतिनियतरूपतयोपदेष्टुं शक्यते, तथाहि—मनुष्यस्य श्रोत्रे भ्रूसमे नेत्रयोरुभयपार्श्वतः संस्थिते वाजिनोः मस्तके नेत्रयोरुपरिष्टाद्भाविनी तीक्ष्णे चाग्रभागे

इन्द्रियनो-इन्द्रियप्र-त्यक्षम्. सू. ३

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	प्रत्यक्षज्ञानस्य भेद-प्रभेदानां निरूपणं

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [५५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ७५ ॥

इत्यादिजातिभेदान्नानाविधा, आभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषामपि जन्तूनां समाना, तामेवाधिकृत्यामूनि सूत्राणि प्रावर्त्तिष्यन्त "सोइंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते ?, गोअमा ! कलंबुयासंठाणसंठिए पन्नत्ते, चक्खिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?, गोअमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते, घाणिंदिए णं भन्ते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?, गोयमा ! अइमुत्तगसंठाणसंठिए पण्णत्ते, जिब्भिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?, गोअमा ! खुरप्पसंठाणसंठिए पण्णत्ते, फासिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ? गोअमा ! नाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते" इह स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तेः प्रायो न बाह्याभ्यन्तरभेदः, तत्त्वार्थमूलटीकायां तथाभिधानात्, उपकरणं खड्गस्थानीयाया बाह्यनिर्वृत्तेर्या खड्गधारासमाना स्वच्छतरपुद्गलसमूहात्मिका अभ्यन्तरा निर्वृत्तिः तस्याः शक्तिविशेषः, इदं चोपकरणरूपं द्रव्येन्द्रियमान्तरनिर्वृत्तेः कथञ्चिदर्थान्तरं, शक्तिशक्तिमतोः कथञ्चिद्भेदात्, कथञ्चिद्भेदश्च सत्यामपि तस्यामान्तरनिर्वृत्तौ द्रव्यादिनोपकरणस्य विघातसम्भवात्, तथाहि–सत्यामपि कदम्बपुष्पाद्याकृतिरूपायामान्तरनिर्वृत्तावतिकठोरतरघनगर्जितादिना शक्त्युपघाते सति न परिच्छेत्तुमीशते जन्तवः शब्दादिकमिति, भावेन्द्रियमपि द्विधा–

१ श्रोत्रेन्द्रियं भदन्त ! किंसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! कलम्बुका (कदम्बक) संस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, चक्षुरिन्द्रियं भदन्त ! किंसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?' गौतम ! मसूरचन्द्रसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, घ्राणेन्द्रियं भदन्त ! किंसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! अतिमुक्तकसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, जिह्वेन्द्रियं भदन्त ! किंसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! क्षुरप्रसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, स्पर्शनेन्द्रियं भदन्त ! किं संस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! नानासंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं ॥

द्रव्यभावेन्द्रियस्वरूपम्.

१५

२०

॥ ७५ ॥

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [५५]

लब्धिरुपयोगश्च, तत्र लब्धिः श्रोत्रेन्द्रियादिविषयः सर्वात्मप्रदेशानां तदावरणकर्मक्षयोपशमः, उपयोगः स्वस्वविषये लब्धिरूपेन्द्रियानुसारेण आत्मनो व्यापारः, इह च द्विविधमपि द्रव्यभावरूपमिन्द्रियं गृह्यते, एकतरस्याप्यभावे इन्द्रियप्रत्यक्षत्वानुपपत्तेः, तत्र इन्द्रियस्य प्रत्यक्षं इन्द्रियप्रत्यक्षं, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं यत् इन्द्रियप्रत्यक्षं न भवति, नो-शब्दः सर्वनिषेधवाची, तेन मनसोऽपि कथञ्चिदिन्द्रियत्वाभ्युपगमात्तदाश्रितं ज्ञानं प्रत्यक्षं न भवतीति सिद्धम् ॥

से किं तं इंदिअपच्चक्खं ?, इंदिअपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा-सोइंदिअपच्चक्खं चक्खिंदिअपच्चक्खं घाणिंदिअपच्चक्खं जिब्भिंदिअपच्चक्खं फासिंदिअपच्चक्खं, से तं इंदिअपच्चक्खं । (सू० ४)

अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षं ?, इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमित्यादि, तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्य प्रत्यक्षं श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, श्रोत्रेन्द्रियं निमित्तीकृत्य यदुत्पन्नं ज्ञानं तत् श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमिति भावः,एवं शेषेष्वपि भावनीयम्।एतच्च व्यवहारत उच्यते, न परमार्थत इत्यनन्तरमेव प्रागुक्तम् । आह–स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणीति क्रमः, अयमेव च समीचीनः, पूर्वपूर्वलाभ एवोत्तरोत्तरलाभसम्भवात्, ततः किमर्थमुत्क्रमोपन्यासः कृतः ?, उच्यते, अस्ति पूर्वानुपूर्वी अस्ति पश्चानुपूर्वीति न्यायप्रदर्शनार्थं, अपि च–शेषेन्द्रियापेक्षया श्रोत्रेन्द्रियं पटु, ततः श्रोत्रेन्द्रियस्य यत् प्रत्यक्षं तच्छेषेन्द्रियप्रत्यक्षापेक्षया स्पष्टसंवेदनं, स्पष्टसंवेदनं चोपवर्ण्यमानं विनेयः सुखेनावबुध्यते, ततः सुखप्रतिपत्तये श्रोत्रेन्द्रियादिक्रमः उक्तः ॥

इन्द्रियप्रत्यक्षभेदाः सू. ४

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५७]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ७६ ॥

से किं तं नोइंदिअपच्चक्खं?, नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा-ओहिनाणपच्चक्खं मणपज्जवणाणपच्चक्खं केवलनाणपच्चक्खं (सू० ५) से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं?, ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-भवपच्चइअं च खओवसमिअं च (सू० ६) से किं तं भवपच्चइअं?, २ दुण्हं, तंजहा-देवाण य नेरइआण य। (सू० ७) से किं तं खओवसमिअं?, खओवसमिअं दुण्हं, तंजहा-मणूसाण य पंचेंदिअतिरिक्खजोणिआण य,—को हेऊ खाओवसमियं?, खओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुपज्जइ (सू० ८)

अथ किं तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं?, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–अवधिज्ञानप्रत्यक्षमित्यादि ॥ अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षं?, २ द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—भवप्रत्ययं च क्षायोपशमिकं च, तत्र भवन्ति कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोऽस्मिन्निति भवो-नारकादिजन्म 'पुंनाम्नी'ति अधिकरणे घप्रत्ययः, भव एव प्रत्ययः-कारणं यस्य तद्भवप्रत्ययं, प्रत्ययशब्दश्चेह कारणपर्यायः, वर्त्तते च प्रत्ययशब्दः कारणत्वे, यत उक्तम्–'प्रत्ययः शपथे ज्ञाने, हेतुविश्वासनिश्चये' चशब्दः स्वगतदेवनारकाश्रितभेदद्वयसूचकः, तौ च द्वौ भेदौ अनन्तरमेव वक्ष्यति। तथा क्षयश्चोपशमश्च क्षयोपशमौ ताभ्यां निर्वृत्तं क्षायोपशमिकं, चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः, तत्र यद्येषां भवति तत्तेषामुपदर्शयति—'दोण्ह'मित्यादि,

नोइन्द्रिय-प्रत्यक्षभेदाः अवधिभेदौ भव. भेदौ क्षायो.भेदौ सू. ५-८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

द्वयोर्जीवसमूहयोः भवप्रत्ययं, तद्यथा-देवानां च नारकाणां च, तत्र दिव्यन्ति–निरुपमक्रीडामनुभवन्तीति देवाः तेषां, तथा नरान् कायन्ति-शब्दयन्ति योग्यताया अनतिक्रमेणाकारयन्ति जन्तून् स्वस्थाने इति नरकाः तेषु भवा नारकाः तेषां, चशब्द उभयत्रापि स्वगतानेकभेदसूचकः, ते च संस्थानचिन्तायामग्रे दर्शयिष्यन्ते । अत्राह परः–नन्ववधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्त्तते नारकादिभवश्चौदयिके तत्कथं देवादीनामवधिज्ञानं भवप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते ?, नैष दोषः, यतस्तदपि परमार्थतः क्षायोपशमिकमेव, केवलं स क्षयोपशमो देवनारकभवेष्ववश्यंभावी, पक्षिणां गगनगमनलब्धिरिव, ततो भवप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते, उक्तं च चूर्णौ–"नणु ओही खाओवसमिए भावे नारगाइभवो से उदइए भावे तओ कहं भवपच्चइओ भण्णइ ?, उच्यते, सोऽवि खओवसमिओ चेव, किंतु सो खओवसमो नारगदेवभवेसु अवस्सं भवइ, को दिट्ठंतो ?, पक्खीणं आगासगमणं व, तओ भवपच्चइओ भन्नइ" त्ति ॥ तथा द्वयोः क्षायोपशमिकं, तद्यथा-मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानां च, अत्रापि चशब्दौ प्रत्येकं स्वगतानेकभेदसूचकौ, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां चावधिज्ञानं नावश्यंभावि, ततः समानेऽपि क्षायोपशमिकत्वे भवप्रत्ययादिदं भिद्यते, परमार्थतः पुनः सकलमप्यवधिज्ञानं क्षायोपशमिकं ॥ सम्प्रति क्षायोपशमिकस्वरूपं प्रतिपादयति–'को हेतुः ?' किं निमित्तं यद्वशादवधिज्ञानं क्षायोपशमिकमित्युच्यते ?, अत्र निर्वचनमभिधातुकाम आह—क्षायोपशमिकं येन कारणेन तदावरणीयानाम्–अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणामुदीर्णानां क्षयेण

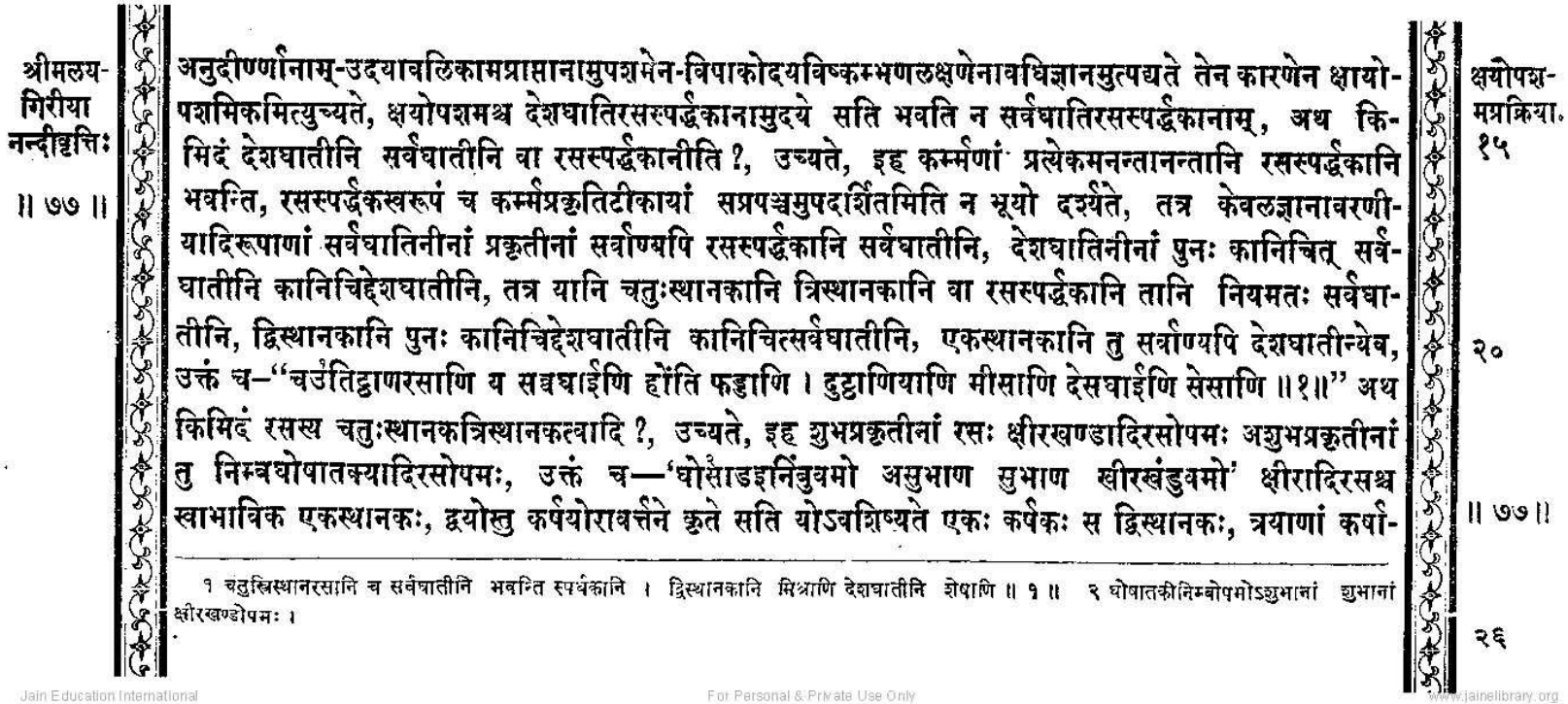
भवप्रत्ययत्वे हेतुः. ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ७७ ॥

अनुदीर्णानाम्-उदयावलिकामप्राप्तानामुपशमेन-विपाकोदयविष्कम्भणलक्षणेनावधिज्ञानमुत्पद्यते तेन कारणेन क्षायोपशमिकमित्युच्यते, क्षयोपशमश्च देशघातिरसस्पर्द्धकानामुदये सति भवति न सर्वघातिरसस्पर्द्धकानाम्, अथ किमिदं देशघातीनि सर्वघातीनि वा रसस्पर्द्धकानीति ?, उच्यते, इह कर्म्मणां प्रत्येकमनन्तानन्तानि रसस्पर्द्धकानि भवन्ति, रसस्पर्द्धकस्वरूपं च कर्म्मप्रकृतिटीकायां सप्रपञ्चमुपदर्शितमिति न भूयो दर्श्यते, तत्र केवलज्ञानावरणीयादिरूपाणां सर्वघातिनीनां प्रकृतीनां सर्वाण्यपि रसस्पर्द्धकानि सर्वघातीनि, देशघातिनीनां पुनः कानिचित् सर्वघातीनि कानिचिद्देशघातीनि, तत्र यानि चतुःस्थानकानि त्रिस्थानकानि वा रसस्पर्द्धकानि तानि नियमतः सर्वघातीनि, द्विस्थानकानि पुनः कानिचिद्देशघातीनि कानिचित्सर्वघातीनि, एकस्थानकानि तु सर्वाण्यपि देशघातीन्येव, उक्तं च–"चउंतिट्ठाणरसाणि य सव्वघाईणि होंति फड्डाणि । दुट्ठाणियाणि मीसाणि देसघाईणि सेसाणि ॥१॥" अथ किमिदं रसस्य चतुःस्थानकत्रिस्थानकत्वादि ?, उच्यते, इह शुभप्रकृतीनां रसः क्षीरखण्डादिरसोपमः अशुभप्रकृतीनां तु निम्बघोषातक्यादिरसोपमः, उक्तं च—'घोसाडइनिंबुवमो असुभाण सुभाण खीरखंडुवमो' क्षीरादिरसश्च स्वाभाविक एकस्थानकः, द्वयोस्तु कर्षयोरावर्त्तने कृते सति योऽवशिष्यते एकः कर्षकः स द्विस्थानकः, त्रयाणां कर्षा-

१ चतुस्त्रिस्थानरसानि च सर्वघातीनि भवन्ति स्पर्धकानि । द्विस्थानकानि मिश्राणि देशघातीनि शेषाणि ॥ १ ॥ २ घोषातकीनिम्बोपमोऽशुभानां शुभानां क्षीरखण्डोपमः ।

क्षयोपशमप्रक्रिया. १५ २० ॥ ७७ ॥ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

णामावर्त्तने कृते सति एकः कर्षोऽवशिष्टः त्रिस्थानकः, चतुर्णां कर्षाणामावर्त्तने कृते सति उद्धरति य एकः कर्षः स चतुःस्थानकः, एकस्थानकोऽपि च रसो जललवबिन्दुचुलुकार्धचुलुकप्रसृत्यञ्जलिकरककुम्भद्रोणादिप्रक्षेपात् मन्दमन्दतरादिबहुभेदत्वं प्रतिपद्यते, एवं द्विस्थानकादयोऽपि, एवं कर्मणामपि चतुःस्थानकादयो रसा भावनीयाः प्रत्येकमनन्तभेदभाजश्च, कर्मणां चैकस्थानकादयो रसाः यथोत्तरमनन्तगुणा वेदितव्याः, उक्तं च—"अणंतगुणिया कमेणियरे" तत्राशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानकरसबन्धः प्रस्तररेखासदृशैः अनन्तानुबन्धिक्रोधादिकैः क्रियते दिनकरातपशोषिततडागभूरेखासदृशैरप्रत्याख्यानसंज्ञैः क्रोधादिभिः त्रिस्थानकरसबन्धः सिकताकणसंहतिगतरेखासदृशैः प्रत्याख्यानावरणसंज्ञैर्द्विस्थानकरसबन्धो जलरेखासदृशैस्तु सञ्ज्वलनसंज्ञैरेकस्थानकरसबन्धः, शुभप्रकृतीनां पुनरेतदेव व्यत्यासेन योजनीयम्, नवरं द्विस्थानकादारभ्य, तथा चोक्तम्—"पव्वयभूमीवालुयजलरेहासरिस संपराएसुं। चउठाणाई असुभाण सेसयाणं तु वच्चासो ॥१॥" इति, 'शेषकाणां' शुभप्रकृतीनां व्यत्यासो द्रष्टव्यः, स च द्विस्थानकादारभ्य, यथोक्तं प्राक्। अथ कथमवसीयते? यदुत द्विस्थानकादारभ्य व्यत्यासो नैकस्थानकादारभ्य?, उच्यते, शुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसबन्धस्यासम्भवाद्, असम्भवः कथमिति चेद्, उच्यते, इहात्यन्तविशुद्धौ वर्त्तमानः शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानकमेव रसं बध्नाति, ततो मन्दमन्दतरविशुद्धौ त्रिस्थानकं द्विस्थानकं वा, सङ्क्लेशाद्धायां तु वर्त्त-

• १ अनन्तगुणाः क्रमेणेतरे। २ पर्वतभूमिवालुकाजलरेखासदृशैः संपरायैः। चतुःस्थानादयः अशुभानां शेषाणां तु व्यत्यासः ॥ १ ॥

एकादीनि रसस्थानकानि.

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

मानस्य शुभप्रकृतयो बन्धमेव नायान्ति, कुतः ?, तस्यामवस्थायां तद्वतरसस्थानकचिन्तायामपि नरकगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽतिसङ्क्लिष्टस्यापि वैक्रियतैजसादिकाः प्रकृतयो बन्धमायान्ति, तासामपि स्वभावतो द्विस्थानकरसस्यैव बन्धो नैकस्थानस्य, ततः शुभप्रकृतीनां व्यत्यासयोजना द्विस्थानकरसबन्धादारभ्य कर्त्तव्या, अथाशुभप्रकृतीनामेकस्थानकस्यापि रसस्य बन्धो भवतीति कथमवसेयम् ?, उच्यते, इह द्विधा घातिन्योऽशुभप्रकृतयः, तद्यथा–सर्वघातिन्यो देशघातिन्यश्च, तत्र याः सर्वघातिन्यः तासां जघन्यपदेऽपि द्विस्थानक एव रसो बन्धमायाति, नैकस्थानकः, तथास्वाभाव्यात्, तथाहि—क्षपकश्रेण्यारोहेऽपि सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमयेऽपि वर्त्तमानस्य केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोः रसबन्धो द्विस्थानक एवेति, नैकस्थानकः, यास्तु देशघातिन्यः तासां श्रेण्यारोहाभावे बन्धमागतानां नियमात् सर्वघातिनमेव रसं बध्नाति, यत उक्तं कर्मप्रकृतौ–"[1]असेढिगा य बंधंति उ सव्वघाईणि" सर्वघाती च रसो जघन्यपदेऽपि द्विस्थानको '[2]दुट्ठाणियाणि मीसाणि देसघाईणि सेसाणी'तिवचनात्, ततो न श्रेण्यारोहाभावे तासामेकस्थानकरसबन्धसम्भवः, श्रेण्यारोहे त्वनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकाद्भागाः सङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु तत ऊर्द्धमेकस्थानकरसबन्धसम्भवः, तदानीं च ज्ञानावरणचतुष्टयदर्शनावरणत्रयपुरुषवेदान्तरायपञ्चकसञ्ज्वलनचतुष्टयरूपाः सप्तदश प्रकृतीर्व्यतिरिच्य शेषा बन्धमेव नायान्ति, तद्बन्धहेतुव्यवच्छेदात्, ततो न तासामेकस्थानकरसबन्धस-

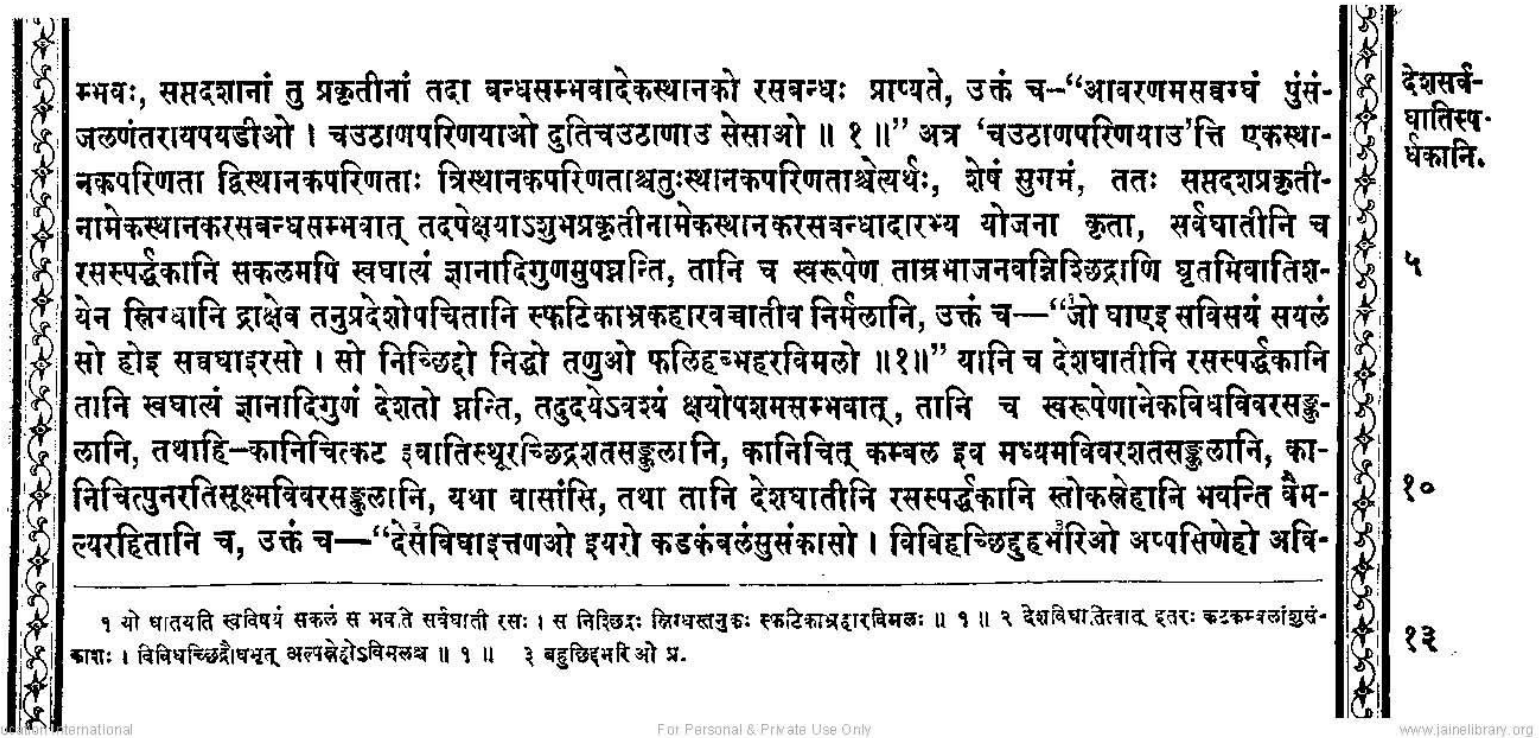
१ अश्रेणिकाश्च बध्नन्ति तु सर्वघातीनि । २ द्विस्थानकानि मिश्राणि देशघातीनि शेषाणि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



म्भवः, सप्तदशानां तु प्रकृतीनां तदा बन्धसम्भवादेकस्थानको रसबन्धः प्राप्यते, उक्तं च–"आवरणमसवग्घं पुंसं-
जलणंतरायपयडीओ । चउठाणपरिणयाओ दुतिचउठाणाउ सेसाओ ॥ १ ॥" अत्र 'चउठाणपरिणयाउ'त्ति एकस्था-
नकपरिणता द्विस्थानकपरिणताः त्रिस्थानकपरिणताश्चतुःस्थानकपरिणताश्चेत्यर्थः, शेषं सुगमं, ततः सप्तदशप्रकृती-
नामेकस्थानकरसबन्धसम्भवात् तदपेक्षयाऽशुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसबन्धादारभ्य योजना कृता, सर्वघातीनि च
रसस्पर्द्धकानि सकलमपि स्वघात्यं ज्ञानादिगुणमुपघ्नन्ति, तानि च स्वरूपेण ताम्रभाजनवन्निश्छिद्राणि घृतमिवातिश-
येन स्निग्धानि द्राक्षेव तनुप्रदेशोपचितानि स्फटिकाभ्रकहारवच्चातीव निर्मलानि, उक्तं च—"जो घाएइ सविसयं सयलं
सो होइ सव्वघाइरसो । सो निच्छिद्दो निद्धो तणुओ फलिहब्भहरविमलो ॥१॥" यानि च देशघातीनि रसस्पर्द्धकानि
तानि स्वघात्यं ज्ञानादिगुणं देशतो घ्नन्ति, तदुदयेऽवश्यं क्षयोपशमसम्भवात्, तानि च स्वरूपेणानेकविधविवरसङ्कु-
लानि, तथाहि–कानिचित्कट इवातिस्थूरच्छिद्रशतसङ्कुलानि, कानिचित् कम्बल इव मध्यमविवरशतसङ्कुलानि, का-
निचित्पुनरतिसूक्ष्मविवरसङ्कुलानि, यथा वासांसि, तथा तानि देशघातीनि रसस्पर्द्धकानि स्तोकस्नेहानि भवन्ति वैम-
ल्यरहितानि च, उक्तं च—"देसविघाइत्तणओ इयरो कडकंबलंसुसंकासो । विविहच्छिद्दुहभरिओ अप्पसिणेहो अवि-

१ यो घातयति स्वविषयं सकलं स भवति सर्वघाती रसः । स निश्छिद्रः स्निग्धस्तनुकः स्फटिकाभ्रहारविमलः ॥ १ ॥ २ देशविघातित्वात् इतरः कटकम्बलांशुसं-
काशः । विविधच्छिद्रौघभृत् अल्पस्नेहोऽविमलश्च ॥ १ ॥ ३ बहुछिद्दभरिओ प्र.

देशसर्व-घातिस्पर्धकानि.

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

मलो अ ॥ १ ॥" अघातिनीनां तु रसस्पर्द्धकानि स्वरूपेण न सर्वघातीनि नापि देशघातीनि, केवलं सर्वघातिरसस्पर्द्धकसङ्कर्षतः सर्वघातिरससदृशानि भवन्ति, यथा स्वयमचौरा अपि चौरसम्पर्कतः चौरप्रतिभासाः, उक्तं च– "जाण[1] न विसओ घाइत्तणंमि ताणंपि सव्वघाइरसो । जायइ घाइसगासेण चोरया वेहऽचोराणं ॥१॥" तदेवमुक्तानि सर्वघातीनि देशघातीनि च रसस्पर्धकानि, सम्प्रति यथा क्षयोपशमो भवति तथा भाव्यते—तत्र देशघातिनीनां मतिज्ञानावरणीयादिकर्मप्रकृतीनां सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकानि अध्यवसायविशेषतो देशघातीनि कर्तुं शक्यन्ते, तथास्वाभाव्यात्, कथमेतदवसेयमिति चेत्?, उच्यते, इह यदि बन्धत एव देशघातीनि रसस्पर्द्धकानि भवेयुर्नाध्यवसायविशेषतः तथापरिणमनेनापि तर्हि मतिज्ञानादीनामभाव एव सर्वथा प्राप्नोति, तथाहि–मत्यादीनि ज्ञानानि क्षायोपशमिकाणि, यदुक्तमनुयोगद्वारेषु–"खओवसमिया आभिणिबोहियनाणलद्धी खओवसमिया सुयनाणलद्धी खओवसमिया ओहिनाणलद्धी"[2] इत्यादि, क्षयोपशमश्च विपाकोदयवतीनां प्रकृतीनां देशघातिनामेव रसस्पर्द्धकानामुदये भवति, न सर्वघातिनां, देशघातीनि च रसस्पर्द्धकानि बन्धमधिकृत्यानिवृत्तिबादरसम्परायाद्धायाः सङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु तत ऊर्द्धं प्राप्यन्ते, ततस्तस्या अवस्थाया अर्वाक् सर्वथा मतिज्ञानादीनि न प्राप्नुवन्ति, सर्वघातिरसस्पर्द्धकविपाको-

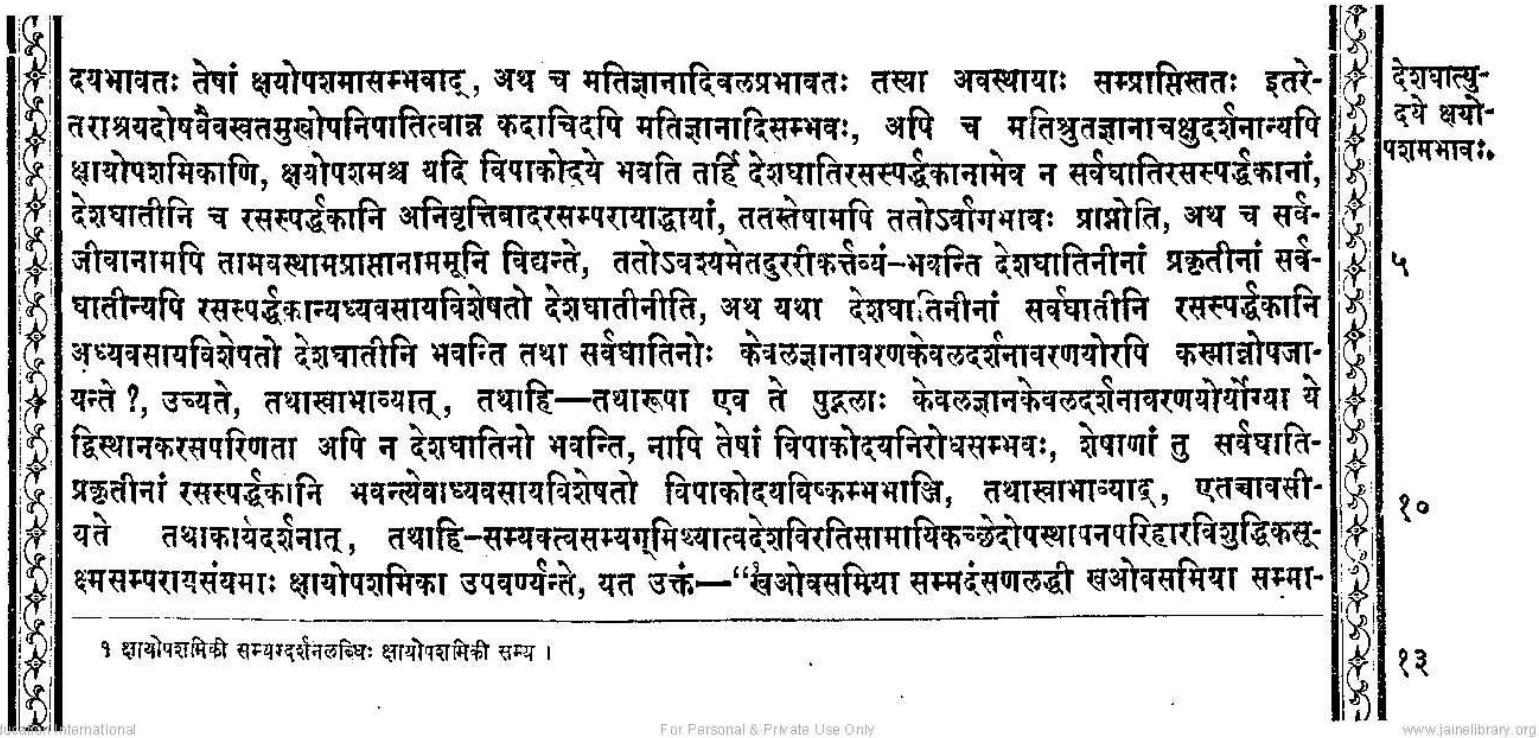
१ यासां न विषयो घातित्वे तासामपि सर्वघाती रसः । जायते घातिसंसर्गात् चौरतेवेहाचौराणाम् ॥ १ ॥ २ क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिः क्षायोपशमिकी श्रुतज्ञानलब्धिः क्षायोपशमिकी अवधिज्ञानलब्धिः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [६०]



दयभावतः तेषां क्षयोपशमासम्भवाद्, अथ च मतिज्ञानादिबलप्रभावतः तस्या अवस्थायाः सम्प्राप्तिस्ततः इतरेतराश्रयदोषवैवस्वतमुखोपनिपातित्वान्न कदाचिदपि मतिज्ञानादिसम्भवः, अपि च मतिश्रुतज्ञानाचक्षुर्दर्शनान्यपि क्षायोपशमिकाणि, क्षयोपशमश्च यदि विपाकोदये भवति तर्हि देशघातिरसस्पर्द्धकानामेव न सर्वघातिरसस्पर्द्धकानां, देशघातीनि च रसस्पर्द्धकानि अनिवृत्तिबादरसम्परायाद्धायां, ततस्तेषामपि ततोऽर्वागभावः प्राप्नोति, अथ च सर्वजीवानामपि तामवस्थामप्राप्तानाममूनि विद्यन्ते, ततोऽवश्यमेतदुररीकर्त्तव्यं–भवन्ति देशघातिनीनां प्रकृतीनां सर्वघातीन्यपि रसस्पर्द्धकान्यध्यवसायविशेषतो देशघातीनीति, अथ यथा देशघातिनीनां सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकानि अध्यवसायविशेषतो देशघातीनि भवन्ति तथा सर्वघातिनोः केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोरपि कस्मान्नोपजायन्ते ?, उच्यते, तथास्वाभाव्यात्, तथाहि—तथारूपा एव ते पुद्गलाः केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोर्योग्या ये द्विस्थानकरसपरिणता अपि न देशघातिनो भवन्ति, नापि तेषां विपाकोदयनिरोधसम्भवः, शेषाणां तु सर्वघातिप्रकृतीनां रसस्पर्द्धकानि भवन्त्येवाध्यवसायविशेषतो विपाकोदयविष्कम्भभाञ्जि, तथास्वाभाव्याद्, एतच्चावसीयते तथाकार्यदर्शनात्, तथाहि–सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वदेशविरतिसामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायसंयमाः क्षायोपशमिका उपवर्ण्यन्ते, यत उक्तं—"खओवसमिया सम्मदंसणलद्धी खओवसमिया सम्मा-

१ क्षायोपशमिकी सम्यग्दर्शनलब्धिः क्षायोपशमिकी सम्य ।

देशघात्युदये क्षयोपशमभावः।

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८]

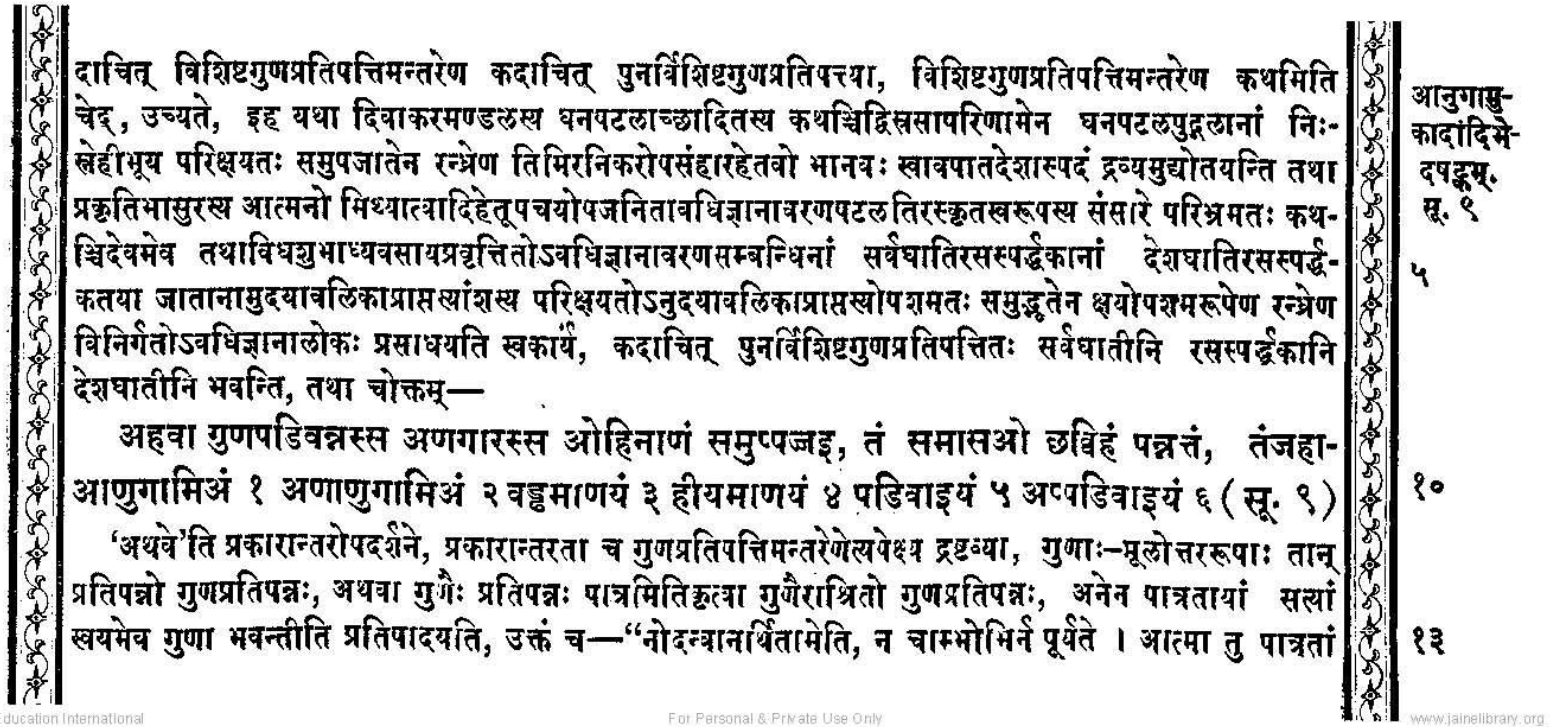
दीप अनुक्रम [६०]

मिच्छादंसणलद्धी खओवसमिया सामाइयलद्धी खओवसमिया छेओवट्ठाणलद्धी, एवं परिहारविसुद्धियलद्धी सुहुमसंपरायलद्धी खओवसमिया चरित्ताचरित्तलद्धी" इति। अन्यत्रापि उक्तं–"मिच्छत्तं जमुइन्नं तं खीणं अणुइयं च उवसंतं। मीसीभावपरिणयं वेइज्जंतं खओवसमं ॥१॥" तथा–"क्षपयत्युपशमयति वा प्रत्याख्यानावृतः कषायांस्तान्। स ततो येन भवेत् तस्य विरमणे बुद्धिरल्पाल्पा ॥१॥ छेदोपस्थाप्यं वा व्रतं सामायिकं चरित्रं वा। स ततो लभते प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमात् ॥ २ ॥" क्षयोपशमश्च भवति विपाकोदयनिरोधे, ततोऽवसीयते–भवन्ति मिथ्यात्वाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणादीनां सर्वघातिप्रकृतीनां सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकान्यध्यवसायविशेषतो विपाकोदयाभावयुक्तानीति कृतं प्रसङ्गेन। तत्रावधिज्ञानावरणप्रकृतीनां तथाविधविशुद्धाध्यवसायभावतः सर्वघातिषु रसस्पर्द्धकेषु देशघातिरूपतया परिणमितेषु देशघातिरसस्पर्द्धकेष्वपि चातिस्निग्धेष्वल्पपरसीकृतेषु उदयावलिकामात्रस्यांशस्य क्षयेऽनुदीर्णस्य चोपशमे विपाकोदयविष्कम्भरूपे जीवस्यावध्यादयो गुणाः प्रादुष्यन्ति, उक्तं च—"निहिएसु सव्वघाईरसेसु फड्डेसु देसघाईणं। जीवस्स गुणा जायन्ति ओहिमणचक्खुमाईया ॥ १ ॥" अत्र 'निहितेष्वि'ति देशघातिरसस्पर्द्धकतया व्यवस्थापितेषु, शेषं सुगमं, सर्वघातीनि च रसस्पर्द्धकानि अवधिज्ञानावरणीयस्य देशघातिरसस्पर्द्धकतया परिणमयति, क-

मिथ्यादर्शनलब्धिः क्षायोपशमिकी सामायिकलब्धिः क्षायोपशमिकी छेदोपस्थापनलब्धिः एवं परिहारविशुद्धिकलब्धिः सूक्ष्मसंपरायलब्धिः क्षायोपशमिकी चारित्राचारित्रलब्धिः ॥ १ मिथ्यात्वं यदुदीर्णं तत् क्षीणं अनुदीर्णं चोपशान्तम्। मिश्रीभावपरिणतं वेद्यमानं क्षायोपशमिकम् ॥ १ ॥ २ निहितेषु सर्वघातिरसेषु स्पर्द्धकेषु देशघातिषु। जीवस्य गुणा जायन्ते अवधिमनश्चक्षुरादिकाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] दीप अनुक्रम [६०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



दाचित् विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कदाचित् पुनर्विशिष्टगुणप्रतिपत्त्या, विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कथमिति चेद्, उच्यते, इह यथा दिवाकरमण्डलस्य घनपटलाच्छादितस्य कथञ्चिद्विस्रसापरिणामेन घनपटलपुद्गलानां निःस्नेहीभूय परिक्षयतः समुपजातेन रन्ध्रेण तिमिरनिकरोपसंहारहेतवो भानवः स्वावपातदेशास्पदं द्रव्यमुद्योतयन्ति तथा प्रकृतिभासुरस्य आत्मनो मिथ्यात्वादिहेतूपचयोपजनितावधिज्ञानावरणपटलतिरस्कृतस्वरूपस्य संसारे परिभ्रमतः कथञ्चिदेवमेव तथाविधशुभाध्यवसायप्रवृत्तितोऽवधिज्ञानावरणसम्बन्धिनां सर्वघातिरसस्पर्द्धकानां देशघातिरसस्पर्द्धकतया जातानामुदयावलिकाप्राप्तस्यांशस्य परिक्षयतोऽनुदयावलिकाप्राप्तस्योपशमतः समुद्भूतेन क्षयोपशमरूपेण रन्ध्रेण विनिर्गतोऽवधिज्ञानालोकः प्रसाधयति स्वकार्यं, कदाचित् पुनर्विशिष्टगुणप्रतिपत्तितः सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकानि देशघातीनि भवन्ति, तथा चोक्तम्—

अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ, तं समासओ छव्विहं पन्नत्तं, तंजहा-आणुगामिअं १ अणाणुगामिअं २ वड्ढमाणयं ३ हीयमाणयं ४ पडिवाइयं ५ अप्पडिवाइयं ६ (सू. ९)

'अथवे'ति प्रकारान्तरोपदर्शने, प्रकारान्तरता च गुणप्रतिपत्तिमन्तरेणेत्यपेक्ष्य द्रष्टव्या, गुणाः–मूलोत्तररूपाः तान् प्रतिपन्नो गुणप्रतिपन्नः, अथवा गुणैः प्रतिपन्नः पात्रमितिकृत्वा गुणैराश्रितो गुणप्रतिपन्नः, अनेन पात्रतायां सत्यां स्वयमेव गुणा भवन्तीति प्रतिपादयति, उक्तं च—"नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते । आत्मा तु पात्रतां

आनुगामु-कादादिभे-दषड्भम्. सू. ९

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानस्य आनुगामिकं आदि षड्भेदस्य कथनं

नेयः, पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ १ ॥" अगारं–गृहं न विद्यते अगारं यस्यासावनगारः, परित्यक्तद्रव्यभावगृह इत्यर्थः, तस्य, प्रशस्तेष्वध्यवसायेषु वर्त्तमानस्य सर्वघातिरसस्पर्द्धकेषु देशघातिरसस्पर्द्धकतया जातेषु पूर्वोक्तक्रमेण क्षयोपशमभावतोऽवधिज्ञानमुपजायते । मनःपर्यायज्ञानावरणीयस्य तु विशिष्टसंयमाप्रमादादिप्रतिपत्तावेव सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकानि देशघातीनि भवन्ति, तथास्वाभाव्यात्, तच्च तथास्वाभाव्यं बन्धकाले तथारूपाणामेव तेषां बन्धनात्, ततो मनःपर्यायज्ञानं विशिष्टगुणप्रतिपन्नस्यैव वेदितव्यं, मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां पुनः सर्वघातीनि रसस्पर्द्धकानि येन तेन चाध्यवसायेनाध्यवसायानुरूपं देशघातीनि स्पर्द्धकानि भवन्ति, तेषां तथास्वाभाव्यात्, ततो मत्यावरणादीनां सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्द्धकानामुदयः, सदैव च क्षयोपशमः, उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायां–'मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां च सदैव देशघातिरसस्पर्द्धकानामेवोदयः, ततस्तासां सदैवौदयिकक्षायौपशमिकौ भावावि'ति कृतं प्रसङ्गेन ॥

'तद्' अवधिज्ञानं 'समासतः' संक्षेपेण 'षड्विधं' षट्प्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–'आनुगामिक'मित्यादि, तत्र गच्छन्तं पुरुषम् आ–समन्तादनुगच्छतीत्येवंशीलमानुगामि आनुगाम्येवानुगामिकं, स्वार्थे कः प्रत्ययः,अथवा अनुगमः प्रयोजनं यस्य तदानुगामिकं, यल्लोचनवत् गच्छन्तमनुगच्छति तदवधिज्ञानमानुगामिकमिति भावः । तथा न आनुगामिकं अनानुगामिकं शृङ्खलाप्रतिबद्धप्रदीप इव यत् न गच्छन्तमनुगच्छति तदवधिज्ञानमनानुगामिकं, उक्तं च–"[1]अणु-

१ आनुगामिकोऽनुगच्छते गच्छन्तं लोचनं यथा पुरुषम् । इतरस्तु नानुगच्छति स्थितप्रदीप इव गच्छन्तम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गामिओऽणुगच्छइ गच्छंतं लोअणं जहा पुरिसं । इयरो उ नाणुगच्छइ ठियप्पईवोव्व गच्छंतं ॥ १ ॥" तथा वर्द्धत इति वर्द्धमानं, ततः संज्ञायां कन्प्रत्ययः, बहुबहुतरेन्धनप्रक्षेपादिभिर्वर्द्धमानदहनज्वालाकलाप इव पूर्वावस्थातो यथायोगं प्रशस्तप्रशस्ततराध्यवसायभावतोऽभिवर्द्धमानमवधिज्ञानं वर्द्धमानकं, तच्चासकृद्विशिष्टगुणविशुद्धिसापेक्षत्वात्। तथा हीयते-तथाविधसामग्र्यभावतो हानिमुपगच्छति हीयमानं, कर्म्मकर्तृविवक्षायामानश्प्रत्ययः, हीयमानमेव हीयमानकं, 'कुत्सिताल्पाज्ञाते' इति कः प्रत्ययः, पूर्वावस्थातो यदधो ह्रासमुपगच्छत्यवधिज्ञानं तत् हीयमानकमिति भावः, उक्तं च–"हीयमाणं पुव्वावत्थाओ अहोऽहो हस्समाणं" इति। तथा प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति, यदुत्पन्नं सत् क्षयोपशमानुरूपं कियत्कालं स्थित्वा प्रदीप इव सामस्त्येन विध्वंसमुपयाति तत्प्रतिपातीत्यर्थः। हीयमानकप्रतिपातिनोः कः प्रतिविशेष इति चेद्, उच्यते, हीयमानकं पूर्वावस्थातोऽधोऽधो ह्रासमुपगच्छदभिधीयते, यत्पुनः प्रदीप इव निर्मूलमेककालमपगच्छति तत्प्रतिपाति, तथा न प्रतिपाति–यत् न केवलज्ञानादर्वाक् भ्रंशमुपयाति तदप्रतिपातीत्यर्थः। आह–आनुगामिकानानुगामिकरूपभेदद्वये एव शेषभेदा वर्द्धमानकादयोऽन्तर्भावयितुं शक्यन्ते, तत्किमर्थं तेषामुपादानं ?, उच्यते, यद्यप्यन्तर्भावयितुं शक्यन्ते तथाऽप्यानुगामिकमनानुगामिकं चेत्युक्ते न वर्द्ध-

१ हीयमानकं पूर्वावस्थातोऽधोऽधो ह्रसत्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९]

दीप अनुक्रम [६१]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ८२ ॥

मानकादयो विशेषा अवगन्तुं शक्यन्ते, विशेषावगमकरणाय च महतां शास्त्रारम्भप्रयासः, ततो विशेषज्ञापनार्थं विशेषभेदोपन्यासकरणं ॥

पुरतोऽन्तगतादयोऽवधयः

से किं तं आणुगामिअं ओहिनाणं?, आणुगामिअं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अंतगयं च मज्झगयं च। से किं तं अंगतयं?, अंतगयं तिविहं पन्नत्तं, तंजहा–पुरओ अन्तगयं मग्गओ अन्तगयं पासओ अन्तगयं, से किं तं पुरओ अंतगयं?, पुरओ अंतगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलिअं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पुरओ काउं पणुल्लेमाणे २ गच्छेज्जा, से तं पुरओ अंतगयं, से किं तं मग्गओ अन्तगयं?, मग्गओ अन्तगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलिअं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा, से तं मग्गओ अंतगयं, से किं तं पासओ अंतगयं?, पासओ अंतगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलिअं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा, से तं पासओ अंतगयं, से तं अंतगयं। से किं तं मज्झगयं?, मज्झगयं से जहानामए

२०

॥ ८२ ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलिअं वा अलातं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा मत्थए काउं समुव्वहमाणे २ गच्छिज्जा से तं मज्झगयं ॥

पुरतोऽन्त-गतादयो-ऽवधयः

अथ किं तदानुगामिकमवधिज्ञानं ?, आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–अन्तगतं च मध्यगतं च, इहान्तशब्दः पर्यन्तवाची, यथा वनान्ते इत्यत्र, ततश्च अन्ते-पर्यन्ते गतं-व्यवस्थितमन्तगतम्, इहार्थत्रयव्याख्या-अन्ते गतम्–आत्मप्रदेशानां पर्यन्ते स्थितमन्तगतं, इयमत्र भावना–इहावधिरुत्पद्यमानः कोऽपि स्पर्द्धकरूपतयोत्पद्यते, स्पर्द्धकं च नामावधिज्ञानप्रभाया गवाक्षजालादिद्वारविनिर्गतप्रदीपप्रभाया इव प्रतिनियतो विच्छेदविशेषः, तथा चाह जिनभद्रक्षमाश्रमणः स्वोपज्ञभाष्यटीकायां–'स्पर्द्धकमवधिविच्छेदविशेषः' इति, तानि चैकजीवस्य सङ्ख्येया-न्यसङ्ख्येयानि वा भवन्ति, यत उक्तं मूलावश्यकप्रथमपीठिकायां—"फड्डा य असङ्खेज्जा सङ्खेज्जा आवि एगजी-वस्से"ति, तानि च विचित्ररूपाणि, तथाहि–कानिचित् पर्यन्तवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेषूत्पद्यन्ते, तत्रापि कानिचित्पुरतः कानिचित्पृष्ठतः कानिचिदधोभागे कानिचिदुपरितनभागे तथा कानिचिन्मध्यवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेषु, तत्र यदा अन्त-वर्तिष्वात्मप्रदेशेष्ववधिज्ञानमुपजायते तदा आत्मनोऽन्ते–पर्यन्ते स्थितमितिकृत्वा अन्तगतमित्युच्यते, तैरेव पर्यन्त-वर्त्तिभिरात्मप्रदेशैः साक्षादवधिरूपेण ज्ञानेन ज्ञानात् न शेषैरिति, अथवा औदारिकशरीरस्यान्ते गतं–स्थितं अन्तगतं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ८३ ॥

कयाचिदेकदिशोपलम्भात्, इदमपि स्पर्द्धकरूपमवधिज्ञानं, अथवा सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमभावेऽपि औदारिकशरीरान्तेनैकया दिशा यद्वशादुपलभ्यते तदप्यन्तगतम्। आह–यदि सर्वात्मप्रदेशानां क्षयोपशमस्ततः सर्वतः किं न पश्यति ?, उच्यते, एकदिशैव क्षयोपशमसंभवात्, विचित्रो हि क्षयोपशमः, ततः सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानामित्थम्भूत एव स्वसामग्रीवशात् क्षयोपशमः संवृत्तो यदौदारिकशरीरमपेक्ष्य कयाचित् विवक्षितयैकया दिशा पश्यतीति, उक्तं चूर्णौ—"ओरालियसरीरंते ठियं गयंति एगट्ठं, तं चायप्पएसफड्डगा बहि एगदिसोवलम्भाओ य अंतगयमोहिनाणं भन्नइ, अहवा सव्वायप्पएसेसु विसुद्धेसुऽवि ओरालियसरीरगन्तेण एगदिसि पासणा गयंति अन्तगयं भन्नइ"। तृतीयोऽर्थ एकदिग्भाविना तेनावधिज्ञानेन यदुद्योतितं क्षेत्रं तस्यान्ते वर्त्तते तदवधिज्ञानम्, अवधिज्ञानवतः तदन्ते वर्त्तमानत्वात्, ततोऽन्ते–एकदिग्रूपस्यावधिज्ञानविषयस्य पर्यन्ते व्यवस्थितमन्तगतं। चशब्दो देशकालाद्यपेक्षया स्वगतानेकभेदसूचकः, तथा 'मध्यगतं चे'ति इह मध्यं-प्रसिद्धं दण्डादिमध्यवत्, ततो मध्ये गतं मध्यगतं, इदमपि त्रिधा व्याख्येयं, आत्मप्रदेशानां मध्ये–मध्यवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेषु गतं–स्थितं मध्यगतं, इदं च स्पर्द्धकरूपमवधिज्ञानं सर्वदिगुपलम्भकारणं मध्यवर्त्तिनामात्मप्रदेशानामवसेयम्, अथवा सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोप-

१ औदारिकशरीरस्यान्ते स्थितं गतमिति एकार्थौ, तच्चात्मप्रदेशस्पर्धकात् बहिरेकदिशोपलम्भात् अन्तगतमवधिज्ञानं भण्यते, अथवा सर्वात्मप्रदेशेषु विशुद्धेष्वपि औदारिकशरीरस्यान्तेनैकदिशि दर्शनात् गतमित्यन्तगतं भण्यते।

पुरतोऽन्तगतादयोऽवधयः १५

२०

॥ ८३ ॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शमभावेऽप्यौदारिकशरीरमध्यभागेनोपलब्धिस्तन्मध्ये गतं मध्यगतं, उक्तं चूर्णौ–"ओरालियसरीरमज्झे फड्डगविसुद्धीओ सव्वायप्पएसविसुद्धीओ वा सव्वदिसोवलम्भत्तणओ मज्झगउत्ति भन्नति" अथवा तेनावधिज्ञानेन यदुद्योदितं क्षेत्रं सर्वासु दिक्षु तस्य मध्ये-मध्यभागे गतं-स्थितं मध्यगतम्, अवधिज्ञानिनः तदुद्योतितक्षेत्रमध्यवर्त्तित्वात्, आह च चूर्णिकृत्—"अहवा उवलद्धिखेत्तस्स अवहिपुरिसो मज्झगउत्ति, अतो वा मज्झगओ ओही भन्नइ" इति, चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः—अथ किं तदन्तगतं?, अन्तगतं 'त्रिविधं' त्रिप्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– तत्र 'पुरतः' अवधिज्ञानिनः स्वव्यपेक्षया अग्रभागेऽन्तगतं पुरतोऽन्तगतं, तथा मार्गतः–पृष्ठतः अन्तगतं मार्गतोऽन्तगतं, तथा पार्श्वतो–द्वयोः पार्श्वयोरेकतरपार्श्वतो वाऽन्तगतं पार्श्वतोऽन्तगतं। अथ किं तत्पुरतोऽन्तगतं?, 'से जहा' इत्यादि, 'स' विवक्षितो यथानामकः कश्चित्पुरुषः, अत्र सर्वेष्वपि पदेष्वेकारान्तत्वम् 'अतः सौ पुंसी'ति मागधिकभाषालक्षणात्, सर्वमपि हि प्रवचनमर्द्धमागधिकभाषात्मकम्, अर्द्धमागधिकभाषया तीर्थकृतां देशनाप्रवृत्तेः, ततः प्रायः सर्वत्रापि मागधिकभाषालक्षणमनुसरणीयं। 'उक्का चेति' उल्का–दीपिका, वाशब्दः सर्वोऽपि विकल्पार्थः, 'चटुली वा' चटुलीः–पर्यन्तज्वलिततृणपूलिका 'अलातं वा' अलातमुल्मुकं अग्रभागे ज्वलत्काष्ठमित्यर्थः, 'मणिर्वा'

१ औदारिकशरीरमध्ये स्पर्धकविशुद्धेः सर्वात्मप्रदेशविशुद्धितो वा सर्वदिशोपलम्भात् मध्यगतमिति भण्यते । २ अथवोपलब्धिक्षेत्रस्यावधिपुरुषो मध्यगत इति अतो वा मध्यगतमवधिर्भण्यते ।

पुरतोऽन्त-गतादयो-ऽवधयः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

मणिः–प्रतीतः, 'ज्योतिर्वा' ज्योतिः शरावाद्याधारो ज्वलन्नग्निः, आह च चूर्णिकृत्–"जोइत्ति मल्लगाइठिओ अगणी जलंतो" इति, 'प्रदीपं वा' प्रदीपः-प्रतीतः 'पुरतः' अग्रतो हस्ते दण्डादौ वा कृत्वा 'पणोल्लेमाणो'त्ति प्रणुदन् २ हस्तस्थितं वा क्रमेण स्वगत्यनुसारतः प्रेरयन् २ 'गच्छेत्' यायात्, एष दृष्टान्तः, उपनयस्तु स्वयमेव भावनीयः, तत उपसंहारः–'से तं पुरओ अंतगयं' सेशब्दः प्रतिवचनोपसंहारदर्शने, तदेतत् पुरतोऽन्तगतं, इयमत्र भावना—यथा स पुरुष उल्कादिभिः पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवं येनावधिज्ञानेन तथाविधक्षयोपशमभावतः पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, तदवधिज्ञानं पुरतोऽन्तगतमभिधीयते । एवं मार्गतोऽन्तगतपार्श्वतोऽन्तगतसूत्रं भावनीयं, नवरं 'अणुकड्ढेमाणे अणुकड्ढेमाणे'त्ति हस्तगतं दण्डाग्रादिस्थितं वा अनु-पश्चात् कर्षन् अनुकर्षन्, पृष्ठतः पश्चात् कृत्वा समाकर्षन् २ इत्यर्थः । तथा 'पासओ परिकड्ढेमाणे'त्ति पार्श्वतो दक्षिणपार्श्वतोऽथवा वामपार्श्वतो यद्वा द्वयोरपि पार्श्वयोरुल्कादिकं हस्तस्थितं दण्डाग्रादिस्थितं वा परिकर्षन्, पार्श्वभागे कृत्वा समाकर्षन् समाकर्षन्नित्यर्थः, 'से किं तं मज्झगतमि'त्यादि निगदसिद्धं नवरं 'मस्तके'शिरसि कृत्वा गच्छेत् तदेतत् मध्यगतं, इयमत्र भावना–यथा तेन मस्तकस्थेन सर्वासु दिक्षु पश्यति, एवं येनावधिज्ञानेन सर्वासु दिक्षु पश्यति तन्मध्यगतमिति । इत्थम्भूतां च व्याख्यां सम्यगनवबुध्यमानः शिष्यः प्रश्नं करोति—

१ ज्योतिरिति मल्लकादिस्थितोऽग्निर्ज्वलन्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?, पुरओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखिज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोअणाइं जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, पासओ अंतगएणं पासओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोअणाइं जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिनाणेणं सव्वओ समंता संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोअणाइं जाणइ पासइ, से तं अणुगामिअं ओहिनाणं ॥ (सू. १०)

अन्तगतस्य मध्यगतस्य च परस्परं कः प्रतिविशेषः ?–प्रतिनियतो विशेषः ?, सूरिराह—पुरतोऽन्तगतेनावधिज्ञानेन पुरत एव-अग्रत एव सङ्ख्येयानि-एकादीनि शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानि असङ्ख्येयानि वा योजनानि, एतावत्सु योजनेष्ववगाढं द्रव्यमित्यर्थः, जानाति पश्यति, ज्ञानं विशेषग्रहणात्मकं दर्शनं सामान्यग्रहणात्मकं, तदेवं पुरतोऽन्तगतस्य शेषावधिज्ञानेभ्यो भेदः, एवं शेषाणामपि परस्परं भावनीयः, नवरं 'सव्वओ समंता' इति सर्वतः-सर्वासु दिग्विदिक्षु समन्तात्–सर्वैरेवात्मप्रदेशैः सर्वैवा विशुद्धस्पर्द्धकैः, उक्तं च चूर्णौ—"सव्वउत्ति सव्वासु दिसिविदिसासु, समंता इति

१ सर्वत इति सर्वासु दिग्विदिक्षु समन्तादिति

अन्तगतमध्यगतावधी सू. १०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ८५ ॥

सव्वायप्पएसेसु सव्वेसु वा विसुद्धिफड्डेगसु" इति, अत्र 'सव्वायप्पएसेसु' इत्यादिस्तृ(त्र तृ)तीयार्थे सप्तमी, भवति च तृतीयार्थे सप्तमी, यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे–'व्यत्ययोऽप्यासा'मित्यत्र सूत्रे, तृतीयार्थे सप्तमी यथा–'तिसु तेसु अलंकिया पुहवि' इति, अथवा स मन्ता इत्यत्र स इत्यवधिज्ञानी परामृश्यते, मन्ता इति ज्ञाता, शेषं तथैव । अथ किमवधिज्ञानं केषामसुमतां भवतीति चेद्, उच्यते, देवनारकतीर्थकृतामवश्यं मध्यगतं तिरश्चामन्तगतं मनुष्याणां तु यथाक्षयोपशममुभयं, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायां—"नेरइयाणं भंते ! किं देसोही सव्वोही ?, गोयमा ! नो देसोही सव्वोही, एवं जाव थणियकुमाराणं । पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोअमा ! देसोही न सव्वोही । मणुस्साणं पुच्छा, गोयमा ! देसोहीवि सव्वोहीवि । वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा नेरइयाणं" वक्ष्यति च—"नेरइय देव तित्थंकरा य ओहिस्सऽबाहिरा होंति । पासंति सव्वओ खलु सेसा देसेण पासंति ॥ १ ॥" देवनारकाणां च मध्यगतमवधिरूपं ज्ञानमाभववर्त्ति, भवप्रत्ययत्वात्तस्य, तीर्थकृतां त्वाकेवलज्ञानं, केवलज्ञानोत्पत्तौ तस्य व्यवच्छेदात्, ननु सङ्ख्येयानि असंख्येयानि वा योजनानि पश्यन्तीत्युक्तं, तत्र के जीवाः कति योजनानि

१ सर्वात्मप्रदेशैः; सर्वैर्वा विशुद्धिस्पर्धकैः । २ त्रिभिस्तैरलङ्कृता पृथ्वी । ३ नैरयिकाणां भदन्त ! किं देशावधिः सर्वावधिः?, गौतम ! न देशावधिः सर्वावधिः, एवं यावत्स्तनितकुमाराणां । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानां पृच्छा, गौतम ! देशावधिः न सर्वावधिः, मनुष्याणां पृच्छा, गौतम ! देशावधिरपि सर्वावधिरपि । व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकानां यथा नैरयिकाणां । ४ सर्वोऽवधिर्भवति सर्वावधिर्भवति । ५ नैरयिका देवास्तीर्थकराश्च अवधेरवाह्या भवन्ति । पश्यन्ति सर्वतः खलु शेषा देशेन पश्यन्ति ॥ १ ॥

नारकासुरादीनामवधिः. १५ २० २१ ॥ ८५' ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

पश्यन्तीति?, उच्यते, इह तिर्यग्मनुष्या अनियतपरिमाणावधयः, तथाहि–केचिदङ्गुलासङ्ख्येयभाङ्गं केचिदङ्गुलं केचिद्वितस्तिं यावत्केचित् सङ्ख्येयानि योजनानि केचिदसङ्ख्येयानि, मनुष्यास्तु केचित् परिपूर्णं लोकं, केचिदलोकेऽपि लोकमात्राणि असंख्येयानि खण्डानि, ये तु देवनारकास्ते प्रतिनियतावधिपरिमाणाः ततः तेषां प्रतिनियतं क्षेत्रपरिमाणमुच्यते–तत्र रत्नप्रभानारका जघन्यतोऽर्द्धचतुर्थानि गव्यूतानि क्षेत्रमवधिज्ञानतः पश्यन्ति, उत्कर्षतश्चत्वारि गव्यूतानि १, शर्करप्रभानारका जघन्यतस्त्रीणि गव्यूतानि उत्कर्षतोऽर्द्धचतुर्थानि २, वालुकप्रभानारका जघन्यतोऽर्द्धतृतीयानि गव्यूतानि उत्कर्षतस्त्रीणि गव्यूतानि ३, पङ्कप्रभानारका जघन्यतो द्वे गव्यूते, उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि ४, धूमप्रभानारका जघन्यतोऽर्द्धाधिकं गव्यूतमुत्कर्षतो द्वे गव्यूते ५, तमःप्रभानारका जघन्येनैकं गव्यूतमुत्कर्षतः सार्द्धं गव्यूतं ६, तमतमःप्रभानारका जघन्यतोऽर्द्धगव्यूतमुत्कर्षतो गव्यूतं, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायां—"रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?, गोअमा! जहन्नेणं अद्धट्ठाइं गाउयाइं जाणंति पासंति उक्कोसेणं चत्तारि गाउआइं जाणंति पासंति, सक्करप्पभापुढविनेरइया णं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं तिन्नि गाउयाइं उक्कोसेणं अद्धट्ठाइं गाउयाइं जाणंति पासंति, वालुयप्पभापुढविनेरइया णं पुच्छा, गोअमा! जहन्नेणं अड्ढाइज्जाइं गाउआइं उक्कोसेणं तिन्नि गाउआइं

१ रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिका भदन्त! कियत् क्षेत्रमवधिना जानन्ति पश्यन्ति?, गौतम! जघन्येनार्धचतुर्थानि गव्यूतानि जानन्ति पश्यन्ति उत्कृष्टतश्चत्वारि गव्यूतानि जानन्ति पश्यन्ति। शर्करप्रभापृथ्वीनैरयिकाः पृच्छा, गौतम! जघन्येन त्रीणि गव्यूतानि उत्कृष्टेनार्धचतुर्थानि गव्यूतानि जानन्ति पश्यन्ति। वालुकापृथ्वीनैरयिकाः पृच्छा, गौतम! जघन्येनार्धतृतीयानि गव्यूतानि उत्कृष्टेन त्रीणि गव्यूतानि

नारकासुरादीनामवधिः.

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

जाणंति पासंति, पंकप्पभापुढविनेरइया णं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं दोन्नि गाउइयाइं उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं गाउयाइं जाणंति पासंति, धूमप्पभापुढविनेरइया णं पुच्छा, गोअमा ! जहन्नेणं दिवड्ढं गाउयं उक्कोसेणं दो गाऊआइं जाणंति पासंति, तमापुढविनेरइया णं पुच्छा, गोअमा ! जहन्नेणं गाउयं उक्कोसेणं दिवड्ढं गाउयं जाणंति पासंति, अहे सत्तमपुढविनेरइया णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाउयं जाणंति पासंति । असुरकुमाराः पुनरवधिज्ञानतो जघन्यतः क्षेत्रं पञ्चविंशतियोजनानि जानन्ति पश्यन्ति उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान्, नागकुमारादयः पुनः सर्वेऽपि स्तनितकुमारपर्यन्ता जघन्यतः पञ्चविंशतिं योजनानि जानन्ति पश्यन्ति उत्कर्षतः सङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान्, एवं व्यन्तरा अपि, तथा चोक्तम्—'असुरकुमारा णं भंते ! ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ?, गोअमा ! जहन्नेणं पणवीसं जोयणाइं उक्कोसेणं असङ्खेज्जदीवसमुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति, नागकुमारा णं पुच्छा, गोअमा ! जहन्नेणं पणवीसं जोयणाइं उक्कोसेणं संखेज्जदीवसमुद्दे जाणंति पासंति, एवं जाव थणिय-

१ जानन्ति पश्यन्ति । पङ्कप्रभापृथ्वीनैरयिकाः पृच्छा, गौतम ! जघन्येन द्वे गव्यूते उत्कृष्टेनार्धतृतीयानि गव्यूतानि जानन्ति पश्यन्ति । धूमप्रभापृथ्वीनैरयिकाः पृच्छा, गौतम ! जघन्येन सार्धगव्यूतं उत्कृष्टेन द्वे गव्यूते जानन्ति पश्यन्ति । तमःप्रभापृथ्वीनैरयिकाः पृच्छा, गौतम ! जघन्येन गव्यूतं उत्कृष्टेन सार्धगव्यूतं जानन्ति पश्यन्ति । अधःसप्तमपृथ्वीनैरयिकाः भदन्त ! पृच्छा, गौतम ! जघन्येनार्धगव्यूतं उत्कृष्टेन गव्यूतं जानन्ति पश्यन्ति । २ असुरकुमारा भदन्त ! अवधिना कियत् क्षेत्रं जानन्ति पश्यन्ति ?, गौतम ! जघन्येन पञ्चविंशतिं योजनानि उत्कृष्टतोऽसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अवधिना जानन्ति पश्यन्ति । नागकुमाराः पृच्छा, गौतम ! जघन्येन पञ्चविंशतिं योजनानि उत्कृष्टेन संख्येयान् द्वीपसमुद्रान् जानन्ति पश्यन्ति । एवं यावत् स्तनित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुमारा, वाणमंतरा जहा नागकुमारा" । इह पञ्चविंशतियोजनानि भवनपतयो व्यन्तरा वा जघन्यतस्ते पश्यन्ति येषामायुर्दशवर्षसहस्रप्रमाणं, न शेषाः, आह च भाष्यकृत्—"पणवीसजोयणाइं दसवाससहस्सिया ठिई जेसि"मिति । ज्योतिष्काः पुनर्देवा जघन्यतोऽपि सङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रानवधिज्ञानतः पश्यन्ति, उत्कर्षतोऽपि सङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान्, केवलमधिकतरान्, यदाह—"जोइसिया णं भंते! केवइयं खित्तं ओहिणा जाणंति पासंति?, गोयमा! जहन्नेणऽवि संखेज्जे दीवसमुद्दे उक्कोसेणवि संखेज्जे दीवसमुद्दे" । सौधर्मकल्पवासिनो देवाः पुनरवधिज्ञानतो जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं पश्यन्ति उत्कर्षतोऽधस्ताद्रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सर्वान्तिममधस्तनं भागं यावत्, तिर्यक्षु असङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान्, ऊर्द्धं तु स्वकल्पविमानस्तूपध्वजादिकं, एवमीशानदेवा अपि । अत्राह—नन्वङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रक्षेत्रपरिमितोऽवधिः सर्व्वजघन्यो भवति, सर्वजघन्यश्चावधिस्तिर्यग्मनुष्येष्वेव, न शेषेषु, यत आह भाष्यकृत्स्वकृतभाष्यटीकायाम् "उत्कृष्टो मनुष्येष्वेव, नान्येषु, मनुष्यतिर्यग्योनिष्वेव जघन्यो नान्येषु, शेषाणां मध्यम एवे"ति, तत्कथमिह सर्वजघन्य उक्तः?, उच्यते, सौधर्मादिदेवानां पारभविकोऽप्युपपातकालेऽवधिः सम्भवति, स च सर्वजघन्योऽपि कदाचिदवाप्यते, उपपातानन्तरं तु तद्भवजः, ततो न कश्चिद्दोषः, आह च दुष्षमान्ध-

नारकासुरादीनामवधिः.

५

१०

१ कुमाराः, व्यन्तरा यथा नागकुमाराः । २ पञ्चविंशतिं योजनानि दश वर्षसहस्राणि स्थितिर्येषामिति । ३ ज्योतिष्का भदन्त! कियत् क्षेत्रमवधिना जानन्ति पश्यन्ति?, गौतम! जघन्येनापि संख्येयान् द्वीपसमुद्रान् उत्कृष्टेनापि संख्येयान् द्वीपसमुद्रान् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ८७ ॥

कारनिमग्नजिनप्रवचनप्रदीपो जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः—"वेमाणियाणमंगुलभागमसंखं जहन्नओ होइ(ओही) [1]। उक्कोसए परभविओ तब्भवजो होइ तो पच्छा ॥ १ ॥" एवं सनत्कुमारादिदेवानामपि द्रष्टव्यम्, नवरमधोभागदर्शने विशेषः ततः स प्रदर्श्यते—सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवा अधस्तात् शर्कराप्रभायाः सर्वान्तिममधस्तनं भागं यावत्पश्यन्ति, ब्रह्मलोकलान्तकदेवास्तृतीयपृथिव्याः, महाशुक्रसहस्रारकल्पदेवाश्चतुर्थपृथिव्याः, आनतप्राणतारणाच्युतदेवाः पञ्च-मपृथिव्याः, अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवाः षष्ठपृथिव्याः, उपरितनग्रैवेयकदेवाः सप्तमपृथिव्याः, अनुत्तरोपपातिनः सम्पूर्णलोकनालिं चतुर्दशरज्वात्मिकामिति, उक्तं च प्रज्ञापनायां–"सोहम्मगदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?, गोयमा! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीवसमुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति। एवं ईसाणगदेवावि, सणंकुमारदेवा एवं चेव, नवरं अहे जाव दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढविए हिट्ठिल्ले चरिमंते, एवं माहिंददेवावि, बंभलोगलंतगदेवा तच्चाए पुढवीए हिट्ठिल्ले चरिमंते, महासुक्कसहस्सारदेवा चउत्थीए पंकप्पभाए

१ वैमानिकानामङ्गुलभागोऽसंख्यो जघन्योऽवधिर्भवति। उपपाते पारभविकस्तद्भवजो भवति ततः पश्चात् ॥ १ ॥ २ सौधर्मदेवा भदन्त! कियत् क्षेत्रमवधिना जानन्ति पश्यन्ति?, गौतम! जघन्येनाङ्गुलस्यासंख्येयभागं उत्कृष्टेन यावदस्या रत्नप्रभाया अधस्तनश्चरमान्तः, तिर्यग्यावत् असंख्यातान् द्वीपसमुद्रान्, ऊर्ध्वं यावत् स्वकानि विमानानि अवधिना जानन्ति पश्यन्ति। एवमीशानदेवा अपि, सनत्कुमारदेवा एवमेव, नवरं अधो यावद्वितीयस्याः शर्कराप्रभायाः पृथ्व्या अधस्तन-श्चरमान्तः, एवं माहेन्द्रा देवा अपि, ब्रह्मलोकलान्तकदेवास्तृतीयायाः पृथ्व्या अधस्तनश्चरमान्तः, महाशुक्रसहस्रारदेवाश्चतुर्थ्याः पङ्कप्रभायाः

नारकासु-रादीनाम-वधिः.

१५

२०

२१

॥ ८७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, आणयपाणयआरणअच्चुयदेवा अहे पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमन्ते, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा अहे जाव छट्ठीए तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, उवरिमगेवेज्जगदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गोयमा! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे सत्तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जदीवसमुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति। अणुत्तरोववाइया णं देवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गोयमा! संभिन्नं लोगनालिं जाणंति पासंति"। सम्प्रति नारकादीनामेवावधेः संस्थानं चिन्त्यते,—तत्र नारकाणामवधिः तप्राकारः, तप्रो नाम काष्ठसमुदायविशेषो यो नदीप्रवाहेण प्लाव्यमानो दूरादानीयते, स चायतत्र्यस्रश्च भवति, तदाकारोऽवधिर्नारकाणां, भवनपतीनां सर्वेषामपि पल्लकसंस्थानसंस्थितः पल्लको नाम लाटदेशे धान्याधारविशेषः, स चोर्द्धायत उपरि च किञ्चित्संक्षिप्तः, व्यन्तराणां पटहसंस्थानसंस्थितः, पटहः–आतोद्यविशेषः, स च किञ्चिदायतः, उपर्यधश्च समप्रमाणः, ज्योतिष्कदेवानां झल्लरीसंस्थानसंस्थितः, झल्लरी–चर्मावनद्धविस्तीर्णवलयाकारा आतोद्यविशेषरूपा देशविशेष-

१ पृथ्व्या अधस्तनश्चरमान्तः, आनतप्राणतारणाच्युतदेवा अधः पञ्चम्या धूमप्रभायाः पृथ्व्या अधस्तनश्चरमान्तः, अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवा यावत् षष्ठ्यास्तमःपृथ्व्या अधस्तनश्चरमान्तः, उपरितनग्रैवेयकदेवा भदन्त! कियत् क्षेत्रं अवधिना जानन्ति पश्यन्ति? गौतम! जघन्येनाङ्गुलस्यासंख्येयभागं उत्कृष्टेन अधः सप्तम्याः पृथ्व्या अधस्तनश्चरमान्तः, तिर्यग् यावत् असंख्येयान् द्वीपसमुद्रान्, ऊर्ध्वं यावत् स्वकानि विमानानि अवधिना जानन्ति पश्यन्ति। अनुत्तरोपपातिका देवा भदन्त! कियत् क्षेत्रमवधिना जानन्ति पश्यन्ति?, गौतम! संभिन्नां लोकनाडिकां जानन्ति पश्यन्ति

नारकासुरादीनामवधिः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

प्रसिद्धा, सौधर्म्मदेवादीनामच्युतदेवपर्यन्तानां मृदङ्गसंस्थानसंस्थितः, मृदङ्गो–वाद्यविशेषः, स चाधस्ताद्विस्तीर्णः उपरि च तनुकः सुप्रतीतः, ग्रैवेयकदेवानां ग्रथितपुष्पसशिखाकभृतचङ्गेरीसंस्थानसंस्थितः, अनुत्तरोपपातिकदेवानां कन्याचोलकापरपर्यायजवनालकसंस्थानसंस्थितः, उक्तं च—नेरइयाणं भंते! ओही किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! तप्पागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते, असुरकुमाराणं पुच्छा, गोअमा! पल्लगसंठाणसंठिए पण्णत्ते, एवं जाव थणियकुमाराणं, वाणमंतराणं पुच्छा, गोयमा! पडहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, जोइसिआणं पुच्छा, गोअमा! झल्लरीसंठाणसंठिए पण्णत्ते, सोहम्मदेवाणं पुच्छा, गोअमा! मुइंगसंठाणसंठिए पण्णत्ते, एवं जाव अच्चुयदेवाणं, गेवेज्जगदेवाणं पुच्छा, गोअमा! पुप्फचंगेरीसंठाणसंठिए पण्णत्ते, अणुत्तरोववाइयदेवाणं पुच्छा, गोअमा! जवनालगसंठाणसंठिए पन्नत्ते" । तप्राकारादीनां च व्याख्यानमिदं भाष्यकृदाह—"तप्पेण समागारो ओही नेओ स चाययत्तंसो । उद्धाययो उ पल्लो उवरिं च स किंचि संखित्तो ॥ १ ॥ नचायओ समोऽवियं पडहो हेट्ठोवरिं पईएसो ।

१ नैरयिकाणां भदन्त! अवधिः किं संस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, गौतम! तप्राकारसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । असुरकुमाराणां पृच्छा, गौतम! पल्यकसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः, एवं यावत्स्तनितकुमाराणां । व्यन्तराणां पृच्छा, गौतम! पटहसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । ज्योतिष्काणां पृच्छा, गौतम! झल्लरीसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । सौधर्मदेवानां पृच्छा, गौतम! मृदङ्गसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः, एवं यावदच्युतदेवानां, ग्रैवेयकदेवानां पृच्छा, गौतम! पुष्पचङ्गेरीसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । अनुत्तरोपपातिकदेवानां पृच्छा, गौतम! यवनालकसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । २ तप्राकारेण समाकारोऽवधिर्ज्ञेयः स चायतव्यस्रः । ऊर्ध्वायतस्तु पल्य उपरि च स किञ्चित् संक्षिप्तः ॥ १ ॥ नात्यायतः समोऽपि च पटहोऽधस्तन उपरि च प्रतीत एवः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [६२]

चर्म्मावणद्धविच्छिन्नवलयरूवा य झल्लरिया ॥२॥ उद्धायओ मुइंगो हेट्ठा रुंदो तहोवरिं तणुओ। पुप्फसिहावलिरइया चंगेरि पुप्फचंगेरी ॥ ३ ॥ जवनालउत्ति भन्नइ उब्भो सरकंचुओ कुमारीए" इति। तिर्यग्मनुष्याणां चावधिर्नानासंस्थानसंस्थितो यथा स्वयम्भूरमणोदधौ मत्स्याः, अपि च–तत्र मत्स्यानां वलयाकारं संस्थानं निषिद्धं, तिर्यग्मनुष्यावधौ तु तदपि भवति, उक्तं च—"नाणागारो तिरियमणुएसु मच्छा सयंभुरमणोव। तत्थ वलयं निसिद्धं तस्स पुण तयंपि होज्जाहि ॥ १ ॥" तथा भवनपतिव्यन्तराणामूर्द्धं प्रभूतोऽवधिर्भवति, वैमानिकानामधः, ज्योतिष्कनारकाणां तिर्यग्, विचित्रो नरतिरश्याम्, आह च—'भवणवइवंतराणं उड्ढं बहुगो अहो य सेसाणं। नारगजोइसियाणं तिरियं ओरालिओ चित्तो ॥१॥' तदेवमुक्तमानुगामिकमवधिज्ञानं, तथा चाह—'से त्तं अणुगामियं ॥' सम्प्रत्यनानुगामिकं शिष्यः पृच्छन्नाह—

से किं तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ?, अणाणुगामिअं ओहिनाणं से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं २ परिघोलेमाणे २ तमेव जोइट्ठाणं

१ चर्मावनद्धविस्तीर्णवलयरूपा च झल्लरी ॥ २ ॥ ऊर्ध्वायतो मृदङ्गोऽधस्ताद्विस्तीर्णस्तथोपरि तनुकः। पुष्पशिखावलिरचिता चङ्गेरी पुष्पचङ्गेरी ॥ ३ ॥ यवनालक इति भण्यते ऊर्ध्वः सरकञ्चुकः कुमार्याः। + वादित्रविशेषः + विस्तीर्णं + वलयाकारमपि + ऊर्ध्वायतः + वैमानिकानां + औदारिको नरतिरश्चां + चित्रोऽवधिरित्यर्थः। २ नानाकारस्तिर्यग्मनुष्येषु मत्स्याः स्वयम्भूरमण इव। तत्र वलयं निषिद्धं तस्य पुनस्तदपि भवेत् ॥ १ ॥ ३ भवनपतिव्यन्तराणामूर्ध्वं बहुकोऽधश्च शेषाणां। नारकज्योतिष्काणां तिर्यक् औदारिकश्चित्रः ॥ १ ॥

अनानुगामिकोऽवधिः. सू. ११

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [६३]

पासइ, अन्नत्थ गए न पासइ, एवामेव अणाणुगामिअं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोअणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थ गए ण पासइ, से त्तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं (सू० ११)

अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानं ?, सूरिराह—अनानुगामिकमवधिज्ञानं स–विवक्षितो यथानामकः कश्चित्पुरुषः पूर्णः सुखदुःखानामिति पुरुषः पुरि शयनाद्वा पुरुषः, एकं महज्ज्योतिःस्थानं–अग्निस्थानं कुर्यात्, कस्मिंश्चित्स्थानेऽने-कज्वालाशतसङ्कुलमग्निं प्रदीपं वा स्थूलवर्त्तिज्वालानुरूपमुत्पादयेदित्यर्थः, ततस्तत्कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य 'परिपर्य-न्तेषु २' परितः सर्वासु दिक्षु पर्यन्तेषु 'परिघूर्णन् २' परिभ्रमन् २ इत्यर्थः, तदेव 'ज्योतिःस्थानं' ज्योतिःस्थानप्रकाशितं क्षेत्रं पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति, एष दृष्टान्तः, उपनयमाह—'एवमेव' अनेनैव प्रकारेणानानुगामिकमवधिज्ञानं यत्रैव क्षेत्रे व्यवस्थितस्य सतः समुत्पद्यते तत्रैव व्यवस्थितः सन् सङ्ख्येयानि असङ्ख्येयानि वा योजनानि स्वावगाढक्षेत्रेण सह सम्बद्धानि असम्बद्धानि वा, अवधिर्हि कोऽपि जायमानः स्वावगाढदेशादारभ्य निरन्तरं प्रकाशयति कोऽपि पुनरपान्तरालेऽन्तरं कृत्वा परतः प्रकाशयति तत उच्यते–सम्बद्धान्यसम्बद्धानि वेति, 'जानाति' विशेषाकारेण परिच्छिनत्ति 'पश्यति' सामान्याकारेणावबुध्यते, 'अन्यत्र' देशान्तरे गतो नैव पश्यति, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तत्क्षेत्रसापेक्षत्वात् । तदेवमुक्तमनानुगामिकं, सम्प्रति वर्द्धमानकमनवबुध्यमानः शिष्यः प्रश्नं करोति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ?,२ पसत्थेसु अज्झवसाणट्ठाणेसु वट्टमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ–जावइआ तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स । ओगाहणा जहन्ना ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥ ४८ ॥ सव्वबहुअगणिजीवा निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु । खित्तं सव्वदिसागं परमोही खेत्त निद्दिट्ठो ॥ ४९ ॥ अंगुलमावलिआणं भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा । अंगुलमावलिअंतो आवलिआ अंगुलपुहत्तं ॥ ५० ॥ हत्थंमि मुहुत्तंतो दिवसंतो गाउअंमि बोद्धव्वो । जोयण दिवसपुहुत्तं पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ५१ ॥ भरहंमि अद्धमासो जंबुदीवंमि साहिओ मासो । वासं च मणुअलोए वासपुहुत्तं च रुअगंमि ॥ ५२ ॥ संखिज्जंमि उ काले दीवसमुद्दाऽवि हुंति संखिज्जा । कालंमि असंखिज्जे दीवसमुद्दा उ भइअव्वा ॥ ५३ ॥ काले चउण्ह वुड्ढी कालो भइअव्वु खित्तवुड्ढीए । वुड्ढिए दव्वपज्जव भइअव्वा खित्तकाला उ ॥ ५४ ॥ सुहुमो अ होइ कालो तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं । अंगुलसेढिमित्ते ओसप्पिणिओ असंखिज्जा ॥५५॥ से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं । (सू. १२)

वर्धमानो-वधिः ज-घन्याद्य-वधिः. सू. १२

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ किं वर्द्धमानकमवधिज्ञानं ?, सूरिराह—वर्द्धमानकमवधिज्ञानं प्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य, इह सामान्यतो द्रव्यलेश्योपरञ्जितं चित्तमध्यवसायस्थानमुच्यते, तच्चानवस्थितं, तत्तल्लेश्याद्रव्यसाँचिव्ये विशेषसम्भवात्, ततो बहुवचनमुक्तं, 'प्रशस्तेष्वि'ति, अनेन चाप्रशस्तकृष्णादिद्रव्यलेश्योपरञ्जितव्यवच्छेदमाह, प्रशस्तेष्वध्यवसायेषु वर्त्तमानस्येति, किमुक्तं भवति ?–प्रशस्ताध्यवसायस्थानकलितस्य, 'सर्वतः' समन्तादवधिः परिवर्द्धते इति सम्बन्धः, अनेनाविरतसम्यग्दृष्टेरपि परिवर्द्धमानकोऽवधिर्भवतीत्याख्यायते, तथा 'वद्धमाणचरित्तस्स' प्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्धमानचारित्रस्य, एतेन देशविरतिसर्वविरतयोर्वर्द्धमानकमवधिमभिधत्ते, वर्द्धमानकश्चावधिरुत्तरोत्तरां विशुद्धिमासादयतो भवति नान्यथा तत आह—'विशुद्ध्यमानस्य' तदावरणकमलकलङ्कविगमत उत्तरोत्तरविशुद्धिमासादयतः, अनेनाविरतसम्यग्दृष्टेर्वर्द्धमानकावधेः शुद्धिजन्यत्वमाह, तथा 'विशुद्ध्यमानचारित्रस्य च' इदं च विशेषणं देशविरत-सर्वविरतयोर्वेदितव्यम् 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु समन्तादवधिः परिवर्द्धते । स च कस्यापि सर्वजघन्यादारभ्य प्रवर्द्धते, ततः प्रथमतः सर्वजघन्यमवधिं प्रतिपादयति–'त्रिसमयाहारकस्य' आहारयति–आहारं गृह्णातीत्याहारकः, त्रयः समयाः समाहृतास्त्रिसमयं, त्रिसमयमाहारकस्त्रिसमयाहारकः 'नामनाम्नैकार्थे समासो बहुल'मिति समासः तस्य त्रिसमयाहारकस्य 'सूक्ष्मस्य' सूक्ष्मनामकर्मोदयवर्त्तिनः 'पनकजीवस्य' पनकश्चासौ जीवश्च पनकजीवः, पनकजीवो

१ प्राधान्ये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पतिविशेषः, तस्य 'यावती' यावत्परिमाणा अवगाहन्ते क्षेत्रं यस्यां स्थिता जन्तवः साऽवगाहना–तनुरित्यर्थः, 'जघन्या' त्रिसमयाहारकशेषसूक्ष्मपनकजीवापेक्षया सर्वस्तोका, एतावत्परिमाणमवधेर्जघन्यं क्षेत्रं, तुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः–जघन्यमवधिक्षेत्रमेतावदेवेति । अत्र चायं सम्प्रदायः–यः किल योजनसहस्रपरिमाणायामो मत्स्यः स्वशरीरबाह्यैकदेश एवोत्पद्यमानः प्रथमसमये सकलनिजशरीरसम्बद्धमात्मप्रदेशानामायामं संहृत्याङ्गुलासंख्येयभागबाहल्यं स्वदेहविष्कम्भायामविस्तारं प्रतरं करोति, तमपि द्वितीयसमये संहृत्याङ्गुलासङ्ख्येयभागबाहल्यविष्कम्भां मत्स्यदेहविष्कम्भायामामात्मप्रदेशानां सूचिं विरचयति, ततस्तृतीयसमये तामपि संहृत्याङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्र एव स्वशरीरबहिःप्रदेशे सूक्ष्मपरिणामपनकरूपतयोत्पद्यते, तस्योपपातसमयादारभ्य तृतीये समये वर्त्तमानस्य यावत्प्रमाणं शरीरं भवति तावत्परिमाणं जघन्यमवधेः क्षेत्रमालम्बनवस्तुभाजनमवसेयम्, उक्तं च—"योजनसहस्रमानो मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः । उत्पद्यते हि पनकः सूक्ष्मत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥ संहृत्य चाद्यसमये स ह्यायामं करोति च प्रतरम् । सङ्ख्यातीताख्याङ्गुलविभागबाहल्यमानं तु ॥ २ ॥ स्वकतनुपृथुत्वमात्रं दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् । तमपि द्वितीयसमये संहृत्य करोत्यसौ सूचिम् ॥३॥ सङ्ख्यातीताख्याङ्गुलविभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् । निजतनुपृथुत्वदीर्घां तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥ उत्पद्यते च पनकः स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिणामः । समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥ तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम् । इदमित्थमेव मुनिगणसुसम्प्रदा-

जघन्याद्यवधिक्षेत्रकालौ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथा: ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

यात् समवसेयम् ॥ ६ ॥" आह–किमिति योजनसहस्रायामो मत्स्यः ? किं वा तस्य तृतीयसमये स्वदेहदेशे सूक्ष्मपनकत्वेनोत्पादः ? किं वा त्रिसमयाहारकत्वं परिगृह्यते ?, उच्यते, इह योजनसहस्रायामो मत्स्यः, स किल त्रिभिः समयैरात्मानं संक्षिपति महतः प्रयत्नविशेषात्, महाप्रयत्नविशेषारूढश्चोत्पत्तिदेशेऽवगाहनामारभमाणोऽतीव सूक्ष्मामारभते ततो महामत्स्यस्य ग्रहणं, सूक्ष्मपनकश्चान्यजीवापेक्षया सूक्ष्मतमावगाहनो भवति, ततः सूक्ष्मपनकग्रहणं, तथा उत्पत्तिसमये द्वितीयसमये चातिसूक्ष्मो भवति चतुर्थादिषु च समयेष्वतिस्थूरः त्रिसमयाहारकस्तु योग्यः ततः त्रिसमयाहारकग्रहणं, उक्तं च–मच्छो महल्लकाओ संखेत्तो जो उ तीहिँ समएहिं । स किर पयत्तविसेसेण सण्हमोगाहणं कुणइ ॥ १ ॥ सण्हयरा सण्हयरो सुहुमो पणओ जहन्नदेहो य । स बहुविसेसविसिट्ठो सण्हयरो सव्वदेहेसु ॥ २ ॥ पढमबीएऽतिसण्हो जायइ थूलो चउत्थयाईसुं । तइयसमयंमि जोगो गहिओ तो तिसमयहारो ॥ ३ ॥" अन्ये तु व्याचक्षते–'त्रिसमयाहारकस्ये'ति आयामप्रतरसंहरणे समयद्वयं तृतीयश्च समयः सूचीसंहरणोत्पत्तिदेशागमनविषयः, एवं त्रयः समया विग्रहगत्यभावाच्चैतेषु त्रिष्वपि समयेष्वाहारकः, तत उत्पादसमय एव त्रिसमयाहारकः सूक्ष्मपनकजीवो जघन्यावगाहनश्च, ततः तच्छरीरमानं जघन्यमवधेः क्षेत्रं, तच्चायुक्तं, यतस्त्रिसमया-

१ मत्स्यो महाकायः संक्षिप्तो यस्तु त्रिभिः समयैः । स किल प्रयत्नविशेषेण श्लक्ष्णामवगाहनां करोति ॥१॥ श्लक्ष्णतरात् श्लक्ष्णतरः सूक्ष्मः पनको जघन्यदेहश्च । स बहुविशेषविशिष्टः श्लक्ष्णतरः सर्वदेहेषु ॥ २ ॥ प्रथमद्वितीययोरतिश्लक्ष्णो जायते स्थूलश्चतुर्थादिषु । तृतीयसमये योग्यो गृहीतस्तत्त्रिसमयाहारकः ॥ ३ ॥

जघन्यावगाहनाद्यवधिक्षेत्रकालौ.

२०

२४

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

हारकस्येति विशेषणं पनकस्य, न च मत्स्यायामप्रतरसंहरणसमयौ पनकभवस्य सम्बन्धिनौ, किन्तु मत्स्यभवस्य, तत उत्पादसमयादारभ्य त्रिसमयाहारकस्येति द्रष्टव्यम्, नान्यथा। एतावत्प्रमाणं जघन्यं क्षेत्रमवधेः, तैजसभाषाप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्त्तिद्रव्यमालम्बते 'तेयाभासादव्वाणमंतरा एत्थ लहइ पट्टवओ' इति वचनात्, तदपि चालम्ब्यमानं द्रव्यं द्विधा–गुरुलघु अगुरुलघु च, तत्र तैजसप्रत्यासन्नं गुरुलघु भाषाप्रत्यासन्नं चागुरुलघु, तद्गतांश्च पर्यायान् चतुःसंख्यानेव वर्णरसगन्धस्पर्शलक्षणान् पश्यति न शेषान्, यत आह—"दव्वाइं अंगुलावलिसंखेज्जातीतभागविसयाइं। पेच्छइ चउग्गुणाइं जहन्नओ मुत्तिमंताइं ॥ १ ॥" अत्र 'जघन्यत' इति जघन्यावधिज्ञानी। तदेवं जघन्यमवधेः क्षेत्रमभिधाय साम्प्रतमुत्कृष्टमभिधातुकाम आह—यतः ऊर्द्धमन्य एकोऽपि जीवो न कदाचनापि प्राप्यते ते सर्वबहवः सर्वबहवश्च ते अग्निजीवाश्च सूक्ष्मबादररूपाः सर्वबह्वग्निजीवाः, कदा सर्वबह्वग्निजीवा इति चेद्, उच्यते, यदा सर्वासु कर्मभूमिषु निर्व्याघातमग्निकायसमारम्भकाः सर्वबहवो मनुष्याः, ते च प्रायोऽजितस्वामितीर्थकरकाले प्राप्यन्ते, यदा चोत्कृष्टपदवर्त्तिनः सूक्ष्मानलजीवाः तदा सर्वबह्वग्निजीवाः, उक्तं च—"अव्वाघाए सव्वासु कम्मभूमिसु जया तयारंभा। सव्वबहवो मणुस्सा होंतिऽजियजिणिंदकालंमि ॥ १ ॥ उक्कोसिया य सुहुमा जया

जघन्याद्यवधिक्षेत्रकालौ.

५ १० ११

१ तेजोभाषाद्रव्याणामन्तरा अत्र पश्यति प्रस्थापकः। २ द्रव्याणि अङ्गुलावलीसंख्यातीतभागविषयाणि। प्रेक्षते चतुर्गुणानि जघन्यतो मूर्तिमन्ति ॥ १ ॥
३ अव्याघाते सर्वासु कर्मभूमिषु यदा तदारम्भकाः। सर्वबहवो मनुष्या भवन्ति अजितजिनेन्द्रकाले ॥ १ ॥ उत्कृष्टाश्च सूक्ष्मा यदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ९२ ॥

तया सर्ववहुअगणिजीवा" इति, 'निरंतरमिति' क्रियाविशेषणं यावत्परिमाणं क्षेत्रं भूतवन्तः, एतदुक्तं भवति– नैरन्तर्येण विशिष्टसूचीरचनया यावद् भूतवन्तः, भूतवन्त इति च भूतकालनिर्देशः अजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्ववहवोऽनलजीवा अस्यामवसर्पिण्यां सम्भवन्ति स्मेति ख्यापनार्थं, इदं चानन्तरोदितं क्षेत्रमेकदिक्कमपि भवति तत आह–सर्वदिक्कं, अनेन सूचीभ्रमणप्रमितत्वं क्षेत्रस्य सूचयति, परमश्चासाववधिश्च परमावधिः, एतावदनन्तरोदितं सर्ववह्वनलजीवसूचीपरिक्षेपप्रमितं क्षेत्रमङ्गीकृत्य 'निर्दिष्टः' प्रतिपादितो गणधरादिभिः क्षेत्रनिर्दिष्टः, एतावत् क्षेत्रं परमावधेर्भवतीत्यर्थः, किमुक्तं भवति ?–सर्ववह्वग्निजीवा निरन्तरं यावत् क्षेत्रं सूचीभ्रमणेन सर्वदिक्कं भूतवन्तः एतावति क्षेत्रे यान्यवस्थितानि द्रव्याणि तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः क्षेत्रमधिकृत्य निर्दिष्टो गणधरादिभिः, अयमिह सम्प्रदायः–सर्ववह्वग्निजीवाः प्रायोऽजितस्वामितीर्थकृत्काले प्राप्यन्ते, तदारम्भकमनुष्यबाहुल्यसम्भवात्, सूक्ष्माश्चोत्कृष्टपदवर्त्तिनः तत्रैव विवक्ष्यन्ते, ततश्च सर्ववहवोऽनलजीवा भवन्ति, तेषां स्वबुद्ध्या षोढाऽवस्थानं परिकल्प्यते–एकैकक्षेत्रप्रदेशे एकैकजीवावगाहनया सर्वतश्चतुरस्रो घन इति प्रथमं, स एव घनो जीवैः स्वावगाहना[दि]भिरिति द्वितीयम्, एवं प्रतरोऽपि द्विभेदः, श्रेणिरपि द्विधा, तत्राद्याः पञ्च प्रकारा अनादेशाः, तेषु क्षेत्रस्याल्पीयस्तया प्राप्यमाणत्वात्, षष्ठस्तु प्रकारः सूत्रादेशः, उक्तं च—"एकेकागासपएसजीवरयणाए

१ तदा सर्ववह्वग्निजीवाः ॥ २ एकैकाकाशप्रदेशजीवरचनया

जघन्याद्यवधिक्षेत्रकालौ. १५ २० ॥ ९२ ॥ २३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

सावगाहे य । चउरंसं घण पयरं सेढी छट्ठो सुयादेसो ॥ १ ॥" ततश्चासौ श्रेणिः स्वावगाहनासंस्थापितसकलानलजीवावलीरूपा अवधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु शरीरपर्यन्तेन भ्राम्यते, सा च भ्राम्यमाणा असंख्येयान् लोकमात्रान् क्षेत्रविभागानलोके व्याप्नोति, एतावत्क्षेत्रमवधेरुत्कृष्टमिति, उक्तं च–"निययावगाहणागणिजीवसरीरावली समन्तेणं । भामिज्जइ ओहिनाणिदेहपज्जंतओ सा य ॥ १ ॥ अइगंतूणमलोगे लोगागासप्पमाणमेत्ताइं । ठाइ असंखेज्जाइं इदमोहिक्खेत्तमुक्कोसं ॥ २ ॥" इदं च सामर्थ्यमात्रमुपवर्ण्यते, एतावति क्षेत्रे यदि द्रष्टव्यं भवति तर्हि पश्यति, यावता तन्न विद्यते, अलोके रूपिद्रव्याणामसम्भवात्, रूपिद्रव्यविषयश्चावधिः, केवलमयं विशेषो-यावदद्यापि परिपूर्णमपि लोकं पश्यति तावदिह स्कन्धानेव पश्यति, यदा पुनरलोके प्रसरमवधिरधिरोहति तदा यथा यथाऽभिवृद्धिमासादयति तथा २ लोके सूक्ष्मान् सूक्ष्मतरान् स्कन्धान् पश्यति, यावदन्ते परमाणुमपि, उक्तं च—"सामत्थमेत्तमुत्तं दट्ठव्वं जइ हवेज्जा पेच्छेज्जा । न उ तं तत्थत्थि जओ सो रूविनिबंधणो भणिओ ॥ १ ॥ वट्टंतो पुण बाहिं लोगत्थं चेव पासई दव्वं । सुहुमयरं २ परमोही जाव परमाणू ॥ २ ॥" परमावधिकलितश्च नियमादन्तर्मुहूर्तमात्रेण केवलालो-

जघन्याद्यवधिक्षेत्रकालौ.

५

१०

१ स्वावगाहनया च । चतुरस्रं घनं प्रतरं श्रेणिं षष्ठः सूत्रादेशः ॥ १ ॥ २ निजावगाहनाभिर्जीवशरीरावली समन्तात् । भ्राम्यते अवधिज्ञानिदेहपर्यन्ततः सा च ॥ १ ॥ अतिगत्यालोके लोकाकाशप्रमाणमात्राणि । तिष्ठति असंख्येयानि इदमवधिक्षेत्रमुत्कृष्टम् ॥ २ ॥ ३ सामर्थ्यमात्रमुक्तं द्रष्टव्यं यदि भवेत् प्रेक्षेत । न तु तत्तत्रास्ति यतः स रूपिनिबन्धनो भणितः ॥ १ ॥ वर्धमानः पुनर्बहिः लोकस्थं चैव पश्यति द्रव्यम् । सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतरं परमावधिर्यावत्परमाणुम् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथा: ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

कलक्ष्मीमालिङ्गति, उक्तं च—'परमोहिनाणठिओ केवलमंतोमुहुत्तमेत्तेणं ।' एवं तावज्जघन्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमुक्तं, सम्प्रति मध्यमं प्रतिपिपादयिषुरेतावत्क्षेत्रोपलम्भे एतावत्कालोपलम्भः एतावत्कालोपलम्भे चैतावत्क्षेत्रोपलम्भ इत्यस्यार्थस्य प्रकटनार्थं गाथाचतुष्टयमाह—अङ्गुलमिह क्षेत्राधिकारात् प्रमाणाङ्गुलमभिगृह्यते, अन्ये त्वाहुः—अवध्यधिकारादुत्सेधाङ्गुलमिति, आवलिका असङ्ख्येयसमयात्मिका, अङ्गुलं चावलिका चाङ्गुलावलिके तयोरङ्गुलावलिकयोर्भागमसङ्ख्येयमसङ्ख्येयं पश्यत्यवधिज्ञानी, इदमुक्तं भवति–क्षेत्रतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं पश्यन् कालत आवलिकाया असङ्ख्येयमेव भागमतीतमनागतं च पश्यति, उक्तं च—'खेत्तमसंखेज्जंगुलभागं पासं तमेव कालेणं । आवलियाए भागं तीयमणायं च जाणाइ ॥ १ ॥' आवलिकायाश्चासङ्ख्येयं भागं पश्यन् क्षेत्रतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागं पश्यति, एवं सर्वत्रापि क्षेत्रकालयोः परस्परं योजना कर्त्तव्या, क्षेत्रकालदर्शनं चोपचारेण द्रष्टव्यं, न साक्षात्, न खलु क्षेत्रं कालं वा साक्षादवधिज्ञानी पश्यति, तयोरमूर्त्तत्वात्, रूपिद्रव्यविषयश्चावधिः, तत एतदुक्तं भवति–क्षेत्रे काले च यानि द्रव्याणि तेषां च द्रव्याणां ये पर्यायास्तान् पश्यतीति, उक्तं च—"तत्थेव य जे दव्वा तेसिंचिय जे हवंति पज्जाया । इय खेत्ते कालंमि य जोएज्जा दव्वपज्जाए ॥ १ ॥"

१ परमावधिज्ञानस्थितः (विदः) केवलमन्तर्मुहूर्तमात्रेण । २ क्षेत्रमसंख्येयाङ्गुलभागं पश्यन् तमेव कालेन । आवलिकाया भागं अतीतमनागतं च जानाति ॥ १ ॥ ३ तत्रैव च यानि द्रव्याणि तेषामेव च ये भवन्ति पर्यायाः । एवं क्षेत्रे काले च योजयेत् द्रव्यपर्यायान् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

एवं सर्वत्रापि भावनीयम्, क्रिया च गाथाचतुष्टये स्वयमेव योजनीया। तथा द्वयोरङ्गुलावलिकयोः सङ्ख्येयौ भागौ पश्यति, अङ्गुलस्य सङ्ख्येयभागं पश्यन् आवलिकाया अपि संख्येयमेव भागं पश्यतीत्यर्थः। तथा 'अङ्गुलम्' अङ्गुलमात्रं क्षेत्रं पश्यन् 'आवलिकान्तः' किञ्चिदूनामवलिकां पश्यति, आवलिकां चेत् कालतः पश्यति तर्हि क्षेत्रतोऽङ्गुलपृथक्त्वं–अङ्गुलपृथक्त्वपरिमाणं क्षेत्रं पश्यति, उक्तं च–"[1]संखेज्जंगुलभागे आवलियाएवि मुणइ तइभागं। अंगुलमिह पेच्छंतो आवलियंतो मुणइ कालं ॥ १ ॥ आवलियं मुणमाणो संपुन्नं खेत्तमंगुलपुहुत्त"मिति, पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरा नवभ्य इति। तथा 'हस्ते' हस्तमात्रे क्षेत्रे ज्ञायमाने कालतो 'मुहूर्त्तान्तः पश्यति' अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं कालं पश्यतीत्यर्थः, तथा कालतो 'दिवसान्तः' किञ्चिदूनं दिवसं पश्यन् क्षेत्रतो 'गव्यूते' गव्यूतविषयो द्रष्टव्यः, तथा 'योजनं' योजनमात्रं क्षेत्रं पश्यन् कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति, दिवसपृथक्त्वमानं कालं पश्यतीत्यर्थः, तथा 'पक्षान्तः' किञ्चिदूनं पक्षं पश्यन् क्षेत्रतः पञ्चविंशतियोजनानि पश्यति। 'भरते' सकलभरतप्रमाणक्षेत्रावधौ कालतोऽर्द्धमास उक्तः, भरतप्रमाणं क्षेत्रं पश्यन् कालतोऽतीतमनागतं चार्द्धमासं पश्यतीत्यर्थः, एवं जम्बूद्वीपविषयेऽवधौ साधिको मासः कालतो विषयत्वेन बोद्धव्यः। तथा 'मनुष्यलोके' मनुष्यलोकप्रमाणक्षेत्रविषयेऽवधौ 'वर्षे' संवत्सरमतीतमनागतं च पश्यति, तथा रुचकाख्ये रुचकाख्यबाह्यद्वीपप्रमाणक्षेत्रविषयेऽवधौ वर्षपृथक्त्वं पश्यति। तथा सङ्ख्यायत

मध्यमावधिक्षेत्र-कालौ.

५

१०

१२

१ संख्यातान्गुलभागान् आवलिकाया अपि मुणति तृतीयभागान्। अङ्गुलमिह पश्यन् आवलिकान्तर्मुणति कालम् ॥१॥ आवलिकां जानन् संपूर्णं क्षेत्रमङ्गुलपृथक्त्वम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥ ९४ ॥

इति सङ्ख्येयः स च वर्षमात्रोऽपि भवति ततः तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?–सङ्ख्येयकालो वर्षसहस्रात्परो वेदितव्यः, तस्मिन् सङ्ख्येये कालेऽवधिगोचरे सति क्षेत्रतः तस्यैवावधेर्गोचरतया द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्राः तेऽपि सङ्ख्येया भवन्ति, अपिशब्दात् महानेकोऽपि महत एकदेशोऽपि, किमुक्तं भवति ?–सङ्ख्येये कालेऽवधिना परिच्छिद्यमाने क्षेत्रमप्यत्रत्यप्रज्ञापकापेक्षया सङ्ख्येयद्वीपसमुद्रपरिमाणं परिच्छेद्यं भवति, ततो यदि नामात्रत्यस्यावधिरुत्पद्यते तर्हि जम्बूद्वीपादारभ्य सङ्ख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्य परिच्छेद्याः, अथवा बाह्ये द्वीपे समुद्रे वा सङ्ख्येययोजनविस्तृते कस्यापि तिरश्चः सङ्ख्येयकालविषयोऽवधिरुपद्यते तदा स यथोक्तक्षेत्रपरिमाणं तमेवैकं द्वीपं समुद्रं वा पश्यति, यदि पुनरसङ्ख्येययोजनविस्तृते स्वयम्भूरमणादिके द्वीपे समुद्रे वा सङ्ख्येयकालविषयोऽवधिः कस्याप्युत्पद्यते तदानीं स प्रागुक्तपरिमाणं तस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा एकदेशं पश्यति इहत्यमनुष्यबाह्यावधिरिव कश्चित्, तथा कालेऽसङ्ख्येये पल्योपमादिलक्षणे अवधेर्विषये सति तस्यैव सङ्ख्येयकालपरिच्छेदकस्यावधेः क्षेत्रतया परिच्छेद्या द्वीपसमुद्राः 'भाज्या' विकल्पनीया भवन्ति, कस्यचिदसङ्ख्येयाः कस्यचित्सङ्ख्येयाः कस्यचिदेकदेश इत्यर्थः, यदा इह मनुष्यस्यासङ्ख्येयकालविषयोऽवधिरुत्पद्यते तदानीमसङ्ख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्य विषयः, यदा पुनर्बहिर्द्वीपे समुद्रे वा वर्तमानस्य कस्यचित् तिरश्चोऽसङ्ख्येयकालविषयोऽवधिरुत्पद्यते तर्हि तस्य सङ्ख्येया द्वीपसमुद्राः, अथवा यस्य मनुष्यस्य सङ्ख्येयकालविषयो बाह्यद्वीपसमुद्रालम्बनो बाह्यावधिरुत्पद्यते तस्य सङ्ख्येया द्वीपाः, यदा पुनः स्वयम्भूरमणे द्वीपे समुद्रे वा

मध्यमावधिक्षेत्रकालौ. १५ २० ॥ ९४ ॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

कस्यचित्तिरश्चोऽवधिरसङ्ख्येयकालविषयो जायते तदानीं तस्य स्वयम्भूरमणस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा एकदेशो विषयः, स्वयम्भूरमणविषयमनुष्यबाह्यावधेर्वा तदेकदेशो विषयः, क्षेत्रपरिमाणं पुनर्योजनापेक्षया सर्वत्रापि जम्बूद्वीपादारभ्यासङ्ख्येयद्वीपसमुद्रपरिमाणमवसेयम्। तदेवं यथा क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिः कालवृद्धौ च यथा क्षेत्रवृद्धिः तथा प्रतिपादितं, सम्प्रति द्रव्यक्षेत्रकालभावानां मध्ये यद्वृद्धौ यस्य वृद्धिरुपजायते यस्य च न तदभिधित्सुराह—'काले' अवधिगोचरे वर्द्धमाने 'चतुण्णं' द्रव्यक्षेत्रकालभावानां वृद्धिर्भवति, तथा क्षेत्रस्य वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिस्तस्यां सत्यां कालो 'भजनीयो' विकल्पनीयः कदाचिद्वर्द्धते कदाचित् न, क्षेत्रं ह्यत्यन्तसूक्ष्मं, कालस्तु तदपेक्षया परिस्थूरः, ततो यदि प्रभूता क्षेत्रवृद्धिस्ततो वर्द्धते शेषकालं नेति, द्रव्यपर्यायौ तु नियमतो वर्द्धेते, आह च भाष्यकृत्—"कालं पवड्ढमाणे सव्वे दव्वादओ पवड्ढंति। खेत्ते कालो भइओ वड्ढंति उ दव्वपज्जाया॥ १॥" तथा द्रव्यं च पर्यायश्च द्रव्यपर्यायौ तयोर्वृद्धौ सत्यां, सूत्रे विभक्तिलोपः प्राकृतशैल्या, भजनीयावेव क्षेत्रकालौ, तुशब्द एवकारार्थः, स च भिन्नक्रमस्तथैव च योजितः, विकल्पश्चायं–कदाचित्तयोर्वृद्धिर्भवति कदाचिन्न, यतो द्रव्यं क्षेत्रादपि सूक्ष्मं, एकस्मिन्नपि नभःप्रदेशेऽनन्तस्कन्धावगाहनात्, द्रव्यादपि सूक्ष्मः पर्यायः, एकस्मिन्नपि द्रव्येऽनन्तपर्यायसम्भवात्, ततो द्रव्यपर्यायवृद्धौ क्षेत्रकालौ भजनीयावेव भवतः, द्रव्ये च वर्धमाने पर्याया नियमतो वर्धन्ते, प्रतिद्रव्यं संख्येयानामसंख्येयानां चावधिना

१ काले प्रवर्धमाने सर्वे द्रव्यादयः प्रवर्धन्ते। क्षेत्रे कालो भाज्यो वर्धन्ते तु द्रव्यपर्यायाः॥ १॥

कालादि-वृद्ध्यादौ क्षेत्रादि-वृद्ध्यादि.

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

परिच्छेदसंभवात्, पर्यायतो वर्द्धमाने द्रव्यं भाज्यं, एकस्मिन्नपि द्रव्ये पर्यायविषयावधिवृद्धिसम्भवात्, आह च भाष्यकृत्—"भयणाए खेत्तकाला परिवड्ढंतेसु दव्वभावेसुं। दव्वे वड्ढइ भावो भावे दव्वं तु भयणिज्जं ॥ १ ॥" अत्राह–ननु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नयोः अवधिज्ञानसंबन्धिनोः क्षेत्रकालयोरङ्गुलावलिकाऽसंख्येयभागादिरूपयोः परस्परं समयप्रदेशसंख्ययोः किं तुल्यत्वमुत हीनाधिकत्वम् ?, उच्यते, हीनाधिकत्वं, तथाहि–आवलिकाया असङ्ख्येयभागे जघन्यावधिविषये यावन्तः समयाः तदपेक्षया अङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागे जघन्यावधिविषय एव ये नभःप्रदेशास्ते असङ्ख्येयगुणाः, एवं सर्वत्रापि अवधिविषयात् कालादसङ्ख्येयगुणत्वमवधिविषयस्य क्षेत्रस्यावगन्तव्यम्, उक्तं च—"सव्वमसंखेज्जगुणं कालाओ खेत्तमोहिविसयं तु । अवरोप्परसंबद्धं समयप्पएसप्पमाणेणं ॥ १ ॥" अथ क्षेत्रस्येत्थं कालादसङ्ख्येयगुणता कथमवसीयते ?, उच्यते, सूत्रप्रामाण्यात्, तदेव सूत्रमुपदर्शयति—'सूक्ष्मः' श्लक्ष्णो भवति कालः, चशब्दो वाक्यभेदक्रमोपदर्शनार्थो यथा सूक्ष्मस्तावत्कालो भवति यस्मादुत्पलपत्रशतभेदे प्रतिपत्रमसङ्ख्येयाः समयाः प्रतिपाद्यन्ते ततः सूक्ष्मः कालः, तस्मादपि कालात् सूक्ष्मतरं क्षेत्रं भवति, यस्मादङ्गुलमात्रे क्षेत्रे–प्रमाणाङ्गुलैकमात्रे श्रेणिरूपे नभःखण्डे प्रतिप्रदेशं समयगणनया असङ्ख्येया अवसर्प्पिण्यस्ती-

१ भजनया क्षेत्रकालौ परिवर्धमानयोर्द्रव्यभावयोः । द्रव्ये वर्धते भावो भावे द्रव्यं तु भजनीयम् ॥ १ ॥ २ सर्वमसंख्येयगुणं कालात् क्षेत्रमवधिविषयं तु । परस्परसंबद्धं समयप्रदेशप्रमाणेन ॥ २ ॥

क्षेत्रस्य सूक्ष्मतरता. १५ २० २३ ॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२] + गाथाः ॥४८-५५॥

दीप अनुक्रम [६४-७३]

र्थकृद्भिराख्याताः, इदमुक्तं भवति—प्रमाणाङ्गुलैकमात्रे एकैकप्रदेशश्रेणिरूपे नभःखण्डे यावन्तोऽसङ्ख्येयाखवसर्पिणीषु समयाः तावत्प्रमाणाः प्रदेशा वर्त्तन्ते, ततः सर्वत्रापि कालादसङ्ख्येयगुणं क्षेत्रं, क्षेत्रादपि चानन्तगुणं द्रव्यं द्रव्यादपि चावधिविषयाः पर्यायाः सङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येयगुणा वा, उक्तं च—"खेत्तपएसेहिंतो दव्वमणंतगुणितं पएसेहिं । दव्वेहिंतो भावो संखगुणोऽसंखगुणिओ वा ॥ १ ॥" तदेतद्वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ।

हीयमानोऽवधिः सू. १३

से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ?, हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसाणट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओहीपरिहायइ सेत्तं हीयमाणयं ओहिनाणं ॥ ४ ॥ (सू. १३)

५

अथ किं तद्धीयमानकमवधिज्ञानं ?, सूरिराह—हीयमानकमवधिज्ञानं कथञ्चिदवाप्तं सत् अप्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्याविरतसम्यग्दृष्टेर्वर्त्तमानचारित्रस्य-देशविरतादेः 'संक्लिश्यमानस्य' उत्तरोत्तरं संक्लेशमासादयतः, इदं च विशेषणमविरतसम्यग्दृष्टेरवसेयं, तथा संक्लिश्यमानचारित्रस्य देशविरतादेः सर्वतः समन्तादवधिः 'परिहीयते' पूर्वावस्थातो हानिमुपगच्छति, तदेतद्धीयमानकमवधिज्ञानम् ।

१०

११

१ क्षेत्रप्रदेशेभ्यो द्रव्यमनन्तगुणितं प्रदेशैः । द्रव्येभ्यो भावः संख्यगुणोऽसंख्यगुणो वा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥ ९६ ॥

से किं तं पडिवाइओहिनाणं ?, पडिवाइओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जयभागं वा संखिज्जभागं वा वालग्गं वा वालग्गपुहत्तं वा लिक्खं वा लिक्खपुहत्तं वा जूअं वा जूयपुहुत्तं वा जवं वा जवपुहुत्तं वा अंगुलं वा अंगुलपुहत्तं वा पायं वा पायपुहुत्तं वा विहत्थिं वा विहत्थिपुहुत्तं वा रयणिं वा रयणिपुहुत्तं वा कुच्छिं वा कुच्छिपुहुत्तं वा धणुं वा धणुपुहुत्तं वा गाउअं वा गाउपुहुत्तं वा जोअणं वा जोअणपुहुत्तं वा जोअणसयं वा जोयणसयपुहुत्तं वा जोयणसहस्सं वा जोअणसहस्सपुहुत्तं वा जोअणलक्खं वा जोअणलक्खपुहुत्तं वा उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ता णं पडिवइज्जा, सेत्तं पडिवाइओहिनाणं (सु. १४)

अथ किं तत्प्रतिपातिअवधिज्ञानं ?, सूरिराह—प्रतिपात्यवधिज्ञानं यदवधिज्ञानं जघन्यतः सर्वस्तोकतया अङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागमात्रं सङ्ख्येयभागमात्रं वा वालाग्रं वा वालाग्रपृथक्त्वं वा लिक्षां वा-वालाग्राष्टकप्रमाणां लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा लिक्षाष्टकमानां यूकापृथक्त्वं वा, यवं वा–यूकाष्टकमानं यवपृथक्त्वं वा अङ्गुलं वा अङ्गुलपृथक्त्वं वा, एवं यावदुत्कर्षेण सर्वप्रचुरतया लोकं 'दृष्ट्वा' उपलभ्य 'प्रतिपतेत्' प्रदीप इव नाशमुपयायात्, तस्य तथाविधक्षयोपशमजन्यत्वात्, तदेतत् प्रतिपात्यवधिज्ञानं, शेषं सुगमं, नवरं 'कुक्षिः' द्विहस्तप्रमाणा 'धनुः' चतुर्हस्तप्रमाणं, पृथक्त्वं सर्वत्रापि द्विप्रभृतिरा नवभ्यः इति सैद्धान्तिक्या परिभाषया द्रष्टव्यम् ॥

युतिपात्यवधिः, सू. १४ १५ २० ॥ ९६ ॥ २३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [७६]

से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं?, अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासप-
एसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं, से तं अपडिवाइ ओहिनाणं ॥ (सू० १५)

अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानं?, सूरिराह—अप्रतिपात्यवधिज्ञानं येनावधिज्ञानेन अलोकस्य सम्बन्धिनमेकम-
प्याकाशप्रदेशम्, आस्तां बहूनाकाशप्रदेशानित्यपिशब्दार्थः, पश्येत्, एतच्च सामर्थ्यमात्रमुपवर्ण्यते, न त्वलोके किञ्चि-
दप्यवधिज्ञानस्य द्रष्टव्यमस्ति, एतच्च प्रागेवोक्तं, तत आरभ्याप्रतिपाति आ केवलप्राप्तेरवधिज्ञानम्, अयमत्र भावार्थः—
एतावति क्षयोपशमे सम्प्राप्ते सत्यात्मा विनिहतप्रधानप्रतिपक्षयोधसंघातनरपतिरिव न भूयः कर्म्मशत्रुणा परिभूयते,
किन्तु समासादितैतावदालोकजयोऽप्रतिनिवृत्तः शेषमपि कर्म्मशत्रुसङ्घातं विनिर्जित्य प्राप्नोति केवलराज्यश्रियमिति।
तदेतदप्रतिपाति अवधिज्ञानं। तदेवमुक्ताः षडप्यवधिज्ञानस्य भेदाः, सम्प्रति द्रव्याद्यपेक्षयाऽवधिज्ञानस्य भेदान्
चिन्तयति,—

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा-दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ णं
ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं
जाणइ पासइ, खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ उ-

अप्रतिपा-त्यवधिः सू. १५

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानस्य द्रव्यादि भेदे चतुर्विधत्वं

क्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ, कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलिआए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ, भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ उक्कोसेणवि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ॥ (सू. १६)

तदवधिज्ञानं 'समासतः' संक्षेपेण 'चतुर्विधं' चतुष्प्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चेति, तत्र द्रव्यतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे अवधिज्ञानी जघन्येनापि–भावप्रधानोऽयं निर्देशः सर्वजघन्यतयाऽपि अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति, तानि च तैजसभाषाप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्त्तीनि द्रव्याणि, उत्कर्षतः पुनः सर्वाणि रूपिद्रव्याणि बादरसूक्ष्माणि जानाति पश्यति, तत्र ज्ञानं विशेषग्रहणात्मकं दर्शनं सामान्यपरिच्छेदात्मकं, आह च चूर्णिकृत्—जाणइत्ति णाणं, तत्थ जं विसेसग्गहणं तन्नाणं, सागारमित्यर्थः, पासइत्ति दंसणं, जं सामन्नग्गहणं तं दंसणमणागारमित्यर्थः, आह– आदौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति च क्रमः, तत एनं क्रमं परित्यज्य किमर्थं प्रथमं जानातीत्युक्तम्?, उच्यते, इह सर्वा लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते, अवधिरपि लब्धिरुपवर्ण्यते, ततः

१ जानातीति ज्ञानं, तत्र यद्विशेषग्रहणं तज्ज्ञानं साकारमित्यर्थः, पश्यतीति दर्शनं यत् सामान्यग्रहणं तद्दर्शनं अनाकारमित्यर्थः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [७७]

स प्रथममुत्पद्यमानो ज्ञानरूप एवोत्पद्यते न दर्शनरूपः, ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेर्ज्ञानोपयोगानन्तरं दर्शनरूपोऽपीति प्रथमतो ज्ञानमुक्तं पश्चाद्दर्शनम्, अथवा इहाध्ययने सम्यग्ज्ञानं प्ररूपयितुमुपक्रान्तं, यतोऽनुयोगप्रारम्भेऽवश्यं मङ्गलाय ज्ञानपञ्चकरूपो भावनन्दिर्वक्तव्य इति तत्प्ररूपणार्थमिदमध्ययनमारब्धं, ततः सम्यग्ज्ञानमिह प्रधानं न मिथ्याज्ञानं, तस्य मांगल्यहेतुत्वायोगाद्, दर्शनं त्ववधिज्ञानविभङ्गसाधारणमिति तदप्रधानं, प्रधानानुयायी च लौकिको लोकोत्तरश्च मार्गः, ततः प्रधानत्वात् प्रथमं ज्ञानमुक्तं पश्चाद्दर्शनमिति। तथा क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयानि अलोके लोकप्रमाणानि चतुर्दशरज्ज्वात्मकानि खण्डानि जानाति पश्यति। कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनावलिकाया असङ्ख्येयभागमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिणीः–असङ्ख्येयावसर्पिण्युत्सर्पिणीप्रमाणमतीतमनागतं च कालं जानाति पश्यति। भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनानन्तान् भावान्–पर्यायान् आधारद्रव्यानन्तत्वात्, नतु प्रति द्रव्यं, प्रतिद्रव्यं सङ्ख्येयानामसङ्ख्येयानां वा पर्यायाणां दर्शनात्, उक्तं च—'एगं दव्वं पेच्छं खंधमणुं वा स पज्जवे तस्स। उक्कोसमसंखेज्जे संखिज्जे पेच्छए कोई ॥ १ ॥' उत्कर्षतोऽप्यनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, केवलं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमनन्तगुणम्, आह च चूर्णिकृत्–'जहन्नपयाओ उक्कोसपयमणंतगुणमिति' 'सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ'त्ति तानपि चोत्कृष्टपदवर्त्तिनो भावान् 'सर्वभावानां' सर्वपर्यायाणाम-

१ एकं द्रव्यं पश्यन् स्कन्धमणुं वा स पर्येति तस्य। उत्कृष्टतोऽसंख्येयान् संख्येयान् पश्यति कोऽपि ॥ १ ॥ २ जघन्यपदादुत्कृष्टपदमनन्तगुणं

अवधेर्द्रव्यादिविषयः सू. १६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥५६॥

दीप अनुक्रम [७८]

नन्तभागकल्पान् जानाति पश्यति । तदेवमवधिज्ञानं द्रव्यादिभेदतोऽप्यभिधाय साम्प्रतं सङ्ग्रहगाथामाह—

ओही भवपच्चइओ गुणपच्चइओ अ वण्णिओ एसो[दुविहो]।तस्स य बहू विगप्पा दव्वे खित्ते अ काले अ५६

एषः अनन्तरोऽवधिर्भवप्रत्ययतो गुणप्रत्ययतश्च 'वर्णितो' व्याख्यातः, पाठान्तरं 'वण्णिओ दुविहो'त्ति वर्णितो 'द्विविधो' द्विप्रकारः, तस्य च भवगुणप्रत्ययतो द्विविधस्यापि बहवो विकल्पा–भेदाः, तद्यथा–द्रव्ये द्रव्यविषयाः कस्यापि कियद्द्रव्यविषय इति द्रव्यभेदात् भेदः, तथा क्षेत्रे–क्षेत्रविषया अङ्गुलासङ्ख्येयभागादिक्षेत्रभेदात्, काले–काल–विषया आवलिकाऽसङ्ख्येयभागादिकालभेदात्, चशब्दाद्भावविषयाश्च कस्यापि कियन्तः पर्याया विषय इति भावभे-दाद्भेदः । तत्र जघन्यपदे प्रतिद्रव्यं चत्वारो वर्णगन्धरसस्पर्शलक्षणाः पर्याया 'दो पज्जवे दुगुणिए सव्वजहन्नेण पेच्छ-ए ते उ । वन्नाईया चउरो' इति वचनप्रामाण्यात्, मध्यमतोऽनेकसङ्ख्यभेदभिन्ना उत्कर्षतः प्रतिद्रव्यमसङ्ख्येयान् न तु कदाचनाप्यनन्तान्, यत आह भाष्यकृत्–'नाणंते पेच्छइ कयाइ' । तदेवमवधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये बाह्यावधयो ये चाबाह्यावधयः तानुपदर्शयति—

नेरइय देवतित्थंकरा य ओहिस्सऽबाहिरा हुंति । पासंति सव्वओ खलु सेसा देसेण पासंति

॥ ५७ ॥ से तं ओहिनाणपच्चक्खं

१ द्वौ पर्यवौ द्विगुणितौ सर्वजघन्यतया पश्यति तांस्तु वर्णादिकांश्चतुरः । २ नानन्तान् पश्यति कदाचित् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥५७॥

दीप अनुक्रम [७९-८०]

नैरयिकाश्च देवाश्च तीर्थंकराश्च नैरयिकदेवतीर्थङ्कराः, तीर्थंकरा इत्यत्र 'तीर्थाच्चैके' इति वचनात् स्वप्रत्यये तीर्थशब्दान्मन्, चशब्दोऽवधारणे, तस्य च व्यवहितः प्रयोगस्तं च दर्शयिष्यामः, नैरयिकदेवतीर्थङ्करा 'अवधेः' अवधिज्ञानस्यावाह्या एव भवन्ति, बाह्या न कदाचनापि भवन्तीति भावः, सर्वतोऽवभासकावध्युपलब्धक्षेत्रमध्यवर्त्तिनः सदैव भवन्तीत्यर्थः। तथा पश्यन्ति 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, खलुशब्दोऽवधारणार्थः, सर्वास्वेव दिग्विदिक्षिति, आह–अवधेरबाह्या भवन्तीत्यस्मादेव सर्वत इत्यस्यार्थस्य लब्धत्वात् सर्वतःशब्दग्रहणमतिरिच्यते, उच्यते, अभ्यन्तरत्वाभिधानेऽपि सर्वतोदर्शनाप्रतीतेः, न खलु सर्वाभ्यन्तरावधिः सर्वतः पश्यति, कस्यचिद्दिगन्तरालादर्शनात्, विचित्रत्वादवधेः, ततः सर्वतोदर्शनख्यापनार्थं 'पासंति सव्वओ खलु' इत्युक्तम्, आह च भाष्यकृत्–"अब्भितरत्ति भणिए भन्नइ पासंति सव्वओ कीस?। ओदइ जमसंततदिसो अंतोवि ठिओ न सव्वत्तो ॥ १ ॥" 'शेषाः' तिर्यङ्नरा देशेन–एकदेशेन पश्यन्ति, 'सर्वं वाक्यं सावधारणमिष्टिंतश्चावधारणविधिः' तत एवमवधारणीयं–शेषा एव देशतः पश्यन्ति, न तु शेषा देशत एवेति, अथवा अन्यथा व्याख्यायते–तदेवमवधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये नियतावधयो ये चानियतावधयस्तान् प्रतिपादयति—नैरयिकदेवतीर्थंकरा एवावधेरबाह्या भवन्ति, किमुक्तं भवति?–नियतावधयो भवन्ति, नियमेनैषामवधिर्भवतीत्यर्थः, एवं चाभिहिते सति संशयः–किं ते देशेन पश्यन्ति उत सर्वतः?,

१ भण्यते अभ्यन्तरा इति भणिते पश्यन्ति सर्वतः (इति) कुतः। उच्यते यत् अन्तरपि स्थितः असंततदिक्को न सर्वतः पश्यति ॥ १ ॥

बाह्याबाह्यावधयः

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥५७॥

दीप अनुक्रम [७९-८०]

ततः संशयापनोदार्थमाह—'पासंती'त्यादि, 'सर्वतः खलु' सर्वत एव तेनावधिना ते नैरयिकादयः पश्यन्ति न तु देशतः । अत्र पर आह— ननु 'पश्यन्ति सर्वतः खल्वि'त्येतावदेवास्ताम्, अवधेरबाह्या भवन्तीत्येतत् न युक्तं, यतो नियतावधित्वप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते, तच्च नियतावधित्वं देवनारकाणां 'दोण्हं भवपच्चइयं, तंजहा–देवाणं नेरइयाणं चे'ति वचनसामर्थ्यात् सिद्धं, तीर्थकृतां तु पारभविकावधिसमन्वितागमस्यातिप्रसिद्धत्वादिति, अत्रोच्यते, इह यद्यपि 'दोण्हं भवपच्चइय'मित्यादिवचनतो नैरयिकादीनां नियतावधित्वं लब्धं, तथापि सर्वकालं तेषां नियतोऽवधिरिति न लभ्यते, ततः सर्वकालं नियतावधित्वख्यापनार्थमवधेरबाह्या भवन्तीत्युक्तम् । आह–यद्येवं तीर्थकृतामवधेः सर्वकालावस्थायित्वं विरुध्यते, न, छद्मस्थकालस्यैव तेषां विवक्षितत्वात्, शेषं प्राग्वत्। तदेतदवधिज्ञानम् ॥

से किं तं मणपज्जवनाणं ?, मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ?, गोअमा ! मणुस्साणं नो अमणुस्साणं, जइ मणुस्साणं किं संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा ! नो संमुच्छिममणुस्साणं उप्पज्जइ गब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं अकम्मभूमियगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं अंतरदीवगगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा ! कम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ मन्:पर्यवज्ञान वर्णयते

अकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो अंतरदीवगगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ कम्मभूमि-
अगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं संखिज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं असंखिज्ज-
वासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा ! संखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भव-
क्कंतिअमणुस्साणं नो असंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं,जइ संखेज्जवासाउ-
यकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअम-
णुस्साणं अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा ! पज्जत्तगसं-
खेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअग-
ब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ पज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं
सम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं मिच्छदिट्ठिपज्जत्तगसंखि-
ज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं सम्ममिच्छदिट्ठिपज्जत्तगसंखिवासाउअकम्म-
भूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा ! सम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमिअग-

मनःपर्यव-ज्ञानं सू. १७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो मिच्छदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो सम्मामिच्छदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ समदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं संजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं असंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं संजयासंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउअकम्मभूमियगब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! संजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउयकम्मभूमियगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो असंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो संजयासंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ संजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखिज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं पमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं अपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं ?, गोअमा !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

अपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो पमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं, जइ अपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं किं इड्ढीपत्तअपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं अणिड्ढीपत्तअपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखिज्जवासाउयकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं?, गोअमा! इड्ढीपत्तअपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं नो अणिड्ढीपत्तअपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउअकम्मभूमिअगब्भवक्कंतिअमणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥ (सू० १७)

मनःपर्यवज्ञानं सू. १७

अथ किं तत् मनःपर्यायज्ञानं?, एवं शिष्येण प्रश्ने कृते सति ये गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूपा मनःपर्यायज्ञानोत्पत्तिविषयस्वामिमार्गणाद्वारेण पूर्वसूत्रालापकान् वितथप्ररूपणाशङ्काव्युदासाय प्रवचनबहुमानिविनेयजनश्रद्धाभिवृद्धये च तदवस्थानेव देववाचकः पठति 'जावइया तिसमयाहारगस्से'त्यादिनिर्युक्तिगाथासूत्रमिव, मनःपर्यायज्ञानं प्राग्निरूपितशब्दार्थं 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे 'भंते'त्ति गुर्वामन्त्रणे 'किमिति' परप्रश्ने मनुष्याणामुत्पद्यते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१०१॥

इति प्रकटार्थं अमनुष्याणामुत्पद्यते इति, 'अमनुष्याः' देवादयः तेषामुत्पद्यते?, एवं भगवता गौतमेन प्रश्ने कृते सति परमार्हन्त्यमहिम्ना विराजमानत्रिलोकीपतिर्भगवान् वर्द्धमानस्वामी निर्वचनमभिधत्ते—हे गौतम! सूत्रे दीर्घत्वं 'सेर्लोपः सम्बोधने ह्रस्वो वे'ति प्राकृतलक्षणसूत्रे वाशब्दस्य लक्ष्यानुसारेण दीर्घत्वसूचनादवसेयम्, यथा भो वयस्सा इत्यादौ, मनुष्याणामुत्पद्यते नामनुष्याणां, तेषां विशिष्टचारित्रप्रतिपत्त्यसम्भवात्, अत्राह–ननु गौतमोऽपि चतुर्दशपूर्वधरः सर्वाक्षरसन्निपाती सम्भिन्नश्रोताः सकलप्रज्ञापनीयभावपरिज्ञानकुशलः प्रवचनस्य प्रणेता सर्वज्ञदेशीय एव, उक्तं च—"संखातीतेऽवि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा। न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो॥१॥" ततः किमर्थं पृच्छति?, उच्यते, शिष्यसम्प्रत्ययार्थं, तथाहि–तमर्थं स्वशिष्येभ्यः प्ररूप्य तेषां सम्प्रत्ययार्थं तत्समक्षं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छति, अथवा इत्थमेव सूत्ररचनाकल्पः, ततो न कश्चिद्दोष इति। पुनरपि गौतम आह—यदि मनुष्याणामुत्पद्यते तर्हि किं सम्मूर्च्छिममनुष्याणामुत्पद्यते किंवा गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते?, तत्र 'मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः' संमूर्च्छनं संमूर्च्छा भावे घञ् प्रत्ययः तेन निर्वृत्ताः सम्मूर्च्छिमाः, ते च वान्तादिसमुद्भवाः, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायां–"कहिं णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोअमा! अंतोमणुस्सखेत्ते पणयालीसाए

१ संख्यातीतानपि भवान् कथयति यं वा परः पृच्छेत्। न चानतिशायी विजानीते एष छद्मस्थः॥ १॥ २ क्व भदन्त! संमूर्च्छममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, गौतम! अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे पञ्चचत्वारिंशति

मनःपर्यवज्ञानं सू. १७ १५ २० २३ ॥१०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु ग-
ब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सुक्केसु वा सोणिएसु
वा सोक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा विगयकलेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा गामनिद्धमणेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव
असुइठाणेसु एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए असण्णी मिच्छा-
दिट्ठी अण्णाणी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति" इति । तथा गर्भे व्युत्क्रान्तिः–उ-
त्पत्तिर्येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, अथवा गर्भाद् व्युत्क्रान्तिः–व्युत्क्रमणं निष्क्रमणं येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, उभ-
यत्रापि गर्भजा इत्यर्थः, भगवानाह—नो सम्मूर्च्छिममनुष्याणामुत्पद्यते, तेषां विशिष्टचारित्रप्रतिपत्त्यसम्भवात्,
किन्तु गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, एवं सर्वेषामपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणां भावार्थो भावनीयः, नवरं कृषिवाणिज्यतपःसं-
यमानुष्ठानादिकर्मप्रधाना भूमयः कर्मभूमयो–भरतपञ्चकैरवतपञ्चकमहाविदेहपञ्चकलक्षणाः पञ्चदश तासु जाताः कर्म-
भूमिजाः, कृष्यादिकर्म्मरहिताः कल्पपादपफलोपभोगप्रधाना भूमयो हैमवतपञ्चकहरिवर्षपञ्चकदेवकुरुपञ्चकोत्तरकुरुप-

१ योजनशतसहस्रेषु अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु पञ्चदशसु कर्मभूमिषु त्रिंशत्यकर्मभूमिषु षट्पञ्चाशत्यन्तर्द्वीपेषु गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामेवोच्चारेषु वा प्रश्रवणेषु वा श्लेष्मसु वा सिङ्घाणेषु वा वान्तेषु वा पित्तेषु वा शुक्रेषु वा शोणितेषु वा शुक्रपुद्गलपरिशाटेषु वा विगतकलेवरेषु स्त्रीपुरुषसंयोगेषु वा ग्रामनिर्धमनेषु वा नगरनिर्धमनेषु वा सर्वेष्वेवाशुचिस्थानेषु अत्र संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति, अङ्गुलस्यासंख्यभागमात्रयाऽवगाहनया असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयोऽज्ञानिनः सर्वाभिः पर्याप्तिभिरपर्याप्तकाः अन्तर्मुहूर्त्तायुष एव कालं कुर्वन्ति ।

मनःपर्यव-ज्ञान सू. १७

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋकरम्यकपञ्चकैरण्यवतपञ्चकरूपास्त्रिंशदकर्मभूमयः तासु जाता अकर्मभूमिजाः, तथा अन्तरे–लवणसमुद्रस्य मध्ये द्वीपा अन्तरद्वीपाः–एकोरुकादयः षट्पञ्चाशत् तेषु जाताः अन्तरद्वीपजाः । अथ लवणसमुद्रस्य मध्ये षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपा वर्तन्ते किंप्रमाणा वा ते किंस्वरूपा वा तत्र मनुष्या इति?, उच्यते, इह जम्बूद्वीपे भरतस्य हैमवतस्य च क्षेत्रस्य सीमाकारी भूमिनिमग्नपञ्चविंशतियोजनो योजनशतोच्छ्रायप्रमाणो भरतक्षेत्रापेक्षया द्विगुणविष्कम्भो हेममयश्चीनपट्टवर्णो नानावर्णविशिष्टद्युतिमणिनिकरपरिमण्डितपार्श्वः सर्वत्र तुल्यविस्तारो गगनमण्डलोल्लिखितरत्नमयैकादशकूटोपशोभितः तपनीयमयतलविविधमणिकनकमण्डिततटदशयोजनावगाढपूर्वपश्चिमयोजनसहस्रायामदक्षिणोत्तरयोजनपञ्चशतविस्तृतपद्महृदोपशोभितशिरोमध्यभागः कल्पपादपश्रेणिरमणीयः पूर्वापरपर्यन्ताभ्यां लवणार्णवजलसंस्पर्शी हिमवन्नामा पर्वतः, तस्य लवणार्णवजलसंस्पर्शादारभ्य पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि प्रत्येकं द्वे द्वे गजदन्ताकारे दंष्ट्रे विनिर्गते, तत्र ऐशान्यां दिशि या विनिर्गता दंष्ट्रा तस्यां हिमवतः पर्यन्तादारभ्य त्रीणि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य अत्रान्तरे योजनशतत्रयायामविष्कम्भः किञ्चिन्यूनैकोनपञ्चाशदधिकनवयोजनशतपरिरय एकोरुकनामा द्वीपो वर्त्तते, अयं च पञ्चधनुःशतप्रमाणविष्कम्भया गव्यूतद्वयोच्छ्रितया पद्मवरवेदिकया वनखण्डेन च सर्वतः परिमण्डितः, एवं तस्यैव हिमवतः पर्वतस्य पर्यन्तादारभ्य दक्षिणपूर्वस्यां दिशि त्रीणि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य द्वितीयदंष्ट्रायामुपरि एकोरुकद्वीपप्रमाण आभासिकनामा द्वीपो वर्त्तते, तथा तस्यैव हिमवतः पश्चिमायां दिशि पर्यन्तादारभ्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

दक्षिणपश्चिमायां, नैर्ऋतकोणानुसारेण इत्यर्थः, त्रीणि योजनशतानि लवणसमुद्रे दंष्ट्रामतिक्रम्यात्रान्तरे यथोक्तप्रमाणो वैषाणिकनामा द्वीपो वर्त्तते, तथा तस्यैव हिमवतः पश्चिमायामेव दिशि पर्यन्तादारभ्य पश्चिमोत्तरस्यां दिशि, वायव्यकोणानुसारेण इत्यर्थः, त्रीणि शतानि योजनानां लवणसमुद्रमध्ये चतुर्थींदंष्ट्रामतिक्रम्यान्तरे पूर्वोक्तप्रमाणो नङ्गोलिकनामा द्वीपो वर्त्तते, एवमेते चत्वारो द्वीपा हिमवतः चतसृष्वपि विदिक्षु तुल्यप्रमाणा अवतिष्ठन्ते, उक्तं च– "चुल्लहिमवंतपुव्वावरेण विदिसासु सागरं तिसए । गंतूणंतरदीवा तिन्नि सए होंति विच्छिन्ना ॥ १ ॥ अउणापन्ननवसए किंचूणे परिहि एसिमे नामा । एगोरुअ आभासिय वेसाणी चेव नंगूली ॥ २ ॥" तत एतेषामेकोरुकादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं २ चत्वारि २ योजनशतान्यतिक्रम्य चतुर्योजनशतायामविष्कम्भाः किञ्चिन्यूनपञ्चषष्ट्यधिकद्वादशयोजनशतपरिक्षेपाः यथोक्तपद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसराः हयकर्णगजकर्णगोकर्णशष्कुलीकर्णनामानश्चत्वारो द्वीपाः, तद्यथा—एकोरुकस्य परतो हयकर्णः, आभासिकस्य परतो गजकर्णः, वैषाणिकस्य परतो गोकर्णो, नङ्गोलीकस्य परतो शष्कुलीकर्ण इति, ततः एतेषामपि हयकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतः पुनरपि यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं पञ्च योजनशतानि व्यतिक्रम्य

अन्तरद्वीपाः

१ क्षुल्लकहिमवतः पूर्वापरयोर्विदिक्षु सागरं त्रिशतीं । गत्वान्तरद्वीपाः त्रीणि शतानि भवन्ति विस्तीर्णाः ॥ १ ॥ एकोनपञ्चाशदधिकानि नव शतानि किंचिदूनानि परिधिः एषामिमानि नामानि । एकोरुक आभासिको वैषाणिकश्चैव नङ्गोलिकः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१०३॥

पञ्चयोजनशतायामविष्कम्भा एकाशीत्यधिकपञ्चदशयोजनशतपरिक्षेपाः पूर्वोक्तप्रमाणपद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितवाह्यप्रदेशा आदर्शमुखमेढ्रमुखायोमुखगोमुखनामानश्चत्वारो द्वीपाः, तद्यथा—हयकर्णस्य परतः आदर्शमुखो, गजकर्णस्य परतो मेढ्रमुखो, गोकर्णस्य परतो अयोमुखः, शष्कुलीकर्णस्य परतो गोमुख इति। एवमग्रेऽपि भावना कार्या। ततः एतेषामप्यादर्शमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो भूयोऽपि यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं षड् योजनशतान्यतिक्रम्य षड्२योजनशतायामविष्कम्भाः सप्तनवत्यधिकाष्टादशयोजनशतपरिक्षेपा यथोक्तप्रमाणपद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसरा अश्वमुखहस्तिमुखसिंहमुखव्याघ्रमुखनामानश्चत्वारो द्वीपाः। तत एतेषामप्यश्वमुखादीनां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं सप्त २ योजनशतानि अतिक्रम्य सप्त२योजनशतायामविष्कम्भास्त्रयोदशाधिकद्वात्रिंशतियोजनशतपरिधयः पूर्वोक्तप्रमाणपद्मवरवेदिकावनखण्डसमवगूढा अश्वकर्णहरिकर्णहस्तिकर्णकर्णप्रावरणनामानश्चत्वारो द्वीपाः। तत एतेषामप्यश्वकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकमष्टावष्टौ योजनशतान्यतिक्रम्य अष्ट२योजनशतायामविष्कम्भा एकोनत्रिंशदधिकपञ्चविंशतियोजनशतपरिक्षेपा यथोक्तप्रमाणपद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसरा उल्कामुखमेघमुखविद्युन्मुखविद्युद्दन्ताभिधानाश्चत्वारो द्वीपाः। ततोऽमीषामपि उल्कामुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं नव नव योजनशतान्यतिक्रम्य नवनवयोजनशतायामविष्कम्भाः पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टाविंशतियोजनशतपरिक्षेपा यथोक्तप्र-

अन्तर-द्वीपाः १५ २० ॥१०३॥ २४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणपद्मवरवेदिकावनखण्डसमवगूढाः समदन्तलष्टदन्तगूढदन्तशुद्धदन्तनामानश्चत्वारो द्वीपाः । एवमेते हिमवति पर्वते चतसृषु विदिक्षु व्यवस्थिताः सर्वसङ्ख्यया अष्टाविंशतिसङ्ख्या द्वीपाः । एवं हिमवत्तुल्यवर्णप्रमाणे पद्महृदप्रमाणाया-मविष्कम्भावगाहपुण्डरीकह्रदोपशोभिते शिखरिण्यपि पर्वते लवणार्णवजलसंस्पर्शादारभ्य चतसृषु विदिक्षु व्यवस्थिताः एकोरुकादिनामानोऽक्षूणापान्तरालायामविष्कम्भा अष्टाविंशतिसङ्ख्या द्वीपा वक्तव्याः । ततः सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाश-दन्तरद्वीपाः । एतेषु च वर्त्तमाना मनुष्या अपि एवंनामानो भवन्ति, भवति च निवासयोगतः तथाव्यपदेशो यथा पञ्चालजनपदनिवासिनः पुरुषाः पञ्चाला इति,तेऽपि चान्तरद्वीपवासिनो मनुष्या वज्रर्षभनाराचसंहननिनः समचतुरस्रसं-स्थानसंस्थिताः समग्रशुभलक्षणतिलकमषपरिकलिता देवलोकानुकारिरूपलावण्यालङ्कारशोभितविग्रहा अष्टधनुःशतप्र-माणशरीरोच्छ्रायाः, स्त्रीणां त्विदमेव किञ्चिन्यूनं द्रष्टव्यं, तथा पल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमाणायुषः स्त्रीपुरुषयुगलव्यव-स्थिताः दशविधकल्पपादपसम्पाद्योपभोगसम्पदः प्रकृत्यैव शुभचेतसो विनीताः प्रतनुक्रोधमानमायालोभाः सन्तो-षिणो निरौत्सुक्याः कामचारिणोऽनुलोमवायुवेगाः सत्यपि मनोहारिणि मणिकनकमौक्तिकादिके ममत्वकारिणि ममत्वाभिनिवेशरहिताः सर्वथापगतवैरानुबन्धाः परस्परप्रेष्यादिभावविनिर्मुक्ता अत एवाहमिन्द्रा हस्त्यश्वकरभगोम-हिष्यादीनां सद्भावेऽपि तत्परिभोगपराङ्मुखाः पादविहारचारिणो रोगवेदनादिविकला वर्त्तन्ते, चतुर्थाहारमेते गृह्णन्ति चतुःषष्टिञ्च पृष्टकरण्डकास्तेषां, षण्मासावशेषायुषश्चामी स्त्रीपुरुषयुगलं प्रसुवते एकोनाशीतिदिनानि च तत्

अन्तर-द्वीपाः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

परिपालयन्ति स्तोकस्नेहकषायतया च ते मृत्वा देवलोकमुपसर्पन्ति, उक्तं च—"अंतरदीवेसु नरा धणुसयअट्ठूसिया सया ऊमुइया। पालंति मिहुणधम्मं पल्लस्स असंखभागाउ ॥ १ ॥ चउसट्ठी पिट्ठिकरंडयाण मणुआण तेसिमाहारो। भत्तस्स चउत्थस्स य अणुसीति दिणाणि पालणया ॥२॥" इत्यादि, तिर्यञ्चोऽपि च तत्र व्याघ्रसिंहसर्प्पादयो रौद्रभावरहिततया न परस्परं हिंस्याहिंसकभावे वर्त्तन्ते, तत एव तेऽपि देवलोकगामिनो भवन्ति, तेषु च द्वीपेषु शाल्यादीनि धान्यानि विस्रसात एव समुत्पद्यन्ते, परं न ते मनुष्यादीनां परिभोगाय जायन्ते, तेषु च द्वीपेषु दंशमशकयूकामत्कुणादयः शरीरोपद्रवकारिणोऽनिष्टसूचकाश्च चन्द्रसूर्योपरागादयो न भवन्ति, भूमिरपि तत्र रेणुपङ्ककण्टकादिरहिता सकलदोषपरित्यक्ता सर्वत्र समतला रमणीया च वर्त्तत इति। तथा 'संखेज्जवासाउय'त्ति सङ्ख्येयवर्षायुषः—पूर्वकोट्यादिजीविनः असङ्ख्येयवर्षायुषः—पल्योपमादिजीविनः, तथा 'पज्जत्तग'त्ति पर्याप्तिः—आहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मनः शक्तिविशेषः, स च पुद्गलोपचयात्, किमुक्तं भवति ?—उत्पत्तिदेशमागतेन ये गृहीता आहारादिपुद्गलास्तेषां तथा अन्येषां च प्रतिसमयं गृह्यमाणानां तत्सम्पर्कतः तद्रूपतया जातानामुपष्टम्भेन यः शक्तिविशेषो जीवस्याहारादिपुद्गलानां खलरसादिरूपतया परिणमनहेतुर्यथोदरान्तर्गतानां पुद्गलविशेषाणामवष्टम्भेनाहारपुद्गलखलरस-

१ अन्तरद्वीपेषु नरा धनुःशताष्टकोच्छ्रिताः सदा मुदिताः। पालयन्ति मिथुनधर्मं पल्यस्यासंख्यभागायुषः ॥ १ ॥ चतुष्षष्टिः पृष्ठकरण्डकानां मनुजानां तेषामाहारः। चतुर्थभक्तादेकोनाशीतिदिनांश्च पालनम् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

रूपताऽऽपादनहेतुः शक्तिविशेषः सा पर्याप्तिः, सा च षोढा, तद्यथा–आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः प्राणापानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिश्चेति, तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः १, यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः २, यया धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः ३, यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणादलिकमादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, यया तु भाषाप्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः ५, यया पुनर्मनोयोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः ६, एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां संज्ञिवर्जानां द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुःपञ्चषट्संख्या भवन्ति, उत्पत्तिप्रथमसमय एव चैता यथायथं सर्वा अपि युगपन्निष्पादयितुमारभ्यन्ते क्रमेण च निष्ठामुपयान्ति, तद्यथा–प्रथममाहारपर्याप्तिः ततः शरीरपर्याप्तिः तत इन्द्रियपर्याप्तिरित्यादि, आहारपर्याप्तिश्च प्रथमसमय एव निष्पद्यते, शेषास्तु प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तेन कालेन, अथाहारपर्याप्तिः प्रथमसमय एव निष्पद्यते इति कथमवसीयते ?, उच्यते, इह भगवता आर्यश्यामेन प्रज्ञापनायामाहारपदे द्वितीयोद्देशके सूत्रमिदमपाठि–'आहारपज्जत्तीए अपज्जत्तए णं भंते ! किं आहारए अणाहारए वा ?, गोयमा ! नो आहारए अणाहारए"त्ति, तत आहार-

१ आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तो भदन्त ! किमाहारकोऽनाहारको वा ? गौतम ! नो आहारकः अनाहारकः ।,

पर्याप्त्यधिकारः ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [८१]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१०५॥

पर्याप्त्या अपर्याप्तो विग्रहगतावेवोपपद्यते, नोपपातक्षेत्रमागतोऽपि, उपपातक्षेत्रमागतस्य प्रथमसमय एवाहारकत्वात्, तत एकसामायिकी आहारपर्याप्तिनिर्वृत्तिः, यदि पुनरुपपातक्षेत्रमागतोऽपि आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तः स्यात् तत एवं सति व्याकरणसूत्रमित्थं पठेत्—'सिय आहारए सिय अणाहारए' यथा शरीरादिपर्याप्तिषु, सर्वासामपि च पर्याप्तीनां परिसमाप्तिकालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः। पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते पर्याप्ता 'अश्नादिभ्य' इति मत्वर्थीयोऽप्रत्ययः। ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलाः ते अपर्याप्ताः, ते च द्विधा–लब्ध्या करणैश्च, तत्र येऽपर्याप्तका एव सन्तो म्रियन्ते न पुनः स्वयोग्यपर्याप्तीः सर्वा अपि समर्थयन्ते ते लब्ध्यपर्याप्तकाः, तेऽपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते, नार्वाक्, यस्मादागामिभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते सर्व एव देहिनः, तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तानामेव बध्यत इति, ये पुनः करणानि–शरीरेन्द्रियादीनि न तावन्निर्वर्त्तयन्ति अथ चावश्यं निर्वर्त्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्तकाः, इहोभयेषामप्यपर्याप्तानां प्रतिषेधः, उभयेषामपि विशिष्टचारित्रप्रतिपत्त्यसम्भवात्, तथा 'सम्मद्दिट्ठी'त्ति सम्यक्–अविपरीता दृष्टिः–जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्येषां ते सम्यग्दृष्टयः, मिथ्या–विपरीता दृष्टिर्येषां ते मिथ्यादृष्टयः, सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्येषां ते सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, येषामेकस्मिन्नपि च वस्तुनि तत्पर्याये वा मतिदौर्बल्यादिना एकान्तेन सम्यक्परिज्ञानमिथ्याज्ञानाभावतो न सम्यक्श्रद्धानं नाप्येकान्ततो विप्रतिपत्तिः

पर्याप्त्यधिकारः १५ २० ॥१०५॥ २४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ते सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, उक्तं च शतकबृहच्चूर्णौ—'जहा नालिकेरदीववासिस्स खुहाइयस्सवि एत्थ समागयस्स ओयणाइए अणेगविहे ढोइए तस्स उवरिं न रुई न य निंदा, जओ तेण सो ओयणाइओ आहारो न कयाइ दिट्ठो नावि सुओ, एवं सम्ममिच्छद्दिट्ठिस्सवि जीवाइपयत्थाणं उवरिं न य रुई नावि निंद'त्ति, तथा 'संजय'त्ति 'यम उपरमे' संयच्छन्ति स्म सर्वसावद्ययोगेभ्यस्सम्यगुपरमन्ते स्मेति संयताः, "गत्यर्थकर्मण्याधारे"ति कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, संयताः–सकलचारित्रिणः असंयताः–अविरतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः–देशविरतिमन्तः, तथा 'पमत्त'त्ति प्रमाद्यन्ति स्म मोहनीयादिकर्म्मोदयप्रभावतः सञ्ज्वलनकषायनिद्राद्यन्यतमप्रमादयोगतः संयमयोगेषु सीदन्ति स्मेति प्रमत्ताः, पूर्ववत् कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, ते च प्रायो गच्छवासिनः, तेषां क्वचिदनुपयोगसम्भवात्, तद्विपरीता अप्रमत्ताः, ते च प्रायो जिनकल्पिकपरिहारविशुद्धिकयथालन्दकल्पिकप्रतिमाप्रतिपन्नाः, तेषां सततोपयोगसम्भवाद्, इह तु ये गच्छवासिनः तन्निर्गता वा प्रमादरहिताः तेऽप्रमत्ता द्रष्टव्याः, तथा 'इड्ढिपत्तस्से'त्यादि, ऋद्धीः–आमर्षौषध्यादिलक्षणाः प्राप्ता ऋद्धिप्राप्ताः तद्विपरीता अनृद्धिप्राप्ताः, ऋद्धीश्च प्राप्नुवन्ति विशिष्टमुत्तरोत्तरमपूर्वापूर्वार्थप्रतिपादकं श्रुतमवगाहमानाः श्रुतसामर्थ्यतस्तीव्रां तीव्रतरां शुभभावनामधिरोहन्तोऽप्रमत्तयतयः, तथा चोक्तम्—'अवगाहते च स श्रुतजलधिं प्राप्नोति चावधिज्ञानम् । मानसपर्यायं वा ज्ञानं कोष्ठादिबुद्धिर्वा ॥ १ ॥ चारणवैक्रियसर्वौषधताद्या वा लब्धयस्तस्य ।

१ यथा नालिकेरद्वीपवासिनः क्षुधार्दितस्यापीहागतस्यौदनादिकेऽनेकविधे ढौकिते तस्योपरि न रुचिः नापि निन्दा, यतस्तेन स ओदनादिक आहारो न कदाचिद् दृष्टो नापि श्रुतः, एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टेरपि जीवादिपदार्थानामुपरि न च रुचिर्नापि निन्देति ।

आमर्षौषध्यादि

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रादुर्भवन्ति गुणतो बलानि वा मानसादीनि ॥ २ ॥" अत्र स इति अप्रमत्तयतिः 'मानसपर्याय'मिति मानसाः-मनःसम्बन्धिनः पर्याया विषयो यस्य तन्मानसपर्यायं, मनःपर्यायज्ञानमित्यर्थः, 'कोष्ठादिबुद्धिर्वे'ति अत्रादिशब्दात्प-दानुसारिबीजबुद्धिपरिग्रहः, तिस्रो हि बुद्धयः परमातिशयरूपाः प्रवचने प्रतिपाद्यन्ते, तद्यथा–कोष्ठबुद्धिः पदानुसारिणी-बुद्धिः बीजबुद्धिश्च, तत्र कोष्ठ इव धान्यं या बुद्धिराचार्यमुखाद्विनिर्गतौ तदवस्थावेव सूत्रार्थौ धारयति, न किमपि तयोः सूत्रार्थयोः कालान्तरेऽपि गलति सा कोष्ठबुद्धिः, या पुनरेकमपि सूत्रपदमवधार्य शेषमश्रुतमपि तदवस्थमेव श्रुतमवगाहते सा पदानुसारिणी, या पुनरेकमर्थपदं तथाविधमनुसृत्य शेषमश्रुतमपि यथावस्थितं प्रभूतमर्थमवगाहते सा बीजबुद्धिः, सा च सर्वोत्तमा प्रकर्षप्राप्ता भगवतां गणभृतां, ते हि उत्पादादिपदत्रयमवधार्य सकलमपि द्वादशा-ङ्गात्मकं प्रवचनमभिसूत्रयन्ति, तथा चारणाश्च वैक्रियं च सर्वौषधश्च चारणवैक्रियसर्वौषधाः तद्भावः चारणवैक्रि-यसर्वौषधता, तत्र चरणं–गमनं तद्विद्यते येषां ते चारणा 'ज्योत्स्नादिभ्योऽण्' इति मत्वर्थीयोऽण्प्रत्ययः, तत्र गमन-मन्येषामपि मुनीनां विद्यते ततो विशेषणान्यथानुपपत्त्या चरणमिह विशिष्टं गमनमभिगृह्यते, अत एवाति-शायने मत्वर्थीयो, यथा रूपवती कन्येत्यत्र, ततोऽयमर्थः–अतिशयचरणसमर्थाश्चारणाः, तथा चाह भाष्यकृत् स्वभाष्यटीकायां–अतिशयचरणाचारणाः, अतिशयगमनादित्यर्थः, ते च द्विधा–जङ्घाचारणा विद्याचार-णाश्च, तत्र ये चारित्रतपोविशेषप्रभावतः समुद्भूतगमनविषयलब्धिविशेषास्ते जङ्घाचारणाः, ये पुनर्विद्यावशतः

आमर्षौ-षध्यादि १५ २० ॥१०६॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुत्पन्नगमनागमनलब्ध्यतिशयाः ते विद्याचारणाः, जङ्घाचारणास्तु रुचकवरद्वीपं यावद्गन्तुं समर्थाः विद्याचारणा नन्दीश्वरं, तत्र जङ्घाचारणा यत्र कुत्रापि गन्तुमिच्छवः तत्र रविकरानपि निश्रीकृत्य गच्छन्ति विद्याचारणास्त्वेवमेव, जङ्घाचारणश्च रुचकवरद्वीपं गच्छन्नेकेनैवोत्पातेन गच्छति, प्रतिनिवर्त्तमानस्त्वेकेनोत्पातेन नन्दीश्वरमायाति द्वितीयेन स्वस्थानं, यदि पुनर्मेरुशिखरं जिगमिषुस्तर्हि एकेनैवोत्पातेन पण्डकवनमधिरोहति, प्रतिनिवर्त्तमानस्तु प्रथमेनोत्पातेन नन्दनवनमागच्छति द्वितीयेन स्वस्थानमिति, जङ्घाचारणो हि चारित्रातिशयप्रभावतो भवति ततो लब्ध्युपजीवने औत्सुक्यभावतः प्रमादसम्भवाच्चारित्रातिशयनिबन्धना लब्धिरपहीयते ततः प्रतिनिवर्त्तमानो द्वाभ्यामुत्पाताभ्यां स्वस्थानमायाति, विद्याचारणः पुनः प्रथमेनोत्पातेन मानुषोत्तरं पर्वतं गच्छति द्वितीयेन तु नन्दीश्वरं, प्रतिनिवर्त्तमानस्त्वेकेनैवोत्पातेन स्वस्थानमायाति, तथा मेरुं गच्छन् प्रथमेनोत्पातेन नन्दनवनं गच्छति द्वितीयेन पण्डकवनं, प्रतिनिवर्त्तमानस्त्वेकेनैवोत्पातेन स्वस्थानमायाति, विद्याचारणो हि विद्यावशाद्भवति, विद्या च परिशील्यमाना स्फुटा स्फुटतरोपजायते, ततः प्रतिनिवर्त्तमानस्य शक्त्यतिशयसम्भवादेकेनोत्पातेन स्वस्थानागमनमिति, उक्तं च—"अइसयचरणसमत्था जंघाविज्जाहि चारणा मणुओ। जंघाहि जाइ पढमो नीसं काउं रविकरेऽवि ॥ १ ॥ एगुप्पाएण गओ रुयगवरंमि उ तओ पडिनियत्तो। बिइएणं नंदिस्सरमिहं तओ एइ तइएणं ॥ २ ॥ पढमेण पंडगवणं बिइउप्पाएण नंदणं एइ। तइउप्पाएण तओ इह जंघाचारणो एइ ॥ ३ ॥ पढमेण

जंघाविद्याचारणाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणुसोत्तरनगं स णंदिस्सरं तु विइएणं । एइ तओ तइएणं कयचेइयवंदणो इहयं ॥ ४ ॥ पढमेण नंदणवणे बिइउप्पाएण पंडगवणंमि । एइ इहं तइएणं जो विज्जाचारणो होइ ॥ ५ ॥" तथा सर्वे–विण्मूत्रादिकमौषधं यस्य स सर्वौषधः, किमुक्तं भवति ?–यस्य मूत्रं विट् श्लेष्मा शरीरमलो वा रोगोपशमसमर्थो भवति स सर्वौषधः, आद्यशब्दादामर्षौषध्यादिलब्धिपरिग्रहः, तथा आमर्षौषध्यादीनामन्यतमामृद्धिमवर्धृद्धिं वा प्राप्तस्य मनःपर्यायज्ञानमुत्पद्यते, नानृद्धिप्राप्तस्य, अन्ये त्ववर्धृद्धिप्राप्तस्यैवेति नियममाचक्षते, तदयुक्तं, सिद्धप्राभृतादाववधिमन्तरेणापि मनःपर्यायज्ञानस्यानेकशोऽभिधानात् । अत्राह—मनुष्याणामुत्पद्यते इत्युक्ते सामर्थ्यादमनुष्याणां नोत्पद्यते इत्यनुमीयते, ततः कथमुच्यते 'नो अमणुस्साणं उप्पज्जइ' इत्यादि, निरर्थकत्वाद् ?, उच्यते, इह त्रिधा विनेयाः, तद्यथा–उद्घटितज्ञा मध्यमबुद्धयः प्रपञ्चितज्ञाश्च, तत्र ये उद्घटितज्ञा मध्यमबुद्धयो वा ते यथोक्तं सामर्थ्यमवबुध्यन्ते, ये पुनरद्याप्यव्युत्पन्नत्वात् न यथोक्तसामर्थ्यावगमकुशलाः ते प्रपञ्चितमेवावगन्तुमीशते ततस्तेषामनुग्रहाय सामर्थ्यलभ्यस्यापि विपक्षनिषेधस्याभिधानं, महीयांसो हि परमकरुणापरीतत्वादविशेषेण सर्वेषामनुग्रहाय प्रवर्त्तन्ते, ततो न कश्चिद्दोषः ।

तं च दुविहं उप्पज्जइ, तंजहा–उज्जुमई य विउलमई य, तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं, तंजहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रतराए जाणइ पासइ, खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचेंदिआणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहिअतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणवि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ, भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ– मणपज्जवनाणं पुण जणमणपरिचिंतिअत्थपागडणं। माणुसखित्तनिबद्धं गुणपच्चइअं चरित्तवओ (५८) ॥ सेत्तं मणपज्जवनाणं ॥ (सू० १८)

मनःपर्यायस्यविषयः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [८२-८४]

तत्र मनःपर्यायज्ञानमृद्धिप्राप्तानामप्रमत्तसंयतानामुत्पद्यमानं द्विधोत्पद्यते, तद्यथा–ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, तत्र मननं मतिः, संवेदनमित्यर्थः, ऋज्वी–सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः घटोऽनेन चिन्तित इत्यादिसामान्याकाराध्यवसायनिबन्धनभूता कतिपयपर्यायविशिष्टमनोद्रव्यपरिच्छित्तिरित्यर्थः, उक्तं च भाष्यकृता—रिंजु सामन्नं तम्मत्तगाहिणी रिजुमई मणोणाणं। पायं विसेसविमुहं घटमित्तं चिंतियं मुणइ ॥ १ ॥" चूर्णिकृदप्याह–"[1]उज्जु णं विसेसविमुहं उवलहई, नाईव बहुविसेसविसिट्ठं अत्थं उवलभइत्ति भणियं होइ, घडोऽणेण चिंतिओत्ति जाणइ'त्ति। चशब्दः स्वगतानेकद्रव्यक्षेत्रादिभेदसूचकः। तथा विपुला–विशेषग्राहिणी मतिः विपुलमतिः, घटोऽनेन चिन्तितः, स च सौवर्णः पाडलिपुत्रकोऽद्यतनो महान् अपवरकस्थितः फलपिहित इत्याद्यध्यवसायहेतुभूता प्रभूतविशेषविशिष्टमनोद्रव्यपरिच्छित्तिरित्यर्थः, आह च भाष्यकृत्—"[3]विपुलं वत्थुविसेसणनाणं तग्गाहिणी मई विपुला। चिंतियमणुसरइ घडं पसंगओ पज्जवसएहिं ॥ १ ॥" चूर्णिकृदपि आह–"[4]विपुला मई विपुलमई बहुविसेसगाहिणीत्ति भणियं होइ, दिट्ठंतो जहाऽणेण घडो चिंतिओ, तं च देसकालाइअणेगपज्जायविसेसविसिट्ठं जाणइ'त्ति। चशब्दः पूर्ववत्, अस्यां

१ ऋजु सामान्यं तन्मात्रग्राहिणी ऋजुमतिर्मनःपर्यायज्ञानं। प्रायो विशेषविमुखं घटमात्रं चिन्तितं जानाति ॥ १ ॥ २ ऋजु विशेषविमुखं उपलभते, नातीव बहुविशेषविशिष्टमर्थं उपलभते इति भणितं भवति, घटोऽनेन चिन्तित इति जानातीति। ३ विपुलं वस्तुविशेषज्ञानं तद्ग्राहिणी मतिर्विपुला। चिन्तितमनुसरति घटं प्रसङ्गतः पर्यायशतेन ॥ १ ॥ ४ विपुला मतिर्विपुलमतिः बहुविशेषग्राहिणीत्युक्तं भवति दृष्टान्तो यथाऽनेन घटश्चिन्तितः, तं च देशकालायनेकपर्यायविशेषविशिष्टं जानातीति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [८२-८४]

च व्युत्पत्तौ स्वतन्त्रमेव ज्ञानमभिधेयं, यदा पुनस्तद्वानभिधेयो विवक्ष्यते तदैवं व्युत्पतिः–ऋज्वी–सामान्यग्राहिणी मतिरस्य स ऋजुमतिः, तथा विपुला–विशेषग्राहिणी मतिरस्य स विपुलमतिः। तत् मनःपर्यायज्ञानं द्विविधमपि 'समासतः' संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो णमिति वाक्यालङ्कारे ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान्–अनन्तपरमाण्वात्मकान् स्कन्धान्–विशिष्टैकपरिणामपरिणतान् अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिपर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियैर्मनस्त्वेन परिणामितान् पुद्गलान् पुद्गलसमूहानित्यर्थः जानाति–साक्षात्कारेणावगच्छति 'पासइ'त्ति, इह मनस्त्वपरिणतैः स्कन्धैरालोचितं बाह्यमर्थं घटादिलक्षणं साक्षादध्यक्षतो मनःपर्यायज्ञानी न जानाति, किन्तु मनोद्रव्याणामेव तथारूपपरिणामान्यथानुपपत्तितोऽनुमानतः, आह च भाष्यकृत्—"जाणइ बज्झेऽणुमाणेणं" इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, यतो मूर्त्तद्रव्यालम्बनमेवेदं मनःपर्यायज्ञानमिष्यते, मन्तारस्त्वमूर्त्तमपि धर्म्मास्तिकायादिकं मन्यन्ते, ततोऽनुमानत एव चिन्तितमर्थमवबुध्यन्ते नान्यथेति प्रतिपत्तव्यम्, ततस्तमधिकृत्य पश्यतीत्युच्यते, तत्र मनोनिमित्तस्याचक्षुर्दर्शनस्य सम्भवात्, आह च चूर्णिकृत्—"मुणियत्थं पुण पचक्खओ न पेक्खइ, जेण मणोदव्वालंवणं मुत्तममुत्तं वा, सो य छउमत्थो तं अणुमाणओ पेक्खइ, अतो पासणिया भणिया" इति। अथवा सामान्यत एकरूपेऽपि ज्ञाने क्षयोपशमस्य तत्तद्द्रव्याद्यपेक्ष्य वैचित्र्यसम्भवा-

१ जानाति बाह्यान् अनुमानेन. २ चिन्तितार्थं पुनः प्रत्यक्षतो न प्रेक्षते, येन मनोद्रव्यालम्बनं मूर्तममूर्तं वा, स च छद्मस्थस्तत् अनुमानतः प्रेक्षते, अतः पश्यत्ता भणिता।

मनःपर्यायम् सू. १८

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दनेकविध उपयोगः सम्भवति, यथाऽत्रैव ऋजुमतिविपुलमतिरूपः, ततो विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया जानातीत्युच्यते, सामान्यमनोरूपद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया तु पश्यतीति, तथा चाह चूर्णिकृत्–"अहवा छउमत्थस्स एगविहखओवसमलंभेऽवि विविहोवओगसंभवो भवइ, जहा एत्थेव ऋजुमइविपुलमईणं उवओगो, अओ विसेससामन्नत्थेसु उवजुज्जइ जाणइ पासइत्ति भणियं न दोसो" इति । अत्र 'एगविहखओवसमलंभेऽवि'त्ति सामान्यत एकरूपेऽपि क्षयोपशमलम्भेऽपान्तराले द्रव्याद्यपेक्षया क्षयोपशमस्य विशेषसम्भवाद्विविधोपयोगसम्भवो भवतीति, तदेवं विशिष्टतरमनोद्रव्याकारपरिच्छेदापेक्षया सामान्यरूपमनोद्रव्याकारपरिच्छेदो व्यवहारतो दर्शनरूप उक्तः, परमार्थतः पुनः सोऽपि ज्ञानमेव, यतः सामान्यरूपमपि मनोद्रव्याकारप्रतिनियतमेव पश्यति, प्रतिनियतविशेषग्रहणात्मकं च ज्ञानं न दर्शनम्, अत एव सूत्रेऽपि दर्शनं चतुर्विधमेवोक्तं, न पञ्चविधमपि, मनःपर्यायदर्शनस्य परमार्थतोऽसम्भवादिति । तथा तानेव मनस्त्वेन परिणामितान् स्कन्धान् विपुलमतिः अभ्यधिकतरान्–अर्द्धतृतीयाङ्गुलप्रमाणभूमिक्षेत्रवर्त्तिभिः स्कन्धैरधिकतरान्, सा चाधिकतरता देशतोऽपि भवति ततः सर्वासु दिक्षु अधिकतरताप्रतिपादनार्थमाह—विपुलतरकान्–प्रभूततरकान्, तथा विशुद्धतरान्–निर्मलतरान् ऋजुमत्यपेक्षयाऽतीव स्फुटतरप्रका-

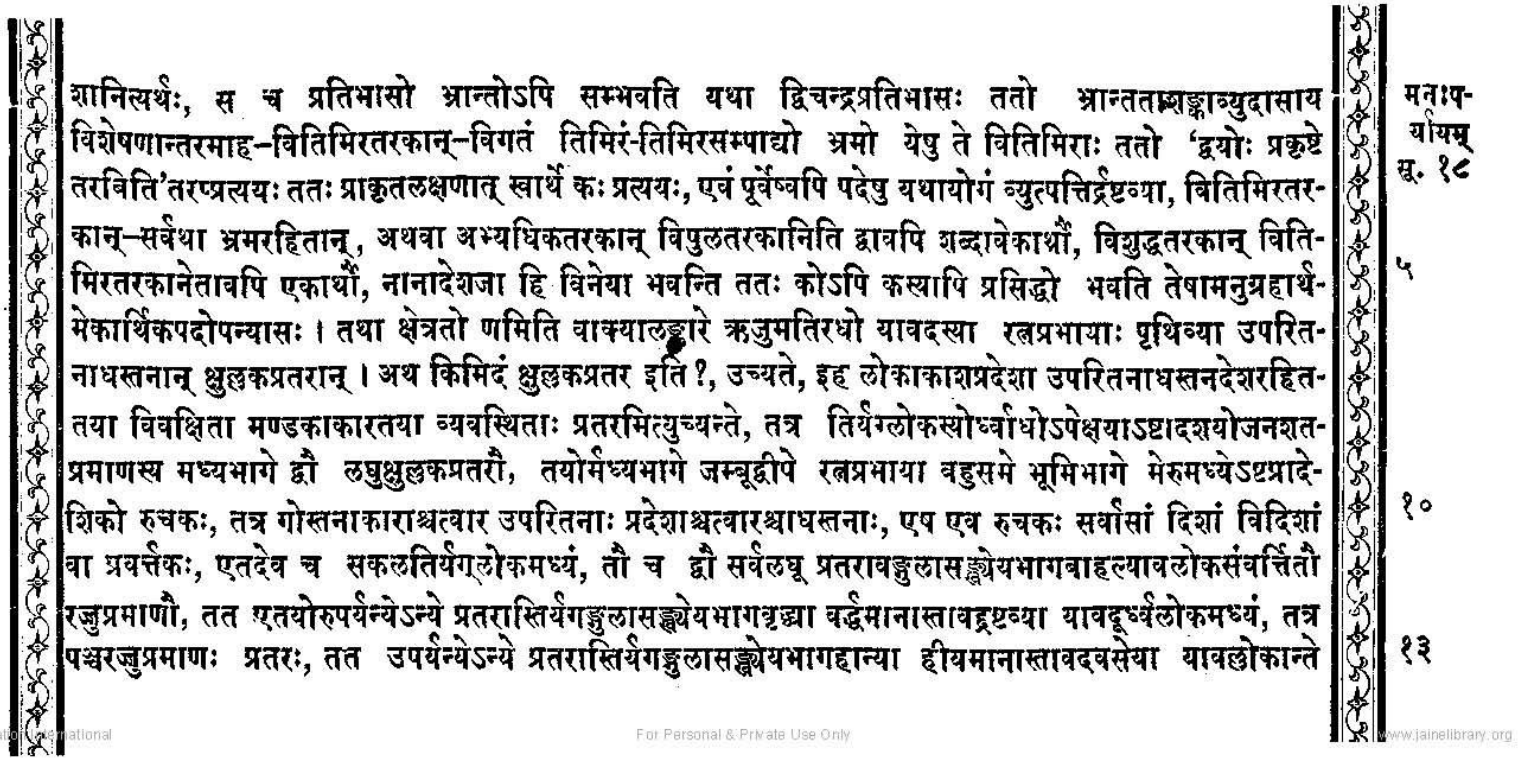
मनःपर्यायम् सू. १८ १५ २० ॥१०९॥ २३

१ अथवा छद्मस्थस्यैकविधक्षयोपशमलाभेऽपि विविधोपयोगसंभवो भवति, यथा अत्रैव ऋजुमतिविपुलमत्योरुपयोगः, अतो विशेषसामान्यार्थेषु उपयुज्यतो जानाति पश्यतीति भणितं न दोषः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [८२-८४]



शानित्यर्थः, स च प्रतिभासो भ्रान्तोऽपि सम्भवति यथा द्विचन्द्रप्रतिभासः ततो भ्रान्ततासङ्काव्युदासाय विशेषणान्तरमाह–वितिमिरतरकान्–विगतं तिमिरं-तिमिरसम्पाद्यो भ्रमो येषु ते वितिमिराः ततो 'द्वयोः प्रकृष्टे तरविति'तरप्प्रत्ययः ततः प्राकृतलक्षणात् स्वार्थे कः प्रत्ययः, एवं पूर्वेष्वपि पदेषु यथायोगं व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या, वितिमिरतरकान्–सर्वथा भ्रमरहितान्, अथवा अभ्यधिकतरकान् विपुलतरकानिति द्वावपि शब्दावेकार्थौ, विशुद्धतरकान् वितिमिरतरकानेतावपि एकार्थौ, नानादेशजा हि विनेया भवन्ति ततः कोऽपि कस्यापि प्रसिद्धो भवति तेषामनुग्रहार्थमेकार्थिकपदोपन्यासः । तथा क्षेत्रतो णमिति वाक्यालङ्कारे ऋजुमतिरधो यावदस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनाधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान् । अथ किमिदं क्षुल्लकप्रतर इति ?, उच्यते, इह लोकाकाशप्रदेशा उपरितनाधस्तनदेशरहिततया विवक्षिता मण्डकाकारतया व्यवस्थिताः प्रतरमित्युच्यन्ते, तत्र तिर्यग्लोकस्योर्ध्वाधोऽपेक्षयाऽष्टादशयोजनशतप्रमाणस्य मध्यभागे द्वौ लघुक्षुल्लकप्रतरौ, तयोर्मध्यभागे जम्बूद्वीपे रत्नप्रभाया बहुसमे भूमिभागे मेरुमध्येऽष्टप्रादेशिको रुचकः, तत्र गोस्तनाकाराश्चत्वार उपरितनाः प्रदेशाश्चत्वारश्चाधस्तनाः, एष एव रुचकः सर्वासां दिशां विदिशां वा प्रवर्त्तकः, एतदेव च सकलतिर्यग्लोकमध्यं, तौ च द्वौ सर्वलघू प्रतरावङ्गुलासङ्ख्येयभागबाहल्यावलोकसंवर्त्तितौ रज्जुप्रमाणौ, तत एतयोरुपर्यन्येऽन्ये प्रतरास्तिर्यगङ्गुलासङ्ख्येयभागवृद्ध्या वर्द्धमानास्तावद्द्रष्टव्या यावदूर्ध्वलोकमध्यं, तत्र पञ्चरज्जुप्रमाणः प्रतरः, तत उपर्यन्येऽन्ये प्रतरास्तिर्यगङ्गुलासङ्ख्येयभागहान्या हीयमानास्तावदवसेया यावल्लोकान्ते

मनःपर्यायम् सू. १८

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८]

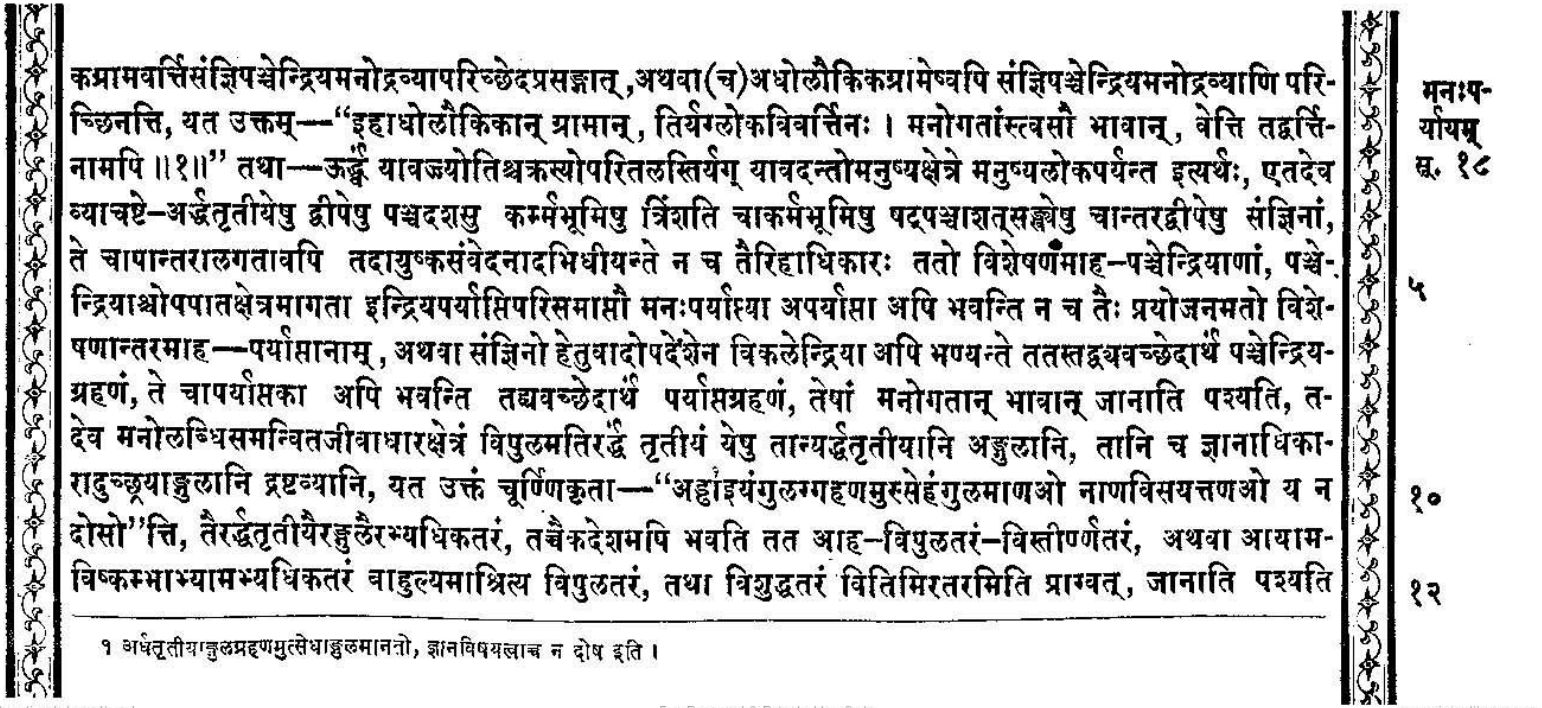
दीप अनुक्रम [८२-८४]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥११०॥

रज्जुप्रमाणः प्रतरः, इह ऊर्द्धलोकमध्यवर्त्तिनं सर्वोत्कृष्टं पञ्चरज्जुप्रमाणं प्रतरमवधीकृत्यान्ये उपरितना अधस्तनाश्च क्रमेण हीयमानाः २ सर्वेऽपि क्षुल्लकप्रतरा इति व्यवह्रियन्ते यावल्लोकान्ते तिर्यग्लोके च रज्जुप्रमाणप्रतर इति, तथा तिर्यग्लोकमध्यवर्त्तिसर्वलघुक्षुल्लकप्रतरस्याधस्तिर्यगङ्गुलासङ्ख्येयभागवृद्ध्या वर्द्धमानाः २ प्रतरास्तावद्वक्तव्या यावदधोलोकान्ते सर्वोत्कृष्टः सप्तरज्जुप्रमाणः प्रतरः, तं च सप्तरज्जुप्रमाणं प्रतरमपेक्ष्यान्ये उपरितनाः सर्वेऽपि क्रमेण हीयमानाः क्षुल्लकप्रतरा अभिधीयन्ते यावत्तिर्यग्लोकमध्यवर्त्ती सर्वलघुक्षुल्लकप्रतरः, एषा क्षुल्लकप्रतरप्ररूपणा। तत्र तिर्यग्लोकमध्यवर्त्तिनः सर्वलघुरज्जुप्रमाणात् क्षुल्लकप्रतरादारभ्य यावदधो नव योजनशतानि तावदस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां ये प्रतराः ते उपरितनक्षुल्लकप्रतरा भण्यन्ते, तेषामपि चाधस्ताद्ये प्रतरा यावदधोलौकिकग्रामेषु सर्वान्तिमः प्रतरः तेऽधस्तनक्षुल्लकप्रतराः, तान् यावदधः क्षेत्रत ऋजुमतिः पश्यति, अथवा अधोलोकस्योपरितनभागवर्त्तिनः क्षुल्लकप्रतरा उपरितना उच्यन्ते, ते चाधोलौकिकग्रामवर्त्तिप्रतरादारभ्य तावदवसेया यावत्तिर्यग्लोकस्यान्तिमोऽधस्तनप्रतरः, तथा तिर्यग्लोकस्य मध्यभागादारभ्याधोभागवर्त्तिनः क्षुल्लकप्रतरा अधस्तना उच्यन्ते, तत उपरितनाश्चाधस्तनाश्च उपरितनाधस्तनाः तान् यावदृजुमतिः पश्यति, अन्ये त्वाहुः–अधोलोकस्योपरिवर्त्तिन उपरितनाः, ते च सर्वेतिर्यग्लोकवर्त्तिनो यदिवा तिर्यग्लोकस्याधो नवयोजनशतवर्तिनो द्रष्टव्याः, ततः तेषामेवोपरितनानां क्षुल्लकप्रतराणां सम्बन्धिनो ये सर्वान्तिमाधस्तनाः क्षुल्लकप्रतराः तान् यावत्पश्यति, अस्मिंश्च व्याख्याने तिर्यग्लोकं यावत्पश्यतीत्यापद्यते, तच्च न युक्तम्, अधोलौकि-

मलयगिरीयम् सू. १८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कग्रामवर्त्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यापरिच्छेदप्रसङ्गात्, अथवा(च)अधोलौकिकग्रामेष्वपि संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्याणि परिच्छिनत्ति, यत उक्तम्—"इहाधोलौकिकान् ग्रामान्, तिर्यग्लोकविवर्त्तिनः । मनोगतांस्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्त्तिनामपि ॥१॥" तथा—ऊर्द्ध यावज्ज्योतिश्चक्रस्योपरितलस्तिर्यग् यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे मनुष्यलोकपर्यन्त इत्यर्थः, एतदेव व्याचष्टे–अर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु पञ्चदशसु कर्म्मभूमिषु त्रिंशति चाकर्मभूमिषु षट्पञ्चाशत्सङ्ख्येषु चान्तरद्वीपेषु संज्ञिनां, ते चापान्तरालगतावपि तदायुष्कसंवेदनादभिधीयन्ते न च तैरिहाधिकारः ततो विशेषणमाह–पञ्चेन्द्रियाणां, पञ्चेन्द्रियाश्चोपपातक्षेत्रमागता इन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तौ मनःपर्याप्त्या अपर्याप्ता अपि भवन्ति न च तैः प्रयोजनमतो विशेषणान्तरमाह—पर्याप्तानाम्, अथवा संज्ञिनो हेतुवादोपदेशेन विकलेन्द्रिया अपि भण्यन्ते ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं पञ्चेन्द्रियग्रहणं, ते चापर्याप्तका अपि भवन्ति तद्व्यवच्छेदार्थं पर्याप्तग्रहणं, तेषां मनोगतान् भावान् जानाति पश्यति, तदेव मनोलब्धिसमन्वितजीवाधारक्षेत्रं विपुलमतिरर्द्ध तृतीयं येषु तान्यर्द्धतृतीयानि अङ्गुलानि, तानि च ज्ञानाधिकारादुच्छ्रयाङ्गुलानि द्रष्टव्यानि, यत उक्तं चूर्णिकृता—"अड्ढाइयंगुलग्गहणमुस्सेहंगुलमाणओ नाणविसयत्तणओ य न दोसो"त्ति, तैरर्द्धतृतीयैरङ्गुलैरभ्यधिकतरं, तच्चैकदेशमपि भवति तत आह–विपुलतरं–विस्तीर्णतरं, अथवा आयामविष्कम्भाभ्यामभ्यधिकतरं बाहुल्यमाश्रित्य विपुलतरं, तथा विशुद्धतरं वितिमिरतरमिति प्राग्वत्, जानाति पश्यति

१ अर्धतृतीयाङ्गुलग्रहणमुत्सेधाङ्गुलमानतो, ज्ञानविषयत्वाच्च न दोष इति ।

मनःपर्यायम् सू. १८

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८] दीप अनुक्रम [८२-८४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१११॥

तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इति तावत्क्षेत्रगतानि मनोद्रव्याणि जानाति पश्यतीत्यर्थः । यावदुक्तस्वरूपमनःपर्यायज्ञानप्रतिपादिका गाथा, तस्या व्याख्या–मनःपर्यायज्ञानं-प्राग्निरूपितशब्दार्थं, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, स च रूपिविषयत्वक्षायोपशमिकत्वप्रत्यक्षत्वादिसाम्येऽप्यवधिज्ञानादिदं मनःपर्यायज्ञानं स्वाम्यादिभेदाद्भिन्नमिति विशेषयति, तथाहि–अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयं क्षेत्रतो लोकविषयं कतिपयलोकप्रमाणक्षेत्रापेक्षया अलोकविषयं च कालतोऽतीतानागतासङ्ख्येयोत्सर्पिणीविषयं भावतोऽशेषेषु रूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसङ्ख्येयपर्यायविषयं, मनःपर्यायज्ञानं पुनः संयतस्याप्रमत्तस्यामर्षौषध्याद्यन्यतमर्द्धिप्राप्तस्य द्रव्यतः संज्ञिमनोद्रव्यविषयं क्षेत्रतो मनुष्यक्षेत्रगोचरं कालतोऽतीतानागतपल्योपमासङ्ख्येयभागविषयं भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्यायालम्बनं, ततोऽवधिज्ञानाद्भिन्नं, एतदेव लेशतः सूत्रकृदाह—'जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनं' जायन्ते इति जनास्तेषां मनांसि जनमनांसि तैः परिचिन्तितश्चासावर्थश्च जनमनःपरिचिन्तितार्थः तं प्रकटयति–प्रकाशयति जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनं, तथा मानुषक्षेत्रनिबद्धं, न तद्बहिर्व्यवस्थितप्राणिद्रव्यमनोविषयमित्यर्थः, तथा गुणाः–क्षान्त्यादयस्ते प्रत्ययः-कारणं यस्य तद्गुणप्रत्ययं चारित्रवतोऽप्रमत्तसंयतस्य, 'सेत्तं मणपज्जवनाणं' तदेतत् मनःपर्यायज्ञानं ॥

से किं तं केवलनाणं ?, केवलनाणं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा-भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च । से किं तं भवत्थकेवलनाणं ?, भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–सजोगिभवत्थके-

सयोग्य-योगि-केवलम् सू. १९

२०

॥१११॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अथ केवलज्ञान वर्णयते

प्रत सूत्रांक [१९]

दीप अनुक्रम [८५]

वलनाणं च अयोगिभवत्थकेवलनाणं च । से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ?, सयोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-पढमसमयसयोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च, अहवा चरमसमयसयोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से तं सजोगीभवत्थकेवलनाणं। से किं तं अयोगिभवत्थकेवलनाणं ?, अयोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा-पढमसमयअयोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अहवा चरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं । (सू. १९)

अथ किं तत्केवलज्ञानं ?, सूरिराह—केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–भवस्थकेवलज्ञानं च सिद्धकेवलज्ञानं च, भवन्ति कर्म्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोऽस्मिन्निति भवो-नारकादिजन्म, तत्रेह भवो मनुष्यभव एव ग्राह्योऽन्यत्र केवलोत्पादाभावात्, भवे तिष्ठन्तीति भवस्थाः 'स्थादिभ्यः क' इति कः प्रत्ययः, तस्य केवलज्ञानं, चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः तथा 'षिधू संराद्धौ' सिध्यति स्म सिद्धः-यो येन गुणेन परिनिष्ठितो न पुनः साधनीयः स सिद्ध उच्यते, यथा सिद्ध ओदनः, स च कर्मसिद्धादिभेदादनेकविधः, उक्तं च—"[१]कम्मे सिप्पे य विज्जाए,

१ कर्मणि शिल्पे च विद्यायां, मन्त्रे योगे चागमे । अर्थे यात्रायामभिप्राये तपसि कर्मक्षय इति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंते जोगे अ आगमे। अत्थजत्ताअभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इअ ॥ १ ॥" अत्र कर्म्मक्षयसिद्धेनाधिकारोऽन्यस्य केवलज्ञानासम्भवाद्, अथवा सितं–बद्धं ध्मातं-भस्मीकृतमष्टप्रकारं कर्म्म येन स सिद्धः पृषोदरादय इति रूपसिद्धिः, सकलकर्म्मविनिर्मुक्तो मुक्तावस्थामुपागत इत्यर्थः, तस्य केवलज्ञानं सिद्धकेवलज्ञानं, अत्रापि चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः। अथ किं तद्भवस्थकेवलज्ञानं?, भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, तत्र योजनं योगो–व्यापारः, उक्तं च–'कायवाङ्मनःकर्म योगः (तत्त्वा० अ० ६ सू० १), इह औदारिकादिशरीरयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणतिविशेषः काययोगः, औदारिकवैक्रियाहारकव्यापाराहृतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्याज्जीवव्यापारो वाग्योगः, उक्तं च–"अहवा तणुजोगाहियवयदव्वसमूहजीववावारो। सो वयजोगो भन्नइ वाया निसिरिज्जए तेणं ॥ १ ॥" तथा औदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसाचिव्याज्जीवव्यापारो मनोयोगः, उक्तं च–"तह[2] तणुवावाराहियमणदव्वसमूहजीववावारो। सो मणजोगो भण्णइ मन्नइ नेयं जओ तेणं ॥ १ ॥" ततः सह योगेन वर्त्तन्ते ये ते सयोगाः [योगाः]–मनोवाक्कायाः ते यथासम्भवमस्य विद्यन्ते इति सयोगी, सयोगी चासौ भवस्थश्च सयोगिभवस्थस्तस्य केवलज्ञानं सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं। तथा योगा अस्य विद्यन्ते इति योगी

१ अथवा तनुयोगाहृतवाग्द्रव्यसमूहजीवव्यापारः। स वाग्योगो भण्यते वाग् निसृज्यते तेन ॥ १ ॥ २ तथा तनुयोगाहृतमनोद्रव्यसमूहजीवव्यापारः। स मनोयोगो भण्यते मन्नुते ज्ञेयं यतस्तेन ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९]

दीप अनुक्रम [८५]

न योगी अयोगी अयोगी चासौ भवस्थश्च अयोगिभवस्थः, शैलेश्यवस्थामुपागत इत्यर्थः, तस्य केवलज्ञानमयोगिभवस्थकेवलज्ञानं ॥ अथ किं तत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं ?, सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानम् अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, तत्रेह प्रथमसमयः केवलज्ञानोत्पत्तिसमयः, अप्रथमसमयः केवलोत्पत्तिसमयादूर्द्धं द्वितीयादिकः सर्वोऽपि समयो यावत्सयोगित्वचरमसमयः । अथवेति प्रकारान्तरे, एष एवार्थः समयविकल्पनेनान्यथा प्रतिपाद्यते इत्यर्थः, 'चरमसमये'त्यादि, तत्र चरमसमयः–सयोग्यवस्थान्तिमसमयः, न चरमसमयः अचरमसमयः–सयोग्यवस्थाचरमसमयादर्वाक्तनः सर्वोऽप्याकेवलप्राप्तेः । 'से त्त'मित्यादि निगमनं सुगमं, अथ किं तद् अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं ?, अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–प्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानं अप्रथमसमयायोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, अत्र प्रथमसमयोऽयोगित्वोत्पत्तिसमयो वेदितव्यः, शैलेश्यवस्थाप्रतिपत्तिसमय इत्यर्थः, प्रथमसमयादन्यः सर्वोऽप्यप्रथमसमयो यावच्छैलेश्यवस्थाचरमसमयः । अथवेति प्रकान्तरे 'चरमसमये'त्यादि, इह चरमसमयः शैलेश्यवस्थान्तिमसमयः, चरमसमयादन्यः सर्वोऽप्यचरमसमयो यावच्छैलेश्यवस्थाप्रथमसमयः, 'सेत्तं अयोगिभवत्थकेवलनाणं' तदेतदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम् ।

से किं तं सिद्धकेवलनाणं ?, सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-अणंतरसिद्धकेवलनाणं च परंपरसिद्धकेवलनाणं च । (सू० २०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥११३॥

अथ किं तत्सिद्धकेवलज्ञानं?, सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च परम्परसिद्धकेवलज्ञानं, च तत्र न विद्यते अन्तरं-समयेन व्यवधानं यस्य सोऽनन्तरः स चासौ सिद्धश्चानन्तरसिद्धः, सिद्धत्वप्रथमसमये वर्त्तमान इत्यर्थः, तस्य केवलज्ञानमनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं, चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः, तथा विवक्षिते प्रथमसमये यः सिद्धः तस्य यो द्वितीयसमयसिद्धः स परः तस्यापि यः तृतीयसमयसिद्धः स परः एवमन्येऽपि वाच्याः परे च परे चेति वीप्सायां पृषोदरादय इति परम्परशब्दनिष्पत्तिः परम्परे च ते सिद्धाश्च परम्परसिद्धाः, विवक्षितसिद्धत्वप्रथमसमयात्प्राक् द्वितीयादिषु समयेष्वनन्तां अतीताद्धां यावद्वर्त्तमानाः इत्यर्थः, तेषां केवलज्ञानं परम्परसिद्धकेवलज्ञानम्, अत्रापि चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः। इहानन्तरसिद्धाः सत्पद (ग्रन्थाग्रम् ३५००)–प्ररूपणा १ द्रव्यप्रमाण २ क्षेत्र ३ स्पर्शना ४ काला ५ ऽन्तर ६ भावा ७ ल्पबहुत्व ८ रूपैरष्टभिरनुयोगद्वारैः परम्परसिद्धाः सत्पदप्ररूपणाद्रव्यप्रमाणक्षेत्रस्पर्शनाकालान्तरभावाल्पबहुत्वसन्निकर्षरूपैर्नवभिरनुयोगद्वारैः क्षेत्रादिषु पञ्चदशसु द्वारेषु सिद्धप्राभृते चिन्तिताः ततस्तदनुसारेण वयमपि विनेयजनानुग्रहार्थं लेशतश्चिन्तयामः। क्षेत्रादीनि च पञ्चदश द्वाराण्यमूनि—"खेत्ते १ काले २ गइ ३ वेय ४ तित्थ ५ लिंगे ६ चरित्त ७ बुद्धे ८ य। नाणा ९ गाहु-१० क्कस्से ११ अंतर १२ मणुसमय १३ गणण १४ अप्पबहू १५ ॥१॥" तत्र प्रथमत एषु द्वारेषु सत्पदप्ररूपणया अनन्तरसिद्धाश्चिन्त्यन्ते, क्षेत्रद्वारे त्रिविधेऽपि लोके सिद्धाः प्राप्यन्ते, तद्यथा–ऊर्द्धलोके अधोलोके तिर्यग्लोके च, तत्रो-

सिद्ध-केवलज्ञा. सू. २०

२०

॥११३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्वलोके पाण्डुकवनादौ अधोलोके अधोलौकिकेषु ग्रामेषु, तिर्यग्लोके मनुष्यक्षेत्रे, तत्रापि निर्व्याघातेन पञ्चदशसु कर्म्मभूमिषु, व्याघातेन समुद्रनदीवर्षधरपर्वतादावपि, व्याघातो नाम संहरणं, उक्तं च—"दीवसमुद्देहिंतो अहोजलएसु वाघाय खेत्तओ सिद्धा। निव्वाघाएण पुणो पनरससुं कम्मभूमीसुं ॥ १॥" तीर्थकृतः पुनरधोलोके तिर्यग्लोके वा, तत्राधोलोकेऽधोलौकिकेषु ग्रामेषु तिर्यग्लोके पञ्चदशसु कर्म्मभूमिषु, न शेषेषु स्थानेषु, शेषेषु हि स्थानेषु संहरणतः संभवन्ति, न च भगवतां संहरणसम्भवः १। तथा काले–कालद्वारेऽवसर्पिण्यां जन्म चरमशरीरिणां नियमतः तृतीयचतुर्थारकयोः, सिद्धिगमनं तु केषाञ्चित् पञ्चमेऽप्यरके यथा जम्बूस्वामिनः, उत्सर्पिण्यां जन्म चरमशरीरिणां दुष्षमादिषु द्वितीयतृतीयचतुर्थारकेषु, सिद्धिगमनं तु तृतीयचतुर्थयोरेव, उक्तं च—"दोसुवि समासु जाया सिज्झंतोसप्पिणीएँ कालतिगे। तीसु य जाया उस्सप्पिणीएँ सिज्झंति कालदुगे ॥ १ ॥" महाविदेहेषु पुनः कालः सर्वदैव सुषमदुष्षमाप्रतिरूपः, ततस्तद्वक्तव्यताभणनेनैव तत्र वक्तव्यता भणिता द्रष्टव्या, संहरणमधिकृत्य पुनरुत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च षट्स्वप्यरकेषु सिध्यन्तो द्रष्टव्याः, तीर्थकृतां पुनरवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां च जन्म सिद्धिगमनं च सुषमदुष्षमादुष्षमसुषमारूपयोरेवारकयोर्वेदितव्यं, न शेषेष्वरकेषु, तथाहि–भगवान् ऋषभस्वामी सुषमदुष्षमारकप-

सिद्ध-केवलम् सू. २०

५

१०

१ द्वीपसमुद्रेषु सिद्धा अर्धतृतीयेषु व्याघाते क्षेत्रतः। निर्व्याघातेन पुनः पञ्चदशसु कर्मभूमिषु ॥ १ ॥ २ द्वयोरपि समयोर्जाताः सिध्यन्त्युत्सर्पिण्यां कालत्रिके। तिसृषु च जाता अवसर्पिण्यां सिध्यन्ति कालद्विके ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥११४॥

र्यन्ते समुदपादि, एकोननवतिपक्षेषु शेषेषु सिद्धिमगमत्, वर्द्धमानस्वामी तु भगवान् दुष्षमसुषमारकपर्यन्तेषु एकोननवतिपक्षेषु शेषेषु मुक्तिसौधमध्यमध्यास्त, तथा चोक्तम्—"समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता साइरेगाइं दुवालस संवच्छराइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता बायालीसं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता बावत्तरिं वासाणि सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जआउयनामगोए दूसमसुसमाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे"। उत्सर्पिण्यामपि च प्रथमतीर्थकरो दुष्षमसुषमायामेकोननवतिपक्षेषु व्यतिक्रान्तेषु जायते, यतो भगवद्वर्द्धमानस्वामिसिद्धिगमनस्य भविष्यन्महापद्मतीर्थकरोत्पादस्य चान्तरं चतुरशीतिवर्षसहस्राणि सप्त वर्षाणि पञ्च (च) मासाः पञ्चदश्यन्ते, तथा चोक्तम्—"चुलसीइवाससहस्सा वासा सत्तेव पंच मासा य। वीरमहापउमाणं अंतरमेयं जिणुद्दिट्ठं ॥१॥" तत उत्सर्पिण्यामपि प्रथमतीर्थङ्करो यथोक्तकालमान एव जायते, तथा उत्सर्पिण्यां चतुर्विंशतितमः तीर्थकरः सुषमदुष्षमायामेकोननवतिपक्षेषु व्यतिक्रान्तेषु जन्मासादयति, एकोननवतिपक्षाधिकचतुरशीतिपूर्वलक्षातिक्रमे च सिध्यति, तत उत्सर्पिण्यामवसार्पिण्यां वा दुष्षमसुषमासुषमदुष्षमयोरेव तीर्थकृतां जन्म निर्वाणं चेति २। गतिद्वारे प्रत्युत्पन्ननयमधिकृत्य मनुष्यगतावेव सिध्यन्तः

१ श्रमणो भगवान् महावीरः त्रिंशतं वर्षाणि अगारवासमध्ये उषित्वा सातिरेकाणि द्वादश संवत्सराणि छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा द्वाचत्वारिंशतं वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा द्वासप्ततिं वर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा क्षीणे वेदनीयायुर्नामगोत्रे दुष्षमसुषमायां बहुव्यतिक्रान्तायां त्रिषु वर्षेषु अर्धनवसु मासेषु शेषेषु पापायां मध्यमायां यावत् सर्वदुःखप्रहीणः। २ चतुरशीतिवर्षसहस्राणि वर्षाणि सप्तैव पञ्च मासाश्च। वीरमहापद्मयोरन्तरमेतत् जिनोदिष्टम् ॥ १ ॥

सिद्ध-केवलम् सू. २०

१५

२०

२२

॥११४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

प्राप्यन्ते, न शेषासु गतिषु, पाश्चात्यमनन्तरं भवमधिकृत्य पुनः सामान्यतश्चतसृभ्योऽपि गतिभ्य आगताः सिध्यन्ति, विशेषचिन्तायां पुनश्चतसृभ्यो नरकपृथिवीभ्यो, न शेषाभ्यः, तिर्यग्गतेः पृथिव्यम्बुवनस्पतिपञ्चेन्द्रियेभ्यो न शेषेभ्यः, मनुष्यगतेः स्त्रीभ्यः पुरुषेभ्यो वा, देवगतेश्चतुर्भ्यो देवनिकायेभ्यः, तथा चाह भगवानार्यश्यामः—"नेरइया णं भंते ! अ-णंतरागया अंतकिरियं करेंति परंपरागया अंतकिरिअं करेंति ?, गोअमा ! अणंतरागयावि अंतकिरिअं करेंति परंपरागयावि अंतकिरियं करेंति, एवं रयणप्पभापुढविनेरइयावि जाव पंकप्पभापुढविनेरइया, धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा, गोयमा ! नो अणंतरागया अंतकिरिअं करेंति, परंपरागया अंतकिरियं करेंति, एवं जाव अहे सत्तमपुढविनेरइया। असुरकुमारा जाव थणियकुमारा, पुढविआउवणस्सइकाइया अणंतरागयावि अंतकिरियं करेंति परंपरागयावि अंतकिरियं करेंति, तेउवा-उबेइंदियतेइंदियचउरिंदिया नो अणंतरागया अंतकिरियं करेंति परंपरागया अंतकिरियं करेंति, सेसा अणंतरागयावि अंतकिरियं करेंति परंपरागयावि," तीर्थकृतः पुनर्देवगतेर्नरकगतेर्वाऽनन्तरागताः सिध्यन्ति, न शेषगतेः, तत्रापि

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

९

१ नैरयिका भदन्त ! अनन्तरागता अन्तक्रियां कुर्वन्ति परम्परागता अन्तक्रियां कुर्वन्ति ?, गौतम ! अनन्तरागता अपि अन्तक्रियां कुर्वन्ति परम्परागता अपि अन्तक्रियां कुर्वन्ति, एवं रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिका अपि यावत्पङ्कप्रभापृथ्वीनैरयिकाः, धूमप्रभापृथ्वीनैरयिकाणां पृच्छा, गौतम ! नानन्तरागता अन्त-क्रियां कुर्वन्ति परम्परागता अन्तक्रियां कुर्वन्ति, एवं यावदधः सप्तमपृथ्वीनैरयिकाः। असुरकुमारा यावत्स्तनितकुमाराः पृथ्व्यब्वनस्पतिकायिका अनन्तरागता अपि अन्तक्रियां कुर्वन्ति परम्परागता अपि अन्तक्रियां कुर्वन्ति, तेजोवायुद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया नो अनन्तरागता अन्तक्रियां कुर्वन्ति, शेषा अनन्तरागता अपि अन्तक्रियां कुर्वन्ति परम्परागता अपि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

नरकगतेः तिसृभ्यो नरकपृथिवीभ्यो, न शेषेभ्यः, देवगतेर्वैमानिकदेवनिकायेभ्यो, न शेषनिकायेभ्यः, तथा चाह भगवानार्यश्यामः—"रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थयरत्तं लभेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगइए लभेज्जा अत्थेगइए नो लभेज्जा, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थेगइए लभेज्जा अत्थेगइए नो लभेज्जा ?, गोअमा ! जस्स रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थयरनामगोत्ताइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं निबद्धाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं उइन्नाइं नो उवसंताइं भवंति से णं रयणप्पभापुढविनेरइए रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उव्वट्टित्ता तित्थयरत्तं लभेज्जा, जस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स तित्थयरनामगोत्ताइं कम्माइं नो बद्धाइं जाव नो उइन्नाइं उवसंताइं भवंति से णं रयणप्पहापुढविनेरइए रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उव्वट्टित्ता तित्थयरत्तं नो लभेज्जा, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–अत्थेगइए लभेज्जा अत्थेगइए नो लभेज्जा । एवं जाव वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो तित्थयरत्तं लभेज्जा । पंकप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थयरत्तं

१ रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिको भदन्त ! रत्नप्रभापृथ्वीनारकत्वादनन्तरं उद्वृत्य तीर्थकरत्वं लभेत ?, गौतम ! अस्त्येकको लभेत अस्त्येकको न लभेत, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—अस्त्येकको लभेत अस्त्येकको न लभेत ?, गौतम ! यस्य रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकस्य तीर्थकरनामगोत्रकर्म बद्धं स्पृष्टं कृतं निबद्धं अभिनिर्वृत्तं अभिसमन्वागतं उदीर्णं नोपशान्तं भवति स रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिको रत्नप्रभापृथ्वीनारकत्वादुद्वृत्य तीर्थकरत्वं लभते, यस्य रत्नप्रभापृथ्वीनारकस्य तीर्थकरनामगोत्रं कर्म न बद्धं यावन्नोदीर्णं उपशान्तं भवति स रत्नप्रभापृथ्वीनारको रत्नप्रभापृथ्वीनारकत्वादुद्वृत्य तीर्थकरत्वं नो लभेत, तदेतेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—अस्त्येकको लभेत अस्त्येकको नो लभेत । एवं यावद्वालुकाप्रभापृथ्वीनैरयिकत्वात्तीर्थकरत्वं लभेत, पङ्कप्रभापृथ्वीनैरयिको भदन्त ! पङ्कप्रभापृथ्वीनारकत्वादनन्तरं उद्वृत्य तीर्थकरत्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

लभेज्जा ?, गोअमा !, णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा । धूमप्पभापुढविनेरइए णं पुच्छा, गोअमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, विरइं पुण लभेज्जा, तमापुढविपुच्छा, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, विरयाविरइं लभेज्जा, अहे सत्तमाए पुच्छा, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, संमत्तं पुण लभेज्जा । असुरकुमाराणं पुच्छा, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुणो करेज्जा, एवं निरंतरं जाव आउक्काइया, तेउकाइए णं भंते ! तेउकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थयरत्तं लभेज्जा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, एवं वाउकाइएवि, वणस्सइकाइए णं पुच्छा, गोअमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा । बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं पुच्छा, गोअमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, मणपज्जवनाणं पुण उप्पाडेज्जा । पंचिंदियतिरिक्खजोणियमणुस्सवाणमंतरजोइसिएसु पुच्छा, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा । सोहम्मगदेवे णं भंते ! अणंतरं चइत्ता तित्थयरत्तं लभेज्जा ?, गोअमा ! अत्थेगइए

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

८

---

१ लभेत ?, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, अन्तक्रियां पुनः कुर्यात्, धूमप्रभापृथ्वीनैरयिके पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, विरतिं पुनर्लभेत, तमःप्रभापृथ्वीपृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, विरताविरतिं लभेत, अधः सप्तम्यां पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, सम्यक्त्वं पुनर्लभेत । असुरकुमाराणां पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, अन्तक्रियां पुनः कुर्यात्, एवं निरन्तरं यावदप्कायाः, तेजस्कायिको भदन्त ! तेजस्कायादनन्तरमुद्वृत्य तीर्थकरत्वं लभेत?, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं लभेत श्रवणतया, एवं वायुकायिकेऽपि, वनस्पतिकायेऽपि पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, अन्तक्रियां पुनः कुर्यात् । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, मनःपर्यवज्ञानं पुनरुत्पादयेत् । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकमनुष्यव्यन्तरज्योतिष्केषु पृच्छा, गौतम ! नैषोऽर्थः समर्थः, अन्तक्रियां पुनः कुर्यात् । सौधर्मदेवो भदन्त ! अनन्तरं च्युत्वा तीर्थकरत्वं लभेत ?, गौतम ! अस्त्येकको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

लभेज्जा अत्थेगइए नो लभेज्जा, एवं जहा रयणप्पभापुढविनेरइयस्स एवं जाव सव्वट्ठगदेवे" ३, वेदद्वारे प्रत्युत्पन्ननयमधिकृत्यापगतवेद एव सिध्यति, तद्भवानुभूतपूर्ववेदापेक्षया तु सर्वेष्वपि वेदेषु, उक्तं च—"अवगयवेओ सिज्झइ पच्चुप्पण्णं नयं पडुच्च उ । सव्वेहिवि वेएहिं सिज्झइ समईयनयवाया ॥ १ ॥" तीर्थकृतः पुनः स्त्रीवेदे पुरुषवेदे वा, न नपुंसकवेदे ४, तथा तीर्थद्वारे तीर्थकरतीर्थे तीर्थकरीतीर्थे च अतीर्थे च सिध्यन्ति ५ लिङ्गद्वारे अन्यलिङ्गे गृहस्थलिङ्गे स्वलिङ्गे वा, एतच्च सर्वं द्रव्यलिङ्गापेक्षया द्रष्टव्यं, संयमरूपभावलिङ्गापेक्षया तु स्वलिङ्ग एव, उक्तं च—"लिंगेण अन्नलिंगे गिहत्थलिंगे तहेव य सलिङ्गे । सव्वेहिं दव्वलिङ्गे भावेण सलिंग संजमओ ॥ १ ॥" ६, चारित्रद्वारे प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया यथाख्यातचारित्रे, तद्भवानुभूतपूर्वचरणापेक्षया तु केचित्सामायिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणः केचित्सामायिकच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणः, केचित् सामायिकपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणः केचित्सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणः, उक्तं च—"चरणंमि अहक्खाए पच्चुप्पन्नेण सिज्झइ नएणं । पुव्वाणंतरचरणे तिचउक्कगपंचगगमेणं ॥ १ ॥" तीर्थकृतः पुनः सामायिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिण एव, बुद्धद्वारे प्रत्येकबुद्धाः

१ लभेत अस्त्येकको नो लभेत, एवं यथा रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकस्य एवं यावत् सर्वार्थकदेवाः । २ अपगतवेदः सिध्यति प्रत्युत्पन्नं नयं प्रतीत्यैव । सर्वेष्वपि वेदेषु सिध्यति समतीतनयवादात् ॥ १ ॥ ३ लिङ्गेन अन्यलिङ्गे गृहस्थलिङ्गे तथैव च स्वलिङ्गे । सर्वत्र द्रव्यलिङ्गे भावेन स्वलिङ्गे संयमतः ॥ १ ॥ ४ चरणे यथाख्याते प्रत्युत्पन्नेन सिध्यति नयेन । पूर्वानन्तरचरणे त्रिचतुष्ककपञ्चकगमेन ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

स्वयम्बुद्धा बुद्धबोधिता बुद्धीबोधिता वा सिध्यन्ति ८, ज्ञानद्वारे प्रत्युत्पन्ननयमपेक्ष्य केवलज्ञाने, तद्भवानुभूतपूर्वानन्तरज्ञानापेक्षया तु केचिन्मतिश्रुतज्ञानिनः केचिन्मतिश्रुतावधिज्ञानिनः केचिन्मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनः केचिन्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनः, तीर्थकृतस्तु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिन एव ९, अवगाहनाद्वारे जघन्यायामपि अवगाहनायां सिध्यन्ति उत्कृष्टायां मध्यमायां च, तत्र द्विहस्तप्रमाणा जघन्या, पञ्चविंशत्यधिकपञ्चधनुःशतप्रमाणा उत्कृष्टा, सा च मरुदेवीकालवर्त्तिनामवसेया, मरुदेव्यप्यादेशान्तरेण नाभिकुलकरतुल्या, तदुक्तं सिद्धप्राभृतटीकायां– 'मरुदेवीवि आएसन्तरेण नाभितुल्ल'त्ति, तत आदेशान्तरापेक्षया मरुदेव्यामपि यथोक्तप्रमाणावगाहना द्रष्टव्या, उक्तं च—"उग्गाहणा जहन्ना रयणिदुगं अह पुणो उ उक्कोसा । पंचेव धणुसयाइं धणुहपुहुत्तेण अहियाइं ॥ १ ॥" अत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाची बहुत्वं चेह पञ्चविंशतिरूपं द्रष्टव्यं, सिद्धप्राभृतटीकायां तथाव्याख्यानात्, तेन पञ्चविंशत्यधिकानीत्यवसेयं, शेषा त्वजघन्योत्कृष्टावगाहना, तीर्थकृतां तु जघन्यावगाहना सप्तहस्तप्रमाणा उत्कृष्टा पञ्चधनुःशतमाना शेषा त्वजघन्योत्कृष्टा १०, उत्कृष्टद्वारे सम्यक्त्वपरिभ्रष्टा उत्कर्षतः कियता कालेन सिध्यन्ति ?, उच्यते, देशोनापार्द्धपुद्गलपरावर्त्तसंसारातिक्रमे, अनुत्कर्षतस्तु केचित्सङ्ख्येयकालातिक्रमे केचिदसङ्ख्येयकालातिक्रमे केचिदनन्तेन कालेन ११, अन्तरद्वारे जघन्यत एकसमयोऽन्तरं उत्कर्षतः षण्मासाः १२, निरन्तरद्वारे जघन्यतो

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

१२

१ मरुदेव्यपि आदेशान्तरेण नाभितुल्येति । २ अवगाहना जघन्या रत्निद्विकं अथ पुनरुत्कृष्टा तु । पञ्चैव धनुःशतानि धनुःपृथक्त्वैरधिकानि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

द्वौ समयौ निरन्तरं सिध्यन्तः प्राप्यन्त उत्कर्षतोऽष्टौ समयान् १३, गणनाद्वारे जघन्यत एकस्मिन् समये एकः सिध्यति उत्कर्षतोऽष्टाधिकं शतं, तथा चास्मिन् भरतक्षेत्रेऽस्यामवसर्पिण्यां भगवतः श्रीनाभेयस्य निर्वाणसमये श्रूयतेऽष्टोत्तरं शतमेकसमयेन सिद्धं, तथा चोक्तं सङ्घदासगणिना वसुदेवचरिते—"भयवं च उसभसामी जयगुरू पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणयं विहरिऊणं केवली अट्ठावयपव्वए सह दसहिं समणसहस्सेहिं परिनिव्वाणमुवगते चोद्दसमेणं भत्तेणं माघबहुले पक्खे तेरसीए अभीइणा नक्खत्तेणं एगूणपुत्तसएणं अट्ठहि य नत्तुएहिं सह एगसमएणं निव्वुओ, सेसाणिवि अणगाराणं दस सहस्साणि अट्ठसयऊणगाणि सिद्धाणि तंमि चेव रिक्खे समयंतरेसु बहूसु" इति । १४, अल्पबहुत्वद्वारे युगपद् द्वित्रादिकाः सिद्धाः स्तोकाः, एककाः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"संखाएँ जहन्नेणं एक्को उक्कोसएण अट्ठसयं । सिद्धाणेगा थोवा एगगसिद्धा उ संखगुणा ॥ १ ॥ १५" तदेवं कृता पञ्चदशस्वपि द्वारेषु सत्पदप्ररूपणा, सम्प्रति द्रव्यप्रमाणमभिधीयते–तत्र क्षेत्रद्वारे ऊर्द्धलोके युगपदेकसमयेन चत्वारः सिध्यन्ति द्वौ समुद्रे चत्वारः सामान्यतो जलमध्ये तिर्यग्लोकेऽष्टशतं विंशतिपृथक्त्वमधोलोके, उक्तं च—"[३]चत्तारि उड्ढलोए

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

२०

२२

॥११७॥

१ भगवांश्च ऋषभस्वामी जगद्गुरुः पूर्वशतसहस्रं वर्षसहस्रोनं विहृत्य केवली अष्टापदपर्वते सह दशभिः श्रमणसहस्रैः परिनिर्वाणमुपगतश्चतुर्दशमेन भक्तेन माघकृष्णपक्षे त्रयोदश्यां अभीचिना नक्षत्रेण एकोनपुत्रशतेन अष्टभिश्च नप्तृभिः सह एकसमयेन निर्वृतः, शेषाण्यपि अनगाराणां दश सहस्राणि अष्टशतोनानि सिद्धानि तस्मिन्नेव ऋक्षे समयान्तरेषु बहुषु । २ संख्यायां जघन्येनैक उत्कृष्टेनाष्टशतम् । सिद्धा अनेकाः स्तोका एकसिद्धास्तु संख्यगुणाः ॥ १ ॥ ३ चत्वार ऊर्ध्वलोके जले चतुष्कं द्वौ समुद्रे । अष्टशतं तिर्यग्लोके विंशतिपृथक्त्वमधोलोके ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

जले चउक्कं दुवे समुद्दंमि । अट्ठसयं तिरियलोए वीसपुहुत्तं अहोलोए ॥ १ ॥" तथा नन्दनवने चत्वारः, 'नंदणे चत्तारी'ति वचनात्, एकतमस्मिंस्तु विजये विंशतिः, उक्तं च सिद्धप्राभृतटीकायां–"वीसं एगयरे विजये" तथा सर्वास्वप्यकर्मभूमिषु प्रत्येकं संहरणतो दश २, पण्डकवने द्वौ, पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु प्रत्येकमष्टशतं, उक्तं च— "संकमणाएँ दसगं दो चेव हवंति पंडगवणंमि । समएण य अट्ठसयं पण्णरससु कम्मभूमीसु ॥१॥" कालद्वारे उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च प्रत्येकं तृतीये चतुर्थे चारकेऽष्टशतं, अवसर्पिण्यां पञ्चमारके विंशतिः, शेषेष्वरकेषु प्रत्येकमुत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च संहरणतो दश २, तथा चोक्तं सिद्धप्राभृतटीकायां—"सेसेसुं अरएसु दस सिज्झंति, दोसुवि उस्सप्पिणीओसप्पिणीसु संहरणतो।"सिद्धप्राभृतसूत्रेऽप्युक्तम्—"उस्सप्पिणीओसप्पिणीतइयचउत्थयसमासु अट्ठसयं। पंचमियाए वीसं दसगं दसगं च सेसेसु ॥१॥" गतिद्वारे–देवगतेरागतानामष्टशतं, शेषगतिभ्य आगताः प्रत्येकं दश २, उक्तं च सिद्धप्राभृते–'सेसाण गईण दसदसगं' भगवांस्त्वार्यश्यामः पुनरेवमाह—नरकगतेरागता दश, तत्रापि विशेषचिन्तायां रत्नप्रभापृथिव्याः शर्कराप्रभाया वालुकाप्रभायाश्च पृथिव्या आगताः प्रत्येकं दश २, पङ्कप्रभायाः पृथिव्या आगताश्चत्वारः, तथा तिर्यग्गतेरागताः सामान्यतो दश, विशेषचिन्तायां पुनः पृथिवीकायेभ्योऽप्कायेभ्यो

१ नन्दने चत्वारः । २ विंशतिरेकतरस्मिन् विजये । ३ संक्रमणया दश द्वावेव भवतः पण्डकवने । समयेन चाष्टशतं पञ्चदशसु कर्मभूमिषु ॥ १ ॥ ४ शेषेष्वरकेषु दश सिध्यन्ति, द्वयोरपि उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः संहरणतः । ५ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः तृतीयचतुर्थसमयोरष्टशतम् । पञ्चम्यां विंशतिर्दशकं दशकं च शेषेषु ॥ १ ॥ ६ शेषाभ्यो गतिभ्यो दशकं दशकं ।

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भ्यश्चागताः प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारः, वनस्पतिकायेभ्य आगताः षट्, पञ्चेन्द्रियस्तिर्यग्योनिपुरुषेभ्य आगता दश, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिस्त्रीभ्योऽप्यागता दश, तथा सामान्यतो मनुष्यगतेरागता विंशतिः, विशेषचिन्तायां मनुष्यपुरुषेभ्य आगता दश मनुष्यस्त्रीभ्य आगता विंशतिः, तथा सामान्यतो देवगतेरागता अष्टशतं, विशेषचिन्तायामसुरकुमारेभ्यो नागकुमारेभ्यो यावत् स्तनितकुमारेभ्यः प्रत्येकमागता दश २ असुरकुमारीभ्यः प्रत्येकमागताः पञ्च पञ्च व्यन्तरदेवेभ्य आगता दश व्यन्तरीभ्य आगताः पञ्च ज्योतिष्कदेवेभ्य आगता दश ज्योतिष्कदेवीभ्य आगता विंशतिः वैमानिकदेवेभ्य आगता अष्टशतं, वैमानिकदेवीभ्य आगता विंशतिः, तथा च प्रज्ञापनाग्रन्थः—"अणंतरागया णं भंते ! नेरइया एगसमएणं केवइया अंतकिरिअं पकरेंति ?, गोअमा ! जहन्नेणं एको वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं दस, रयणप्पभापुढविनेरइयावि एवं चेव, जाव वालुयप्पभापुढविनेरइया, अणंतरागया णं भंते ! पंकप्पभापुढविनेरइया एगसमयेणं केवइया अंतकिरिअं पकरेंति ?, गोअमा !, जहन्नेणं एको वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं चत्तारि, अणंतरागया णं भंते ! असुरकुमारा एगसमएणं केवइया अंतकिरिअं पकरेंति ?, गोअमा ! जहन्नेणं एको वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं दस, अणंतरागया णं भंते ! असुरकुमारीओ एगसमएणं केवइयाओ अंतकिरियं पकरेंति ?, गोअमा ! जहन्नेणं एको वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं पंच, एवं जहा असुरकुमारा सदेवीया तहा जाव

१ संस्कृत एवायं पाठः वृत्तिकृद्भिरिति न संस्क्रियते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

थणियकुमारा, अणंतरागया णं भंते ! पुढविकाइया एगसमएणं केवइया अंतकिरिअं पकरेंति ?, गोअमा ! जहन्नेणं इक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं चत्तारि, एवं आउक्काइयावि, वणस्सइकाइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दस, पंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओवि दस, मणुस्सा दस, मणुस्सीओ वीसं, वाणमंतरा दस, वाणमंतरीओ पञ्च, जोइसिया दस, जोइसिणीओ वीसं, वेमाणिया अट्ठसयं, वेमाणिणीओ वीस"मिति तत्त्वं पुनः केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति । वेदद्वारे–पुरुषाणामष्टशतं, स्त्रीणां विंशतिः, दश नपुंसकाः, उक्तं च—'अट्ठसयं पुरिसाणं वीसं इत्थीण दस नपुंसाणं' तथा इह पुरुषेभ्य उद्धृता जीवाः केचित्पुरुषा एव जायन्ते केचित् स्त्रियः केचिन्नपुंसकाः, एवं स्त्रीभ्योऽप्युद्धृतानां भङ्गत्रयं, एवं नपुंसकेभ्योऽपि, सर्वसङ्ख्यया भङ्गा नव, तत्र ये पुरुषेभ्य उद्धृताः पुरुषा एव जायन्ते तेषामष्टशतं, शेषेषु चाष्टसु भङ्गेषु दश २, तथा चोक्तं सिद्धप्राभृते—'सेसा उ अट्ठ भंगा दसगं २ तु होइ एक्केकं' तीर्थद्वारे–तीर्थकृतो युगपदेकसमयेन उत्कर्षतश्चत्वारः सिध्यन्ति, दश प्रत्येकबुद्धाश्चत्वारः स्वयम्बुद्धा, अष्टशतमतीर्थकृतां, विंशतिः स्त्रीणां, द्वे तीर्थकर्यौ । लिङ्गद्वारे–गृहिलिङ्गे चत्वारः, अन्यलिङ्गे दश, स्वलिङ्गे अष्टशतं, उक्तं च—'चउरो दस अट्ठसयं गिहन्नलिङ्गे सलिंगे य ।' चारित्रद्वारे सामायिकसूक्ष्मसम्परायथाख्यातचारित्रिणां सामायिकच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसम्परायथाख्यातचारित्रिणां च प्रत्येकमष्टशतं, सामायिकपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायथा-

अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम्

५

१०

१२

१ अष्टशतं पुरुषाणां विंशतिः स्त्रीणां दश नपुंसकानाम् । २ शेषास्तु अष्ट भङ्गा दशकं दशकं तु भवत्येकैकः । ३ चत्वारो दशाष्टशतं गृहान्यलिङ्गे स्वलिङ्गे च ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

ख्यातचारित्रिणां सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययाख्यातचारित्रिणां च दशकं २, उक्तं च—"पच्छाकडं चरित्तं तिगं चउक्कं च तेसिमट्ठसयं । परिहारिएहिं सहिए दसगं दसगं च पंचगडे ॥१॥' बुद्धद्वारे–प्रत्येकबुद्धानां दशकं, बुद्धबोधितानां पुरुषाणामष्टशतं, बुद्धबोधितानां स्त्रीणां विंशतिः, नपुंसकानां दशकं, बुद्धीभिर्बोधितानां स्त्रीणां विंशतिः, बुद्धीभिर्बोधितानामेव सामान्यतः पुरुषादीनां विंशतिपृथक्त्वं, उक्तं च सिद्धप्राभृतटीकायां—'बुद्धीहिं चेव बोहियाण पुरिसाईणं सामन्नेण वीसपुहुत्तं सिज्झइ'त्ति, बुद्धी च मल्लिस्वामिनीप्रभृतिका तीर्थकरी सामान्यसाध्व्यादिका वा वेदितव्या, यतः सिद्धप्राभृतटीकायामेवोक्तं–"बुद्धीओवि मल्लिपमुहाओ अन्नाओ य सामन्नसाहुणीपमुहाओ बोहंतित्ति" ज्ञानद्वारे–पूर्वभावमपेक्ष्य मतिश्रुतज्ञानिनो युगपदेकसमयेनोत्कर्षतश्चत्वारः सिध्यन्ति, मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनो दश, मतिश्रुतावधिज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनां वा अष्टशतं । अवगाहनाद्वारे–जघन्यायामवगाहनायां युगपदेकसमयेनोत्कर्षतश्चत्वारः सिध्यन्ति, उत्कृष्टायां द्वौ, अजघन्योत्कृष्टायामष्टशतं, यवमध्येऽष्टौ, उक्तं च—"उक्कोसँगाहणाए दो सिद्धा होंति एकसमएणं । चत्तारि जहन्नाए अट्ठसयं मज्झिमाए उ ॥ १ ॥" अत्र टीकाकारेण व्याख्या कृता–गाथापर्यन्तवर्त्तिनस्तुशब्दस्याधिकार्थसंसूचनात् 'जेव-

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

२८

२३ ॥११९॥

१ पश्चात्कृतानि चारित्राणि त्रीणि चत्वारि च तेषामष्टशतम् । परिहारिकैः सहितानि दशकं दशकं च पञ्च कृतानाम् ॥ १ ॥ २ बुद्धीभिरेव बोधितानां पुरुषादीनां सामान्येन विंशतिः सिध्यन्ति । ३ बुद्ध्योऽपि मल्लीप्रमुखा अन्याश्च सामान्यसाध्वीप्रमुखा बोधयन्तीति । ४ उत्कृष्टावगाहनायां द्वौ सिद्धौ भवत एकसमयेन । चत्वारो जघन्यायामष्टशतं मध्यमायां तु ॥ १ ॥ ५ यवमध्येऽष्टौ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

मज्झे अट्ठ' इति, उत्कृष्टद्वारे येषा सम्यक्त्वपरिभ्रष्टानामनन्तः कालोऽगमत् तेषामष्टशतं, सङ्ख्यातकालपतितानामसङ्ख्यातकालपतितानां च दशकं २, अप्रतिपतितसम्यक्त्वानां चतुष्टयं, उक्तं च—"जेसिं अणंतकालो पडिवाओ तेसिं होइ अट्ठसयं। अप्पडिवडिए चउरो दसगं दसगं च सेसाणं ॥ १ ॥" अन्तरद्वारे एको वा सान्तरतः सिध्यति बहवो वा, तत्र बहवो यावदष्टशतं। अनुसमयद्वारे–प्रतिसमयमेको वा सिध्यति बहवो वा, तत्र बहूनां सिध्यतामियं प्ररूपणा–एकादयो द्वात्रिंशत्पर्यन्ता निरन्तरमुत्कर्षतोऽष्टौ समयान् यावत् प्राप्यन्ते, इयमत्र भावना–प्रथमसमये जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतो द्वात्रिंशत् सिध्यन्तः प्राप्यन्ते, द्वितीयसमये जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतो द्वात्रिंशद्,एवं तृतीयसमयेऽपि, एवं चतुर्थसमयेऽपि, एवं यावदष्टमेऽपि समये जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतो द्वात्रिंशत्ततः परमवश्यमन्तरं। तथा त्रयस्त्रिंशदादयोऽष्टचत्वारिंशत्पर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तः, सप्त समयान् यावत्प्राप्यन्ते, भावना प्राग्वत्, परतो नियमादन्तरं, तथा एकोनपञ्चाशदादयः षष्टिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तः उत्कर्षतः षट् समयान् यावदवाप्यन्ते, परतोऽवश्यमन्तरं, तथा एकषष्ट्यादयो द्विसप्ततिपर्यन्ता निरन्तरमुत्कर्षतः सिध्यन्तः उत्कर्षतः पञ्च समयान् यावत्प्राप्यन्ते, ततः परमन्तरं, तथा त्रिसप्तत्यादयश्चतुरशीतिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तः उत्कर्षतश्चतुरस्समयान् यावत्प्राप्यन्ते, तत ऊर्ध्वमन्तरं, तथा पञ्चाशीत्यादयः षण्णवतिपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तः उत्क-

१ येषामनन्तः कालः प्रतिपाते तेषां भवत्यष्टशतम्। अप्रतिपतिते चत्वारो दशकं दशकं च शेषाणाम् ॥ १ ॥

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

र्षतस्त्रीन् समयान् यावदवाप्यन्ते, परतोऽवश्यमन्तरं, तथा सप्तनवत्यादयो द्व्युत्तरशतपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यंत उत्कर्षतो द्वौ समयौ यावदवाप्यन्ते, परतो नियमादन्तरं, तथा त्र्युत्तरशतादयोऽष्टोत्तरशतपर्यन्ताः सिध्यन्तो नियमादेकमेव समयं यावदवाप्यन्ते, न द्वित्रादिसमयानिति । एतदर्थसङ्ग्राहिका चेयं गाथा–"बत्तीसा अडयाला सट्ठी बावत्तरी य बोद्धवा । चुलसीई छन्नउई दुरहियमट्ठुत्तरसयं च ॥ १ ॥" अत्राष्टसामयिकेभ्य आरभ्य द्विसामयिकपर्यन्ता निरन्तरं सिद्धाः एकैकस्मिंश्च विकल्पे उत्कर्षतः शतपृथक्त्वं सङ्ख्यापरिमाणं, गणनाद्वारमल्पबहुत्वद्वारं च प्रागिव द्रष्टव्यं, तथा च सिद्धप्राभृतेऽपि द्रव्यप्रमाणचिन्तायामेतयोर्द्वारयोः सत्पदप्ररूपणोक्तैव गाथा भूयोऽपि परावर्त्तिता– "संखाएँ जहन्नेणं एक्को उक्कोसएण अट्ठसयं । सिद्धा णेगा थोवा एक्कगसिद्धा उ संखगुणा ॥ १ ॥" तदेवमुक्तं द्रव्यप्रमाणं, सम्प्रति क्षेत्रप्ररूपणा कर्त्तव्या–तत्र पूर्वभावमपेक्ष्य सत्पदप्ररूपणायामेव कृता, सम्प्रति प्रत्युत्पन्ननयमतेन क्रियते–तत्र पञ्चदशस्वप्यनुयोगद्वारेषु पृच्छा, इह सकलकर्म्मक्षयं कृत्वा कुत्र गतो भगवान् सिध्यति?, उच्यते, ऋजुगत्या मनुष्यक्षेत्रप्रमाणे सिद्धिक्षेत्रे गतः सिध्यति, यदुक्तं–"इह बोन्दिं चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झइ" गतं क्षेत्रद्वारं, सम्प्रति स्पर्शनाद्वारं, स्पर्शना च क्षेत्रावगाहादतिरिक्ता यथा परमाणोः, तथाहि परमाणोरेकस्मिन् प्रदेशेऽवगाहः सप्तप्रादेशिकी च स्पर्शना, उक्तं च—"[३]एगपएसोगाढं सत्तपएसा य से फुसणा" सिद्धानां तु स्पर्शना एवम-

१ संख्यायां जघन्येनैक उत्कर्षतोऽष्टशतम् । सिद्धा अनेकाः स्तोका एकसिद्धास्तु संख्यगुणाः ॥ १ ॥ २ इह तनुं त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यति । ३ एकप्रदेशोऽवगाहः सप्तप्रादेशिकी च तस्य स्पर्शना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

वगन्तव्या–"फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिँ नियमसो सिद्धो । ते उ असंखेज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥ १ ॥" गतं स्पर्शनाद्वारं । सम्प्रति कालद्वारं, तत्र चेयं परिभाषा–सर्वेष्वपि द्वारेषु यत्र २ स्थानेऽष्टशतमेकसमयेन सिध्यदुक्तं तत्र तत्राष्टौ समया निरन्तरं कालो वक्तव्यः, यत्र २ पुनर्विंशतिर्दश वा तत्र २ चत्वारः समयाः, शेषेषु स्थानेषु द्वौ समयौ, उक्तं च—"जेहिं अट्ठसयं सिज्झइ अट्ठ उ समया निरंतरं कालो । वीसदसएसु चउरो सेसा सिज्झंति दो समए ॥ १ ॥" सम्प्रति एतदेव मन्दविनेयजनानुग्रहाय विभाव्यते, तत्र क्षेत्रद्वारे–जम्बूद्वीपे धातकीखण्डे पुष्करवरद्वीपे च प्रत्येकं भरतैरावतमहाविदेहेषूत्कर्षतोऽष्टौ समयान् यावन्निरन्तरं सिध्यन्तः प्राप्यन्ते, हरिवर्षादिष्वधोलोके च चतुरश्चतुरः समयान्, नन्दनवने पण्डकवने लवणसमुद्रे च द्वौ द्वौ समयौ, कालद्वारे–उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च प्रत्येकं तृतीयचतुर्थारकयोरष्टावष्टौ समयान्, शेषेषु चारकेषु चतुरश्चतुरः समयान्, गतिद्वारे–देवगतेरागता उत्कर्षतोऽष्टौ समयान्, शेषगतिभ्य आगताश्चतुरः समयानिति, वेदद्वारे–पश्चात्कृतपुरुषवेदा अष्टौ समयान्, पश्चात्कृतस्त्रीवेदनपुंसकवेदाः प्रत्येकं चतुरश्चतुरः समयान्, पुरुषवेदेभ्य उद्वृत्य पुरुषा एव सन्तः सिध्यन्तोऽष्टौ समयान्, शेषेषु चाष्टसु भङ्गेषु चतुरश्चतुरः समयानिति, तीर्थद्वारे–तीर्थकरतीर्थे तीर्थकरीतीर्थे वाऽतीर्थकरसिद्धा उत्कर्षतोऽष्टौ

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

११

१ स्पृशत्यनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैर्नियमात् सिद्धः । ते त्वसंख्यातगुणा देशप्रदेशैर्ये स्पृष्टाः ॥ १ ॥ २ यत्राष्टशतं सिध्यति अष्टैव समया निरन्तरं कालः । विंशतौ दशसु च चत्वारः शेषाः सिध्यन्ति द्वौ समयौ ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृ त्तिः

॥१२१॥

समयान्, तीर्थकराः तीर्थकर्यश्च द्वौ द्वौ समयौ, लिङ्गद्वारे–स्वलिङ्गेऽष्टौ समयान्, अन्यलिङ्गे चतुरः समयान्, गृहिलिङ्गे द्वौ समयौ, चारित्रद्वारे–अनुभूतपरिहारविशुद्धिकचारित्राश्चतुरः समयान्, शेषा अष्टावष्टौ समयान्, बुद्धद्वारे–स्वयम्बुद्धा द्वौ समयौ, बुद्धबोधिता अष्टौ समयान्, प्रत्येकबुद्धा बुद्धीबोधिताः स्त्रियो बुद्धीबोधिता एव च सामान्यतः पुरुषादयः प्रत्येकं चतुरश्चतुरः समयान्, ज्ञानद्वारे–मतिश्रुतज्ञानिनो द्वौ समयौ, मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनश्चतुरस्समयान्, मतिश्रुतावधिज्ञानिनो मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनो वाऽष्टावष्टौ समयान्, अवगाहनाद्वारे–उत्कृष्टायां जघन्यायां चावगाहनायां द्वौ द्वौ समयौ, यवमध्ये चतुरः समयान्, उक्तं च सिद्धप्राभृतटीकायां—'जवमज्झाए य चत्तारि समया' इति, अजघन्योत्कृष्टायां पुनरवगाहनायामष्टौ समयान्, उत्कृष्टद्वारे–अप्रतिपतितसम्यक्त्वा द्वौ समयौ, सङ्ख्येयकालप्रतिपतिता असङ्ख्येयकालप्रतिपतिताश्चतुरः २ समयान्, अनन्तकालप्रतिपतिता अष्टौ समयान्, अनन्तरादीनि चत्वारि द्वाराणि नेहावतरन्ति। गतं मौलं पञ्चमं काल इति द्वारं, सम्प्रति षष्ठमन्तरद्वारं–अन्तरं नाम सिद्धिगमनविरहकालः, स च सकलमनुष्यक्षेत्रापेक्षया सत्पदप्ररूपणायामेवोक्तो, यथा जघन्यत एकसमय उत्कर्षतः षण्मासा इति, ततः इह क्षेत्रविभागतः सामान्यतो विशेषतश्चोच्यते–तत्र जम्बूद्वीपे धातकीखण्डे च प्रत्येकं सामान्यतो वर्षपृथक्त्वमन्तरं, जघन्यत एकसमयः, विशेषचिन्तायां–जम्बूदीपविदेहे धातकीखण्डविदेहयोश्चोत्कर्षतः प्रत्येकं

१ यावत्ती० प्र. २ यवमध्यायां च चतुरः समयान्।

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम् १५ २० ॥१२१॥ २३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

वर्षपृथक्त्वमन्तरं जघन्यत एकः समयः, तथा सामान्यतः पुष्करवरद्वीपे विशेषचिन्तायां च तत्रस्थयोर्द्वयोरपि विदेहयोः प्रत्येकमुत्कर्षतः साधिकं वर्षमन्तरं जघन्यत एकः समयः, उक्तं च–"जंबुद्दीवे धायइ ओह विभागे य तिसु विदेहेसुं । वासपुहुत्तं अंतर पुक्खरमुभयंपि वासहियं ॥ १ ॥" कालद्वारे–भरतैरावतेषु च जन्मत उत्कृष्टमन्तरं किञ्चिदूना अष्टादश सागरोपमकोटीकोट्यः, संहरणतः सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः पुनरुभयत्राप्येकः समयः, गतिद्वारे–निरयगतेरागत्योपदेशतः सिध्यतामुत्कृष्टमन्तरं वर्षसहस्रं हेतुमाश्रित्य प्रतिबोधसम्भवेन सिध्यतां सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः पुनरुभयत्राप्येकः समयः, तिर्यग्योनिकेभ्य आगत्योपदेशतः सिध्यतां वर्षशतपृथक्त्वं हेतुमाश्रित्य प्रतिबोधतः सिध्यतां सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः पुनरुभयत्राप्येकः समयः, तिर्यग्योनिकस्त्रीभ्यो मनुष्येभ्यो मनुष्यस्त्रीभ्यः सौधर्मेशानवर्जदेवेभ्यो देवीभ्यश्च पृथक् २ समागत्योपदेशतः सिध्यतां प्रत्येकमुत्कर्षतोऽन्तरं सातिरेकं वर्षं हेतुमाश्रित्य प्रतिबोधतः सिध्यतां सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः पुनरुभयत्राप्येकः समयः, तथा पृथिव्यब्वनस्पतिभ्यो गर्भव्युक्रान्तेभ्यः प्रथमद्वितीयनरकपृथिवीभ्यामीशानदेवेभ्यः सौधर्मदेवेभ्यश्च समागत्योपदेशेन हेतुना च सिध्यतां प्रत्येकमुत्कृष्टमन्तरं सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि जघन्यत एकः समयः, वेदद्वारे–पुरुषवेदानामुत्कर्षतोऽन्तरं साधिकं वर्षं, स्त्रीनपुंसकवेदानां प्रत्येकं सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, पुरुषेभ्य उद्वृत्य पुरुषत्वेन सिध्यतां साधिकं

१ जम्बूद्वीपे धातकीखण्डे ओघे विभागे च त्रिषु विदेहेषु । वर्षपृथक्त्वमन्तरमुभयेष्वाऽपि पुष्करे वर्षाधिकम् ॥ १ ॥

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

वर्षं, शेषेषु चाष्टसु भङ्गकेषु प्रत्येकं सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः सर्वत्राप्येकः समयः, तीर्थद्वारे–तीर्थकृतां पूर्वसहस्रपृथक्त्वं उत्कर्षतोऽन्तरं, तीर्थकरीणामनन्तः कालः, अतीर्थकराणा साधिकं वर्षं, नोतीर्थसिद्धानां सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, नोतीर्थसिद्धाः प्रत्येकबुद्धाः, जघन्यतः सर्वत्रापि समयः, उक्तं च—"पुव्वसहस्सस्सपुहुत्तं तित्थकरानंतकाल तित्थगरी । नोतित्थकरा वासाहिगं तु सेसेसु संखसमा ॥ १ ॥ एएसिं च जहन्नं समओ" 'संखसमत्ति' सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, लिङ्गद्वारे–स्वलिङ्गादिषु सर्वेष्वपि जघन्यत एकः समयोऽन्तरं उत्कर्षतोऽन्यलिङ्गे गृहिलिङ्गे च प्रत्येकं सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, स्वलिङ्गे साधिकं वर्षं, चारित्रद्वारे–पूर्वभावमपेक्ष्य सामायिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणामुत्कृष्टमन्तरं साधिकं वर्षं, सामायिकच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणां सामायिकपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणां सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रिणां च किञ्चिदूनाष्टादशसागरोपमकोटीकोट्यः, जघन्यतः सर्वत्राप्येकः समयः, बुद्धद्वारे–बुद्धबोधितानामुत्कर्षतोऽन्तरं सातिरेकं वर्षं, बुद्धबोधितानां स्त्रीणां प्रत्येकबुद्धानां च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, स्वयम्बुद्धानां पूर्वसहस्रपृथक्त्वं, जघन्यतः पुनः सर्वत्रापि समयः, उक्तं च "बुद्धेहिं बोहियाणं वासहियं सेसयाण संखसमा । पुव्वसहस्सपुहुत्तं होइ सयंबुद्ध समइयरं ॥१॥" 'समइयरमिति' इतरत्-जघन्यमन्तरं समयः, ज्ञानद्वारे-मतिश्रुतज्ञानिनामुत्कृष्टमन्तरं पल्यो-

१ पूर्वसहस्रपृथक्त्वं तीर्थकराणां अनन्तः कालस्तीर्थकरीणाम् । नोतीर्थकराणां वर्षाधिकं शेषेषु तु संख्यातानि वर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ एतेषां च जघन्यं समयः ।
२ बुद्धैर्बोधितानां वर्षाधिकं शेषाणां संख्यातसहस्रसमाः । पूर्वसहस्रपृथक्त्वं भवति स्वयम्बुद्धानां समय इतरत् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पमासङ्ख्येयभागः, मतिश्रुतावधिज्ञानिनां साधिकं वर्षं, मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनां च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः सर्वत्रापि समयः, अवगाहनाद्वारे–जघन्यायामुत्कृष्टायां चावगाहनायां यवमध्ये चोत्कृष्टमन्तरं श्रेण्यसङ्ख्येयभागः, अजघन्योत्कृष्टायां साधिकं वर्षं, जघन्यतः पुनः सर्वत्रापि समयः, उत्कृष्टद्वारे–अप्रतिपतितसम्यक्त्वानां सागरोपमासङ्ख्येयभागः, सङ्ख्येयकालप्रतिपतितानामसङ्ख्येयकालप्रतिपतितानां च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, अन्ततकालप्रतिपतितानां साधिकं वर्षं, जघन्यतः सर्वत्रापि समयः, उक्तं च— "उवहिअसंखो भागो अप्पडिवडियाण सेस संखसमा । वासं अहियमणंते समओ य जहन्नओ होइ ॥ १ ॥" अन्तरद्वारे–सान्तरं सिध्यतामनुसमयद्वारे निरन्तरं सिध्यतां गणनाद्वारे एककानामेनेकेषां च सिध्यतामुत्कृष्टमन्तरं सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, जघन्यतः पुनः सर्वत्रापि समयः । गतमन्तरद्वारं, सम्प्रति भावद्वारं–तत्र सर्वेष्वपि क्षेत्रादिषु द्वारेषु पृच्छा, कतरस्मिन् भावे वर्त्तमानाः सिध्यन्तीति ?, उत्तरं–क्षायिके भावे, उक्तं च—'खेत्ताइएसु पुच्छा वागरणं सव्वहिं खइए' । गतं भावद्वारं, सम्प्रत्यल्पबहुत्वद्वारं–तत्र ये तीर्थकरा ये च जले ऊर्द्धलोकादौ च चतुष्काः सिध्यंति ये च हरिवर्षादिषु सुषमसुषमादिषु च संहरणतो दश दश सिध्यन्ति ते परस्परं तुल्याः, तथैवोत्कर्षतो युगपदेकसमयेन प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्यो विंशतिसिद्धाः स्तोकाः, तेषां स्त्रीषु दुष्पमायामेकतमस्मिन् विजये वा प्राप्यमा-

अनन्तर-सिद्धकेवल-ज्ञानम्

५

१०

१२

१ सागरोपमासंख्येयभागोऽप्रतिपतितानां शेषाणां संख्यातसहस्रसमाः । वर्षमधिकमनन्ते समयश्च जघन्यतो भवति॥ १॥ २क्षेत्रादिकेषु पृच्छा व्याकरणं सर्वत्र क्षायिके ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

णत्वात्, तथा चोक्तं—"वीसगसिद्धा इत्थी अहलोगेगविजयादिसु अओ चउरो । दसगेहिंतो थोवा" तैस्तुल्या विंशतिपृथक्त्वसिद्धाः, यतस्ते सर्वाधोलौकिकग्रामेषु बुद्धीबोधितस्त्र्यादिषु वा लभ्यन्ते, ततो विंशतिसिद्धैस्तुल्याः, यदुक्तं—"वीसपुहुत्तं सिद्धा सव्वाहोलोगबुद्धीबोहियाइ अओ वीसगेहिं तुल्ला" क्षेत्रकालयोः स्वल्पत्वात् कादाचित्कत्वेन च सम्भवादिति, तेभ्योऽष्टशतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"चउँ दसगा तह वीसा वीसपुहुत्ता य जे य अट्ठसया । तुल्ला थोवा तुल्ला संखेज्जगुणा भवे सेसा ॥१॥" ॥ गतमल्पबहुत्वद्वारं, कृताऽनन्तरसिद्धप्ररूपणा, सम्प्रति परम्परसिद्धप्ररूपणा क्रियते–तत्र सत्पदप्ररूपणा पञ्चदशस्वपि क्षेत्रादिषु द्वारेष्वनन्तरसिद्धवदविशेषेण द्रष्टव्या, द्रव्यप्रमाणचिन्तायां सर्वेष्वपि द्वारेषु सर्वत्रैवानन्ता वक्तव्याः, क्षेत्रस्पर्शने प्रागिव, कालः पुनः सर्वत्रापि अनादिरूपोऽनन्तो वक्तव्यः, अत एवान्तरमसम्भवान्न वक्तव्यम्, तदुक्तं द्रव्यप्रमाणं कालमन्तरं चाधिकृत्य सिद्धप्राभृते—"परिमाणेण अणंता कालोऽणाई अणंतओ तेसिं । नत्थि य अंतरकालो"त्ति भावद्वारमपि प्रागिव, सम्प्रत्यल्पबहुत्वं सिद्धप्राभृतक्रमेणोच्यते–समुद्रसिद्धाः स्तोकाः तेभ्यो द्वीपसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तथा जलसिद्धाः स्तोकाः तेभ्यः स्थलसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तथा ऊर्द्धलोकसिद्धाः स्तोकाः तेभ्योऽधोलोकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि तिर्यग्लोक-

१ विंशतिसिद्धाः स्त्रीषु अधोलोक एकविजयादिषु अतश्चत्वारः । दशकेभ्यः स्तोकाः । २ विंशतिपृथक्त्वसिद्धाः सर्वाधोलोकबुद्धिबोधितादिषु अतो विंशतिभिस्तुल्याः । ३ चत्वारो दशकं तथा विंशतिः विंशतिपृथक्त्वं च ये चाष्टशतम् । तुल्याः स्तोकास्तुल्याः संख्येयगुणा भवेयुः शेषाः ॥ १ ॥ ४ परिमाणेन अनन्ताः कालोऽनाद्यनन्तकस्तेषाम् । नास्ति चान्तरकाल इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"सामुद्दीव जलथल दुण्हं २ तु थोव संखगुणा । उड्ढअहतिरियलोए थोवा संखागुणा संखा ॥ १ ॥" तथा लवणसमुद्रसिद्धाः सर्वस्तोकाः तेभ्यः कालोदसमुद्रसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेऽभ्योऽपि जम्बूद्वीपसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्यो धातकीखण्डसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि पुष्करवरद्वीपार्द्धसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"लवणे कालोए वा जंबुद्दीवे य धायईसंडे । पुक्खरवरे य दीवे कमसो थोवा य संखगुणा॥१॥" तथा जम्बूद्वीपे संहरणतो हिमवच्छिखरिसिद्धाः सर्वस्तोकाः १ तेभ्यो हैमवतैरण्यवतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २ तेभ्योऽपि महाहिमवद्रुक्मिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ३ तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरुसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः४ तेभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यात् ५, तेभ्योऽपि निषधनीलवत्सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ६ तेभ्योऽपि भरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थानत्वात् ७, तेभ्यो महाविदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, सदाभावात् ८, सम्प्रति धातकीखण्डे क्षेत्रविभागेनोच्यते–धातकीखण्डे संहरणतो हिमवत्शिखरिसिद्धाः सर्वस्तोकाः १ तेभ्यो महाहिमवद्रुक्मिसिद्धाः संख्येयगुणाः २ तेभ्योऽपि निषधनीलवत्सिद्धाः संख्येयगुणाः ३ तेभ्योऽपि हैमवतैरण्यवतसिद्धा विशेषाधिकाः ४ तेभ्यो देवकुरूत्तरकुरुसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ५ तेभ्यो हरिवर्षरम्यकसिद्धा विशेषाधिकाः ६ तेभ्योऽपि भरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ७

परम्पर-सिद्धकेवलं

५

१०

१ समुद्रे द्वीपे जले स्थले द्वयोर्द्वयोस्तु स्तोकाः संख्येयगुणाः । ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोके स्तोकाः संख्यगुणाः संख्यगुणाः ॥ १ ॥ २ लवणे कालोदे वा जम्बूद्वीपे च धातकीखण्डे । पुष्करवरे च द्वीपे क्रमशः स्तोकाः संख्यगुणाश्च ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥१२४॥

तेभ्योऽपि महाविदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ८, तथा पुष्करवरद्वीपार्द्धे हिमवच्छिखरिसिद्धाः सर्वस्तोकाः १ तेभ्योऽपि महाहिमवद्रुक्मिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २ तेभ्योऽपि निषधनीलवत्सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ३ तेभ्योऽपि हैमवतैरण्यवतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ४ तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरूसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ५ तेभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकसिद्धाः विशेषाधिकाः ६ तेभ्योऽपि भरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ७, स्वस्थानमितिकृत्वा, तेभ्योऽपि महाविदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यात् स्वस्थानाच्च ८, सम्प्रति-त्रयाणामपि समवायेनाल्पबहुत्वमुच्यते–सर्वस्तोका जम्बूद्वीपे हिमवच्छिखरिसिद्धाः १ तेभ्योऽपि हैमवतैरण्यवतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २ तेभ्योऽपि महाहिमवद्रुक्मिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ३ तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरुसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ४ तेऽभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ५ तेभ्योऽपि निषधनीलवत्सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ६ तेभ्योऽपि धातकीखण्डहिमवच्छिखरिसिद्धा विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः ७ ततो धातकीखण्डमहाहिमवद्रुक्मिपुष्करवरद्वीपार्द्धहिमवच्छिखरिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः स्वस्थाने तु चत्वारोऽपि परस्परं तुल्याः ८ ततो धातकीखण्डनिषधनीलवत्सिद्धाः पुष्करवरद्वीपार्द्धमहाहिमवद्रुक्मिसिद्धाश्च सङ्ख्येयगुणाः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः ९ ततो धातकीखण्डहैमवतैरण्यवतसिद्धा विशेषाधिकाः १० तेभ्योऽपि पुष्करवरद्वीपार्द्धनिषधनीलवत्सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ११ ततो धातकीखण्डदेवकुरूत्तरकुरुसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः १२ तेभ्योऽपि धातकीखण्ड एव हरिवर्षरम्यकसिद्धा विशेषाधिकाः १३ ततः पुष्करवरद्वीपार्द्धहिमवतैरण्यवतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः

परम्पर-सिद्धकेवलं

१५

२०

॥१२४॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

१४ तेभ्योऽपि पुष्करवरद्वीपार्द्धे एव देवकुरूत्तरकुरुसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः १५ तेभ्योऽपि तत्रैव हरिवर्षरम्यकसिद्धा विशेषाधिकाः १६ तेभ्योऽपि जम्बूद्वीपभरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः १७ तेभ्योऽपि धातकीखण्डसत्कभरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः १८ तेभ्योऽपि पुष्करवरद्वीपार्द्धभरतैरावतसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः १९ तेभ्योऽपि जम्बूद्वीपे विदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २० ततो धातकीखण्डविदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २१ ततोऽपि पुष्करवरद्वीपार्द्धे विदेहसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः २२, इदं च क्षेत्रविभागेनाल्पबहुत्वं सिद्धप्राभृतटीकातो लिखितं । गतं क्षेत्रद्वारं, अधुना कालद्वारं–तत्रावसर्पिण्यां संहरणत एकान्तदुष्षमासिद्धाः सर्वस्तोकाः, इतो दुष्षमासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सुषमदुष्षमासिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, कालस्यासङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽपि सुषमासिद्धाः विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि सुषमसुषमासिद्धा विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि दुष्षमसुषमासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"अइदूसमाइ थोवा संख असंखा दुवे विसेसहिया । दूसमसुसमा संखागुणा उ ओसप्पिणीसिद्धा ॥ १ ॥" एवमुत्सर्पिण्यामपि द्रष्टव्यम्, तथा चोक्तम्—"अइदूसमाइ थोवा संख असंखा उ दुन्नि सविसेसा । दूसमसुसमा संखागुणा उ उस्सप्पिणीसिद्धा ॥१॥" सम्प्रत्युत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः समुदायेनाल्पबहुत्वमुच्यते–तत्र द्वयोरप्युत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेकान्तदुष्षमासिद्धाः सर्वस्तोकाः,

१ अतिदुष्षमायां स्तोकाः संख्यगुणा असंख्यगुणाः द्वयोर्विशेषाधिकाः । दुष्षमसुषमायां संख्यगुणास्त्ववसर्पिण्यां सिद्धाः ॥ १ ॥ २ अतिदुष्षमायां स्तोकाः संख्यगुणा असंख्यगुणास्तु द्वयोरपि सविशेषाः । दुष्षमसुषमायां संख्यगुणास्तु उत्सर्पिणीसिद्धाः ॥ १ ॥

परम्पर-सिद्धकेवलं

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१२५॥

ततः उत्सर्पिण्यां दुष्षमासिद्धा विशेषाधिकाः, ततोऽवसर्पिण्यां दुष्षमासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि द्वयोरपि दुष्षमसुषमासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽवसर्पिण्यां सर्वसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्युत्सर्पिणीसर्वसिद्धा विशेषाधिकाः, गतं कालद्वारं, सम्प्रति गतिद्वारं–तत्र मानुषीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सर्वस्तोकाः, ततो मानुषेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि नैरयिकेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तिर्यग्योनिस्त्रीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तिर्यग्योनिकेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि देवीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि देवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"[१]मणुई मणुया नारय तिरिक्खिणी तह तिरिक्ख देवीओ । देवा य जहाकमसो संखेज्जगुणा मुणेयव्वा ॥१॥" तथा एकेन्द्रियेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सर्वस्तोकाः, ततः पञ्चेन्द्रियेभ्योनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तथा वनस्पतिकायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सर्वस्तोकाः, ततः पृथिवीकायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽप्यप्कायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि त्रसकायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"एगिंदिएहिं थोवा सिद्धा पञ्चेंदिएहिं संखगुणा । तरुपुढविआउतसकाइएहिं संखागुणा कमसो ॥ १ ॥" तथा

१ मनुष्यो मनुजा नारकाः तिरश्यस्तथा तिर्यञ्चो देव्यः । देवाश्च यथाक्रमं संख्येयगुणा ज्ञातव्याः ॥ १ ॥ २ एकेन्द्रियेभ्यः स्तोकाः सिद्धाः पञ्चेन्द्रियेभ्यः संख्यगुणाः । तरुपृथ्व्यप्त्रसकायिकेभ्यः संख्यगुणाः क्रमात् ॥ २ ॥

परम्पर-सिद्धकेवलं १५ २० २२ ॥१२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

चतुर्थपृथिवीतोऽनन्तरागताः सिद्धाः सर्वस्तोकाः, तेभ्यस्तृतीयपृथिवीतोऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि द्वितीयपृथिवीतोऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पर्याप्तबादरप्रत्येकवनस्पतिभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पर्याप्तबादरपृथिवीकायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पर्याप्तबादराप्कायेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि भवनपतिदेवीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि भवनवासिदेवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि व्यन्तरीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि व्यन्तरदेवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि ज्योतिष्कदेवीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि ज्योतिष्कदेवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि मनुष्यस्त्रीभ्योऽप्यनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि मनुष्येभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्रथमनरकपृथिवीतोऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तिर्यग्योनिस्त्रीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तिर्यग्योनिकेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि अनुत्तरोपपातिकदेवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि ग्रैवेयकेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्यच्युतदेवलोकादनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि आरणदेवेभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, एवमधोमुखं तावन्नेयं यावत् सनत्कुमारादनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानदेवीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः

परम्पर-सिद्धकेवलं

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि सौधर्मदेवीभ्योऽनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि ईशानदेवेभ्योऽप्यनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सौधर्मदेवेभ्योऽप्यनन्तरागताः सिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"नरगचउत्थापुढवी तच्चा दोच्चा तरू पुढवि आऊ । भवणवइदेवि देवा एवं वणजोइसाणंपि ॥ १ ॥ मणुई मणुस्स नारयपढमा तह तिरिक्खिणीयतिरिया य । देवा अणुत्तराई सवेवि सणंकुमारंता ॥२॥ ईसाणदेवि सोहम्मदेवि ईसाणदेव सोहम्मा । सवेवि जहाकमसो अणंतरायाउ संखगुणा ॥ ३ ॥ गतं गतिद्वारं, सम्प्रति वेदद्वारं—अत्र सर्वस्तोका नपुंसकसिद्धाः, तेभ्यः स्त्रीसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पुरुषसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"थोवा नपुंस इत्थी संखा संखगुणा तओ पुरिसा ।" तीर्थद्वारे—सर्वस्तोकाः तीर्थकरीसिद्धाः ततः तीर्थकरीतीर्थे प्रत्येकबुद्धसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि तीर्थकरीतीर्थेऽतीर्थकरीसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि तीर्थकरीतीर्थे एवातीर्थकरसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः तीर्थकरसिद्धा अनन्तगुणाः तेभ्योऽपि तीर्थकरतीर्थे प्रत्येकबुद्धसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि तीर्थकरतीर्थ एव साध्वीसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि तीर्थकरतीर्थ एवातीर्थकरसिद्धाः

१ नरकचतुर्थीपृथिव्याः तृतीयायाः द्वितीयायाः तरोः पृथ्व्या अब्भ्यः । भवनपतिदेवीदेवेभ्यः एवं व्यन्तरज्योतिष्केभ्यः ॥ १ ॥ मानुषीमनुजप्रथमनरकेभ्यः तथा तिरश्चीभ्यस्तिर्यग्भ्यश्च । देवा अनुत्तराद्याः सर्वेऽपि सनत्कुमारान्ताः ॥ २ ॥ ईशानदेवी सौधर्मदेवीशानसौधर्मदेवाः । सर्वेऽपि यथाक्रमं अनन्तरागताः संख्येयगुणाः ॥ ३ ॥ २ स्तोका नपुंसकाः स्त्रियः संख्यगुणाः संख्यगुणास्ततः पुरुषाः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सङ्ख्येयगुणाः, लिङ्गद्वारे–गृहिलिङ्गसिद्धाः सर्वस्तोकाः तेभ्योऽन्यलिङ्गसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि स्वलिङ्ग- सिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"गिहिअन्नसलिंगेहिं सिद्धा थोवा दुवे असंखगुणा" चारित्रद्वारे–सर्वस्तोकाश्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रसिद्धाः तेभ्यः सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि छेदोपस्थापनसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, सामायिकरहितं च छेदोपस्थापनं भग्नचारित्रस्यावगन्तव्यं, तेभ्योऽपि सामायिकच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि सामायिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातचारित्रसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"थोवा परिहारचऊ पंचग संखा असंख छेयतिगं। छेयचउकं संखे सामाइयतिगं च संखगुणं ॥१॥" बुद्धद्वारे–सर्वस्तोकाः स्वयम्बुद्धसिद्धाः, तेभ्यः प्रत्येकबुद्धसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि बुद्धीबोधितसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि बुद्धबोधितसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, ज्ञानद्वारे–मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानिनः सिद्धाः सर्वस्तोकाः तेभ्यो मतिश्रुतज्ञानिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानिसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि मतिश्रुतावधिज्ञानिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"मणपज्जवनाणतिगे दुगे चउक्के मणस्स नाणस्स। थोवा संख असंखा ओहितिगे हुंति

सिद्धानामल्पबहुत्वं सू. ३० ५ १० ११

नं० १ गृह्यन्यलिङ्गैः सिद्धाः स्तोकाः द्वये असंख्यगुणाः। २ स्तोकाः परिहारचतुष्के पञ्चके संख्यगुणाः असंख्यगुणाश्छेदत्रिके। छेदचतुष्के संख्यगुणाः सामायिकत्रिके च संख्यगुणाः ॥ १ ॥ ३ मनःपर्यायज्ञानत्रिके द्विके चतुष्के मनःपर्यायज्ञानस्य। स्तोकाः संख्यगुणा असंख्यगुणाः अवधित्रिके भवन्ति संख्येयाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

संखेज्जा ॥१॥" अवगाहनाद्वारे–सर्वस्तोका द्विहस्तप्रमाणजघन्यावगाहनासिद्धाः तेभ्यो धनुःपृथक्त्वाभ्यधिकपञ्चधनुःशतप्रमाणोत्कृष्टावगाहनासिद्धा असङ्ख्येयगुणाः ततो मध्यमावगाहनासिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च "[1]ओगाहणा जहन्ना थोवा उक्कोसिया असंखगुणा । तत्तोवि असंखगुणा नायव्वा मज्झिमाएवि ॥ १ ॥" अत्रैव सिद्धप्राभृतटीकाकारोपदर्शितो विशेष उपदर्श्यते–सर्वस्तोकाः सप्तहस्तप्रमाणावगाहनासिद्धाः तेभ्यः पञ्चधनुःशतप्रमाणावगाहनासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ततो न्यूनपञ्चधनुःशतप्रमाणावगाहनासिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽपि सातिरेकसप्तहस्तप्रमाणावगाहनासिद्धा विशेषाधिकाः, उत्कृष्टद्वारे–सर्वस्तोकाः अप्रतिपतितसिद्धाः तेभ्यः सङ्ख्येयकालप्रतिपतितसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्यसङ्ख्येयकालप्रतिपतितसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्यनन्तकालप्रतिपतितसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"[2]अप्पडिवाइयसिद्धा संखासंखाअणंतकाला य । थोव असंखेज्जगुणा संखेज्जगुणा असंखेज्ज (ख) गुणा ॥१॥" अन्तरद्वारे–सर्वस्तोकाः षण्मासान्तरसिद्धाः तत एकसमयान्तरसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ततो द्विसमयान्तरसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः ततोऽपि त्रिसमयान्तरसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः एवं तावद्वाच्यं यावद्यवमध्यं, ततः सङ्ख्येयगुणहीनास्तावद्वक्तव्या यावदेकसमयहीनषण्मासान्तरसिद्धेभ्यः षण्मासान्तरसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, अनुसमयद्वारे–सर्वस्तोकाः अ-

१ अवगाहनायां जघन्यायां स्तोका उत्कृष्टायां असंख्यगुणाः । ततोऽप्यसंख्यगुणा ज्ञातव्या मध्यमायामपि ॥ १ ॥ २ अप्रतिपतितसिद्धाः संख्यासंख्यानन्तकालाश्च । स्तोका असंख्यगुणाः संख्येयगुणाः असंख्येयगुणाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्टसमयसिद्धाः ततः सप्तसमयसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः षट्समयसिद्धाः सङ्ख्येयगुणा एवं समयसमयहान्या तावद्वाच्यं यावद् द्विसमयसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"अट्ठसमयंमि थोवा संखेज्जगुणा उ सत्तसमया उ। एवं पडिहायंते जाव पुणो दोन्नि समया उ ॥ १ ॥" अत्र 'अट्ठसमयंमी'त्यादौ द्विगुसमाहारत्वादेकवचनं, गणनाद्वारे–सर्वस्तोका अष्टशतसिद्धाः ततः सप्ताधिकशतसिद्धा अनन्तगुणाः तेभ्योऽपि षडधिकशतसिद्धाः अनन्तगुणाः तेभ्यः पञ्चाधिकशतसिद्धा अनन्तगुणा एवमेकैकहान्या अनन्तगुणाः तावद्वाच्या यावदेकपञ्चाशत्सिद्धेभ्यः पञ्चाशत्सिद्धा अनन्तगुणाः, ततः तेभ्य एकोनपञ्चाशत्सिद्धा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्यष्टचत्वारिंशत्सिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, एवमेकैकपरिहान्या तावद्वाच्यं यावत्षड्विंशतिसिद्धेभ्यः पञ्चविंशतिसिद्धा असङ्ख्येयगुणाः, ततः तेभ्यश्चतुर्विंशतिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि त्रयोविंशतिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः एवमेकैकहान्या सङ्ख्येयगुणाः तावद्वाच्या यावद्द्विसिद्धेभ्य एकैकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, उक्तं च—"अट्ठसयसिद्ध थोवा सत्तहियसया अणंतगुणिया य। एवं परिहायंते सयगाओ जाव पन्नासं ॥ १ ॥ तत्तो पण्णासाओ असंखगुणिया उ जाव पणवीसं। पणवीसा आरंभा संखगुणा होंति एगं जा ॥ २॥" सम्प्रति अस्मिन्नेवाल्पबहुत्वद्वारे यो विशेषः सिद्धप्राभृते दर्शितः स विनेयजनानुग्रहाय दर्श्यते–तत्र सर्वस्तोका अधो-

सिद्धानामल्पबहुत्वं सू. ३० ५ १० ११

१ अष्टसमये स्तोकाः संख्येयगुणास्तु सप्तसामयिकास्तु। एवं परिहीयमाणे यावत् पुनर्द्विसामयिकास्तु ॥ १ ॥ २ अष्टशतसिद्धाः स्तोकाः सप्ताधिकशतं अनन्तगुणाश्च। एवं परिहीयमाणे शताद्यावत् पञ्चाशत् ॥ १ ॥ ततः पञ्चाशतः असंख्यगुणास्तु यावत्पञ्चविंशतिः। पञ्चविंशतेः आरभ्य संख्यगुणाः भवन्ति एकं यावत् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

मुखसिद्धाः, ते च पूर्ववैरिभिः पादेनोत्पाट्य नीयमाना अधोमुखकायोत्सर्गव्यवस्थिता वा वेदितव्याः, तेभ्य ऊर्द्धस्थितकायोत्सर्गस्थिताः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि उत्कटिकासनसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि वीरासनसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि न्युब्जासनसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, न्युब्जोपविष्टा एवाधोमुखा द्रष्टव्याः, तेभ्योऽपि पार्श्वस्थितसिद्धा सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्युत्तानस्थितसिद्धाः सङ्ख्येयगुणाः, तथा चैतदेव पश्चानुपूर्व्याऽभिहितं—"उत्ताणग पासिल्लग निउज्ज वीरासणे य उक्कडिए । उद्धट्ठिय ओमंथिय संखेज्जगुणेण हीणा उ ॥ १ ॥" तदेवमुक्तमल्पबहुत्वद्वारं । सम्प्रति सर्वद्वारगतालपबहुत्वविशेषोपदर्शनाय सन्निकर्षद्वारमुच्यते–सन्निकर्षो नाम संयोगः,ह्रस्वदीर्घयोरिव, विवक्षितं किञ्चित्प्रतीत्य विवक्षितस्याल्पतया बहुत्वेन वाऽवस्थानरूपः सम्बन्धः, उक्तं च—"संजोग सन्निगासो पडुच्च सम्बन्ध एगट्ठा" तत्रेयं व्याप्तिः–यत्र यत्राष्टशतमुपलभ्यते तत्र तत्रोपरितनमष्टकरूपमङ्कमपनीय शेषस्य शतस्य चतुर्भिर्भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धाः पञ्चविंशतिः, तत्र पञ्चविंशतिसङ्ख्येयप्रथमचतुर्थभागे क्रमेण सङ्ख्येयगुणहानिर्वक्तव्या, तद्यथा—सर्वेष्वेवैकैकसमयसिद्धाः, ततो द्विकद्विकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि त्रिकत्रिकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, एवं तावद्वाच्यं यावत्पञ्चविंशतिसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, उक्तं च—"पढमो चउत्थभागो पणवीसा तत्थ संखेज्जगुणहाणी

१ उत्तानाः पार्श्वका न्युब्जा वीरासनाश्चोत्कटिकाः । ऊर्ध्वस्थिता अवाङ्मुखा संख्येयगुणेन हीना एव ॥ १ ॥ २ संयोगः सन्निकर्षः प्रतीत्य संबन्ध एकार्थानि । ३ प्रथमश्चतुर्थभागः पञ्चविंशतिः, तत्र संख्येयगुणहानिर्द्रष्टव्या ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठव्वत्ति" द्वितीये पुनश्चतुर्थभागे क्रमेणासङ्ख्येयगुणहानिर्वक्तव्या, तद्यथा–पञ्चविंशतिसिद्धेभ्यः षड्विंशतिसिद्धाः असङ्ख्येयगुणहीनाः, एवमेकैकवृद्ध्या असङ्ख्येयगुणहानिः तावद्वक्तव्या यावत्पञ्चाशत्, तदुक्तं–"विइए चउत्थभागे असंखगुणहानि जाव पन्नासं"ति, तृतीयस्माच्चतुर्थभागादारभ्य सर्वत्रापि अनन्तगुणहानिर्वक्तव्या, तद्यथा–पञ्चाशत्सिद्धेभ्य एकपञ्चाशत्सिद्धा अनन्तगुणहीनाः तेभ्योऽपि द्विपञ्चाशत्सिद्धा अनन्तगुणहीनाः एवमेकैकवृद्ध्या अनन्तगुणहानिस्तावद्वक्तव्या यावदष्टाधिकशतसिद्धा अनन्तगुणहीनाः, उक्तं च—"तइयपयं आइकाऊण चउत्थपयं जाव अट्ठसयं ताव अणंतगुणहाणी एगवन्नाओ आरंभ दट्ठवा ।" सिद्धप्राभृतसूत्रेऽप्युक्तं–"पढमे भागे संखा बिइए असंख अणंत तइयाए ।" तथा यत्र यत्र विंशतिसिद्धाः तत्र तत्रापि व्याप्तिरियमनुसर्त्तव्या, प्रथमे चतुर्थभागे सङ्ख्येयगुणहानिः द्वितीये असङ्ख्येयगुणहानिः तृतीये चतुर्थे वा [चा]नन्तगुणहानिः, तद्यथा–एकैकसिद्धाः सर्ववहवः तेभ्योऽपि द्विकद्विकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः एवं तावद्वाच्यं यावत्पञ्च, ततः षडादिसिद्धा असङ्ख्येयगुणहीना यावद्दश, तत एकादशादयः सर्वेऽप्यनन्तगुणहीनाः, एवमधोलोकादिष्वपि विंशतिपृथक्त्वसिद्धौ प्रथमे चतुर्थभागे सङ्ख्येयगुणहानिः, द्वितीयचतुर्थभागेऽसङ्ख्येयगुणहानिः, तृतीयस्माच्चतुर्थभागादारभ्य पुनः सर्वत्राप्यनन्तगुणहानिः, येषु तु हरिवर्षादिषु

सिद्धसन्निकर्षः सू.३०

५

१०

११

१ द्वितीये चतुर्थभागेऽसंख्यगुणहानिः यावत् पञ्चाशदिति । २ तृतीयपदमादि कृत्वा चतुर्थपदं यावदष्टशतं तावदनन्तगुणहानिः एकपञ्चाशत आरभ्य द्रष्टव्या । ३ प्रथमे भागे संख्या द्वितीयेऽसंख्या अनन्ताः तृतीये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानेषूत्कर्षतो दश दश सिध्यन्ति तत्रैवं व्याप्तिः–त्रिकं यावत्सङ्ख्येयगुणहानिः, ततश्चतुष्के पञ्चके चासङ्ख्येयगुणहानिः, ततः षट्कादारभ्य सर्वत्रापि अनन्तगुणहानिः, तद्यथा—एककसिद्धाः सर्वबहवः, ततो द्विकद्विकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि त्रिकत्रिकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि चतुश्चतुःसिद्धाः असङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि पञ्चपञ्चसिद्धा असङ्ख्येयगुणहीनाः, ततः षडादयः सर्वेऽप्यनन्तगुणहीनाः, यत्र पुनरवगाहनायवमध्यादावुत्कर्षतोऽष्टौ सिध्यन्तः प्राप्यन्ते तत्रैवं व्याप्तिः–चतुष्कं यावत्सङ्ख्येयगुणहानिः, ततः परमनन्तगुणहानिः, तद्यथा—एककसिद्धाः सर्वबहवः, तेभ्योऽपि द्विकद्विकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि त्रिकत्रिकसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि चतुश्चतुःसिद्धाः सङ्ख्येयगुणहीनाः, परं पञ्चपञ्चादयोऽनन्तगुणहीनाः, अत्रासङ्ख्येयगुणहानिर्न विद्यते, यत्र पुनरूर्द्धलोकादावुत्कर्षतश्चत्वारः सिध्यन्तः प्राप्यन्ते तत्र एवं व्याप्तिः–एककसिद्धाः सर्वबहवः, तेऽभ्यो द्विकद्विकसिद्धा असङ्ख्येयगुणहीनाः, तेभ्योऽपि त्रिकत्रिकसिद्धा अनन्तगुणहीनाः, तेभ्योऽपि चतुश्चतुस्सिद्धा अनन्तगुणहीनाः, अत्र सङ्ख्येयगुणहानिर्न विद्यते, तदुक्तं—"[1]जत्थ चत्तारि सिद्धा दिट्ठा तत्थ संखेज्जगुणहाणी नत्थि 'संखेज्जविवज्जिय चउक्के' इति वचना"दिति । यत्र पुनर्लवणादौ द्वौ द्वावुत्कर्षतः सिध्यन्तौ दृष्टौ तत्रैवं व्याप्तिः–एककसिद्धाः सर्वबहवः, ततो द्विकद्विकसिद्धा अनन्तगुणहीनाः, तदुक्तं—"[2]लवणादौ दो सिद्धा दिट्ठा तत्थ एक्कसिद्धा

१ यत्र चत्वारः सिद्धा दृष्टास्तत्र संख्येयगुणहानिर्नास्ति, संख्येयविवर्जितात्वतुष्के । २ लवणादौ द्वौ सिद्धौ दृष्टौ तत्रैककसिद्धा बहवः, द्विकसिद्धा अनन्तगुणहीनाः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [८६]

बहुगा, दुगसिद्धा अणंतगुणहीणा।" तदेवमिह सन्निकर्षो द्रव्यप्रमाणे सप्रपञ्चं चिन्तितः, शेषेषु तु द्वारेषु सिद्धप्राभृत- टीकातो भावनीयः, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्नोच्यते–सिद्धप्राभृतसूत्रं तद्वृत्तिं चोपजीव्य मलयगिरिः। सिद्धस्वरूपमेत- न्निरवोचच्छिष्यबुद्धिहितः ॥ १ ॥ सम्प्रति विशेषतरं जिज्ञासुरनन्तरसिद्धस्वरूपं शिष्यः प्रश्नयन्नाह— अनन्तर-सिद्धभेदाः सू. ३१

से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं?, अणंतरसिद्धकेवलनाणं पन्नरसविहं पण्णत्तं, तंजहा–तित्थसिद्धा १ अतित्थसिद्धा २ तित्थसिद्धा ३ अतित्थयरसिद्धा ४ सयंबुद्धसिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहियसिद्धा ७ इत्थिलिंगसिद्धा ८ पुरिसलिंगसिद्धा ९ नपुंसगलिंगसिद्धा १० सलिंगसिद्धा ११ अन्नलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा १४ अणेगसिद्धा १५ सेत्तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं। (सू. ३१) ५

अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं?, सूरिराह–अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं, पञ्चदशविधता च तस्यानन्तरसिद्धानामनन्तरपाश्चात्यभवरूपोपाधिभेदापेक्षया पञ्चदशविधत्वात्, ततोऽनन्तरसिद्धानामेवानन्तरभवोपाधिभेदतः पञ्चदशविधतां मुख्यत आह–'तद्यथे'त्युपप्रदर्शने 'तित्थसिद्धा' इत्यादि, तीर्यते संसारसागरोऽनेनेति तीर्थं- यथावस्थितसकलजीवाजीवादिपदार्थसार्थप्ररूपकं परमगुरुप्रणीतं प्रवचनं, तच्च निराधारं न भवतीतिकृत्वा सङ्घः १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल संपादने मुद्रण अशुद्धित्वात् सू० क्रम २१ स्थाने सू० क्रम ३१ मुद्रितं, तत् मात्र क्रमांकन दोषः

*** अनन्तरकेवलज्ञानस्य १५ भेदानां कथनं

प्रथमगणधरो वा वेदितव्यं, उक्तं च—"तित्थं भंते ! तित्थं तित्थकरे तित्थं ?, गोअमा ! अरहा ताव नियमा तित्थंकरे, तित्थं पुण चाउव्वण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा" तस्मिन्नुत्पन्ने ये सिद्धाः ते तीर्थसिद्धाः, तथा तीर्थस्याभावोऽतीर्थं, तीर्थस्याभावश्चानुत्पादोऽपान्तराले व्यवच्छेदो वा, तस्मिन् ये सिद्धाः तेऽतीर्थसिद्धाः, तत्र तीर्थस्यानुत्पादे सिद्धा मरुदेवीप्रभृतयः, न हि मरुदेव्यादिसिद्धिगमनकाले तीर्थमुत्पन्नमासीत्, तथा तीर्थस्य व्यवच्छेदश्चन्द्रप्रभस्वामिसुविधिस्वाम्यपान्तराले, तत्र ये जातिस्मरणादिनाऽपवर्गमवाप्य सिद्धाः ते तीर्थव्यवच्छेदसिद्धाः, तथा तीर्थकराः सन्तो ये सिद्धाः ते तीर्थकरसिद्धाः, अन्ये सामान्यकेवलिनः, तथा स्वयम्बुद्धाः सन्तो ये सिद्धाः ते स्वयम्बुद्धसिद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः सन्तो ये सिद्धाः ते प्रत्येकबुद्धसिद्धाः, अथ स्वयम्बुद्धप्रत्येकबुद्धानां कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, बोध्युपधिश्रुतलिङ्गकृतो विशेषः, तथाहि—स्वयम्बुद्धा बाह्यप्रत्ययमन्तरेणैव बुध्यन्ते, स्वयमेव—बाह्यप्रत्ययमन्तरेणैव निजजातिस्मरणादिना बुद्धाः स्वयम्बुद्धा इति व्युत्पत्तेः, ते च द्विधा—तीर्थकराः तीर्थकरव्यतिरिक्ताश्च, इह तीर्थकरव्यतिरिक्तैरधिकारः, आह च चूर्णिकृत्—"ते दुविहा-तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता वा, इह वइरित्तेहिं अहिगारो" इति । प्रत्येकबुद्धास्तु बाह्यप्रत्ययमपेक्ष्य बुध्यन्ते, प्रत्येकं—बाह्यं वृषभादिकं कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः प्रत्येक-

१ तीर्थं भदन्त ! तीर्थं तीर्थकरस्तीर्थं ?, गौतम ! अर्हन् तावत् नियमात् तीर्थकरः, तीर्थं पुनश्चातुर्वर्णः श्रमणसङ्घः प्रथमगणधरो वा । २ ते द्विविधाः-तीर्थकराः तीर्थकरव्यतिरिक्ता वा, इह व्यतिरिक्तैरधिकारः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [८७]

स्वयंप्रत्येक-बुद्धाः

बुद्धा इति व्युत्पत्तेः, तथा च श्रूयते–बाह्यवृषभादिप्रत्ययसापेक्षा करकण्ड्वादीनां बोधिः, बोधिप्रत्ययमपेक्ष्य च बुद्धाः सन्तो नियमतः प्रत्येकमेव विहरन्ति, न गच्छवासिन इव संहताः, आह च चूर्णिकृत्–"पत्तेयं-बाह्यं वृषभादिकारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाः बहिःप्रत्ययप्रतिबुद्धानां च पत्तेयं नियमा विहारो जम्हा तम्हा य ते पत्तेयबुद्धा" इति, तथा स्वयम्बुद्धानामुपधिर्द्वादशविध एव पात्रादिकः, प्रत्येकबुद्धानां तु द्विधा–जघन्यत उत्कर्षतश्च, तत्र जघन्यतो द्विविधः उत्कर्षतो नवविधः प्रावरणवर्जः, आह च चूर्णिकृत्—"पत्तेयबुद्धाणं जहन्नेणं दुविहो उक्कोसेण नवविहो नियमा पाउरणवज्जो भवइ।" तथा स्वयम्बुद्धानां पूर्वाधीतं श्रुतं भवति वा न वा, यदि भवति ततो लिङ्गं देवता वा प्रयच्छति गुरुसन्निधौ वा गत्वा प्रतिपद्यते, यदि चैकाकी विहरणसमर्थं इच्छा च तस्य तथारूपा जायते तत एकाकी विहरत्यन्यथा गच्छवासेऽवतिष्ठते, अथ पूर्वाधीतं श्रुतं न भवति तर्हि नियमाद्गुरुसंनिधौ गत्वा लिङ्गं प्रतिपद्यते, गच्छं चावश्यं न मुञ्चति, उक्तं च चूर्णिकृता–(ग्रन्थाग्रं ४०००) "पुव्वाधीतं से सुयं हवइ वा न वा, जइ से नत्थि तो लिंगं नियमा गुरुसन्निहे पडिवज्जइ, गच्छे य विहरइत्ति, अहवा पुव्वाधीतसुयसंभवो अत्थि तो से लिंगं देवया पयच्छइ गुरुसन्निधे वा पडिवज्जइ, जइ य एगविहारविहरणजोगो इच्छा च से तो एक्को चेव विहरइ, अन्नहा गच्छे विहरइ"त्ति। प्रत्येकबुद्धानां तु पूर्वाधीतं श्रुतं नियमतो भवति, तच्च जघन्यत एकादशाङ्गानि

१ प्रत्येकं नियमाद्विहारो यस्मात् तस्माच्च ते प्रत्येकबुद्धाः। २ प्रत्येकबुद्धानां जघन्येन द्विविध उत्कृष्टेन नवविधः प्रावरणवर्जो नियमात् भवति। ३ संस्कृतप्रायं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [८७]

श्रीमलयगिरीयः नन्दीवृत्ति ॥१३१॥

उत्कर्षतः किञ्चिन्यूनानि दश पूर्वाणि, तथा लिङ्गं तस्मै देवता प्रयच्छति, लिङ्गरहितो वा कदाचिद्भवति, तथा चाह चूर्णिकृत्–"पत्तेयबुद्धाणं पुव्वाधीतं सुयं नियमा भवइ, जहन्नेणं एक्कारस अंगा, उक्कोसेणं भिन्नदसपुव्वी, लिंगं च से देवया पयच्छइ लिंगवज्जिओ वा भवति, जतो भणियं–'रूप्पं पत्तेयबुद्धा' इति" तथा बुद्धाः–आचार्यास्तैर्बोधिताः सन्तो ये सिद्धाः ते बुद्धबोधितसिद्धा, एते च सर्वेऽपि केचित् स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, स्त्रिया लिङ्गं स्त्रीलिङ्गं, स्त्रीत्वस्योपलक्षणमित्यर्थः, तच्च त्रिधा, तद्यथा–वेदः शरीरनिर्वृत्तिर्नेपथ्यं च, तत्रेह शरीरनिर्वृत्त्या प्रयोजनं, न वेदनेपथ्याभ्यां, वेदे सति सिद्धत्वाभात्, नेपथ्यस्य चाप्रमाणत्वात्, आह च चूर्णिकृत्—"इत्थिए लिंगं इत्थिलिंगं, इत्थिए उवलक्खणंति वुत्तं भवति, तं च तिविहं–वेयो सरीरनिवत्ती नेवत्थं च, इह सरीरनिवत्तीए अहिगारो, न वेयनेवत्थेहिं"ति। तस्मिन् स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानास्सन्तो ये सिद्धाः ते स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, एतेन यदाहुराशाम्बराः–न स्त्रीणां निर्वाणमिति, तदपास्तं द्रष्टव्यम्, स्त्रीनिर्वाणस्य साक्षादनेन सूत्रेणाभिधानात्, तत्प्रतिषेधस्य च युक्त्यनुपपन्नत्वात्, तथाहि–मुक्तिपथो ज्ञानदर्शनचारित्राणि, "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" (तत्त्वा० अ० १ सू० १) इति वचनात्, सम्यग्दर्शनादीनि च पुरुषाणामिव स्त्रीणामपि अविकलानि, तथाहि–दृश्यन्ते स्त्रियोऽपि सकलमपि प्रवचनार्थमभिरोचयमानाः जानते च षडावश्यककालिकोत्कालिकादिभेदभिन्नं श्रुतं परिपालयन्ति च सप्तदशविधमकलङ्कं संयमं धारयन्ति च देवासुराणामपि दुर्द्धरं ब्रह्मचर्यं तप्यन्ते च तपांसि मासक्षपणादीनि, ततः कथमिव तासां न मोक्ष-

स्त्रीमुक्तिसिद्धिः १५ २० ॥१३१॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्भवः ?, स्यादेतद्–अस्ति स्त्रीणां सम्यग्दर्शनं ज्ञानं च न पुनश्चारित्रं, संयमाभावात्, तथाहि—स्त्रीणामवश्यं वस्त्रपरिभोगेन भवितव्यम्, अन्यथा विवृताङ्गास्ताः तिर्यक्स्त्रिय इव पुरुषाणामभिभवनीया भवेयुः, लोके च गर्होपजायते, ततोऽवश्यं ताभिर्वस्त्रं परिभोक्तव्यं, वस्त्रपरिभोगे च सपरिग्रहता, सपरिग्रहत्वे च संयमाभाव इति, तदसमीचीनं, सम्यक् सिद्धान्तापरिज्ञानात्, परिग्रहो हि परमार्थतो मूर्च्छाऽभिधीयते, 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति वचनप्रामाण्यात्, तथाहि–मूर्च्छारहितो भरतचक्रवर्त्ती सान्तःपुरोऽप्यादर्शकगृहेऽवतिष्ठमानो निष्परिग्रहो गीयते, अन्यथा केवलोत्पादासम्भवात्, अपिच—यदि मूर्च्छाया अभावेऽपि वस्त्रसंसर्गमात्रं परिग्रहो भवेत् ततो जिनकल्पं प्रतिपन्नस्य कस्यचित् साधोस्तुषारकणानुषक्ते प्रपतति शीते केनाप्यविषह्योपनिपातमद्य शीतमिति विभाव्य धर्म्मार्थिना शिरसि वस्त्रे परिक्षिप्ते तस्य सपरिग्रहता भवेत्, न चैतदिष्टं, तस्मान्न संसर्गमात्रं परिग्रहः, किन्तु मूर्च्छा, सा च स्त्रीणां वस्त्रादिषु न विद्यते, धर्मोपकरणमात्रतया तस्योपादानात्, न खलु ता वस्त्रमन्तरेणात्मानं रक्षितुमीशते, नापि शीतकालादिष्वर्वाग्दृशायां स्वाध्यायादिकं कर्त्तुं, ततो दीर्घतरसंयमपरिपालनाय यतनया वस्त्रं परिभुञ्जाना न ताः परिग्रहवत्यः, अथोच्येत–सम्भवति नाम स्त्रीणामपि सम्यग्दर्शनादिकं रत्नत्रयं, परं न तत् सम्भवमात्रेण मुक्तिपदप्रापकं भवति, किन्तु प्रकर्षप्राप्तं, अन्यथा दीक्षानन्तरमेव सर्वेषामप्यविशेषेण मुक्तिपदप्राप्तिप्रसक्तेः, सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयप्रकर्षश्च स्त्रीणामसम्भवी, ततो न निर्वाणमिति, तदप्ययुक्तम्, स्त्रीषु रत्नत्रयप्रकर्षासम्भवग्राहकस्य प्रमाणस्याभावात्,

स्त्रिमुक्ति-सिद्धिः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः

॥१३२॥

न खलु सकलदेशकालव्याप्त्या स्त्रीषु रत्नत्रयप्रकर्षासम्भवग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानं वा प्रमाणं विजृम्भते, देशकालविप्रकृष्टतया तत्र प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः, तदप्रवृत्तौ चानुमानस्याप्यसम्भवात्, नापि तासु रत्नत्रयप्रकर्षासम्भवप्रतिपादकः कोऽप्यागमो विद्यते, प्रत्युत सम्भवप्रतिपादकः स्थाने स्थानेऽस्ति, यथा इदमेव प्रस्तुतं सूत्रं, ततो न तासां रत्नत्रयप्रकर्षासम्भवः, अथ मन्येथाः–स्वभावत एवातपेनेव छाया विरुध्यते स्त्रीत्वेन रत्नत्रयप्रकर्षः ततस्तदसम्भवोऽनुमीयते, तदयुक्तं, युक्तिविरोधात्, तथाहि–रत्नत्रयप्रकर्षः स उच्यते यतोऽनन्तरं मुक्तिपदप्राप्तिः, स चायोग्यवस्थाचरमसमये, अयोग्यावस्था चास्माद्दशामप्रत्यक्षा, ततः कथं विरोधगतिः?, न हि अदृष्टेन सह विरोधः प्रतिपत्तुं शक्यते, मा प्रापत् पुरुषेष्वतिप्रसङ्गः, ननु जगति सर्वोत्कृष्टपदप्राप्तिः सर्वोत्कृष्टेनाध्यवसायेनावाप्यते, नान्यथा, एतच्चोभयोरप्यावयोरागमप्रामाण्यवलतः सिद्धं, सर्वोत्कृष्टे च द्वे पदे–सर्वोत्कृष्टं दुःखस्थानं सर्वोत्कृष्टं सुखस्थानं च, तत्र सर्वोत्कृष्टदुःखस्थानं सप्तमनरकपृथिवी, अतः परं परमदुःखस्थानस्याभावात्, सर्वोत्कृष्टसुखस्थानं तु निःश्रेयसं, ततः परमन्यस्य सुखस्थानस्यासम्भवात्, ततः स्त्रीणां सप्तमनरकपृथिवीगमनमागमे निषिद्धं, निषेधस्य च कारणं तद्गमनायोग्यतयाविधसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः, ततः सप्तमपृथिवीगमननिषेधादवसीयते–नास्ति स्त्रीणां निर्वाणं, निर्वाणहेतोः तथारूपसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणामस्यासम्भवात्, तथा चात्र प्रयोगः–असम्भवनिर्वाणाः स्त्रियः, सप्तमपृथिवीगमनत्वाभावात्, सम्मूर्च्छिमादिवत्, तदेतदयुक्तं, यतो यदि नाम स्त्रीणां सप्तमनरकपृथिवीगमनं प्रति सर्वोत्कृष्टमनोवीर्य-

स्त्रिमुक्ति-सिद्धिः

२०

॥१३२॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणत्यभावः तत एतावता कथमवसीयते ? निःश्रेयसमपि प्रति तासां सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावो, न हि यो भूमि- स्त्रिमुक्ति-
कर्षणादिकं कर्म कर्तुं न शक्नोति स शास्त्राण्यप्यवगाहुं न शक्नोतीति प्रत्येतुं शक्यं, प्रत्यक्षविरोधात्, अथ सम्मूर्च्छिमा- सिद्धिः
दिषूभयमपि प्रति सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावो दृष्टः ततोऽत्राप्यवसीयते, ननु यदि तत्र दृष्टस्तर्हि कथमत्रावसीयते?, न
खलु बहिर्व्याप्तिमात्रेण हेतुर्गमको भवति, किन्त्वन्तर्व्याप्त्या, अन्तर्व्याप्तिश्च प्रतिबन्धबलेन सिध्यति, न चात्र प्रतिबंधो
विद्यते, न खलु सप्तमपृथिवीगमनं निर्वाणगमनस्य कारणं, नाप्येवमेवाविनाभावप्रतिबन्धतः सप्तमपृथिवीगमनाविना- ५
भावि निर्वाणगमनं, चरमशरीरिणां सप्तमपृथिवीगमनमन्तरेणैव निर्वाणगमनभावात्, न च प्रतिबन्धमन्तरेण एक-
स्याभावेऽन्यस्याभावो, मा प्रापद्यस्य तस्य वा कस्यचिदेकस्याभावे सर्वस्याभावप्रसङ्गः, यद्येवं तर्हि कथं सम्मूर्च्छिमादिषु
निर्वाणगमनाभाव इति ?, उच्यते, तथाभवस्वाभाव्यात्, तथाहि—ते सम्मूर्च्छिमादयो भवस्वभावत एव न सम्य-
ग्दर्शनादिकं यथावत् प्रतिपत्तुं शक्नुवन्ति, ततो न तेषां निर्वाणसम्भवः, स्त्रियस्तु प्रागुक्तप्रकारेण यथावत्सम्यग्- १०
दर्शनादिरत्नत्रयसम्पद्योग्याः, ततस्तासां न निर्वाणाभावः। अपिच—भुजपरिसर्पा द्वितीयामेव पृथिवीं यावद्गच्छन्ति,
न परतः, परपृथिवीगमनहेतुतथारूपमनोवीर्यपरिणत्यभावात्, तृतीयां यावत् पक्षिणः, चतुर्थीं चतुष्पदाः, पञ्चमी-
मुरगाः, अथ च सर्वेऽप्यूर्द्धमुत्कर्षतः सहस्रारं यावद्गच्छन्ति, तन्नाधोगतिविषये मनोवीर्यपरिणतिवैषम्यदर्शनादूर्ध्व-
गतावपि तद्वैषम्यं, तथा च सति सिद्धं स्त्रीपुंसामधोगतिवैषम्येऽपि निर्वाणं समामिति कृतं प्रसङ्गेन, तथा पुँल्लि १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

दीप अनुक्रम [८७]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१३३॥

शरीरनिर्वृत्तिरूपे व्यवस्थिताः सन्तो ये सिद्धास्ते पुँलिङ्गसिद्धाः, एवं नपुंसकलिङ्गसिद्धाः, तथा स्वलिङ्गे-रजोहरणादिरूपे व्यवस्थिताः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वलिङ्गसिद्धाः, तथा अन्यलिङ्गे–परिव्राजकादिसम्बन्धिनि वल्कलकषायादिवस्त्रादिरूपे द्रव्यलिङ्गे व्यवस्थिताः सन्तो ये सिद्धास्तेऽन्यलिङ्गसिद्धाः, गृहिलिङ्गे सिद्धा गृहिलिङ्गसिद्धा मरुदेवीप्रभृतयः, तथा 'एकसिद्धा' इति एकस्मिन् २ समये एकका: सन्तो ये सिद्धास्ते एकसिद्धाः, 'अणेगसिद्धा' इति एकस्मिन् समये अनेके सिद्धाः अनेकसिद्धाः, अनेके चैकस्मिन् समये सिध्यन्त उत्कर्षतोऽष्टोत्तरशतसङ्ख्या वेदितव्याः । आह— ननु तीर्थसिद्धातीर्थसिद्धरूपभेदद्वये एव शेषभेदा अन्तर्भवन्ति तत्किमर्थं शेषभेदोपादानमुच्यते?, सत्यम् अन्तर्भवन्ति परं न तीर्थसिद्धातीर्थसिद्धभेदद्वयोपादानमात्रात् शेषभेदपरिज्ञानं भवति, विशेषपरिज्ञानार्थं चैष शास्त्रारम्भप्रयास इति शेषभेदोपादानं ॥

से किं तं परम्परसिद्धकेवलनाणं ?, परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा–अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा संखिज्जसमयसिद्धा असंखिज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा, से तं परंपरसिद्धकेवलनाणं, से तं सिद्धकेवलनाणं ॥ तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ,

परम्पर-सिद्धाः केवलस्वरूपं च सू. २२ गा. ५८

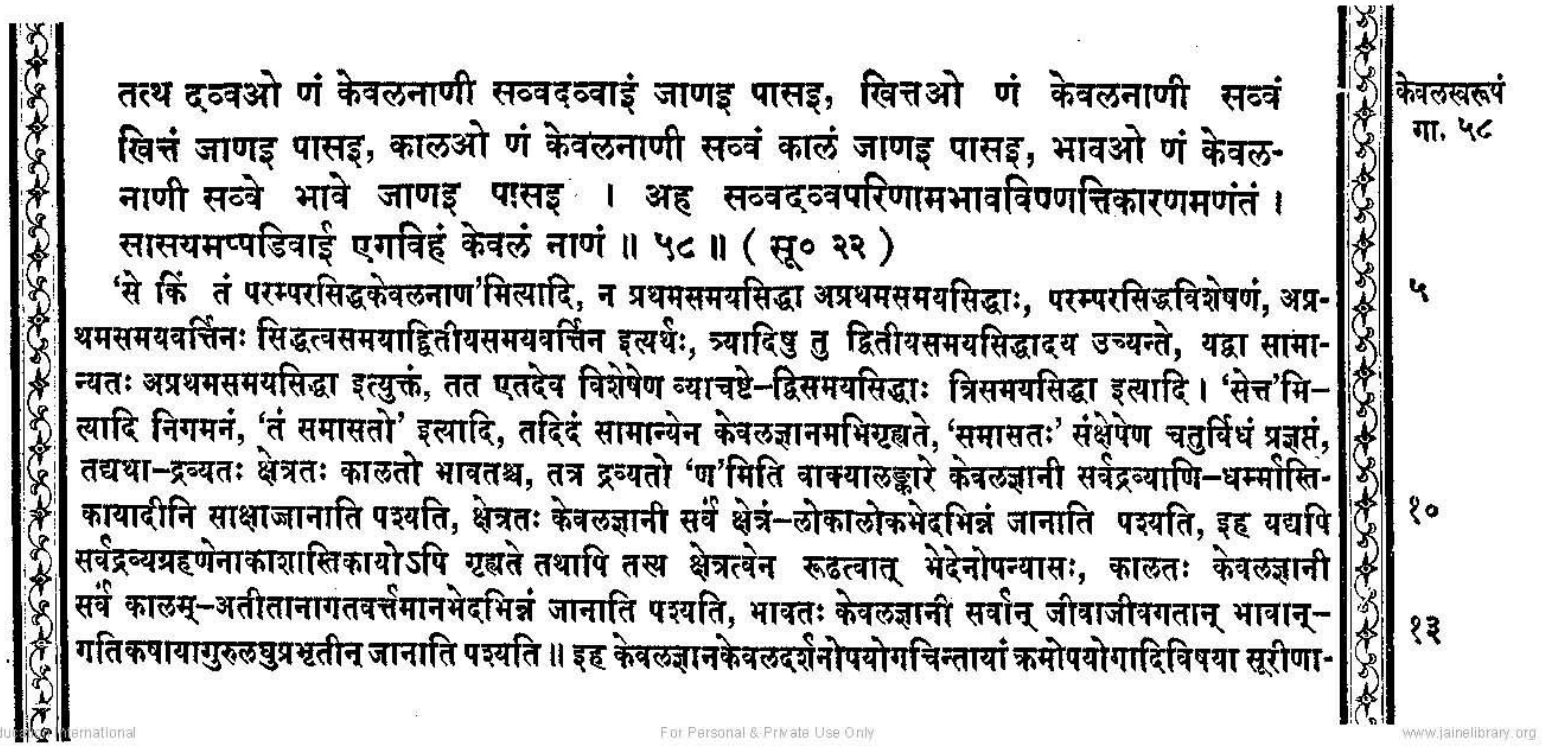
२०

॥१३३॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धकेवलज्ञानस्य द्रव्य आदि चत्वारः भेदाः;



तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ, कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ । अह सव्वदव्वपरिणामभावविण्णत्तिकारणमणंतं । सासयमप्पडिवाई एगविहं केवलं नाणं ॥ ५८ ॥ (सू० २२)

केवलस्वरूपं गा. ५८

'से किं तं परम्परसिद्धकेवलनाण'मित्यादि, न प्रथमसमयसिद्धा अप्रथमसमयसिद्धाः, परम्परसिद्धविशेषणं, अप्रथमसमयवर्त्तिनः सिद्धत्वसमयाद्वितीयसमयवर्त्तिन इत्यर्थः, त्र्यादिषु तु द्वितीयसमयसिद्धादय उच्यन्ते, यद्वा सामान्यतः अप्रथमसमयसिद्धा इत्युक्तं, तत एतदेव विशेषेण व्याचष्टे–द्विसमयसिद्धाः त्रिसमयसिद्धा इत्यादि । 'सेत्त'मित्यादि निगमनं, 'तं समासतो' इत्यादि, तदिदं सामान्येन केवलज्ञानमभिगृह्यते, 'समासतः' संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि–धर्मास्तिकायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति, क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं–लोकालोकभेदभिन्नं जानाति पश्यति, इह यद्यपि सर्वद्रव्यग्रहणेनाकाशास्तिकायोऽपि गृह्यते तथापि तस्य क्षेत्रत्वेन रूढत्वात् भेदेनोपन्यासः, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालम्–अतीतानागतवर्त्तमानभेदभिन्नं जानाति पश्यति, भावतः केवलज्ञानी सर्वान् जीवाजीवगतान् भावान्–गतिकषायागुरुलघुप्रभृतीन् जानाति पश्यति ॥ इह केवलज्ञानकेवलदर्शनोपयोगचिन्तायां क्रमोपयोगादिविषया सूरीणा-

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल संपादने स्खलनत्वात् ॥५८॥ इति मुद्रितं, अत्र गाथा क्रमांक ॥५९॥ एव वर्तते

मनेकधा विप्रतिपत्तिः, सा च चूर्णिकृता मूलटीकाकृता च दर्शिता ततो वयमपि संक्षेपतो विनेयजनानुग्रहाय तां प्रदर्शयामः—'केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली नियमा । अन्ने एगंतरियं इच्छंति सुओवएसेणं ॥ १ ॥ अन्ने न चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स । जं चिय केवलनाणं तं चिय से दंसणं विंति ॥ २ ॥' व्याख्या— 'केचन' सिद्धसेनाचार्यादयो 'भणंति' ब्रुवते, किमित्याह—'युगपद्' एकस्मिन् काले 'केवली' केवलज्ञानवान् न त्वन्यश्छद्मस्थो जानाति पश्यति च 'नियमात्' नियमेन, अन्ये पुनराचार्या जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः 'इच्छंति' मन्यन्ते, किमिति ?, आह—एकान्तरितं केवली जानाति पश्यति चेति, एकस्मिन् समये जानाति एकस्मिन्समये पश्यतीत्यर्थः । कथमेतदिच्छन्तीति ?, अत आह—श्रुतोपदेशेन, आगमानुसारेणेत्यर्थः । 'अन्ने' इत्यादि, अन्ये केचिद्वाचार्या न चैव ज्ञानाद्दर्शनं विष्वक्–पृथगिच्छन्ति जिनवरेन्द्रस्य, जिनाः–उपशान्तरागादिदोषसमूहाः तेषां वराः–प्रधाना निर्मूलत एव क्षीणसकलरागादिदोषोद्भवनिबन्धनमोहनीयकर्म्माणः, क्षीणमोहा इत्यर्थः, तेषामिन्द्रो–भगवान् उत्पन्नकेवलज्ञानः तस्य,न त्वन्यस्य, किन्तु यदेव केवलज्ञानं तदेव 'से' तस्य केवलिनो दर्शनं ब्रुवते, क्षीणसकलावरणस्य देशज्ञानाभवात् केवलदर्शनस्याप्यभावात्, तस्यापि वस्त्वेकदेशभूतसामान्यमात्रग्राहितया देशज्ञानकल्पत्वादिति भावना । तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात् प्रथमं युगपदुपयोगवादिमतं प्रदर्श्यते–'जं केवलाइं साई अपज्जवसियाइं दोवि भणियाइं । तो विंति केइ जुगवं जाणइ पासइ य सव्वन्नू ॥ ३ ॥' व्याख्या—'यत्' यस्मात् कारणात् द्वे अपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञानकेवलदर्शने समये–सिद्धान्ते साद्यपर्यवसिते भणिते, ततो ब्रुवते केचन सिद्धसेनाचार्यादयः,किमित्याह—'युग- युगपदुपयो-
पद्' एकस्मिन् समये काले जानाति पश्यति च सर्वज्ञ इति । विपक्षे बाधामाह–"इहराऽऽईनिहणत्तं मिच्छाऽऽवर- गनिरासः
णक्खओत्ति व जिणस्स । इयरेयरावरणया अहवा निक्कारणावरणं ॥ ४ ॥" 'इतरथा' युगपत्केवलज्ञानदर्शनभा-
वानभ्युपगमे 'आदिनिधनत्वं' सादिसपर्यवसितत्वं केवलज्ञानकेवलदर्शनयोः प्राप्नोति, तथाहि—उत्पत्तिसमयभा- ५
विकेवलज्ञानोपयोगानन्तरमेव केवलदर्शनोपयोगसमये केवलज्ञानाभावः पुनस्तदनन्तरं केवलज्ञानोपयोगसमये
केवलदर्शनाभाव इति द्वे अपि केवलज्ञानकेवलदर्शने सादिसपर्यवसिते, तथा मिथ्या–अलीकः आवरणक्षयः-
केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणक्षयो जिनस्य प्राप्नोति १, न ह्यपनीतावरणौ द्वौ प्रदीपौ क्रमेण प्रकाश्यं प्रकाशयतः,
तद्वत् इहापि केवलज्ञानदर्शने युगपन्निर्मूलतोऽपनीतस्वस्वावरणे ततः कथं ते क्रमेण स्वप्रकाश्यं प्रकाशयतः?,
क्रमेणेति चेदभ्युपगमः तर्हि मिथ्या तदावरणक्षय इति २, तथा इतरेतरावरणता प्राप्नोति, तथाहि—यदि स्वा- १०
वरणे निःशेषतः क्षीणेऽपि अन्यतरभावेऽन्यतरभावो नेष्यते तर्हि ते एव परस्परमावरणे जाते, तथा च सति सिद्धा-
न्तपक्षक्षितिरिति ३। अथवा निष्कारणावरणं, यदि हि साकल्येन स्वावरणापगमेऽप्यन्यतरोपयोगकालेऽन्यतरस्य भावो
नेष्यते तर्हि तस्यान्यतरस्यावरणमकारणमेव जातं, कारणस्य कर्मलक्षणस्य प्रागेव सर्वथापगमात् , तथा च सति सदैव १३
भावाभावप्रसङ्गः, तथा चोक्तं–"नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणादिति" ४। 'तह य असवन्नुत्तं असवदरिसत्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णप्पसंगो य। एगंतरोवयोगे जिणस्स दोसा बहुविहा य ॥ ५ ॥' तथा चेति समुच्चये, यदि क्रमेणोपयोग इष्यते तर्हि भगवतोऽसर्वज्ञत्वमसर्वदर्शित्वप्रसङ्गश्च प्राप्नोति, तथाहि–यदि क्रमेण केवलज्ञानकेवलदर्शनोपयोगाभ्युपगमस्तर्हि न कदाचिदपि भगवान् सामान्यविशेषावेककालं जानाति पश्यति वा, ततोऽसर्वज्ञत्वासर्वदर्शित्वप्रसङ्गः, पाक्षिकं वा सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च प्रसज्यते, तथाहि–यदा सर्वज्ञो न तदा सर्वदर्शी, दर्शनोपयोगाभावात्, यदा तु सर्वदर्शी न तदा सर्वज्ञो, ज्ञानोपयोगाभावादिति ५। एवमेकान्तरोपयोगेऽभ्युपगम्यमाने सति जिनस्य दोषा बहुविधाः प्रादुर्भवन्ति। एवं परेणोक्ते सति आगमवादी जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण आह—'भण्णइ भिन्नमुहुत्तोवओगकालेऽवि तो तिनाणस्स। मिच्छा छावट्ठी सागरोवमाइं खओवसमे ॥ ६ ॥' यदुक्तम्–इतरथा आदिनिधनत्वं प्राप्नोति, तदसमीचीनं, उपयोगमनपेक्ष्य लब्धिमात्रापेक्षया केवलज्ञानकेवलदर्शनयोः साद्यपर्यवसितत्वस्याभिधानात्, मत्यादिषु षट्षष्टिसागरोपमाणामिव, यदप्युक्तं–'मिथ्यावरणक्षय' इति तत्रापि भण्यते, यदि साद्यपर्यवसितं कालमुपयोगाभावत आवरणक्षयस्य मिथ्यात्वमापद्यते 'तो'त्ति ततः 'त्रिज्ञानिनो' मतिश्रुतावधिज्ञानवतो भिन्नमुहूर्त्तलक्षणोपयोगकालेऽपि यो नाम मत्यादीनां षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत् क्षयोपशमः सूत्रेऽभिहितः स मिथ्या प्राप्नोति, तावन्तं कालं मत्यादीनामुपयोगासम्भवात् युगपद्भावासम्भवाच्च, यापि इतरेतरावरणता पूर्वमासञ्जिता साऽप्यसमीचीना, यतो जीवस्वाभाव्यादेव मत्यादीनामिव केवलज्ञानकेवलदर्शनयोर्युगपदुपयोगासम्भवः, ततः सा कथमुपपद्यते?, मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रापदन्यथा मत्यादीनामपि परस्परमावरणत्वप्रसङ्गः, योऽपि निष्कारणावरणदोष उद्भावितः सोऽपि जीवस्वाभाव्यादेव तथोपयोगप्रवृत्तेरपास्तो द्रष्टव्यः, अन्यथा मत्यादीनामपि प्रसज्येत, तेषामप्युत्कर्षतः षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत् क्षयोपशमस्याभिधानात्, तावत्कालं चोपयोगाभावादिति । वादिमतमाशङ्क्य दूषयति—'अह नवि एवं तो सुण जहेव खीणंतरायओ अरिहा । संतेऽवि अंतरायक्खयम्मि पंचप्पयारंमि ॥ ७ ॥ सयं न देइ लहइ व भुंजइ उवभुंजई व सव्वण्णू । कज्जंमि देइ लहइ व भुंजइ व तहेव इहइंपि ॥८॥' 'अपिः अवधारणे, अथ न एवम्–उक्तेन प्रकारेण मन्यसे क्षायोपशमिकक्षायिकयोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावासम्भवात्, असम्भवश्च परस्परवैलक्षण्यात्, ततः शृणु यथा क्षयकार्यमपि ज्ञानं दर्शनं चावश्यमनवरतं न प्रवर्त्तते इति, यथैव खलु क्षीणान्तरायकोऽर्हन् सत्यप्यन्तरायक्षये पञ्चप्रकारे, इहान्तरायकर्मणो दानान्तरायादिभेदेन पञ्चप्रकारत्वात् तत्क्षयोऽपि पञ्चप्रकारः उक्तः, सततं न ददाति लभते वा भुङ्क्ते उपभुङ्क्ते वा सर्वज्ञः, किन्तु कार्ये समुत्पन्ने सति ददाति लभते वा भुङ्क्ते वा उपलक्षणमेतत् उपभुङ्क्ते वा, तथैव 'इहापि' केवलज्ञानदर्शनविषये सत्यपि तदावरणक्षये न युगपत्तदुपयोगसम्भवः, तथाजीवस्वाभाव्यादिति । स्यादेतद्, यदि पञ्चविधान्तरायक्षये सत्यपि भगवान् न सततं दानादिक्रियासु प्रवर्त्तते ततः किं तत्क्षयस्य फलमित्यत आह—'दिंतस्स लभंतस्स व भुंजंतस्स व जिणस्स एस गुणो । खीणंतराययत्ते जं से विग्घं न संभवइ ॥ ९ ॥' जिनस्य क्षीणसकलघातिकर्मणः क्षीणान्तरायत्वे सत्येष गुणो जायते, यदुत–'से' तस्य जिनस्य ददतो लभमानस्य वा

युगपदुपयोगनिरासः ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भुञ्जानस्य वकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादुपभुञ्जानस्य च यद्विघ्नो न भवति, प्राकृतत्वाच्च विघ्नशब्दस्य नपुंसकनिर्देशः । अमुमेव गुणं प्रकृतेऽपि योजयन्नाह–'उवउत्तस्सेमेव य नाणंमि व दंसणंमि व जिणस्स । खीणावरणगुणोऽयं जं कसिणं मुणइ पासइ वा ॥ १० ॥' 'एवमेव' दानादिक्रियासु प्रवृत्तस्येव ज्ञाने दर्शने चोपयुक्तस्य जिनस्य केवलिनोऽयं क्षीणावरणत्वे सति गुणो यत् कृत्स्नं लोकालोकात्मकं जगज्जानाति पश्यति वा, न तु जानतः पश्यतो वा विघ्नः सम्भवतीति । वाद्याह—'पासंतोऽवि न जाणइ जाणं व न पासई जइ जिणिंदो । एवं न कथाऽयेसो सव्वण्णू सव्वदरिसी य ॥ ११ ॥' यदि पश्यन्नपि भगवान् न जानाति, दर्शनकाले ज्ञानोपयोगानभ्युपगमात्, जानन् वा यदि न पश्यति, ज्ञानोपयोगकाले दर्शनोपयोगानभ्युपगमात्, तत एवं सति न कदाचिदप्यसौ सर्वज्ञः सर्वदर्शी च प्राप्नोतीति । सिद्धान्तवाद्याह—'जुगवमयाणंतोऽवि हु चउहिवि नाणेहि जह व चउनाणी । भन्नइ तहेव अरिहा सव्वण्णू सव्वदरिसी य ॥ १२ ॥' यथा मत्यादिभिः मनःपर्यायान्तैश्चतुर्भिर्ज्ञानैर्युगपदजानन्नपि जीवस्वाभाव्यादेव युगपदुपयोगाभावात् लब्ध्यपेक्षया चतुर्ज्ञानी भण्यते तथैवार्हन्नपि भगवान् युगपत्केवलज्ञानदर्शनोपयोगाभावेऽपि निःशेषतदावरणक्षयात् शक्त्यपेक्षया सर्वज्ञः सर्वदर्शी चोच्यते इत्यदोषः । पुनरप्यत्र वाद्याह—'तुल्ले उभयावरणक्खयंमि पुव्वं समुब्भवो कस्स । दुविहुवयोगाभावे जिणस्स जुगवंति चोएइ ॥१३॥' 'तुल्ये' समाने, एककालमित्यर्थः, 'उभयावरणक्षये' केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणक्षये 'पूर्वं' प्रथमं 'समुद्भवः' उत्पादः कस्य भवेत् ?–किं ज्ञानस्य ? उत दर्शनस्य ?, यदि ज्ञानस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स किंनिबन्धन इति वाच्यं, तदावरणक्षयनिबन्धन इति चेत्, ननु स दर्शनेऽपि तुल्य इति तस्याप्युद्भवप्रसङ्गः, एवं दर्शनपक्षेऽपि वाच्यं, अतः प्रथमसमये स्वावरणक्षयेऽपि अन्यतरस्याभावेऽप्यन्तरस्याप्यभाव एव विपर्ययो वा प्राप्नोतीति युगपद्विधिविधोपयोगाभावाभ्युपगमे जिनस्य वादी चोदयतीति । अत्र सिद्धान्तवाद्याह—'भन्नइ न एस नियमो जुगवुप्पन्नेण जुगवमेवेह । होयवं उवयोगेण एत्थ सुण ताव दिट्ठंतं ॥ १४ ॥' 'भण्यते' अत्रोत्तरं दीयते, न एष नियमो यदुत शक्त्यपेक्षया युगपदुत्पन्नेनापि ज्ञानेन युगपदेवेह उपयोगेन–उपयोगरूपतयाऽपि भवितव्यमिति । कुत इति चेत्, तथादर्शनात्, आह च—'एत्थ सुण ताव दिट्ठंतं' 'अत्र' अस्मिन् विचारप्रक्रमे शृणु तावत् दृष्टान्तं । तमेव दर्शयति—'जह जुगवुप्पत्तीएऽवि सुत्ते सम्मत्तमइसुयाईणं । नत्थि जुगवोवओगो सवेसु तहेव केवलिणो ॥ १५ ॥' यथा सम्यक्त्वमतिश्रुतादीनाम्, आदिशब्दादवधिज्ञानपरिग्रहः, युगपदुत्पत्तावपि 'सूत्रे' आगमेऽभिहितायां न सर्वेष्वेव मत्यादिषु युगपदुपयोगो भवति, "जुगवं दो नत्थि उवओगा" इति वचनप्रामाण्यात्, तथैव केवलिनोऽपि शक्त्यपेक्षया युगपत्केवलज्ञानकेवलदर्शनोत्पत्तौ अपि न द्वयोरपि युगपदुपयोगो भवति । अमुमेवार्थं सूत्रेण संवादयन्नाह—'भणियं चिय पण्णत्तीपण्णवणाईसु जह जिणो समयं । जं जाणइ नवि पासइ तं अणुरयणप्पभाईणं ॥ १६ ॥' भणितं चैतदनन्तरोदितं प्रज्ञप्तौ प्रज्ञापनादिषु–यथा यं समयं केवली जानाति अण्वादिकं रत्नप्रभादिकं च न तमेव समयं पश्यतीति, 'अणुरयणप्पभाईणं' इत्यत्र प्राकृतत्वाद्द्वितीयार्थे षष्ठी, ततः क्रमेणैव केवलज्ञा-

युगपदुपयोगनिरासः ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नकेवलदर्शनयोरुपयोगो न युगपदिति स्थितं । साम्प्रतं ये केवलज्ञानकेवलदर्शनाभेदवादिनस्तन्मतमुपन्यस्यन्नाह—
'जह किर खीणावरणे देसन्नाणाण सम्भवो न जिणे । उभयावरणातीते तह केवलदंसणस्सावि ॥१७॥' यथा 'किले'-
त्यासोक्तौ क्षीणावरणे भगवति जिने 'देशज्ञानानां' मत्यादीनां न सम्भवः तथा 'उभयावरणातीते' केवलज्ञानकेव-
लदर्शनावरणातीते भगवति केवलदर्शनस्यापि न सम्भवः । कथमिति चेदुच्यते–इह तावद् युगपदुपयोगद्वयं न जा-
यते, सूत्रे तत्र तत्र प्रदेशे निषेधात्, न चैतदपि समीचीनं यत्तदावरणं क्षीणं तथापि तन्न प्रादुर्भवति, ऊर्द्धमपि
तदभावप्रसङ्गात्, ततः केवलदर्शनावरणक्षयादुपजायमानं केवलदर्शनं सामान्यमात्रग्राहकं केवलज्ञान एव सर्वात्मना
सर्ववस्तुग्राहकेऽन्तर्भवतीति तदेवैकं केवलज्ञानं चकास्ति, न ततः पृथग्भूतं केवलदर्शनमिति । अत्र सिद्धान्तवादी
केवलदर्शनस्य स्वरूपतः पार्थक्यं सिसाधयिषुरिदमाह—'देसन्नाणोवरमे जह केवलणाणसंभवो भणिओ । देसदंसण-
विगमे तह केवलदंसणं होऊ ॥ १८ ॥' यथा भगवति मत्यादिदेशज्ञानोपरमे केवलज्ञानसम्भवः स्वरूपेण भणितस्त्वया
तथा चक्षुर्दर्शनादिदेशदर्शनविगमे सति केवलदर्शनमपि ततः पृथक् स्वरूपतो भवतु, न्यायस्य समानत्वात्, अन्यथा
पृथक् तदावरणकल्पनानैरर्थक्यापत्तेः । 'अह देसनाणदंसणविगमे तव केवलं मयं नाणं । न मयं केवलदंसणमिच्छा-
मित्तं नणु तवेदं ॥ १९ ॥' अथ देशज्ञानदर्शनविगमे तव केवलज्ञानमेवैकं मतं, न मतं केवलदर्शनमिति, अत्राह–ननु
तवेदमिच्छामात्रम्–अभिप्रायमात्रं, न त्वत्र काचनापि युक्तिः, न चेच्छामात्रतो वस्तुसिद्धिः, सर्वस्य सर्वेष्वर्थेषु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धिप्रसक्तेः, यदप्युक्तं 'न चैतदपि समीचीनमित्यादि' तदपि न समीचीनं, क्षयोपशमाविशेषेऽपि मत्यादीनामिव जीवस्वाभाव्यादेव केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणक्षयेऽपि सततं तयोरप्रादुर्भावाविरोधात्, अथोच्येत "दव्वतो णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ" इत्यादि सूत्रं केवलज्ञानकेवलदर्शनाभेदप्रतिपादनपरं, केवलज्ञानिन एव सतो ज्ञानदर्शनयोरभेदेन विषयनिर्देशात्, सूत्रं च युष्माकमपि प्रमाणं, तत्कथमत्र विप्रतिपद्यते इति ?, तत्राह—'भन्नइ जहोहिनाणी जाणइ पासइ य भासियं सुत्ते। न य नाम ओहिदंसणनाणेगत्तं तह इहंपि ॥ २० ॥' 'भण्यते' अत्रोत्तरं दीयते—यथा अवधिज्ञानी जानाति पश्यति चेति सूत्रे भाषितं, तदुक्तं—"दव्वओ णं ओहिनाणी उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ" इत्यादि, न च तथा सूत्रे भणितमपि नामावधिज्ञानावधिदर्शनयोरेकत्वं, तथा इहापि केवलज्ञानकेवलदर्शनयोरेकत्वं सूत्रवशादासज्यमानं न भविष्यति, सूत्रस्य सामान्यतः प्रवृत्तेः, अपि च—जानाति पश्यति चेति द्वावपि शब्दावेकार्थौ न भवतो, नापि तत्र सूत्रे एकार्थिकवक्तव्यताधिकारः, किन्तु सामान्यविशेषविषयाधिगमाभिधानपरौ। ततश्च—'जह पासइ तह पासउ पासइ जेणेह दंसणं तं से। जाणइ जेणं अरिहा तं से नाणंति घेत्तव्वं ॥२१॥' 'यथा' येन प्रकारेण ज्ञानादभेदेन भेदेन वा पश्यति तथा पश्यतु, एतावत्तु वयं ब्रूमो—येन सामान्यावगमाकारेणार्हन् पश्यति तद्दर्शनमिति ज्ञातव्यं, येन पुनर्विशेषावगमरूपेणाकारेण जानाति तत् 'से' तस्यार्हतो ज्ञानमिति, न च युगपदुपयोगद्वयं, अनेकशः सूत्रे निषेधात्, ततः क्रमेण भगवतो ज्ञानं दर्शनं चेति। एतदेव सूत्रेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शयति–"नाणंमि दंसणंमि व एत्तो एगयरयंमि उवउत्ता । सव्वस्स केवलिस्सा जुगवं दो नत्थि उवओगा ॥ २२॥" ज्ञाने तथा दर्शने वाशब्दो विकल्पार्थः, अनयोरेककालम् एकतरस्मिन् कस्मिंश्चिदुपयुक्ताः केवलिनो, न तु द्वयोः, यतः सर्वस्य केवलिनो युगपत् द्वावुपयोगौ न स्त इति, तस्मादेतत्सूत्रबलादपि क्रमेण ज्ञानं दर्शनं च सिद्धं । अपि च— 'उवओगो एगयरो पण्णवीसइमे सए सिणायस्स । भणिओ वियडत्थोचिय छट्ठुद्देसे विसेसेणं ॥ २३ ॥' भगवत्यां पञ्चविंशतितमे शते अध्ययनापरपर्याये षष्ठोद्देशके स्नातकस्य-केवलिनो 'विशेषेण' विशेषतः एकतर उपयोगो भणितः, तत्कथमेवमागमार्थमुपलभ्यात्मानं विप्रलम्भेमहि ?। साम्प्रतं सिद्धान्तवाद्येव जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण आत्मनोऽनुद्धतत्वमागमभक्तिं च परां ख्यापयन्नाह—'कस्स व नाणुमयमिणं जिणस्स जइ होज्ज दोन्नि उवयोगा । नूणं न होंति जुगवं जओ निसिद्धा सुए बहुसो ॥ २४ ॥' निगदसिद्धेत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः–अथशब्द इहोपन्यासार्थः, पूर्वमुद्देशसूत्रे मनःपर्यवज्ञानानन्तरं केवलज्ञानमुक्तं तत्सम्प्रति तात्पर्यनिर्देशार्थमुपन्यस्यते इत्यर्थः, सर्वाणि च तानि द्रव्याणि च सर्वद्रव्याणि–जीवादिलक्षणानि तेषां परिणामाः–प्रयोगविस्रसोभयजन्या उत्पादादयः पर्यायाः सर्वद्रव्यपरिणामास्तेषां भावः–सत्ता स्वलक्षणं स्वं स्वसाधारणं रूपं तस्य विशेषेण ज्ञापनं विज्ञप्तिः विज्ञानं वा विज्ञप्तिः, परिच्छेद इत्यर्थः, तस्याः कारणं–हेतुः सर्वद्रव्यपरिणामविज्ञप्तिकारणं, केवलज्ञानमिति सम्बध्यते, उक्तं च—"सव्वदवाण पओगवीससामीसया जहाजोगं । परिणामा पज्जाया जम्मविणासादओ

१ सर्वद्रव्याणां प्रयोगविस्रसोभयजन्याः यथायोगम् । परिणामाः पर्यायाः जन्मविनाशादयो ज्ञेयाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नेओ ॥ १ ॥ तेसिं भावो सत्ता सलक्खणं वा विसेसओ तस्स । नाणं विन्नत्तीए कारणं केवलं नाणं ॥ २ ॥" तच्च ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं, तथा शश्वद्भवं शाश्वतं, सदोपयोगवदिति भावार्थः, तथा प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति न प्रतिपाति अप्रतिपाति, सदाऽवस्थायीत्यर्थः, ननु यत् शाश्वतं तदप्रतिपात्येव ततः किमनेन विशेषणेन ?, तदयुक्तं, सम्यक्-शब्दार्थापरिज्ञानात्, शाश्वतं हि नाम अनवरतं भवदुच्यते, तच्च कियत्कालमपि भवति, यावद्भवति तावन्निरन्तरं भवनात्, ततः सकलकालभावप्रतिपत्त्यर्थमप्रतिपातिविशेषणोपादानं, ततोऽयं तात्पर्यार्थः–अनवरतं–सकलकालं भवतीति, अथवा एकपदव्यभिचारेऽपि विशेषणविशेष्यभावो भवतीति ज्ञापनार्थं विशेषणद्वयोपादानं, तथाहि— शाश्वतमप्रतिपात्येव, अप्रतिपाति तु शाश्वतमशाश्वतं च भवति, यथा अप्रतिपात्यवधिज्ञानमिति । तथा एकविधम्– एकप्रकारं, तदावरणक्षयस्यैकरूपत्वात्, केवलं च तज्ज्ञानं च (केवलज्ञानं) ॥ इह तीर्थकृत् समुपजातकेवलालोकस्ती-र्थंकरनामकर्मोदयतः तथास्वाभाव्यादुपकार्यकृतोपकारानपेक्षं सकलसत्त्वानुग्रहाय सवितेव प्रकाशं देशनामातनोति, तत्राव्युत्पन्नविनेयानां केषाञ्चिदेवमाशङ्का भवेद् (यत्) भगवतोऽपि तीर्थकृतस्तावद्द्रव्यश्रुतं ध्वनिरूपं वर्त्तते, द्रव्यश्रुतं च भावश्रुतपूर्वकं, ततो भगवानपि श्रुतज्ञानीति, ततस्तदाशङ्कापनोदार्थमाह—

केवलनाणेणऽत्थे नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे । ते भासइ तित्थयरो वइजोग सुअं हवइ सेसं

१ तेषां भावः सत्ता स्वलक्षणं वा विशेषतस्तस्य । ज्ञानं विज्ञप्तेः कारणं केवलज्ञानम् ॥ १ ॥

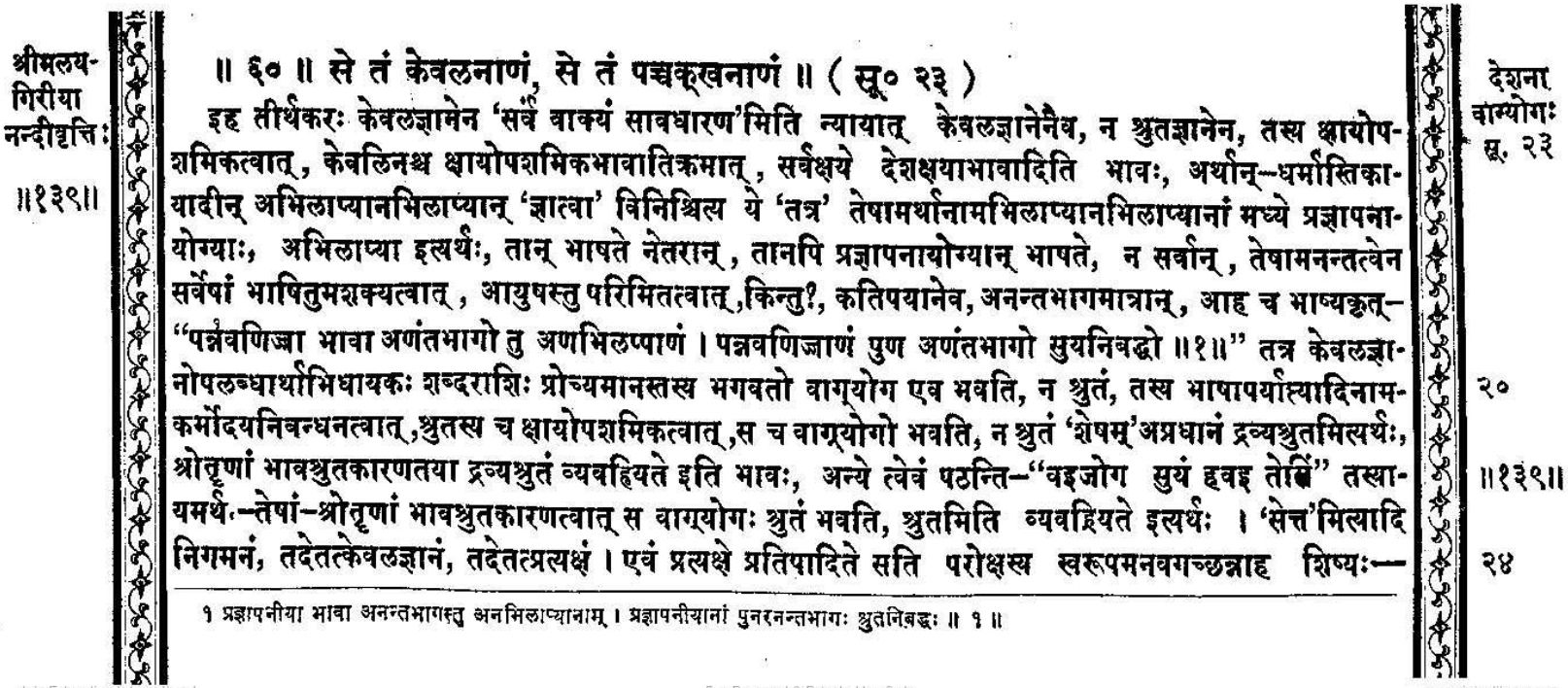
केवलस्वरूपं देशनाया वाग्योगत्वं च गा. ५९-६० ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [९२]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१३९॥

॥ ६० ॥ से तं केवलनाणं, से तं पच्चक्खनाणं ॥ (सू० २३)

इह तीर्थकरः केवलज्ञानेन 'सर्वं वाक्यं सावधारण'मिति न्यायात् केवलज्ञानेनैव, न श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्, केवलिनश्च क्षायोपशमिकभावातिक्रमात्, सर्वक्षये देशक्षयाभावादिति भावः, अर्थान्–धर्मास्तिकायादीन् अभिलाप्यानभिलाप्यान् 'ज्ञात्वा' विनिश्चित्य ये 'तत्र' तेषामर्थानामभिलाप्यानभिलाप्यानां मध्ये प्रज्ञापनायोग्याः, अभिलाप्या इत्यर्थः, तान् भाषते नेतरान्, तानपि प्रज्ञापनायोग्यान् भाषते, न सर्वान्, तेषामनन्तत्वेन सर्वेषां भाषितुमशक्यत्वात्, आयुषस्तु परिमितत्वात्,किन्तु[1], कतिपयानेव, अनन्तभागमात्रान्, आह च भाष्यकृत्–"पन्नवणिज्जा भावा अणंतभागो तु अणभिलप्पाणं । पन्नवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुयनिबद्धो ॥१॥" तत्र केवलज्ञानोपलब्धार्थाभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योग एव भवति, न श्रुतं, तस्य भाषापर्याप्त्यादिनामकर्मोदयनिबन्धनत्वात्,श्रुतस्य च क्षायोपशमिकत्वात्,स च वाग्योगो भवति, न श्रुतं 'शेषम्'अप्रधानं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः, श्रोतॄणां भावश्रुतकारणतया द्रव्यश्रुतं व्यवह्रियते इति भावः, अन्ये त्वेवं पठन्ति–"वइजोग सुयं हवइ तेसिं" तस्यायमर्थः–तेषां–श्रोतॄणां भावश्रुतकारणत्वात् स वाग्योगः श्रुतं भवति, श्रुतमिति व्यवह्रियते इत्यर्थः । 'सेत्त'मित्यादि निगमनं, तदेतत्केवलज्ञानं, तदेतत्प्रत्यक्षं । एवं प्रत्यक्षे प्रतिपादिते सति परोक्षस्य स्वरूपमनवगच्छन्नाह शिष्यः—

१ प्रज्ञापनीया भावा अनन्तभागस्तु अनभिलाप्यानाम् । प्रज्ञापनीयानां पुनरनन्तभागः श्रुतनिबद्धः ॥ १ ॥

देशना वाग्योगः सू. २३

२०

॥१३९॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४]

दीप अनुक्रम [९३]

से किं तं परुक्खनाणं ?, परुक्खनाणं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा–आभिणिबोहिअनाणपरोक्खं च सुअनाणपरोक्खं च, जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुअनाणं तत्थाभिणिबोहियनाणं, दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं, तहवि पुण इत्थ आयरिआ नाणत्तं पण्णवयंति–अभिनिबुज्झइत्ति आभिणिबोहिअनाणं सुणेइत्ति सुअं, मइपुव्वं जेण सुअं न मई सुअपुव्विआ (सू० २४)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्परोक्षं ?, सूरिराह–परोक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षं च श्रुतज्ञानपरोक्षं च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ परस्परसहभावसूचकौ च, परस्परसहभावमेवानयोर्दर्शयति—'जत्थे'त्यादि, 'यत्र' पुरुषे आभिनिबोधिकं ज्ञानं तत्रैव श्रुतज्ञानमपि, तथा यत्र श्रुतज्ञानं तत्रैवाभिनिबोधिकज्ञानं । आह–यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानमित्युक्ते यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानमिति गम्यत एव ततः किमनेनोक्तेनेति ?, उच्यते, नियमतो न गम्यते, ततो नियमावधारणार्थमेतदुच्यते इत्यदोषः, नियमावधारणमेव स्पष्टयति–द्वे अप्येते–आभिनिबोधिकश्रुते अन्योऽन्यानुगते–परस्परप्रतिबद्धे, स्यादेतद्–अनयोर्यदि परस्परमनुगमस्तर्हि अभेद एव प्राप्नोति कथं भेदेन व्यवहारः ?, तत आह—'तहऽवी'त्यादि, 'तथापि' परस्परमनुगमेऽपि पुनरत्र–आभिनिबोधिकश्रुतयोराचार्याः-पूर्वसूरयो नानात्वं-भेदं प्ररूपयन्ति, कथमिति चेदुच्यते–लक्षणभेदात्, दृष्टश्च परस्परमनु-

मतिश्रुतव्याप्तिः सू. २४

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ परोक्षज्ञानं एवं तद् अन्तर्गतः मति तथा श्रुतज्ञान वर्णयते

गतयोरपि लक्षणभेदाद्भेदो, यथैकाकाशस्थयोर्धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकाययोः, तथाहि–धर्माधर्मास्तिकायौ परस्परं लोलीभावेनैकस्मिन्नाकाशदेशे व्यवस्थितौ, तथापि यो गतिपरिणामपरिणतयोर्जीवपुद्गलयोर्गत्युपष्टम्भहेतुर्जलमिव मत्स्यस्य स खलु धर्मास्तिकायो यः पुनः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जीवपुद्गलयोरेव स्थित्युपष्टम्भहेतुः क्षितिरिव झषस्य स खलु अधर्मास्तिकाय इति लक्षणभेदाद्भेदो भवति, एवमाभिनिबोधिकश्रुतयोरपि लक्षणभेदाद्भेदो वेदितव्यः, लक्षणभेदमेव दर्शयति–'अभिनिबुज्झई'त्यादि, अभिमुखं–योग्यदेशे व्यवस्थितं नियतमर्थमिन्द्रियमनोद्वारेण बुध्यते–परिच्छिनत्ति आत्मा येन परिणामविशेषेण स परिणामविशेषो ज्ञानापरपर्याय आभिनिबोधिकं, तथा शृणोति वाच्यवाचकभावपुरस्सरं श्रवणविषयेन शब्देन सह संस्पृष्टमर्थं परिच्छिनत्त्यात्मा येन परिणामविशेषेण स परिणामविशेषः श्रुतं। ननु यद्येवंलक्षणं श्रुतं तर्हि य एव श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भाषालब्धिमान् वा तस्यैव श्रुतमुपपद्यते न शेषस्यैकेन्द्रियस्य, तथाहि–यः श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भवति स विवक्षितं शब्दं श्रुत्वा तेन शब्देन वाच्यमर्थं प्रतिपत्तुमीष्टे न शेषः, शेषस्य तथारूपशक्त्यभावात्, योऽपि च भाषालब्धिमान् भवति सोऽपि द्वीन्द्रियादिः प्रायः स्वचेतसि किमपि विकल्प्य तदभिधानानुमानतः शब्दमुद्गिरति नान्यथा, ततस्तस्यापि श्रुतं सम्भाव्यते, यस्त्वेकेन्द्रियः स न तावत् श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् नापि भाषालब्धिमान् ततः कथं तस्य श्रुतसम्भवः?, अथ च प्रवचने तस्यापि श्रुतमुपवर्ण्यते, तत्कथं प्राक्तनं श्रुतलक्षणं समीचीनमिति?, नैष दोषो, यत इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा सूत्रेऽनेकशोऽभिधानात्, संज्ञा चाभिलाष उच्यते, यत उक्तमावश्यकटीकायाम्–'आहारसंज्ञा-आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः' इति, अभिलाषश्च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवतीत्येवं शब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यध्यवसायः, स च श्रुतमेव, तस्य शब्दार्थपर्यालोचनात्मकत्वात्, शब्दार्थपर्यालोचनात्मकत्वं च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि तद्यदीदमवाप्यते इत्येवमादीनां शब्दानामन्तर्जल्पाकाररूपाणामपि विवक्षितार्थवाचकतया प्रवर्त्तमानत्वात्, श्रुतस्य चैवंलक्षणत्वात्, उक्तं च— "[1]इन्दियमणोनिमित्तं जं विन्नाणं सुयानुसारेणं। नियअत्थोत्तिसमत्थं तं भावसुयं मई सेसं ॥१॥" 'सुयाणुसारेणं'ति शब्दार्थपर्यालोचनानुसारेण, शब्दार्थपर्यालोचनं च नाम वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः, केवलमेकेन्द्रियाणामव्यक्तमेव, किंच–नाप्यनिर्वचनीयं तथारूपक्षयोपशमभावतो वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टार्थग्रहणमवसेयम्, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञाऽनुपपत्तेः, यदप्युच्यते–यद्येवंलक्षणं श्रुतं तर्हि य एव श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भाषालब्धिमान् वा तस्यैव श्रुतमुपपद्यते न शेषस्यैकेन्द्रियस्येति, तदप्यसमीक्षितार्थाभिधानं, सम्यक् प्रवचनार्थापरिज्ञानात्, तथाहि—वकुलादीनां स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, 'पंचिंदिओऽवि बउलो' इत्यादिभाष्यकारवचनप्रामाण्यात्, तथा भाषा-

एकेन्द्रियेऽपिश्रुतं

५

१०

१२

१ इन्द्रियमनोनिमित्तं यद्विज्ञानं श्रुतानुसारेण। निजकार्योक्तिसमर्थं तद् भावश्रुतं मतिः शेषम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१४१॥

श्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतं भविष्यति, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञाऽनुपपत्तेः, आह च भाष्यकृत—"जह सुहुमं भावेंदियनाणं दव्विंदियावरोहेऽवि । तह दव्वसुयाभावे भावसुयं पत्थिवाईणं ॥ १ ॥"[1] ततः प्राक्तनमेव श्रुतलक्षणं समीचीनं, नान्यदिति स्थितं । तदेवं लक्षणभेदाद्भेदमभिधाय सम्प्रति प्रकारान्तरेण भेदमभिधित्सुराह–'मइपुव्व'मित्यादि, 'पृ पालनपूरणयो'रित्यस्य धातोः पूर्यते प्राप्यते पाल्यते च येन कार्यं तत्पूर्वं, औणादिको वक्प्रत्ययः, कारणमित्यर्थः, मतिः पूर्वं यस्य तन्मतिपूर्वं श्रुतं-श्रुतज्ञानं, तथाहि—मत्या पूर्यते प्राप्यते श्रुतं, न खलु मतिपाटवविभवमन्तरेण श्रुतविभवमुत्तरोत्तरमासादयति जन्तुः, तथाऽदर्शनात्, यच्च यदुत्कर्षापकर्षवशादुत्कर्षापकर्षभाक् तत्तस्य कारणं, यथा घटस्य मृत्पिण्डः, मत्युत्कर्षापकर्षवशाच्च श्रुतस्योत्कर्षापकर्षौ, ततः कारणं मतिः श्रुतज्ञानस्य, तथा पाल्यते–अवस्थितिं प्राप्यते मत्या श्रुतं, श्रुतस्य हि दलं मतिर्यथा घटस्य मृत्, तथाहि—श्रुतेष्वपि बहुषु ग्रन्थेषु यद्विषयं स्मरणमीहापोहादि वा अधिकतरं प्रवर्त्तते स ग्रन्थः स्फुटतरः प्रतिभाति, न शेषाः, एतच्च प्रतिप्राणि स्वसंवेदनप्रमाणसिद्धं, ततो यथोत्पन्नोऽपि घटो मृदभावे न भवति तथास्वभावायां च मृदि तिष्ठन्त्यामवतिष्ठते इति सा तस्य कारणम्, एवं श्रुतस्यापि मतिः कारणं, ततो युक्तमुक्तं मतिपूर्वं श्रुतमिति । मतिपूर्वकता च श्रुतस्योपयोगापेक्षया द्रष्टव्या न तु लब्ध्यपेक्षया, लब्धेः समकालतया भवनात्, एतच्च प्रागेवोक्तं, न मतिः श्रुतपू-

१ यथा सूक्ष्मं भावेन्द्रियविज्ञानं द्रव्येन्द्रियावरोधेऽपि । तथा द्रव्यश्रुताभावे भावश्रुतं पृथिव्यादीनाम् ॥ १ ॥

मतिश्रुतयोर्भेदः १५ २० ॥१४१॥ २४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४]

दीप अनुक्रम [९३]

मतिश्रुतयोर्भेदः

विंका, तथानुभवाभावात्, ततो महान् मतिश्रुतयोर्भेदः। इतश्च भेदो भेदभेदात्, तथाहि–चतुर्द्धा व्यञ्जनावग्रहः, षोढाऽर्थावग्रहः० अवग्रहेहापायधारणाभेदादष्टाविंशतिविधमाभिनिबोधिकज्ञानम् अङ्गानङ्गप्रविष्टादिभेदभिन्नं च श्रुतज्ञानमिति। तथा इन्द्रियविभागतश्च भेदः,तत्प्रतिपादिका चेयं पूर्वान्तर्गता गाथा–"सोइंदियओवलद्धी होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं। मोत्तूणं दव्वसुयं अक्खरलंभो य सेसेसुं ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या–श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिर्भवति श्रुतं, 'सर्वं वाक्यं सावधारणमिष्टिश्चावधारणविधिः' तत एवमिहावधारणं द्रष्टव्यं–श्रुतं श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव, न तु श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेव, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि या श्रुतग्रन्थानुसारिणी सैव श्रुतमुच्यते, या पुनरवग्रहेहापायरूपा सा मतिः, ततो यदि श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेवेत्युच्यते तर्हि मतेरपि श्रुतत्वमापद्यते तच्चायुक्तम् अतः श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमित्यवधारणीयं, आह च भाष्यकृत्–"सोइंदियोवलद्धी चेव सुयं न उ तई सुयं चेव। सोइंदिओवलद्धीऽवि काइ जम्हा मईनाणं ॥ १ ॥" तथा 'सेसयं तु मइनाण'मिति शेषं यत् चक्षुरादीन्द्रियोपलब्धिरूपं विज्ञानं तत् मतिज्ञानं भवतीति सम्बध्यते, तुशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, तत आस्तां शेषं विज्ञानं श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरपि काचिदवग्रहेहापायरूपा मतिज्ञानमिति समुच्चिनोति, उक्तं च– "तु समुच्चयवयणाओ काई सोइंदिओवलद्धीऽवि। मइ एवं सइ सोउग्गहादयो होंति मइभेया ॥१॥" तदेवं सर्वस्याः

१ श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरेव श्रुतं न तु सका श्रुतमेव। श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि काचित् यस्मात् मतिज्ञानम् ॥ १ ॥ २ तु समुच्चयवचनत्वात् काचित् श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि। मतिः एवं सति श्रोत्रेन्द्रियावग्रहादयो भवन्ति मतिभेदाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषेन्द्रियोपलब्धेरुत्सर्गेण मतिज्ञानत्वे प्राप्ते सत्यपवादमाह—'मोत्तूणं दव्वसुयं' मुक्त्वा द्रव्यश्रुतं, किमुक्तं भवति?— मुक्त्वा पुस्तकपत्रकादिन्यस्ताक्षररूपद्रव्यश्रुतविषयां शब्दार्थपर्यालोचनात्मिकां शेषेन्द्रियोपलब्धिं, तस्याः श्रुतज्ञानरूपत्वात्, यच्च द्रव्यश्रुतव्यतिरेकेणान्योऽपि शेषेन्द्रियेष्वक्षरलाभः शब्दार्थपर्यालोचनात्मकः सोऽपि श्रुतं, न तु केवलोऽक्षरलाभः, केवलो ह्यक्षरलाभो मतावपीहादिरूपायां भवति, न च सा श्रुतज्ञानं। अत्राह—ननु यदि शेषेन्द्रियेष्वक्षरलाभः श्रुतं तर्हि यदधावरणमुक्तं–श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमिति तद्विघटते, शेषेन्द्रियोपलब्धेरपि सम्प्रति श्रुतत्वेन प्रतिपन्नत्वात्, नैष दोषः, यतः शेषेन्द्रियाक्षरलाभः स इह गृह्यते यः शब्दार्थपर्यालोचनात्मकः, शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी चाक्षरलाभः श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिकल्प इति न कश्चिद्दोषः। इतश्च मतिश्रुतयोर्भेदो-वल्कसमं मतिज्ञानं, कारणत्वात्, शुम्बसमं श्रुतज्ञानं, तत्कार्यत्वात्, ततो यथा वल्कशुम्बयोर्भेदस्तथा मतिश्रुतयोरपि। इतश्च भेदो-मतिज्ञानमनक्षरं साक्षरं च, तथाहि–अवग्रहज्ञानमनक्षरं, तस्यानिर्देश्यसामान्यमात्रप्रतिभासात्मकतया निर्विकल्पकत्वाद्, ईहादिज्ञानं साक्षरं, तस्य परामर्शादिरूपतयाऽवश्यं वर्णाद्युल्लितत्वात्, श्रुतज्ञानं पुनः साक्षरमेव, अक्षरमन्तरेण शब्दार्थपर्यालोचनस्यानुपपत्तेः। इतश्च मतिश्रुतयोर्भेदो–मूककल्पं मतिज्ञानं, स्वमात्रप्रत्यायनफलत्वात्, अमूककल्पं श्रुतज्ञानं, स्वपरप्रत्यायकत्वात्, तथा चामूनेव भेदहेतून् भाष्यकृत् संगृहीतवान्–"लक्खणभेया हेऊफल-

१ लक्षणभेदात् हेतुफलभावात् भेद इन्द्रियविभागात्। वल्कशुम्बाक्षरानक्षरमूकेतरभेदात् भेदो मतिश्रुतयोः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४]

दीप अनुक्रम [९३]

भावा भेयइंदियविभागा । वागक्खरमूयेयरभेया भेओ महसुयाणं ॥ १ ॥" यथा च मतिश्रुतयोः कार्यकारणभावात् मिथो भेदः तथा सम्यग्दर्शनमिथ्यादर्शनपरिग्रहभेदात् स्वरूपतोऽपि तयोः प्रत्येकं भेदः, तथा चाह— श्रुतलक्षणम्

अविसेसिआ मई मइनाणं च मइअन्नाणं च, विसेसिआ सम्मद्दिट्ठिस्स मई मइनाणं मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं, अविसेसिअं सुयं सुयनाणं च सुयअन्नाणं च, विसेसिअं सुयं सम्मद्दिट्ठिस्स सुयं सुअनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुअं सुयअन्नाणं । (सू. २५) ५

स्वामिना अविशेषिता–स्वामिविशेषपरिग्रहमन्तरेण विवक्ष्यमाणा मतिर्मतिज्ञानं मत्यज्ञानं चोच्यते, सामान्येनोभयत्रापि मतिशब्दप्रवृत्तेः, विशेषिता–स्वामिना विशेष्यमाणा सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानमुच्यते, तस्या यथावस्थितार्थग्राहकत्वात्, मिथ्यादृष्टेर्मतिर्मत्यज्ञानं, तस्य एकान्तावलम्बितया यथावस्थितार्थग्रहणाभावात्, एवं श्रुतसूत्रमपि व्याख्येयं । आह—मिथ्यादृष्टेरपि मतिश्रुते सम्यग्दृष्टेरिव तदावरणक्षयोपशमसमुद्भवे सम्यग्दृष्टेरिव च पृथुवुध्नोदराद्याकारं घटादिकं च संविदाते तत्कथं मिथ्यादृष्टेरज्ञाने ?, उच्यते, सदसद्विवेकपरिज्ञानाभावात्, तथाहि—मिथ्यादृष्टिः सर्वमप्येकान्तपुरस्परं प्रतिपद्यते, न भगवदुक्तस्याद्वादनीत्या, ततो घट एवायमिति यदा ब्रूते तदा तस्मिन् घटे घटपर्यायव्यतिरेकेण शेषान् सत्त्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादीन् सतोऽपि धर्मानपलपति, अन्यथा घट एवायमित्येकान्तेनावधारणानुपपत्तेः, घटः सन्नेवेति च ब्रुवाणः पररूपेण नास्तित्वस्यानभ्युपगमात् पररूपतामसतीमपि तत्र प्रतिपद्यते, १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मति तथा श्रुतज्ञानस्य ज्ञान एवं अज्ञानं प्ररुप्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [९४]

॥१४३॥

ततः सन्तमसन्तं प्रतिपद्यते असन्तं च सन्तमिति सदसद्विशेषपरिज्ञानाभावादज्ञाने मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते। इतश्च ते मिथ्यादृष्टेरज्ञाने, भवहेतुत्वात्, तथाहि—मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते पशुवधमैथुनादीनां धर्म्मसाधकत्वेन परिच्छेदके, ततो दीर्घतरसंसारपथप्रवर्त्तिनी। तथा यदृच्छोपलम्भादुन्मत्तकविकल्पवत्, यथा हि उन्मत्तकविकल्पा वस्त्वनपेक्षैव यथाकथञ्चित् प्रवर्त्तन्ते, यद्यपि च ते क्वचिद्यथावस्थितवस्तुसंवादिनस्तथाऽपि सम्यग्यथावस्थितवस्तुतत्त्वपर्यालोचनाविरहेण प्रवर्त्तमानत्वात् परमार्थतोऽपारमार्थिकाः, तथा मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते यथावस्थितं वस्त्वविचार्यैव प्रवर्त्तेते, ततो यद्यपि च ते क्वचिद्रसोऽयं स्पर्शोऽयमित्याद्यवधारणाध्यवसायाभावे संवादिनी तथापि न ते स्याद्वादमुद्रापरिभावनातस्तथाप्रवृत्ते, किन्तु यथाकथञ्चिद्, अतस्ते अज्ञाने। तथा ज्ञानफलाभावात्, ज्ञानस्य हि फलं हेयस्य हानिः उपादेयस्य चोपादानं, न च संसारात्परं किञ्चिद्धेयमस्ति, न च मोक्षात्परं किञ्चिदुपादेयं, ततो भवमोक्षावेकान्तेन हेयोपादेयौ, भवमोक्षयोश्च हान्युपादाने सर्वसङ्गविरतेर्भवतः, ततः साऽवश्यं तत्त्ववेदिना कर्त्तव्या, सैव च परमार्थतो ज्ञानस्य फलं, तथा चाह भगवानुमास्वातिवाचकः—"ज्ञानस्य फलं विरति"रिति, सा च मिथ्यादृष्टेर्न विद्यते इति ज्ञानफलाभावादज्ञाने मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते, तथा चामूनेवाज्ञानत्वे हेतून् भाष्यकृदपि पठति—"सयंसयविसेसणाओ भवहेउजहिच्छिओवलंभाओ। नाणफलाभावाओ मिच्छदिट्ठिस्स अन्नाणं ॥ १ ॥" इह मतिपूर्वं श्रुतमि-

१ सदसद्विशेषाभावात् भावहेतुतो यदृच्छोपलम्भात्। ज्ञानफलाभावात् मिथ्यादृष्टेरज्ञानम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६...] + गाथा ॥६१॥ दीप अनुक्रम [९५]

त्युक्तं, ततो मतिज्ञानमेवाधिकृत्य शिष्यः प्रश्नयति—

से किं तं आभिणिबोहिअनाणं ?, आभिणिबोहियनाणं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा–सुयनिस्सियं च असुयनिस्सिअं च ॥ से किं तं असुअनिस्सिअं ?, असुअनिस्सिअं चउव्विहं पन्नत्तं, तंजहा–उप्पत्तिआ १ वेणइआ २ कम्मया ३ परिणामिआ ४ । बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ ॥ ६१ ॥ (सू० २६)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानं ?, सूरिराह—आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–श्रुतनिश्रितं च अश्रुतनिश्रितं च,तत्र शास्त्रपरिकर्मितमतेरुत्पादकाले शास्त्रार्थपर्यालोचनमनपेक्ष्यैव यदुपजायते मतिज्ञानं तत् श्रुतनिश्रितम्–अवग्रहादि, यत्पुनः सर्वथा शास्त्रसंस्पर्शरहितस्य तथाविधक्षयोपशमभावत एवमेव यथावस्थितवस्तुसंस्पर्शि मतिज्ञानमुपजायते तत् अश्रुतनिश्रितमौत्पत्तिक्यादि, तथा चाह भाष्यकृत्—"पुव्वं सुअपरिकम्मिय-मइस्स जं संपयं सुयाईयं । तन्निस्सियमियरं पुण अणिस्सियं मइचउक्कं तं ॥ १ ॥" आह—औत्पत्तिक्यादिकमप्यवग्रहादिरूपमेव तत्कोऽनयोर्विशेषः ?, उच्यते, अवग्रहादिरूपमेव, परं शास्त्रानुसारमन्तरेणोत्पद्यते इति भेदेनोपन्यस्तं ॥ तत्राल्पतरवक्तव्यत्वात् प्रथममश्रुतनिश्रितमतिज्ञानप्रतिपादनायाह—'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत् अश्रुत-

१ पूर्वं श्रुतपरिकर्मितमतेर्यत्साम्प्रतं श्रुतातीतम् । तत् निश्रितमितरत्पुनरनिश्रितं मतिचतुष्कं तत् ॥ १ ॥

अश्रुतनिश्रितेबुद्धिचतुष्कम् गा. ६१ सू. २६

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिकज्ञानस्य कथनं, बुद्धेः औत्पातिकी आदि चत्वारः भेदाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७] + गाथा ॥६१॥ दीप अनुक्रम [९६]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१४४॥

निश्रितं ?, सूरिराह–अश्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-'उप्पत्तिआ'गाहा, उत्पत्तिरेव न शास्त्राभ्यासकर्मपरिशीलनादिकं प्रयोजनं–कारणं यस्याः सा औत्पत्तिकी, 'तदस्य प्रयोजन'मितीकन्, ननु सर्वस्या बुद्धेः कारणं क्षायोपशमः तत्कथमुच्यते–उत्पत्तिरेव प्रयोजनमस्या इति ?, उच्यते, क्षयोपशमः सर्वबुद्धिसाधारणः, ततो नासौ भेदेन प्रतिप्रत्तिनिबन्धनं भवति, अथ च बुद्ध्यन्तराद्भेदेन प्रतिपत्त्यर्थं व्यपदेशान्तरं कर्तुमारब्धं, तत्र व्यपदेशान्तरनिमित्तमत्र न किमपि विनयादिकं विद्यते, केवलमेवमेव तथोत्पत्तिरिति सैव साक्षान्निर्दिष्टा। तथा विनयो-गुरुशुश्रूषा स प्रयोजनमस्या इति वैनयिकी। तथा अनाचार्यकं कर्म साचार्यकं शिल्पं, अथवा कादाचित्कं शिल्पं सर्वकालिकं कर्म, कर्मणो जाता कर्मजा। तथा परि–समन्तान्नमनं परिणामः–सुदीर्घकालपूर्वापरपर्यालोचनजन्य आत्मनो धर्मविशेषः स प्रयोजनमस्याः सा पारिणामिकी। बुध्यतेऽनयेति बुद्धिः, सा चतुर्विधा उक्ता तीर्थकरगणधरैः, किमिति ?, यस्मात् पञ्चमी केवलिनाऽपि नोपलभ्यते, सर्वस्याप्यश्रुतनिश्रितमतिविशेषस्यौत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टय एवान्तर्भावात्॥ तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात्प्रथममौत्पत्तिक्या लक्षणमाह—

पुव्वं अदिट्ठमस्सुअमवेइयतक्खणविसुद्धगहिअत्था। अव्वाहयफलजोगा बुद्धी उप्पत्तिआ नाम ॥६२॥ भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३ खुड्डग ४ पड ५ सरड ६ काय ७ उच्चारे ८। गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२ खुड्डग १३मग्गित्थि १४पइ १५ पुत्ते १६॥ ६३॥ भरह १ सिल २

औत्पत्तिकी बुद्धिस्त-दृष्टान्ताः २० ॥१४४॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औत्पातिकी बुद्धीनां दृष्टान्ताः

मिंढ ३ कुक्कुड ४ वालुअ ५ हत्थी ६ अगड ७ वणसंडे ८। पायस ९ अइआ १० पत्ते ११ खाडहिला १२ पंच पिअरो अ १३ ॥ ६४ ॥ महुसित्थ १७ मुद्दि १८ अंके १९ नाणए २० भिक्खु २१ चेडगनिहाणे २२। सिक्खा य २३ अत्थसत्थे २४ इच्छा य महं २५ सयसहस्से २६ ॥६५॥

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः

आसामर्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि च कथानकानि विस्तरतोऽभिधीयमानानि ग्रन्थगौरवमापादयन्ति ततः संक्षेपेणोच्यन्ते–उज्जयनी नाम पुरी, तस्याः समीपवर्ती कश्चिन्नटानामेको ग्रामः, तत्र च ग्रामे भरतो नाम नटः, तस्य भार्या परासुरभूत्, तनयश्चास्य रोहिकाभिधोऽद्याप्यल्पवयाः, ततः सत्वरमेव स्वस्य स्वतनयस्य च शुश्रूषाकरणायान्या समानिन्ये वधूः, सा च रोहकस्य सम्यग् न वर्त्तते, ततो रोहकेण सा प्रत्यपादि–मातर्न मे त्वं सम्यग् वर्त्तसे ततो ज्ञास्यसीति, ततः सा सेर्ष्यमाह—रे रोहक! किं करिष्यसि?, रोहकोऽप्याह–तत्करिष्यामि येन त्वं मम पादयोरागत्य लगिष्यसीति, ततः सा तमवज्ञाय तूष्णीमतिष्ठत्, रोहकोऽपि तत्कालादारभ्य गाढसञ्जाताभिनिवेशोऽन्यदा निशि सहसा पितरमेवमभाणीत्–भो भोः पितरेष पलायमानो गोहो याति, तत एवं बालकवचः श्रुत्वा पितुराशङ्का समुदपादि–नूनं विनष्टा मे महेलेति, तत एवमाशङ्कावशात्तस्यामनुरागः शिथिलीबभूव, ततो न तां सम्यक् संभाषते, नापि विशेषतस्तस्यै पुष्पताम्बूलादिकं प्रयच्छति, दूरतः पुनरपास्तं शयनादि, ततः सा चिन्तयामास–नूनमिदं बालकविचेष्टितम्, अन्यथा कथमकाण्ड एवैष दोषाभावे पराङ्मुखो जातः?, ततो बालकमेवमवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

दीत्–वत्स ! रोहक किमिदं त्वया चेष्टितं ?, तव पिता मे सम्प्रति दूरं पराङ्मुखीभूतः, रोहक आह—किमिति तर्हि न सम्यग् मे वर्त्तसे ?, तयोक्तम्–अत ऊर्द्धं सम्यग् वर्त्तिष्ये, ततो बालक आह—भव्यं, तर्हि मा खेदं कार्षीः तथा करिष्ये यथा मे पिता तथैव त्वयि वर्त्तते इति, ततः सा तत्कालादारभ्य सम्यग्वर्तितुं प्रवृत्ता, रोहकोऽप्यन्यदा निशि निशाकरप्रकाशितायां प्राक्तनकदाशङ्कापनोदाय बालभावं प्रकटयन् निजच्छायामङ्गुल्यग्रेण दर्शयन् पितरमेवाह—भोः पितरेष गोहो याति गोहो यातीति, तत एवमुक्ते स पिता परपुरुषप्रवेशाभिमानतो निष्प्रत्याकारं कृपाणमुद्दीर्य प्राधावत्, रे कथय कुत्र यातीति ?, ततः स रोहको बालको बालक्रीडां प्रकटयन्नङ्गुल्यग्रेण निजच्छायां दर्शयति–पितरेष गोहो यातीति, ततः स पिता व्रीडित्वा प्रत्यावृत्य चिन्तयति स्म च स्वचेतसि–प्राक्तनोऽपि पुरुषो नूनमेवंविध एवासीदिति धिग्मया बालकवचनादलीकं संभाव्य विप्रियमेतावन्तं कालं कृतमस्यां भार्यायामिति पश्चात्तापाद्गाढतरमस्यामनुरक्तो बभूव, सोऽपि रोहको मया विप्रियं कृतमास्तेऽ(मस्त्य)स्या इति कदाचिदेषा मां विषादिना मारयिष्यतीति विचिन्त्य सदैव पित्रा सह भुङ्क्ते न कदाचिदपि केवलः, अन्यदा पित्रा सहोज्जयिनीं पुरीमगमत्, दृष्ट्वा च तेन त्रिदशपुरीवोज्जयिनी, सविस्मयचेतसा च सकलाऽपि यथावत्परिभाविता, ततः पित्रैव सह नगर्या निर्यातुमारेभे, पिता च किमपि मे विस्मृतमिति रोहकं सिप्रानदीतटेऽवस्थाप्य तदानयनाय भूयोऽपि नगरीं प्राविक्षत्, रोहकोऽपि च तत्र सिप्राभिधसिन्धुसैकते बालचापलवशात् सप्राकारां परिपूर्णामपि पुरीं सिकताभिरालिखत्,

२०

॥१४५॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः

इतश्च राजा अश्ववाहनिकायामश्वं वाहयन् कथञ्चिदेकाकीभूतस्तेन पथा समागन्तुं प्रावर्त्तत, तं च स्वलिखितनगरी-
मध्येन समागच्छन्तं रोहकोऽवादीत्—भो राजपुत्र ! माऽनेन पथा समागमः, तेनोक्तं–किमिति ?, रोहक आह—किं
त्वं राजकुलमिदं न पश्यसि ?, स राजा कौतुकवशात् सकलामपि नगरीं तदालिखितामवैक्षत, पप्रच्छ च तं बा-
लकं—रे अन्यदा त्वया नगरी दृष्टाऽऽसीन्न वा ?, रोहक आह—नैव कदाचित्, केवलमहमद्यैव स्वग्रामादिहागतः,
ततश्चिन्तयामास राजा–अहो बालकस्य प्रज्ञातिशय इति, ततः पृष्टो रोहको–वत्स ! किं ते नाम क्व वा ग्राम इति ?, ५
तेनोक्तं—रोहक इति मे नाम, प्रत्यासन्ने च पुरो ग्रामे वसामीति, अत्रान्तरे समागतो रोहकस्य पिता चलितौ च
स्वग्रामं प्रति द्वावपि, राजा च स्वस्थानमगमत्, चिन्तयति स्म च—ममैकोनानि मन्त्रिणां पञ्च शतानि विद्यन्ते, त-
द्यदि सकलमन्त्रिमण्डलमूर्धाभिषिक्तो महाप्रज्ञाऽतिशायी परमो मन्त्री सम्पद्यते ततो मे राज्यं सुखेनैधते, बुद्धिबलो-
पेतो हि राजा प्रायः शेषबलैरल्पबलोऽपि न पराजयस्थानं भवति परांश्च राज्ञो लीलया विजयते, एवं च चिन्तयित्वा
कतिपयदिनानन्तरं रोहकबुद्धिपरीक्षानिमित्तं सामान्यतो ग्रामप्रधानपुरुषानुद्दिश्यैवमादिष्टवान्—यथा युष्मद्ग्रामस्य १०
बहिरतीव महती शिला वर्त्तते तामनुत्पाट्य राजयोग्यमण्डपाच्छादनं कुरुत, तत एवमादिष्टे सकलोऽपि ग्रामो
राजादेशं कर्त्तुमशक्यं परिभावयन्नाकुलीभूतमानसो बहिः सभायामेकत्र मिलितवान्, पृच्छति स्म परस्परं—किमि-
दानीं कर्त्तव्यं ?, दुष्टो राजादेशोऽस्माकमापतितो, राजादेशाकरणे च महाननर्थोपनिपातः, एवं च चिन्तया व्याकुलीभू- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

तानां तेषां मध्यन्दिनमागतं, रोहकश्च पितरमन्तरेण न भुङ्क्ते, पिता च ग्राममेलापके मिलितो वर्त्तते, ततः स क्षुधा पीडितः पितुः समीपे समागत्य रोदितुं प्रावर्त्तत–पीडितोऽहमतीव क्षुधा, ततः समागच्छ गृहे भोजनायेति, भरतः प्राह–वत्स ! सुखितोऽसि त्वं, न किमपि ग्रामकष्टं जानासि, स प्राह–पितः ! किं किं तदिति ?, ततो भरतो राजादेशं सविस्तरमचीकथत्, ततो निजबुद्धिप्रागल्भ्यवशात् झटिति कार्यस्य साध्यतां परिभाव्य तेनोक्तं–माऽऽकुलीभवत यूयं, खनत शिलाया राज्ञोचितमण्डपनिष्पादनायाधस्तात् स्तम्भांश्च यथास्थानं निवेशयत भित्तीश्चोपलेपनादिना प्रकारेणातीव रमणीयाः प्रगुणीकुरुत, तत एवमुक्ते सर्वैरपि ग्रामप्रधानपुरुषैर्भव्यमिति प्रतिपन्नं, गतः सर्वोऽपि ग्रामलोकः स्वस्वगृहे भोजनाय, भुक्त्वा च समागतः शिलाप्रदेशे, प्रारब्धं तत्र कर्म, कतिपयदिनैश्च निष्पादितः परिपूर्णो मण्डपः, कृता च शिला तस्याच्छादनं, निवेदितं च राज्ञे राजनियुक्तैः पुरुषैः–देव ! निष्पादितो ग्रामेण देवादेशः, राजा प्राह—कथमिति ?, ततस्ते सर्वमपि मण्डपनिष्पादनप्रकारं कथयामासुः, राजा पप्रच्छ–कस्येयं बुद्धिः ?, तेऽवादिषुः–देव ! भरतपुत्रस्य रोहकस्य, एषा रोहकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः । एवं सर्वेष्वपि संविधानकेषु योजनीयं, ततो भूयोऽपि राजा रोहकबुद्धिपरीक्षार्थं मेण्ढकमेकं प्रेषितवान्, एष यावत्पलप्रमाणः सम्प्रति वर्त्तते पक्षातिक्रमेऽपि तावत्पलप्रमाण एव समर्पणीयो, न न्यूनो नाप्यधिक इति, तत एवं राजादेशे समागते सति सर्वोऽपि ग्रामो व्याकुलीभूतचेता बहिः सभायामेकत्र मिलितवान्, सगौरवमाकारितो रोहकः, आभाषितश्च ग्रामप्रधानैः पुरुषैः–वत्स !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनमपि दुष्टराजादेशसिन्धुं त्वयैव निजबुद्धिसेतुबन्धेन समुत्तारितः सर्वोऽपि ग्रामः, ततः सम्प्रत्यपि प्रगुणीकुरु निजबुद्धिसेतुबन्धं येनास्यापि दुष्टराजादेशसिन्धोः पारमधिगच्छाम इति, तत उवाच रोहको–वृकं प्रत्यासन्नं धृत्वा मेण्ढकमेनं यवसदानेन पुष्टीकुरुत, यवसं हि भक्षयन्नेष न दुर्बलो भविष्यति, वृकं च दृष्ट्वा न बलवृद्धिमाप्स्यतीति, तत्ते तथैव कृतवन्तः, पक्षातिक्रमे च तं राज्ञः समर्प्पयामासुः, तोलने च स तावत्पलप्रमाण एव जातः। ततो भूयोऽपि कतिपयदिनानन्तरं राज्ञा कुर्कुटः प्रेषितः, एष द्वितीयं कुर्कुटं विना योधितव्य इति, एवं सम्प्राप्ते राजादेशे मिलितः सर्वोऽपि ग्रामो बहिः सभायाम् आकारितो रोहकः कथितश्च तस्य राजादेशः, ततो रोहकेणादर्शको महाप्रमाण आनायितो निमृष्टश्च भूत्वा सम्यक्, ततो धृतः पुरो राजकुर्कुटस्य, ततः स राजकुर्कुटः प्रतिबिम्बमात्मीयमादर्शे दृष्ट्वा मत्प्रतिपक्षोऽयमपरः कुर्कुट इति मत्वा साहङ्कारं योद्धुं प्रवृत्तो, जडचेतसो हि प्रायस्तिर्यञ्चो भवन्ति, एवं चापरकुर्कुटमन्तरेण योधिते राजकुर्कुटे विस्मितः सर्वोऽपि ग्रामलोकः, सम्पादितो राजादेशः, निवेदितं च राज्ञो निजपुरुषैः। ततो भूयोऽपि कतिपयदिवसातिक्रमे राजा निजादेशं प्रेषितवान्–पुष्पभद्रामस्य सर्वतः समीपे अतीव रमणीया वालुका विद्यन्ते, ततः स्थूला वालुकामयाः कतिपये दवरकाः कृत्वा शीघ्रं प्रेषणीया इति, एवं राजादेशे समागते मिलितः सर्वोऽपि बहिः सभायां ग्रामः पृष्टश्च रोहकः, ततो रोहकेण प्रत्युत्तरमदायि–नटा वयं, ततो नृत्तमेव वयं कर्त्तुं जानीमो न दवरकादि, राजादेशश्चावश्य कर्त्तव्यः, ततो बृहद्राजकुलमिति चिरन्तना अपि कतिचिद्वालुकामया दवरका

बुद्धि-दृष्टान्ताः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१४७॥

भविष्यन्तीति तन्मध्यादेकः कश्चित् प्रतिच्छन्दभूतः प्रेषणीयो येन तदनुसारेण वयमपि वालुकामयान् दवरकान् कुर्म इति, ततो निवेदितमेतद्राज्ञे नियुक्तपुरुषैः, राजा च निरुत्तरीकृतस्तूष्णीमास्ते। ततः पुनरपि कतिचिद्दिनानन्तरं जीर्णहस्ती रोगग्रस्तो मुमूर्षुर्ग्रामे राजा प्रेषितो, यथाऽयं हस्ती मृत इति न निवेदनीयो, अथ च प्रतिदिवसमस्य वार्त्ता कथनीया, अकथने महान् ग्रामस्य दण्डः, एवं च राजादेशे समागते तथैव मिलितः सर्वोऽपि बहिः सभायां ग्रामः, पृष्टश्च रोहकः, ततो रोहकेणोक्तं—दीयतामस्मै यवसः पश्चाद् यद्भविष्यति तत्करिष्यामि, ततो रोहकादेशेन दत्तो यवसस्तस्मै, रात्रौ च स हस्ती पञ्चत्वमुपागमत्, ततो रोहकवचनतो ग्रामेण गत्वा राज्ञे निवेदितं—देव! अद्य हस्ती न निषीदति नोत्तिष्ठति न कवलं गृह्णाति नापि नीहारं करोति नाप्युच्छ्वासनिश्वासौ विदधाति, किं बहुना?, देव! कामपि सचेतनचेष्टां न करोति, ततो राज्ञा भणितं–किं रे मृतो हस्ती?, ततो ग्राम आह—देव! देवपादा एवं ब्रुवते, न वयमिति, तत एवमुक्ते राजा मौनमाधाय स्थितः, आगतो ग्रामलोकः स्वग्रामे। ततो भूयोऽपि कतिपयदिनातिक्रमे राजा समादिष्टवान्—अस्ति युष्माकीणे ग्रामे सुस्वादुजलसम्पूर्णः कूपः, स इह सत्वरं प्रेषितव्यः, तत एवमादिष्टो ग्रामो रोहकं पृष्टवान्, रोहकश्चोवाच–एष ग्रामेयकः कूपो, ग्रामेयकश्च स्वभावाद्धीरुर्भवति न च सजातीयमन्तरेण विश्वासमुपगच्छति, ततो नागरिकः कश्चिदेकः कूपः प्रेष्यतां येन तत्रैष विश्वस्य तेन सह समागच्छतीति, एवं निरुत्तरीकृत्य मुत्कलिता राजनियुक्ताः पुरुषाः, तैश्च राज्ञो निवेदितं, राजा स्वचेतसि रोहकस्य बुद्ध्यतिशयं प-

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः

२०

॥१४७॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

रिभाव्य मौनमवलम्ब्य स्थितः । ततो भूयोऽपि कतिपयवासरातिक्रमेऽभिहितवान्–वनखण्डो ग्रामस्य पूर्वस्यां दिशि वर्त्तमानः पश्चिमायां दिशि कर्त्तव्य इति, अस्मिन्नपि राजादेशे समागते ग्रामो रोहकबुद्धिमुपजीव्य वनखण्डस्य पूर्वस्यां दिशि व्यवतिष्ठत, ततो जातो ग्रामस्य पश्चिमायां दिशि वनखण्डः, निवेदितं राज्ञो राजनियुक्तैः पुरुषैः । ततः पुनरपि कालान्तरे राजा आदिष्टवान्–वह्निसम्पर्कमन्तरेण पायसं पक्तव्यमिति, तत्रापि सर्वो ग्राम एकत्र मिलित्वा रोहकमपृच्छत्, रोहकश्चोक्तवान्–तन्दुलानतीव जलेन भिन्नान् कृत्वा दिनकरकरनिकरसन्तप्तकरीषपलालादीनामूष्मणि तन्दुलपयोभृता स्थाली निवेश्यतां येन परमान्नं सम्पद्यते, तथैव कृतं, जातं परमान्नं, निवेदितं राज्ञो, विस्मितं तस्य चेतः । ततो राज्ञा रोहकस्य बुद्ध्यतिशयमवगम्य तदाकारणाय समादिष्टं–येन बालकेन ममादेशाः सर्वेऽपि प्रायः स्वबुद्धिवशात् सम्पादिताः तेन चावश्यमागन्तव्यं, परं न शुक्लपक्षे नापि कृष्णपक्षे न रात्रौ न दिवा न छायायां नाप्यातपेन नाकाशेन नापि पादाभ्याम् न पथा नाप्युत्पथेन न स्नातेन नास्नातेन, तत एवमादिष्टे स रोहकः कण्ठस्नानं कृत्वा गन्त्रीचक्रस्य मध्यभूमिभागेन ऊरणमारूढो धृतचालनीरूपातपत्रः सन्ध्यासमयेऽमावास्याप्रतिपत्सङ्गमे नरेन्द्रपार्श्वमगमत्, स च 'रिक्तहस्तो न पश्येच्च, राजानं देवतां गुरु'मिति लोकश्रुतिं परिभाव्य पृथिवीपिण्डमेकमादाय गतः, प्रणतो राजा, मुक्तश्च तत्पुरतः पृथिवीपिण्डः, ततः स पृष्टो राज्ञा रोहकः–रे रोहक! किमेतत्?, रोहकोऽवादीत्–देव! देवपादाः पृथिवीपतयस्ततो मया पृथिवी समानीता, श्रुत्वा चेदं प्रथमदर्शने मङ्गलवचस्तुतोष राजा, मु-

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१४८॥



त्कलितः शेषो ग्रामलोकः, रोहकः पुनरात्मपार्श्वे शायितः, गते च यामिन्याः प्रथमयामे रोहकः शब्दितो राज्ञा—रे जागर्षि किं वा स्वपिषि ?, स प्राह–देव ! जागर्मि, रे तर्हि किं चिन्तयसि ?, स प्राह—देव ! अश्वत्थपत्राणां किं दण्डो महान् उत शिखेति ?, तत एवमुक्ते राजा संशयमापन्नो वदति–साधु चिन्तितं, कोऽत्र निर्णयः ?, ततो राजा तमेव पृष्टवान्–रे कथय कोऽत्र निर्णय इति ?, तेनोक्तं–देव ! यावदद्यापि शिखाग्रभागो न शोषमुपयाति तावद्वे अपि समे, ततो राज्ञा पार्श्ववर्ती लोकः पृष्टः, तेन च सर्वेणाप्यविगानतः प्रतिपन्नं । ततः भूयोऽपि रोहकः सुप्तवान्, पुनरपि द्वितीये यामेऽपगते राज्ञा शब्दितः पृष्टश्च–किं रे जागर्षि किं वा स्वपिषि ?, स प्राह—देव ! जागर्म्मि, रे किं चिन्तयसि?, देव ! छागिकाया उदरे कथं भ्रम्युत्तीर्णा इव वर्तुलगुलिका जायन्ते ?, तत एवमुक्ते राजा संशयापन्नस्तमेव पृष्टवान्–कथय रे रोहक ! कथमिति ?, स प्राह—देव ! संवर्त्तकाभिधवातविशेषात् । ततः पुनरपि रोहकः सुष्वाप, तृतीये च रजन्या यामेऽपगते भूयोऽपि राज्ञा शब्दितः—किं रे जागर्षि किं वा स्वपिषि ?, सोऽवादीत्—देव ! जागर्मि, किं रे चिन्तयसि ?, देव ! पाडहिलाजीवस्य यावन्मात्रं शरीरं तावन्मात्रं पुच्छमुत न्यूनाधिकमिति ?, तत एवमुक्ते राजा निर्णयं कर्त्तुमशक्तस्तमेवापृच्छत्—कोऽत्र निर्णयः ?, सोऽवादीद्—देव ! सममिति । ततो रोहकः सुप्तः, प्राभातिके च मङ्गलपटहनिस्वने सर्वत्र प्रसरमधिरोहति राजा प्रबोधमुपजगाम, शब्दितवांश्च रोहकं, स च निद्राभरमुपारूढो न प्रतिवाचं दत्तवान्, ततो राजा लीलाकम्बिकया मनाक् तं स्पृष्टवान्, ततः सोऽपगतनिद्रो जातः, पृष्टश्च किं रे

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ता

२०

॥१४८॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||६२--६५||

दीप अनुक्रम [९७--१००]

स्वपिषि ?, स प्राह—देव ! जागर्मि, किं रे तर्हि कुर्वंस्तिष्ठसि ?, देव ! चिन्तयन्, किं चिन्तयसि ?, देव! एत चिन्तयामि–कतिभिर्जातो देव इति, तत एवमुक्ते राजा सव्रीडं मनाक् तूष्णीमतिष्ठत्, ततः क्षणानन्तरं पृष्टवान्-कथय रे कतिभिरहं जात इति ?, स प्राह—देव! पञ्चभिः, राजा भूयोऽपि पृष्टवान्–केन केनेति ?, रोहक आह—देव ! एकेन तावद्वैश्रवणेन, वैश्रवणस्येव भवतो दानशक्तिदर्शनात्, द्वितीयेन चाण्डालेन, वैरिसमूहं प्रति चाण्डालस्येव कोपदर्शनात्, तृतीयेन रजकेन, यतो रजक इव वस्त्रं परं निष्पीड्य तस्य सर्वस्वमुपहरन् दृश्यते, चतुर्थेन वृश्चिकेन, यन्मामपि बालकं निद्राभरसुप्तं लीलाकम्बिकाग्रेण वृश्चिक इव निर्दयं तुदसि, पञ्चमेन निजपित्रा, येन यथावस्थितं न्यायं सम्यक् परिपालयसि, एवमुक्ते राजा तूष्णीमास्थाय प्राभातिकं कृत्यमकार्षीत्, जननीं च नमस्कृत्यैकान्ते पृष्टवान्–कथय मातः ! कतिभिरहं जात इति ?, सा प्राह—वत्स ! किमेतत् प्रष्टव्यं ?, निजपित्रा त्वं जातः, ततो राजा रोहकोक्तं कथितवान्, वदति च–मातः ! स रोहकः प्रायोऽलीकबुद्धिर्न भवति ततः कथय सम्यक् तत्त्वमिति, तत एवमतिनिर्बन्धे कृते सति सा कथयामास–यदा त्वद्गर्भाधानमासीत् तदाऽहं बहिरुद्याने वैश्रवणपूजनाय गतवती, वैश्रवणं च यक्षमतिशायिरूपं दृष्ट्वा हस्तसंस्पर्शेन सञ्जातमन्मथोन्मादा भोगाय तं स्पृहितवती, अपान्तराले च समागच्छन्ती चण्डालयुवानमेकमतिरूपमपश्यं, ततस्तमपि भोगाय स्पृहयामि स्म, तसोऽर्वाक्तने भागे समागच्छन्ती तथैव च रजकं दृष्ट्वाऽभिलषितवती, ततो गृहमागता सती तथाविधोत्सववशाद्वृश्चिकं कणिकामयं भक्षणाय हस्ते न्यस्तवती, ततस्त-

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

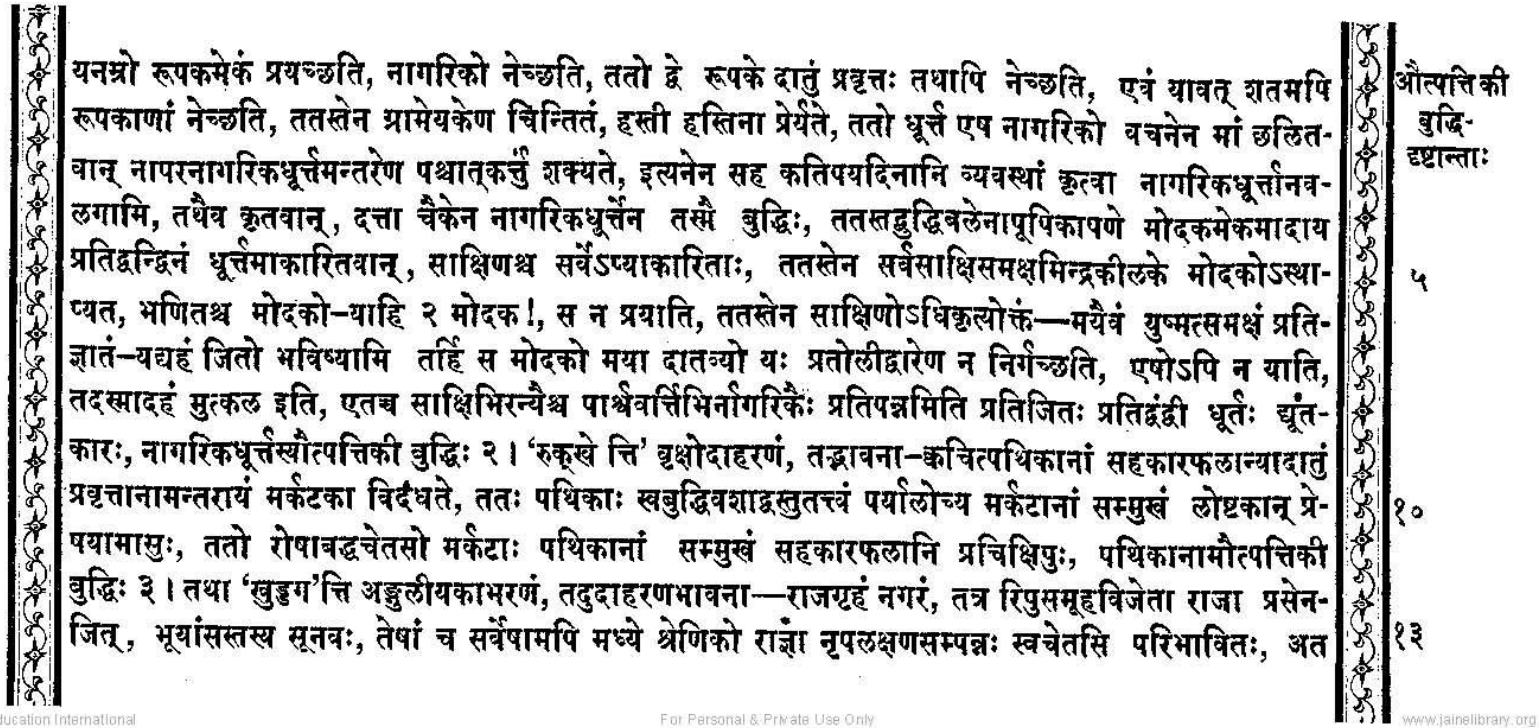
त्संस्पर्शतो जातकामोद्रेका तमपि भोगायाशंसितवती, तत एवं यदि स्पृहामात्रेण तेऽपि पितरः सम्भवन्ति तन्न जाने, परमार्थतः पुनरेक एव ते पिता सकलजगत्प्रसिद्ध इति, तत एवमुक्ते राजा जननीं प्रणम्य रोहकबुद्धिविस्मितचेताः स्वावासप्रासादमगमत्, रोहकं च सर्वेषां मन्त्रिणां मूर्द्धाभिषिक्तं मन्त्रिणमकार्षीत् १ ॥ तदेवं 'भरहसिलेति' व्याख्यातं । सम्प्रति पणियंति व्याख्यायते–द्वौ पुरुषौ–एको ग्रामेयकोऽपरो नागरिकः, तत्र ग्रामेयकः स्वग्रामाच्चिर्भटिका आनयन् प्रतोलीद्वारे वर्त्तते, तं प्रति नागरिकः प्राह—यद्येताः सर्वा अपि तव चिर्भटिका भक्षयामि ततः किं मे प्रयच्छसीति ?, ग्रामेयकः प्राह—योऽनेन प्रतोलीद्वारेण मोदको न याति तं प्रयच्छामि, ततो वद्धं द्वाभ्यामपि पणितं, कृताः साक्षिणो जनाः, ततो नागरिकेण ताः सर्वा अपि चिर्भटिका मनाक् २ भक्षयित्वा मुक्ताः, उक्तं च ग्रामेयकं प्रति–भक्षिताः सर्वा अपि त्वदीयाश्चिर्भटिकाः, ततः प्रयच्छ मे यथाप्रतिज्ञातं मोदकमिति, ग्रामेयक आह—न मे चिर्भटिका भक्षिताः, ततः कथं ते प्रयच्छामि मोदकमिति ?, नागरिकः प्राह—भक्षिता मया सर्वा अपि तव चिर्भटिकाः, यदि न प्रत्येषि तर्हि प्रत्ययमुत्पादयामि ते, तेनोक्तम्–उत्पादय प्रत्ययं, ततो द्वाभ्यामपि विपणिवीथ्यां विस्तारिता विक्रयाय चिर्भटिकाः, समागतो लोकः क्रयाय, ताश्च चिर्भटिका निरीक्ष्य लोको वक्ति–ननु भक्षितास्त्वदीयाः सर्वा अपि चिर्भटिकास्तत्कथं वयं गृह्णीमः ?, एवं च लोकेनोक्ते साक्षिणां ग्रामेयकस्य च प्रतीतिरुदपादि, क्षुभितो ग्रामेयकः–हा कथं नु नाम मया तावत्प्रमाणो मोदको दातव्यः ?, ततः स भयेन कम्पमानो विन-

२०

॥१४९॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



यनम्रो रूपकमेकं प्रयच्छति, नागरिको नेच्छति, ततो द्वे रूपके दातुं प्रवृत्तः तथापि नेच्छति, एवं यावत् शतमपि रूपकाणां नेच्छति, ततस्तेन ग्रामेयकेण चिन्तितं, हस्ती हस्तिना प्रेर्यते, ततो धूर्त्त एष नागरिको वचनेन मां छलितवान् नापरनागरिकधूर्त्तमन्तरेण पश्चात्कर्त्तुं शक्यते, इत्यनेन सह कतिपयदिनानि व्यवस्थां कृत्वा नागरिकधूर्त्तानवलगामि, तथैव कृतवान्, दत्ता चैकेन नागरिकधूर्त्तेन तस्मै बुद्धिः, ततस्तद्बुद्धिबलेनापूपिकापणे मोदकमेकमादाय प्रतिद्वन्द्विनं धूर्त्तमाकारितवान्, साक्षिणश्च सर्वेऽप्याकारिताः, ततस्तेन सर्वसाक्षिसमक्षमिन्द्रकीलके मोदकोऽस्थाप्यत, भणितश्च मोदको–याहि २ मोदक!, स न प्रयाति, ततस्तेन साक्षिणोऽधिकृत्योक्तं—मयैवं युष्मत्समक्षं प्रतिज्ञातं–यद्यहं जितो भविष्यामि तर्हि स मोदको मया दातव्यो यः प्रतोलीद्वारेण न निर्गच्छति, एषोऽपि न याति, तदस्मादहं मुत्कल इति, एतच्च साक्षिभिरन्यैश्च पार्श्ववर्त्तिभिर्नागरिकैः प्रतिपन्नमिति प्रतिजितः प्रतिद्वंद्वी धूर्तः द्यूतकारः, नागरिकधूर्त्तस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः २। 'रुक्ख त्ति' वृक्षोदाहरणं, तद्भावना–कचित्पथिकानां सहकारफलान्यादातुं प्रवृत्तानामन्तरायं मर्कटका विदधते, ततः पथिकाः स्वबुद्धिवशाद्वस्तुतत्त्वं पर्यालोच्य मर्कटानां सम्मुखं लोष्टकान् प्रेषयामासुः, ततो रोषाबद्धचेतसो मर्कटाः पथिकानां सम्मुखं सहकारफलानि प्रचिक्षिपुः, पथिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ३। तथा 'खुड्ग'त्ति अङ्गुलीयकाभरणं, तदुदाहरणभावना—राजगृहं नगरं, तत्र रिपुसमूहविजेता राजा प्रसेनजित्, भूयांसस्तस्य सूनवः, तेषां च सर्वेषामपि मध्ये श्रेणिको राज्ञा नृपलक्षणसम्पन्नः स्वचेतसि परिभावितः, अत

औत्पत्तिकी बुद्धि-दृष्टान्ताः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

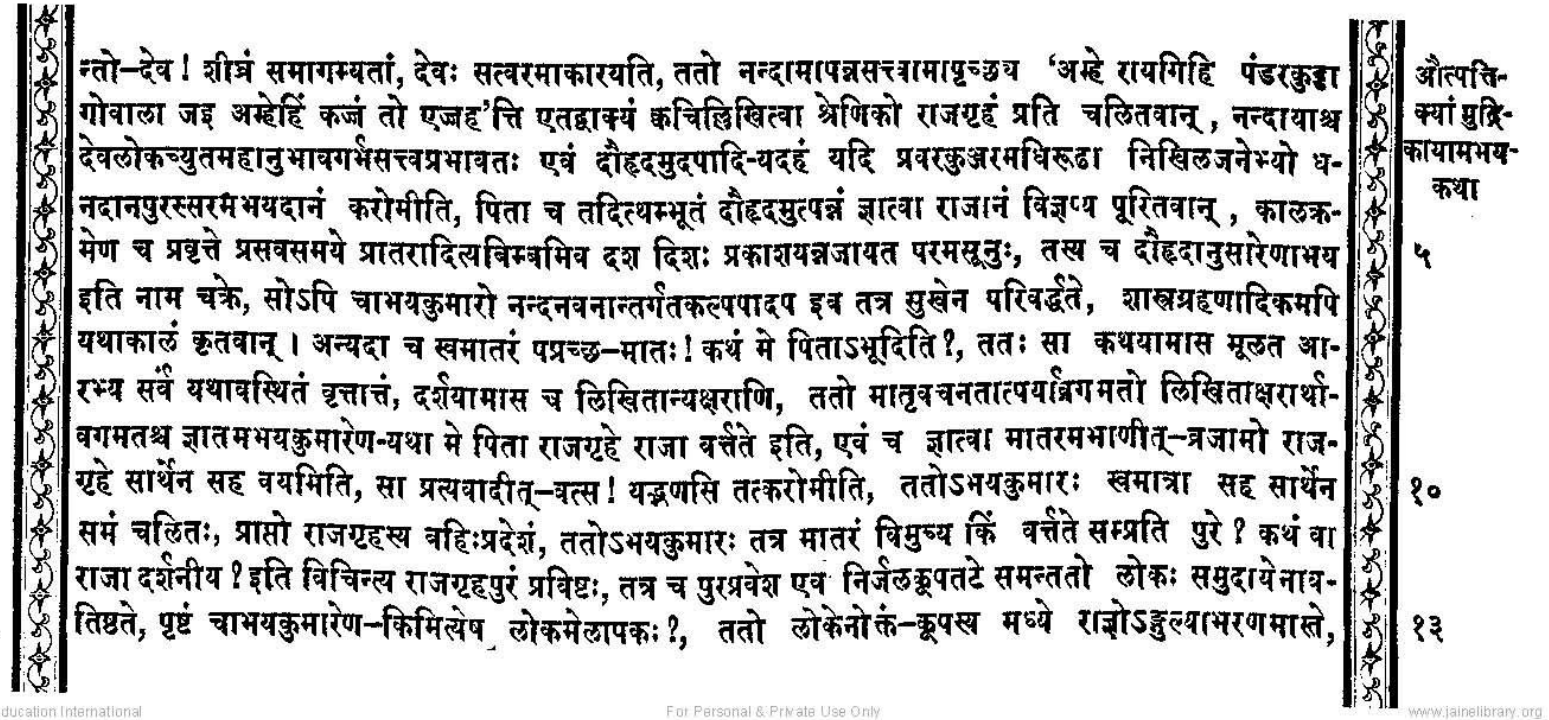
एव च तस्मै न किञ्चिदपि ददाति, नापि वचसाऽपि संस्पृशति, मा शेषैरेष परासुर्विधीयेतेति बुद्धा, स च किञ्चिदप्यलभमानो मन्युभरवशात् प्रस्थितो देशान्तरं जगाम, क्रमेण वेन्नातटं नगरं, तत्र च क्षीणविभवस्य श्रेष्ठिनो विपणौ समुपविष्टः, तेन च श्रेष्ठिना तस्यामेव रात्रौ स्वप्ने रत्नाकरो निजदुहितरं परिणयन् दृष्ट आसीत्, तस्य च श्रेणिकपुण्यप्रभावतस्तस्मिन् दिवसे चिरसंचितप्रभूतक्रयाणकविक्रयेण महान् लाभः समुदपादि, म्लेच्छहस्ताच्चानर्घ्याणि महारत्नानि स्वल्पमूल्येन समपद्यन्त, ततः सोऽचिन्तयत्–अस्य महात्मनो मम समीपमुपविष्टस्य पुण्यप्रभाव एष यत् मया महती विभूतिरेतावती समासादिता, आकृतिं च तस्यातीव सुमनोहरामवलोक्य स्वचेतसि कल्पयामास–स एष रत्नाकरो यो मया रात्रौ स्वप्ने दृष्टः, ततस्तेन कृतकराञ्जलीसम्पुटेन विनयपुरस्सरमाभाषितः श्रेणिकः–कस्य यूयं प्रांघूर्णकाः ?, श्रेणिक उवाच—भवतामिति, ततः स एवंभूतवचनश्रवणतो धाराहतकदम्बपुष्पमिव पुलकितसमस्ततनुयष्टिः सबहुमानं स्वगृहं नीतवान् श्रेणिकं भोजनादिकं च सकलमप्यात्मनोऽधिकतरं सम्पादयामास, पुण्यप्रभावं च तस्य प्रतिदिवसमात्मनो धनलाभवृद्धिसम्भवेनासाधारणमभिसमीक्षमाणः कतिपयदिनातिक्रमे तस्मै स्वदुहितरं नन्दानामानं (श्रीं) दत्तवान्, श्रेणिकोऽपि तया सह पुरन्दर इव पौलोम्या मन्मथमनोरथानापूरयन् पञ्चविधभोगलालसो बभूव, कतिपयवासरातिक्रमे च नन्दाया गर्भाधानं बभूव, इतश्च प्रसेनजित् स्वान्तसमयं विभाव्य श्रेणिकस्य परम्परया वार्त्तामधिगम्य तदाकारणाय सत्वरमुष्ट्रवाहनान् पुरुषान् प्रेषयामास, ते च समागत्य श्रेणिकं विज्ञप्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]



न्तो–देव! शीघ्रं समागम्यतां, देवः सत्वरमाकारयति, ततो नन्दामापन्नसत्त्वामापृच्छय 'अम्हे रायगिहि पंडरकुड्डा गोवाला जइ अम्हेहिं कजं तो एजह'त्ति एतद्वाक्यं क्वचिल्लिखित्वा श्रेणिको राजगृहं प्रति चलितवान्, नन्दायाश्च देवलोकच्युतमहानुभावगर्भसत्त्वप्रभावतः एवं दौहृदमुदपादि-यदहं यदि प्रवरकुञ्जरमधिरूढा निखिलजनेभ्यो धनदानपुरस्सरमभयदानं करोमीति, पिता च तदित्थम्भूतं दौहृदमुत्पन्नं ज्ञात्वा राजानं विज्ञप्य पूरितवान्, कालक्रमेण च प्रवृत्ते प्रसवसमये प्रातरादित्यबिम्बमिव दश दिशः प्रकाशयन्नजायत परमसूनुः, तस्य च दौहृदानुसारेणाभय इति नाम चक्रे, सोऽपि चाभयकुमारो नन्दनवनान्तर्गतकल्पपादप इव तत्र सुखेन परिवर्द्धते, शास्त्रग्रहणादिकमपि यथाकालं कृतवान्। अन्यदा च स्वमातरं पप्रच्छ–मातः! कथं मे पिताऽभूदिति?, ततः सा कथयामास मूलत आरभ्य सर्वं यथावस्थितं वृत्तान्तं, दर्शयामास च लिखितान्यक्षराणि, ततो मातृवचनतात्पर्यावगमतो लिखिताक्षरार्थावगमतश्च ज्ञातमभयकुमारेण-यथा मे पिता राजगृहे राजा वर्त्तते इति, एवं च ज्ञात्वा मातरमभाणीत्–व्रजामो राजगृहे सार्थेन सह वयमिति, सा प्रत्यवादीत्–वत्स! यद्रुचसि तत्करोमीति, ततोऽभयकुमारः स्वमात्रा सह सार्थेन समं चलितः, प्राप्तो राजगृहस्य बहिःप्रदेशं, ततोऽभयकुमारः तत्र मातरं विमुच्य किं वर्त्तते सम्प्रति पुरे? कथं वा राजा दर्शनीय? इति विचिन्त्य राजगृहपुरं प्रविष्टः, तत्र च पुरप्रवेश एव निर्जलकूपतटे समन्ततो लोकः समुदायेनावतिष्ठते, पृष्टं चाभयकुमारेण–किमित्येष लोकमेलापकः?, ततो लोकेनोक्तं–कूपस्य मध्ये राज्ञोऽङ्गुल्याभरणमास्ते,

औत्पत्तिक्यां बुद्धौ कायामभयकथा

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

तद्यो नाम तटे स्थितः स्वहस्तेन गृह्णाति तस्मै राजा महतीं वृत्तिं प्रयच्छतीति, तत एवं श्रुते पृष्टाः प्रत्यासन्नवर्त्तिनो राजनियुक्ताः पुरुषाः, तैरप्येवमेव कथितं, ततोऽभयकुमारेणोक्तम्–अहं तटे स्थितो ग्रहीष्यामि, राजनियुक्तैः पुरुषैरुक्तं–गृहाण त्वं, यत्प्रतिज्ञातं राज्ञा तदवश्यं करिष्यते, ततोऽभयकुमारेण परिभावितमङ्गुल्याभरणं दृष्ट्वा सम्यक्, तत आर्द्रगोमयेनाहतं, संलग्नं तत्तत्र, ततस्तस्मिन् शुष्के मुक्तं कूपान्तरात् पानीयं, भृतो जलेन, परिपूर्णः स कूपः, तरति चोपरि साङ्गुल्याभरणः शुष्कगोमयः, ततस्तटस्थेन सता गृहीतमङ्गुल्याभरणमभयकुमारेण, कृतश्चानन्दकोलाहलो लोकेन, निवेदितं राज्ञो राजनियुक्तैः पुरुषैः, आकारितोऽभयकुमारो राज्ञा, गतो राज्ञः समीपं, मुमोच पुरतोऽङ्गुल्याभरणं, पृष्टश्च राज्ञा–वत्स! कोऽसि त्वं?, अभयकुमारेणोक्तं–देव! युष्मदपत्यं, राजा प्राह—कथं?, ततः प्राक्तनं वृत्तान्तं कथितवान्, ततो जगाम महाप्रमोदं राजा, चकारोत्सङ्गेऽभयकुमारं, चुम्बितवान् सस्नेहं शिरसि, पृष्टश्च श्रेणिकेनाभयकुमारो-वत्स! क्व ते माता वर्त्तते?, तेनोक्तं–देव! बहिःप्रदेशे, ततो राजा सपरिच्छदस्तस्याः सम्मुखमुपागमत्, अभयकुमारश्चाग्रे समागत्य कथयामास सर्वं नन्दायाः, ततः साऽऽत्मानं मण्डयितुं प्रवृत्ता, निषिद्धा चाभयकुमारेणमातर्न कल्पते कुलस्त्रीणां निजपतिविरहितानां निजपतिदर्शनमन्तरेण भूषणं कर्तुमिति, समागतो राजा, पपात राज्ञः पादयोः नन्दा, सन्मानिता च भूषणादिप्रदानेनातीव राज्ञा, सस्नेहं प्रवेशिता महाविभूत्या नगरं सपुत्रा, स्थापितश्चाभयकुमारोऽमात्यपदे। अभयकुमारस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ४। तथा 'पड'त्ति पटोदाहरणं, तद्भावना–द्वौ पुरुषौ, एक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

स्याच्छादनपटः सौत्रिकः अपरस्योर्णामयः, तौ च सह गत्वा युगपत् स्नातुं प्रवृत्तौ, तत्रोर्णामयपटस्वामी स्वपटं विमुच्य द्वितीयस्य सत्कं सौत्रिकं पटं गृहीत्वा गन्तुं प्रस्थितो, द्वितीयो याचते स्वपटं, स न प्रयच्छति, ततो राजकुले व्यवहारो जातः, ततः कारणिकैर्द्वयोरपि शिरसी कङ्कतिकयाऽवलेखिते, ततोऽवलेखने कृते उर्णामयपटस्वामिनः शिरसि उर्णावयवा निर्जग्मुः, ततो ज्ञातं-नूनमेष न सौत्रिकपटस्य स्वामीति निगृहीतः, परस्य समर्पितः सौत्रिकः पटः । कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ५ । 'सरड'त्ति सरटोदाहरणं, तद्भावना–कस्यचित्पुरुषस्य पुरीषमुत्सृजतः सरटो गुदस्याधस्ताद्बिलं प्रविशन् पुच्छेन गुदं स्पृष्टवान् , ततस्तस्यैवमजायत शङ्का-नूनमुदरे मे सरटः प्रविष्टः, ततो गृहं गतो महतीमधृतिं कुर्वन्नतीव दुर्बलो बभूव, वैद्यं च प्रपच्छ, वैद्यश्च ज्ञातवान्, असम्भवमेतत्, केवलमस्य कथञ्चिदाशङ्का समुदपादि, ततः सोऽवादीत्–यदि मे शतं रूपकाणां प्रयच्छसि ततोऽहं त्वां निराकुलीकरोमि, तेन प्रतिपन्नं, ततो वैद्यो विरेचकौषधं तस्य प्रदाय लाक्षारसखरण्टितं सरटं घटे प्रक्षिप्य तस्मिन् घटे पुरीषोत्सर्गं कारितवान्, ततो दर्शितो वैद्येन तस्य पुरीषखरण्टितो घटे सरटो, व्यपगता तस्य शङ्का, जातो बलिष्ठशरीरः । वैद्यस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ६ । 'काय'त्ति काकोदाहरणं, तद्भावना—वेन्नातटपुरे केनापि सौगतेन कोऽपि श्वेतपटक्षुल्लकः पृष्टो–भोः क्षुल्लक! सर्वज्ञाः किल तवार्हन्तः तत्पुत्रकाश्च यूयं तत् कथय–कियन्तोऽत्र पुरे वसन्ति वायसाः?, ततः क्षुल्लकश्चिन्तया-

औत्पत्तिक्यां पटसरटकाककथाः ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

मास–शठोऽयं प्रतिशठाचरणेन निर्लोठनीयः, ततः स्वबुद्धिवशादिदं पठितवान्–"सट्ठिं कागसहस्सा इह (यं) विन्नायडे परिवसंति । जइ ऊणगा पवसिया अब्भहिया पाहुणा आया ॥ १ ॥" ततः स भिक्षुः प्रत्युत्तरं दातुमशक्नुवन् लकुटाहतशिरस्क इव शिरः कण्डूयन् मौनमाधाय गतः । क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः । अथवा अपरो वायसदृष्टान्तः—कोऽपि क्षुल्लकः केनापि भागवतेन दुष्टबुद्ध्या पृष्टो–भोः क्षुल्लक! किमेष काको विष्ठामितस्ततो विक्षिपति?, क्षुल्लकोऽपि तस्य दुष्टबुद्धितामवगम्य तन्मर्मावित् प्रत्युत्तरं दत्तवान्–युष्मत्सिद्धान्ते जले स्थले च सर्वत्र व्यापी विष्णुरभ्युपगम्यते, ततो यौष्माकीणं सिद्धान्तमुपश्रुत्य एषोऽपि वायसोऽचिन्तयत्–किमस्मिन् पुरीषे समस्ति विष्णुः किं वा नेति?, ततः स एवमुक्तो बाणाहतमर्मप्रदेश इव घूर्णितचेतसो मौनमवलम्ब्य रुषा धूमायमानो गतः । क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ७ । 'उच्चारे'त्ति उच्चारोदाहरणं, तद्भावना–क्वचित् पुरि कोऽपि धिग्जातीयः, तस्य भार्याऽभिनवयौवनोद्भेदरमणीया लोचनयुगलवक्त्रिमावलोकनमहाभल्लीनिपाताताडितसकलकामिकुरङ्गहृदया प्रबलकामोन्मत्तमानसा, सोऽन्यदा धिग्जातीयस्तया भार्यया सह देशान्तरं गन्तुं प्रवृत्तः, अपान्तराले च धूर्त्तः कोऽपि पथिको मिलितः, सा च धिग्जातीयभार्या तस्मिन् रतिं बद्धवती, ततो धूर्त्तः प्राह–मदीया एषा भार्या, धिग्जातीयः प्राह–मदीयेति, ततो राजकुले व्यवहारो जातः, कारणिकैर्द्वयोरपि पृथक् २ ह्यस्तनदिने भुक्त आहारः पृष्टो, धिग्जातीयेनोक्तं–मया ह्यस्तनदिने तिलमोदका भक्षिता

१ षष्टिः काकसहस्राणि इह वेन्नातटे परिवसन्ति । वयूनाः प्रोषिता अभ्यधिकाः प्राघूर्णका आयाताः ॥ १ ॥

२०

॥१५२॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मङ्गार्यया च, धूर्त्तेनान्यत्किमप्युक्तं, ततो दत्तं तस्याः कारणिकैर्विरेकौषधं, जातो विरेको, दृष्टाः पुरीषान्तर्गतास्तिलाः, दत्ता सा धिग्जातीयाय, निर्धाटितो धूर्त्तः। कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ८। 'गय'त्ति गजोदाहरणं, तद्भावना– वसन्तपुरे नगरे कोऽपि राजा बुद्ध्यतिशयसम्पन्नं मन्त्रिणमेकमन्वेषमाणश्चतुष्पथे हस्तिनमालानस्तम्भे बन्धयित्वा घोषणामचीकरत्–योऽमुं हस्तिनं तोलयति तस्मै राजा महतीं वृत्तिं प्रयच्छतीति, इमां च घोषणां श्रुत्वा कश्चिदेकः पुमान् तं हस्तिनं महासरसि नावमारोहयामास, अस्मिंश्चारूढे यावत्प्रमाणा नौर्जले निमग्ना तावत्प्रमाणां रेखामदात्, ततः समुत्तारितो हस्ती तटे, प्रक्षिप्ता गण्डशैलकल्पा नावि पाषाणाः, ते च तावत्प्रक्षिप्ता यावद्रेखां मर्यादीकृत्य जले निमग्ना नौः, ततस्तोलिताः सर्वे ते पाषाणाः, कृतमेकत्र पलप्रमाणं निवेदितं च राज्ञे-देव! एतावत्पलप्रमाणो हस्ती वर्त्तते, ततस्तुतोष राजा, कृतो मन्त्रिमण्डलमूर्द्धाभिषिक्तः परममन्त्री। तस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ९। 'घयणत्ति' भाण्डः, तदुदाहरणं–विटो नाम कोऽपि पुरुषो राज्ञः प्रत्यासन्नवर्त्ती, तं प्रति राजा निजदेवीं प्रशंसति–अहो निरामया मे देवी या न कदाचिदपि वातनिसर्गं विदधाति, विटः प्राह–देव! न भवतीदं जातुचित्, राजाऽवादीत्–कथं?, विट आह–देव! धूर्त्ता देवी, ततो यदा सुगन्धीनि पुष्पाणि चूर्णयित्वा वासान् समर्पयति नासिकाग्रे तदा ज्ञातव्यं–वातं विमुञ्चतीति, ततोऽन्यदा राज्ञा तथैव परिभावितं, सम्यगवगते च हसितं, ततो देवी हसननिमित्तकथनाय निर्बन्धं कृतवती, ततो राजाऽतिनिर्बन्धे कृते पूर्ववृत्तान्तमचीकथत्, ततश्चुकोप देवी तस्मै विटाय, आज्ञप्तो

औत्पत्तिक्यांगज-घृतन-दृष्टान्तौ

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

देशत्यागेन, तेनापि जज्ञे-नूनमकथयत् पूर्ववृत्तान्तं देवो देव्याः, तेन मे चुकोप देवी, ततो महान्तमुपानहां भरमादाय गतो देवीसकाशं, विज्ञपयामास देवीं–देवि! यामो देशान्तराणि, देवी उपानहां भरं पार्श्वे स्थितं दृष्ट्वा पृष्टवती-रे किमेष उपानहाम्भरः?, सोऽवादीत्–देवि! यावन्ति देशान्तराण्येतावतीभिरुपानद्भिर्गन्तुं शक्ष्यामि तावत्सु देव्याः कीर्त्तिर्विस्तारणीया, तत एवमुक्ते मा मे सर्वत्रापकीर्तिर्जायेतेति परिभाव्य देवी बलात्तं धारयामास। विटस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः १०। 'गोलो'त्ति गोलकोदाहरणं, तद्भावना–लाक्षागोलकः कस्यापि बालकस्य कथमपि नासिकामध्ये प्रविष्टः, ततस्तन्मातापितरावतीवार्तौ बभूवतुः, दर्शितो बालकः सुवर्णकारस्य, तेन सुवर्णकारेण प्रतप्ताग्रभागया लोहशलाकया शनैः शनैर्यत्नतो लाक्षागोलको मनाक् प्रताप्य सर्वोऽपि समाकृष्टः। सुवर्णकारस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ११। 'खंभ'त्ति स्तम्भोदाहरणं, तद्भावना—राजा मन्त्रिणमेकं गवेषयन् महाविस्तीर्णतटाकमध्ये स्तम्भमेकं निक्षेपयामास, तत एवं घोषणां कारितवान्-यो नाम तटे स्थितोऽमुं स्तम्भं दवरकेण बध्नाति तस्मै राजा शतसहस्रं प्रयच्छतीति, तत एवं घोषणां श्रुत्वा कोऽपि पुमान् एकस्मिन् तटप्रदेशे कीलकं भूमौ निक्षिप्य दवरकेण बद्ध्वा तेन दवरकेण सह सर्वतस्तटे परिभ्रमन् मध्यस्थितं तं स्तम्भं बद्धवान्, लोकेन च बुद्ध्यतिशयसम्पन्नतया प्रशंसितो, निवेदितश्च राज्ञो राजनियुक्तैः पुरुषैः, तुतोष राजा, ततस्तं मन्त्रिणमकार्षीत्। तस्य पुरुषस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः १२। 'खुल्लक'त्ति क्षुल्लकोदाहरणं, तद्भावना–कस्मिंश्चित्पुरे काचित् परिव्राजिका, सा यो यत्करोति तदहं कुशलकर्मा सर्वं करोमीति राज्ञः समक्षं प्रतिज्ञां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृतवती, राजा च तत्प्रतिज्ञासूचकं पटहमुद्घोषयामास, तत्र च कोऽपि क्षुल्लको भिक्षार्थमटन् पटहशब्दं श्रुतवान्, श्रुतश्च प्रतिज्ञार्थः, ततो धृतवान् पटहं, प्रतिपन्नो राजसमक्षं व्यवहारो, गतो राजकुलं क्षुल्लकः, ततस्तं लघुं दृष्ट्वा सा परिव्राजिकाऽऽत्मीयं मुखं विकृत्यावज्ञयाऽभिधत्ते–कथय कुतो मिलामि ?, तत एवमुक्ते क्षुल्लकः स्वं मेण्ढ्रं दर्शितवान्, ततो हसितं सर्वैरपि जनैः, उद्घुष्टं च–जिता जिता परिव्राजिका, तस्या एवं कर्त्तुमशक्यत्वात्, ततः क्षुल्लकः कायिक्या पद्ममालिखितवान्, सा कर्त्तुं न शक्नोति, ततो जिता परिव्राजिका। क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः१३। 'मग्ग'त्ति मार्गोदाहरणं, तद्भावना-कोऽपि पुरुषो निजभार्यां गृहीत्वा वाहनेन ग्रामान्तरं व्रजति, अपान्तराले च क्वचित् प्रदेशे शरीरचिन्तानिमित्तं तद्भार्या वाहनादुत्तीर्णवती, तस्यां च शरीरचिन्तानिमित्तं कियद्भूभागं गतायां तत्प्रदेशवर्त्तिनी काचिद्व्यन्तरी पुरुषस्य रूपसौभाग्यादिकमवलोक्य कामानुरागतस्तद्रूपेणागत्य वाहनं विलग्ना, सा च तद्भार्या शरीरचिन्तां विधाय यावद्वाहनसमीपमागच्छति तावदन्यां स्त्रियमात्मसमानरूपां वाहनमधिरूढां पश्यति,सा च व्यन्तरी पुरुषं प्रत्याह—एषा काचिद्व्यन्तरी मदीयं रूपमारचय्य तव सकाशमभिलषति ततः खेटय २ सत्वरं सौरभेयाविति, ततः स पुरुषस्तथैव कृतवान्, सा चारटन्ती पश्चाल्लग्ना समागच्छति, पुरुषोऽपि तामारटन्तीं दृष्ट्वा मूढचेता मन्दं मन्दं खेटयामास, ततः प्रावर्त्तत तयोस्तद्भार्याव्यन्तर्योर्निष्ठुरभाषणादिकः परस्परं कलहः, ग्रामे च प्राप्ते जातस्तयो राजकुले व्यवहारः, पुरुषश्च निर्णयमकुर्वन्नुदासीनो वर्त्तते, ततः कारणिकैः पुरुषो दूरे व्यवस्थापितो, भणिते च ते द्वे अपि च

औत्पत्तिक्यांमार्गस्त्री दृष्टान्तः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

स्त्रियौ-युवयोर्मध्ये या काचिदमुं प्रथमं हस्तेन संस्पृक्ष्यति तस्याः पतिरेष न शेषायाः, ततो व्यन्तरी हस्तं दूरतः प्रसार्य प्रथमं स्पृष्टवती, ततो ज्ञातं कारणिकैरेषा व्यन्तरीति, ततो निर्द्धाटिता, द्वितीया च समर्पिता स्वपतेः । कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः १४ । 'इत्थि'त्ति युदाहरणं, तद्भावना–मूलदेवपुण्डरीकौ सह पन्थानं गच्छतः, इतश्च कोऽपि सभार्याकः पुरुषस्तेनैव पथा गन्तुं प्रावर्त्तत, पुण्डरीकश्च दूरस्थितस्तद्भार्यागतमतिशायिरूपं दृष्ट्वा साभिलाषो जातः, कथितं च तेन मूलदेवस्य–यदीमां मे सम्पादयसि तदहं जीवामि, नान्यथेति, ततो मूलदेवोऽवादीत्–मा आतुरीभूः, अहं ते नियमतः सम्पादयिष्यामि, ततस्तौ द्वावप्यलक्षितौ सत्वरं दूरतो गतौ, ततो मूलदेवः पुण्डरीकमेकस्मिन् वननिकुञ्जे संस्थाप्य पथि ऊर्द्धस्थितो वर्त्तते, ततः पश्चादायातः सभार्याकः स पुरुषो भणितो मूलदेवेन–भो महापुरुष! महेलाया ममास्मिन् वननिकुञ्जे प्रसवो वर्त्तते, ततः क्षणमात्रं निजमहेलां विसर्जय, विसर्जिता तेन, गता सा पुण्डरीकपार्श्वे, ततः क्षणमात्रं स्थित्वा समागता–'आगंतूण य तत्तो पडयं घेत्तूण मूलदेवस्स । धुत्ती भणइ हसन्ती पियं खु भे दारओ जाओ ॥ १ ॥' द्वयोरपि तयोरौत्पत्तिकी बुद्धिः १५। 'पइ'त्ति पतिदृष्टान्तः, तद्भावना–द्वयोर्भ्रात्रोरेका भार्या, लोके च महत्कौतुकम्–अहो द्वयोरप्येषा समानरागेति, एतच्च श्रुतिपरम्परया राज्ञाऽपि श्रुतं, परं विस्मयमुपागतो राजा, मन्त्री ब्रूते–देव! न भवति कदाचिदप्येतद्, अवश्यं विशेषः कोऽपि भविष्यति, राज्ञोक्तं–कथमेत-

१ आगत्य च ततः पटं गृहीत्वा मूलदेवस्य । धूर्त्ता भणति हसन्ती प्रियं भवतां दारको जातः ॥ १ ॥

२० ॥१५४॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दवसेयं ?, मन्त्री ब्रूते–देव! अचिरादेव यथा ज्ञास्यते तथा यतिष्यते, ततो मन्त्रिणा तस्याः स्त्रिया लेखः प्रेषितो यथा–तौ द्वावपि निजपती ग्रामद्वये प्रेषणीयौ–एकः पूर्वस्यां दिशि विवक्षिते ग्रामेऽपरोऽपरस्यां दिशि, तस्मिन्नेव च दिने द्वाभ्यामपि स्वगृहे समागन्तव्यं, ततस्तया यो मन्दवल्लभः स पूर्वस्यां दिशि प्रेषितोऽपरोऽपरस्यां दिशि, पूर्वस्यां च दिशि यो गतस्तस्य गच्छत आगच्छतश्च संमुखः सूर्यो, यः पुनरपरस्यां गतस्तस्य गच्छत आगच्छतश्च पृष्ठतः, एवं कृते च मन्त्रिणा ज्ञातम्–अयं मन्दवल्लभः अपरोऽत्यन्तवल्लभः, ततो निवेदितं च राज्ञे, राज्ञा च न प्रतिपन्नं, यतोऽवश्यमेकः पूर्वस्यां दिशि प्रेषणीयोऽपरोऽपरस्यां दिशि, ततः कथमेष विशेषो गम्यते ?, ततः पुनरपि मन्त्रिणा लेखप्रदानेन सा महेलोक्ता–द्वावपि निजपती तयोरेव ग्रामयोः समकं प्रेषणीयौ, तया च तौ तथैव प्रेषितौ, मन्त्रिणा च द्वौ पुरुषौ तस्याः समीपे समकं तयोः शरीरापाटवनिवेदकौ प्रेषितौ, द्वाभ्यामपि च सा समकमाकारिता,ततो यो मन्दवल्लभशरीरापाटवनिवेदकः पुरुषस्तं प्रत्याह–सदैव मन्दशरीरो द्वितीयोऽत्यातुरश्च वर्त्तते ततस्तं प्रत्यहं गमिष्यामि, तथैव कृतं, ततो निवेदितं राज्ञो मन्त्रिणा, प्रतिपन्नं राज्ञा तथेति। मन्त्रिणः औत्पत्तिकी बुद्धिः १६। 'पुत्त' त्ति पुत्रदृष्टान्तः,तद्भावना–कोऽपि वणिक्, तस्य द्वे पत्न्यौ, एकस्याः पुत्रोऽपरा वन्ध्या,परं साऽपि तं पुत्रं सम्यक् पालयति, ततः स पुत्रो विशेषं न जानीते–यथा इयं मे जननी इयं नेति, सोऽपि वणिक् सभार्यापुत्रो देशान्तरं गतो, गतमात्र एव परासुरभूत्, ततो द्वयोरपि तयोः कलहोऽजायत, एका भणति–ममैष पुत्रस्ततोऽहं गृहस्वामिनी, द्वितीया ब्रूते–का त्वं ?, ममैष पुत्रः ततोऽहमेव

औत्पत्तिक्यां समपतिपुत्रदृष्टान्तौ

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

गृहस्वामिनीति, एवं च तयोः परस्परं कलहे जाते राजकुले व्यवहारो बभूव, ततोऽमात्यः प्रतिपादयामास निजपुरुषान्—भोः पूर्वं द्रव्यं समस्तं विभजत, विभज्य ततो दारकं करपत्रेण कुरुत द्वौ भागौ, कृत्वा चैकं खण्डमेकस्यै समर्पयत द्वितीयं द्वितीयस्यै, तत एतदमात्यवाक्यं शिरसि महाज्वालासहस्रावलीढवज्रोपनिपातकल्पं पुत्रमाता श्रुत्वा सोत्कम्पहृदया हृदयान्तःप्रविष्टतिर्यक्शल्येव सदुःखं वक्तुं प्रवृत्ता—हा स्वामिन्! महामात्य! न ममैष पुत्रो, न मे किञ्चिदर्थेन प्रयोजनं, एतस्या एव पुत्रो भवतु गृहस्वामिनी च, अहं पुनरमुं पुत्रं दूरस्थितापि परगृहेषु दारिद्र्यमपि कुर्वती जीवन्तं द्रक्ष्यामि, तावता च कृतकृत्यमात्मानं प्रपत्स्ये, पुत्रेण विना पुनरधुनापि समस्तोऽपि मे जीवलोकोऽस्तमुपयाति, इतरा च न किमपि वक्ति, ततोऽमात्येन तां सदुःखां परिभाव्योक्तम्—तस्याः पुत्रो नास्या इति, सैव सर्वस्वस्वामिनी कृता, द्वितीया तु निर्द्धाटिता। अमात्यस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः १७। 'भरहसिलमेंढे'त्यादिका च गाथा रोहकसंविधानसूचिका, सा च प्रागुक्तकथानकानुसारेण स्वयमेव व्याख्येया। मधुयुक्तं सित्थं—मधुसित्थं, तद्दृष्टान्तभावना—कश्चित्कौलिकस्तस्य भार्या स्वैरिणी, सा चान्यदा केनापि पुरुषेण सह कस्मिंश्चित्प्रदेशे जालिमध्ये मैथुनं सेवितवती, मैथुनस्थितया च तया उपरि भ्रामरं समुत्पन्नं दृष्टं, क्षणमात्रानन्तरं च समागता गृहे, द्वितीये च दिवसे स्वभर्त्ता मदनं क्रीणंस्तया निवारितो—मा क्रीणीहि मदनं, अहं ते भ्रामरमुत्पन्नं दर्शयिष्यामि, ततः स क्रयाद्विनिवृत्तो, गतौ च तौ द्वावपि तां जालिं, न पश्यति सा कथमपि कौलिकी भ्रामरं, ततो येन संस्थानेन मैथुनं सेवितवती तेनैव

॥१५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

संस्थानेन स्थिता, ततो दृष्टवती भ्रामरं, दर्शयामास च कौलिकाय, कौलिकोऽपि तथारूपं संस्थानमवलोक्य ज्ञातवान्–नूनमेषा दुश्चारिणीति । कौलिकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः १८ । 'मुद्दिय'त्ति मुद्रिकोदाहरणं, तद्भावना–कस्मिंश्चित्पुरे कोऽपि पुरोधाः सर्वत्र ख्यातसत्यवृत्तिः–यथा परकीयान्निक्षेपानादायादाय प्रभूतकालातिक्रमेऽपि तथास्थितानेव समर्प्पयतीति, एतच्च ज्ञात्वा कोऽपि द्रमकः तस्मै स्वनिक्षेपं समर्प्य देशान्तरमगमत्, प्रभूतकालातिक्रमे च भूयोऽपि तत्रागतो याचते च स्वं निक्षेपं पुरोधसं, पुरोधाश्च मूलत एवापलपति–कस्त्वं कीदृशो वा तव निक्षेप इति ?, ततः स रङ्को वराकः स्वं निक्षेपमलभमानः शून्यचित्तो बभूव, अन्यदा च तेनामात्यो गच्छन् दृष्टो याचितश्च–देहि मे पुरोहित ! सुवर्णसहस्रप्रमाणं निक्षेपमिति, तत एतदाकर्ण्य अमात्यस्तद्विषयकृपापरीतचेता बभूव, ततो गत्वा निवेदितं राज्ञः, कारितश्च दर्शनं द्रमको, राज्ञापि भणितः पुरोधाः–देहि तस्मै द्रमकाय स्वं निक्षेपमिति, पुरोहितोऽवादीत्–देव ! न किमपि तस्याहं गृह्णामि, ततो राजा मौनमधात्, पुरोधसि च स्वगृहं गते राजा विजने तं द्रमकमाकार्य पृष्टवान्–रे ! कथय सत्यमिति, ततस्तेन सर्वं दिवसमुहूर्त्तस्थानपार्श्ववर्त्तिमानुषादिकं कथितं, ततोऽन्यदा राजा पुरोधसा समं रन्तुं प्रावर्त्तत, परस्परं नाममुद्रा च सञ्चारिता, ततो राजा यथा पुरोधा न वेत्ति तथा कस्यापि मानुषस्य हस्ते नाममुद्रां समर्प्य तं प्रति बभाण–रे ! पुरोधसो गृहं गत्वा तद्भार्यामेवं ब्रूहि–यथाऽहं पुरोधसा प्रेषितः, इयं च नाममुद्राऽभिज्ञानं, तस्मिन् दिने तस्यां वेलायां यः सुवर्णसहस्रनवलको द्रमकसत्कस्त्वत्समक्षममुकप्रदेशे मु-

औत्पत्तिक्यां मुद्राकथा

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

क्तोऽस्ति झटिति मे समर्पय, तेन पुरुषेण तथैव कृतं, सापि च पुरोधसो भार्या नाममुद्रां दृष्ट्वाऽभिज्ञानमिलनतश्च-
सत्यमेष पुरोधसा प्रेषित इति प्रतिपन्नवती, ततः समर्पयामास तं द्रमकनिक्षेपं, तेन च पुरुषेणानीय राज्ञः समर्पितो,
राज्ञा चान्येषां बहूनां नवलकानां मध्ये स द्रमकनवलकः प्रक्षिप्तः, आकारितो द्रमकः, पार्श्वे चोपवेशितः पुरोधाः,
द्रमकोऽपि तमात्मीयं नवलकं दृष्ट्वा प्रमुदितहृदयो विकसितलोचनोऽपगतचित्तशून्यताभावः सहर्षो राजानं विज्ञप-
यितुं प्रवृत्तः–देव! देवपादानां पुरत एवमाकारो मदीयो नवलकः, ततो राजा तं तस्मै समर्पयामास, पुरोधसश्च जिह्वा-
च्छेदमचीकरत्। राज्ञ औत्पत्तिकी बुद्धिः १९। 'अंके'त्ति अङ्कदृष्टान्तभावना, कोऽपि कस्यापि पार्श्वे रूपकसहस्रनवलकं
निक्षिप्तवान्, तेन च निक्षेपग्राहिणा तं नवलकमधःप्रदेशे छित्त्वा कूटरूपकाणां सहस्रेण स भृतः, तथैव च सीवितः,
ततः कालान्तरे तस्य पार्श्वान्निक्षेपस्वामिना स्वनिक्षेपो गृहीतः, परिभावितः, सर्वं तत्तथैव दृश्यते मुद्रादिकं, तत उद्घा-
टिता मुद्रा यावत् रूपकान् परिभावयति तावत्सर्वानपि कूटान् पश्यति, ततो जातो राजकुले तयोर्व्यवहारः, पृष्टः
कारणिकैर्निक्षेपस्वामी–भोः! कतिसङ्ख्यास्तव नवलके रूपका आसीरन्?, स प्राह–सहस्रं, ततो गणयित्वा रूपकाणां
सहस्रं तेन भृतः स नवलकः, स च परिपूर्णं भृतः, केवलं यावन्मात्रमधस्ताच्छिन्नस्तावन्यून इत्युपरि सीवितुं न
शक्यते, ततो ज्ञातं कारणिकैः नूनमस्यापहृता रूपकाः,ततो दापितो रूपकसहस्रमितरो नवलकस्वामिनः। कारणिका-
नामौत्पत्तिकी बुद्धिः २०। 'नाणं'ति कोऽपि कस्यापि पार्श्वे सुवर्णपणभृतं नवलकं निक्षिप्तवान्, ततो गतो देशान्तरं,

२०

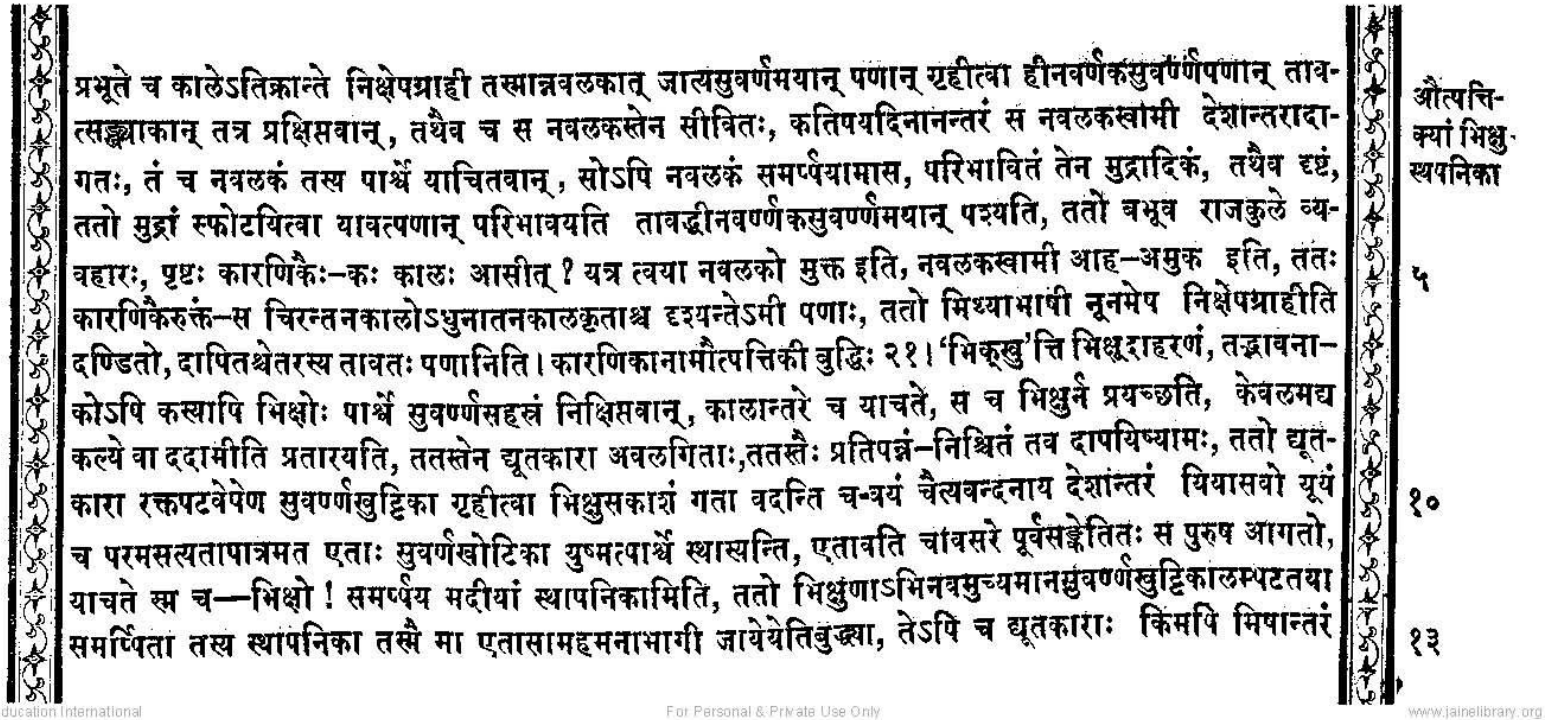
॥१५६॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]



प्रभूते च कालेऽतिक्रान्ते निक्षेपग्राही तस्मान्नवलकात् जात्यसुवर्णमयान् पणान् गृहीत्वा हीनवर्णकसुवर्णपणान् तावत्सङ्ख्याकान् तत्र प्रक्षिप्तवान्, तथैव च स नवलकस्तेन सीवितः, कतिपयदिनानन्तरं स नवलकस्वामी देशान्तरादागतः, तं च नवलकं तस्य पार्श्वे याचितवान्, सोऽपि नवलकं समर्प्पयामास, परिभावितं तेन मुद्रादिकं, तथैव दृष्टं, ततो मुद्रां स्फोटयित्वा यावत्पणान् परिभावयति तावद्धीनवर्णकसुवर्णमयान् पश्यति, ततो बभूव राजकुले व्यवहारः, पृष्टः कारणिकैः–कः कालः आसीत् ? यत्र त्वया नवलको मुक्त इति, नवलकस्वामी आह–अमुक इति, ततः कारणिकैरुक्तं–स चिरन्तनकालोऽधुनातनकालकृताश्च दृश्यन्तेऽमी पणाः, ततो मिथ्याभाषी नूनमेष निक्षेपग्राहीति दण्डितो, दापितश्चेतरस्य तावतः पणानिति। कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः २१। 'भिक्खु'त्ति भिक्षूदाहरणं, तद्भावना–कोऽपि कस्यापि भिक्षोः पार्श्वे सुवर्णसहस्रं निक्षिप्तवान्, कालान्तरे च याचते, स च भिक्षुर्न प्रयच्छति, केवलमद्य कल्ये वा ददामीति प्रतारयति, ततस्तेन द्यूतकारा अवलगिताः,ततस्तैः प्रतिपन्नं–निश्चितं तव दापयिष्यामः, ततो द्यूतकारा रक्तपटवेषेण सुवर्णखुट्टिका गृहीत्वा भिक्षुसकाशं गता वदन्ति च-वयं चैत्यवन्दनाय देशान्तरं यियासवो यूयं च परमसत्यतापात्रमत एताः सुवर्णखोटिका युष्मत्पार्श्वे स्थास्यन्ति, एतावति चावसरे पूर्वसङ्केतितः स पुरुष आगतो, याचते स्म च—भिक्षो ! समर्प्पय मदीयां स्थापनिकामिति, ततो भिक्षुणाऽभिनवमुच्यमानसुवर्णखुट्टिकालम्पटतया समर्प्पिता तस्य स्थापनिका तस्मै मा एतासामहमनाभागी जायेयेतिबुद्ध्या, तेऽपि च द्यूतकाराः किमपि मिषान्तरं

औत्पत्तिक्यां भिक्षुस्थापनिका

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

कृत्वा स्वसुवर्णस्तुष्टिका गृहीत्वा गताः। द्यूतकाराणामौत्पत्तिकी बुद्धिः २२। 'चेडगनिहाण'न्ति चेटका–बालका निधानं–प्रतीतं, दृष्टान्तभावना–द्वौ पुरुषौ परस्परं प्रतिपन्नसखिभावौ, अन्यदा क्वचित्प्रदेशे ताभ्यां निधानमुपलेभे, तत एको मायावी ब्रूते–श्वस्तनदिवसे शुभे नक्षत्रे गृहीष्यामो, द्वितीयेन च सरलमनस्कतया तथैव प्रतिपन्नं, ततस्तेन मायाविना तस्मिन् प्रदेशे रात्रावागत्य निधानं हृत्वा तत्राङ्गारकाः प्रक्षिप्ताः, ततो द्वितीये दिने तौ द्वावपि सह भूत्वा गतौ, दृष्टवन्तौ तत्राङ्गारकान्, ततो मायावी मायया सोरस्ताडमाक्रन्दितुं प्रावर्त्तत, वदति च–हा हीनपुण्या वयं दैवेन चक्षुषी दत्त्वाऽस्माकं समुत्पाटिते यन्निधानमुपदिश्याङ्गारका दर्शिताः, पुनः पुनश्च द्वितीयस्य मुखमवलोकते, ततो द्वितीयेन जज्ञे–नूनमनेन हृतं निधानमिति, ततस्तेनाप्याकारसंवरणं कृत्वा तस्यानुशासनार्थमूचे–मा वयस्य! खेदं कार्षीः, न खलु खेदः पुनर्निधानप्रत्यागमनहेतुः, ततो गतौ द्वावपि स्वं स्वं गृहं, ततो द्वितीयेन तस्य मायाविनो लेप्यमयी सजीवेव प्रतिमा कारिता, द्वौ च गृहीतौ मर्कटकौ, प्रतिमायाश्चोत्सङ्गे हस्ते शिरसि चान्यत्र च यथायोगं तयोर्मर्कटयोर्योग्यं भक्ष्यं मुक्तवान्, तौ च मर्कटौ क्षुधापीडितौ तत्रागत्य प्रतिमाया उत्सङ्गादौ भक्ष्यं भक्षितवन्तौ, एवं च प्रतिदिनं करणे तयोस्ताद्दश्येव शैली समजनि, ततोऽन्यदा किमपि पर्वोधिकृत्य मायाविनो द्वावपि पुत्रौ भोजनाय निमन्त्रितौ, समागतौ च भोजनवेलायां तद्गृहे, भोजितौ च तौ तेन महागौरवेण, भोजनानन्तरं च तौ महता सुखेनान्यत्र सङ्गोपितौ, ततः स्तोकदिनावसाने मायावी स्वपुत्रसाराकरणाय तद्गृहमागतः, ततो द्विती-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यस्तं प्रति ब्रूते–मित्र ! तौ तव पुत्रौ मर्कटावभूतां, ततः सखेदं विस्मितचेता गृहमध्यं प्राविशत्, ततो लेप्यमयीं प्रतिमामुत्सार्य तत्स्थाने समुपवेशितो, मुक्तौ स्वस्थानात् मर्कटकौ, तौ च किलकिलायमानौ तस्योत्सङ्गे शिरसि स्कन्धे हस्ते चागत्य विलग्नौ, ततो मित्रमवादीत्–भो ! वयस्य ! तावेतौ तव पुत्रौ, तथा च पश्य तव स्नेहमात्मीयं दर्शयतः, ततः स मायावी प्राह—वयस्य ! किं मानुषावकस्मात् मर्कटौ भवतः ?, वयस्य आह—भवतः कर्म्मप्रातिकूल्यवशात्, तथाहि—किं सुवर्णमङ्गारीभवति ?, परमावयोः कर्मप्रातिकूल्यादेतदपि जातं, तथा तव पुत्रावपि मर्कटावभूतामिति, ततो मायावी चिन्तयामास—नूनमहं ज्ञातोऽनेन, यद्युच्चैः शब्दं करिष्ये ततोऽहं राजग्राह्यो भविष्यामि, पुत्रौ चान्यथा मे न भवतः, ततस्तेन सर्वं यथावस्थितं तस्मै निवेदितं, दत्तश्च भागः, इतरेण च समर्पितौ पुत्रौ। तस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः २३। 'सिक्ख'त्ति शिक्षा–धनुर्वेदः, तदुहारणभावना—कोऽपि पुमान् अतीव धनुर्वेदकुशलः, स परिभ्रमन् एकत्रेश्वरपुत्रान् शिक्षयितुं प्रावर्त्तत, तेभ्यश्चेश्वरपुत्रेभ्यः प्रभूतं द्रव्यं प्राप्तवान्, ततः पित्रादयस्तेषां चिन्तयामासुः–प्रभूतमेतस्मै कुमारा दत्तवन्तः, ततो यदाऽसौ यास्यति तदैनं मारयित्वा सर्वं ग्रहीष्यामः, एतच्च कथमपि तेन ज्ञातं, ततः स्वबन्धूनां ग्रामान्तरवासिनां कथमपि ज्ञापितं भणितं च—यथाहममुकस्यां रात्रौ नद्यां गोमयपिण्डान् प्रक्षेप्स्यामि भवद्भिस्ते ग्राह्या इति, ततस्तैस्तथैव प्रतिपन्नं, ततो द्रव्येण संवलिता गोमयपिण्डास्तेन कृताः, आतपेन च शोषिताः, तत ईश्वरपुत्रानित्युवाच–यथैषोऽस्माकं विधिः—विवक्षिततिथिपर्वणि स्नानमन्त्रपुरस्सरं गोम-

औत्पत्तिक्यांधनुर्वेदाचार्यः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

यपिण्डा नद्यां प्रक्षिप्यन्ते इति, तैरपि यथा गुरवो व्याचक्षते तथेति प्रतिपन्नं, ततो विवक्षितरात्रौ तैरीश्वरपुत्रैः समं स्नानमन्त्रपुरस्सरं ते सर्वेऽपि गोमयपिण्डा नद्यां प्रक्षिप्ताः, ततः समागतो गृहं, तेऽपि गोमयपिण्डा नीता बन्धुभिः स्वग्रामे,ततः कतिपयदिनातिक्रमे तानीश्वरपुत्रान् तेषां च पित्रादीन् प्रत्येकं मुत्कलाप्यात्मानं च वस्त्रमात्रपरिग्रहोपेतं दर्शयन् सर्वजनसमक्षं स्वग्रामं जगाम, पित्रादिभिश्च परिभावितो नास्य पार्श्वे किमप्यस्तीति न मारितः। तस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः २४। 'अत्थसत्थे'त्ति अर्थशास्त्रम्—अर्थविषयं नीतिशास्त्रं, दृष्टान्तभावना–कोऽपि वणिक्, तस्य द्वे पत्न्यौ, एकस्याः पुत्रोऽपरा वन्ध्या, परं साऽपि पुत्रं सम्यक् पालयति, ततः पुत्रो विशेषं नावबुध्यते–यथेयं मे जननी नेयमिति, सोऽपि वणिक् सभार्यापुत्रो देशान्तरमगमत् यत्र सुमतिस्वामिनस्तीर्थकृतो जन्मभूमिः, तत्र च गतमात्र एव दिवं गतः, सपत्न्योश्च परस्परं कलहोऽभूत्, एका ब्रूते–ममैष पुत्रस्ततोऽहं गृहस्वामिनी, द्वितीया ब्रूते–अहमिति, ततो राजकुले व्यवहारो जातः, तथापि न निर्वलति, एतच्च भगवति तीर्थकरे सुमतिस्वामिनि गर्भस्थे तज्जनन्या मङ्गलादेव्या ज्ञाते, अत आगारिते द्वे अपि सपत्न्यौ, ततो देव्या प्रतिपादितं–कतिपयदिनानन्तरं मे पुत्रो भविष्यति?, स च वृद्धिमधिरूढोऽस्याशोकपादपस्याधस्तादुपविष्टो युष्माकं व्यवहारं छेत्स्यति,तत एतावन्तं कालं यावदविशेषेण स्वादतां पित्रतामिति, ततो न यस्याः पुत्रः साऽचिन्तयत्—लब्धस्तावदेतावान् कालः, पश्चात् किमपि यद्भविष्यति तन्न जानीमः, ततो हृष्टवदनया तया प्रतिपन्नं, ततो देव्या ज्ञाते–नैषा पुत्रस्य मातेति निर्भर्त्सिता, द्वितीया च गृहस्वा-

२०

॥१५८॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६२--६५॥

दीप अनुक्रम [९७--१००]

मिनी कृता। देव्या औत्पत्तिकी बुद्धिः २५। 'इच्छा य महं'त्ति काचित् स्त्री, तस्या भर्त्ता पञ्चत्वमधिगतः, सा च वृद्धि-प्रयुक्तं द्रव्यं लोकेभ्यो न लभते, ततः पतिमित्रं भणितवती–मम दापय लोकेभ्यो धनमिति, ततस्तेनोक्तं-यदि मम भागं प्रयच्छसि, ततोऽनयोक्तं–यदिच्छसि तन्मह्यं दद्या इति, ततस्तेन लोकेभ्यः सर्वं द्रव्यमुद्ग्राहितं, तस्यै स्तोकं प्रय-च्छति, सा नेच्छति, ततो जातो राजकुले व्यवहारः, ततः कारणिकैर्यदुद्ग्राहितं द्रव्यं तत्सर्वमानायितं, कृतौ द्वौ भागौ, एको महान् द्वितीयोऽल्प इति, ततः पृष्टः कारणिकैः स पुरुषः–कं भागं त्वमिच्छसि ?, स प्राह—महान्तं इति, ततः कारणिकैरक्षरार्थो विचारितो यदिच्छसि तन्मह्यं दद्या इति, त्वमिच्छसि महान्तं भागं ततो महान् भाग एतस्याः, द्वितीयस्तु तवेति। कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः २६। 'सयसहस्से'त्ति कोऽपि परिव्राजकः, तस्य रूप्यमयं महाप्रमाणं भाजनं खोरयसंज्ञं, स च यदेकवारं शृणोति तत्सर्वं तथैवावधारयति, ततः स निजप्रज्ञागर्वमुद्वहन् सर्व-समक्षं प्रतिज्ञां कृतवान्–यो नाम मामपूर्वं श्रावयति तस्मै ददामीदं भाजनमिति, न च कोऽप्यपूर्वं श्रावयितुं शक्नोति स हि यत्किमपि शृणोति तत्सर्वमस्खलितं तथैवानुवदति, वदते च–अग्रेऽपीदं मया श्रुतं, कथमन्यथाऽहमस्खलितं भणामीति, तत्सर्वत्र ख्यातिमगमत्, ततः केनापि सिद्धपुत्रकेण ज्ञाततत्प्रतिज्ञेन तं प्रत्युक्तम्–अहमपूर्वं श्रावयिष्यामि, ततो मिलितो भूयान् लोको राजसमक्षं व्यवहारो बभूव, ततः सिद्धपुत्रोऽपाठीत्—"तुज्झ पिया मह पिउणो धारेइ

औत्पत्ति-क्यामिच्छा-ममशत-सहस्रं च

५

१०

१२

१ तव पिता मम पितुर्धारयति अनूनं शतसहस्रम्। यदि श्रुतपूर्वं ददातु अथ न श्रुतं खोरकं ददातु ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१५९॥

अणूणगं सयसहस्सं । जइ सुयपुव्वं दिज्जउ अह न सुयं खोरयं देसु ॥ १ ॥" जितः परिव्राजकः । सिद्धपुत्रस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः २७ ॥ तदेवमुक्ता बुद्धिरौत्पत्तिकी, सम्प्रति वैनयिक्या लक्षणं प्रतिपादयति—

भरनित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहिअपेआला । उभओ लोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ६६ ॥ निमित्ते १ अत्थसत्थे अ २ लेहे ३ गणिए अ ४ कूव ५ अस्से अ ६ । गद्दभ ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १० रहिए अ ११ गणिया य । १२ ॥ ६७ ॥ सीआ साडी दीहं च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स १३ । निव्वोदए अ १४ गोणे घोडगपडणं च रुक्खाओ १५ ॥६८॥

इहातिगुरुः कार्यं दुर्निवहत्वाद्भर इव भरस्तन्निस्तरणे समर्था भरनिस्तरणसमर्था त्रयो वर्गास्त्रिवर्गाः—लोकरूढ्या धर्मार्थकामास्तदर्जनोपायप्रतिपादकं यत्सूत्रं यश्च तदर्थस्तौ त्रिवर्गसूत्रार्थौ तयोर्गृहीतं 'पेयालं' प्रमाणं सारो वा यया सा तथाविधा, अत्राह—नन्वश्रुतनिश्रिता बुद्धयो वक्तुमभिप्रेताः, ततो यद्यस्यास्त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं ततोऽश्रुतनिश्रितत्वं नोपपद्यते, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं संभवति, अत्रोच्यते, इह प्रायोवृत्तिमाश्रित्याश्रुतनिश्रितत्वमुक्तं, ततः स्वल्पश्रुतभावेऽपि न कश्चिद्दोषः । तथा 'उभयलोकफलवती' ऐहिके आमुष्मिके च लोके फलदायिनी विनयसमुत्था बुद्धिर्भवति । सम्प्रत्यस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थमुदाहरणैः स्वरूपं दर्शयति—

वैनयिकी-स्वरूपम्

१५

२०

॥१५९॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैनयिकी बुद्धीनां दृष्टान्ताः

गाथाद्वयार्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि च ग्रन्थगौरवभयात्संक्षेपेणोच्यन्ते—तत्र 'निमित्ते' इति, क्वचित्पुरे कोऽपि सिद्धपुत्रकः, तस्य द्वौ शिष्यौ निमित्तशास्त्रमधीतवन्तौ, एको बहुमानपुरस्सरं गुरोर्विनयपरायणो यत्किमपि गुरुरुपदिशति तत्सर्वं तथेतिप्रतिपद्य स्वचेतसि निरन्तरं विमृशति, विमृशतश्च यत्र क्वापि सन्देह उपजायते तत्र भूयोऽपि विनयेन गुरुपादमूलमागत्य पृच्छति, एवं निरन्तरं विमर्शपूर्वं शास्त्रार्थं तस्य चिन्तयतः प्रज्ञा प्रकर्षमुपजगाम, द्वितीयस्त्वेतद्गुणविकलः, तौ चान्यदा गुरुनिर्देशात् क्वचित्प्रत्यासन्ने ग्रामे गन्तुं प्रवृत्तौ, पथि च कानिचित् महान्ति पदानि तावद्दर्शतां, तत्र विमृश्यकारिणा पृष्टं–भोः कस्यामूनि पदानि?, तेनोक्तं–किमत्र प्रष्टव्यं हस्तिनोऽमूनि पदानि?, ततो विमृश्यकारी प्राह—मैवं भाषिष्ठाः, हस्तिन्या अमूनि पदानि, सा च हस्तिनी वामेन चक्षुषा काणा, तां चाधिरूढा गच्छति काचिद्राज्ञी, सा च सभर्तृका गुर्वी च प्रजने कल्या, अद्य श्वो वा प्रसविष्यति, पुत्रश्च तस्या भविष्यति, तत एवमुक्ते सोऽविमृश्यकारी ब्रूते–कथमेतदवसीयते?, विमृश्यकारी प्राह—'ज्ञानं प्रत्ययसार'मित्यत्रे प्रत्ययतो व्यक्तं भविष्यति, ततः प्राप्तौ तौ विवक्षितं ग्रामं, दृष्ट्वा चावासिता तस्य ग्रामस्य बहिःप्रदेशे महासरस्तटे राज्ञी, परिभाविता च हस्तिनी वामेन चक्षुषा काणा (ग्रन्थाग्रं–५०००) अत्रान्तरे च काचिद्दासचेडी महत्तमं प्रत्याह–वर्द्धाप्यसे राज्ञः पुत्रलाभेनेति, ततः शब्दितो विमृश्यकारिणा द्वितीयः–परिभावय दासचेडी-

वैनयिक्यां निमित्त-दृष्टान्तः

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

वचनमिति, तेनोक्तं—परिभावितं मया सर्वं, नान्यथा तव ज्ञानमिति, ततस्तौ हस्तपादान् प्रक्षाल्य तस्मिन् महासरस्तटे न्यग्रोधतरोरधो विश्रामाय स्थितौ, दृष्टौ च कयाचिच्छिरोन्यस्तजलभृतघटिकया वृद्धस्त्रिया, परिभाविता च तयोराकृतिः, ततश्चिन्तयामास—नूनमेतौ विद्वांसौ, ततः पृच्छामि देशान्तरगतनिजपुत्रागमनमिति, पृष्टं तया, प्रश्नसमकालमेव च शिरसो निपत्य भूमौ घटः शतखण्डशो भग्नः, ततो झटित्येवाविमृश्यकारिणा प्रोचे—गतस्ते पुत्रो घट इव व्यापत्तिमिति, विमृश्यकारी ब्रूते स्म—मा वयस्यैवं वादीः, पुत्रोऽस्या गृहे समागतो वर्त्तते, याहि मातर्वृद्धे ! स्त्रि ! स्वपुत्रमुखमवलोकय, तत एवमुक्ता सा प्रत्युज्जीवितेवाशीर्वादशतानि विमृश्यकारिणः प्रयुञ्जाना स्वगृहं जगाम, दृष्टश्चोद्धूलितजङ्घः स्वपुत्रो गृहमागतः, ततः प्रणता स्वपुत्रेण, सा चाशीर्वादं निजपुत्राय प्रायुङ्क्त, कथयामास च नैमित्तिकवृत्तान्तं, ततः पुत्रमापृच्छ्य वस्त्रयुगलं रूपकांश्च कतिपयानादाय विमृश्यकारिणः समर्प्पयामास, अविमृश्यकारी च खेदमावहन् स्वचेतसि अचिन्तयत्—नूनमहं गुरुणा न सम्यक् परिपाठितः कथमन्यथाऽहं न जानामि? एष जानातीति, गुरुप्रयोजनं कृत्वा समागतौ द्वौ गुरोः पार्श्वे, तत्र विमृश्यकारी दर्शनमात्र एव शिरो नमयित्वा कृताञ्जलिपुटः सबहुमानमानन्दाश्रुप्लावितलोचनो गुरोः पादावन्तरा शिरः प्रक्षिप्य प्रणिपपात, द्वितीयोऽपि च शैलस्तम्भ इव मनागप्यनमितगात्रयष्टिर्मात्सर्यवह्निसम्पर्कतो धूमायमानोऽवतिष्ठते, ततो गुरुस्तं प्रत्याह—रे किमिति पादयोर्न पतसि?, स प्राह—य एव सम्यक् पाठितः स एव पतिष्यति, नाहमिति, गुरुराह—

२०

॥१६०॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

कथं त्वं न सम्यक् पाठितः ?, ततः स प्राचीनं वृत्तान्तं सकलमचीकथत्, यावदेतस्य ज्ञानं सर्वं सत्यं न ममेति, ततो गुरुणा विमृश्यकारी पृष्टः–कथय वत्स ! कथं त्वयेदं ज्ञातमिति ?, ततः स प्राह–मया युष्मत्पादादेशेन विमर्शः कर्तुमारब्धो–यथैतानि हस्तिरूपस्य पदानि सुप्रतीतान्येव, विशेषचिन्तायां तु किं हस्तिन उत हस्तिन्याः ?, तत्र कायिकीं दृष्ट्वा हस्तिन्या इति निश्चितं, दक्षिणेन च पार्श्वे वृत्तिसमारूढवल्लीवितान आलुनविशीर्णो हस्तिनीकृतो दृष्टो न वामपार्श्वे ततो निश्चिक्ये–नूनं वामेन चक्षुषा काणेति, तथा नान्य एवंविधपरिकरोपेतो हस्तिन्यामधिरूढो गन्तुमर्हति ततोऽवश्यं राजकीयं किमपि मानुषं यातीति निश्चितं, तच्च मानुषं क्वचित्प्रदेशे हस्तिन्या उत्तीर्यं शरीरचिन्तां कृतवत्, कायिकीं दृष्ट्वा राज्ञीति निश्चितं, वृक्षावलग्नरक्तवस्त्रदशालेशदर्शनात् सभर्तृका, भूमौ हस्तं निवेश्योत्थानाकारदर्शनाद्गुर्वी, दक्षिणचरणनिस्सहमोचननिवेशदर्शनात्प्रजने कल्येति । वृद्धस्त्रियाः प्रश्नानन्तरं घटनिपाते चैवं विमर्शः कृतो–यथैष घटो यत उत्पन्नस्तत्रैव मिलितस्तथा पुत्रोऽपीति । तत एवमुक्ते गुरुणा स विमृश्यकारी चक्षुषा सानन्दमीक्षितः प्रशंसितश्च, द्वितीयं प्रत्युवाच––तव दोषो यन्न विमर्शं करोषि, न मम, वयं हि शास्त्रार्थमात्रोपदेशेऽधिकृताः विमर्शे तु यूयमिति । विमृश्यकारिणो वैनयिकी बुद्धिः १ । 'अत्थसत्थे'त्ति अर्थशास्त्रे कल्पको मन्त्री दृष्टान्तो, 'दहिकुंडग उच्छुकलावओ य' इति संविधानके, 'लेह'त्ति लिपिपरिज्ञानं, 'गणिए'त्ति गणितपरिज्ञानं, एते च द्वे अपि वैनयिक्यौ बुद्धी २-३-४ । 'कूवे'त्ति खातपरिज्ञानकुशलेन केनाप्युक्तं-

कल्पकलिपिगणितानि ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

यथैतद्दूरे जलमिति, ततस्तावत्प्रमाणं खातं परं नोत्पन्नं जलं, ततस्ते खातपरिज्ञाननिष्णाताय निवेदयामासुः–नोत्पन्नं जलमिति, ततस्तेनोक्तं–पार्ष्णिप्रहारेण पार्श्वान्याहत, आहतानि तैः, ततः पार्ष्णिप्रहारसमकालमेव समुच्छलितं तत्र जलं, खातपरिज्ञानकुशलस्य पुंसो वैनयिकी बुद्धिः ५। 'अस्से'त्ति बहवोऽश्ववणिजो द्वारवतीं जग्मुः, तत्र सर्वे कुमाराः स्थूलान् बृहतश्चाश्वान् गृह्णन्ति, वासुदेवेन पुनर्यो लघीयान् दुर्बलो लक्षणसम्पन्नः स गृहीतः, स च कार्यनिर्वाही प्रभूताश्वावहश्च जातः। वासुदेवस्य वैनयिकी बुद्धिः ६। 'गद्दभे'त्ति कोऽपि राजा प्रथमयौवनिकामधिरूढस्तरुणिमानमेव रमणीयं सर्वकार्यक्षमं च मन्यमानस्तरुणानेव निजकटके धारितवान्, वृद्धांस्तु सर्वानपि निषेधयामास, सोऽन्यदा कटकेन गच्छन्नपान्तरालेऽटव्यां पतितवान्, तत्र च समस्तोऽपि जनस्तृषा पीड्यते, ततः किंकर्त्तव्यतामूढचेता राजा केनाप्युक्तो–देव ! न वृद्धपुरुषशेमुषीपोतमन्तरेणायमापत्समुद्रस्तरीतुं शक्यते, ततो गवेषयन्तु देवपादाः क्वापि वृद्धमिति, ततो राज्ञा सर्वस्मिन्नपि कटके पटह उद्घोषितः, तत्र चैकेन पितृभक्तेन प्रच्छन्नो निजपिता समानीतो वर्त्तते, ततस्तेनोक्तं–मम पिता वृद्धोऽस्तीति, ततो नीतो राज्ञः पार्श्वे, राज्ञा च सगौरवं पृष्टः–कथय महापुरुष ! कथं मे कटके पानीयं भविष्यति ?, तेनोक्तं—देव ! रासभाः खैरं मुच्यन्तां, यत्र ते भुवं जिघ्रन्ति तत्र पानीयमतिप्रत्यासन्नमवगन्तव्यं, तथैव कारितं राज्ञा, समुत्पादितं पानीयं, स्वस्थीबभूव च समस्तं कटकमिति । स्थविरस्य वैनयिकी बुद्धिः, ७। 'लक्खण'त्ति पारसीकः कोऽप्यश्वस्वामी कस्याप्यश्वरक्षकस्य कालनियमनं कृत्वा अश्वरक्षणमूल्यं द्वावश्वौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपन्नवान्, सोऽपि चाश्वस्वामिनो दुहित्रा समं वर्त्तते, ततः सा तेन पृष्टा–कावश्वौ भव्याविति ?, तयोक्तम्–अमीषामश्वानां विश्वस्तानां मध्ये यौ पाषाणभृतकुतपानां वृक्षशिखरान्मुक्तानामपि शब्दमाकर्ण्य नो त्रस्यतस्तौ भव्यौ, तेन तथैवैतौ परीक्षितौ, ततो वेतनप्रदानकाले सोऽभिधत्ते–मह्यममुकममुकं वाऽश्वं देहि, अश्वस्वामी प्राह—सर्वानप्यन्यान् अश्वान् गृहाण, किमेताभ्यां तवेति ?, स नेच्छति, ततोऽश्वस्वामिना स्वभार्यायै न्यवेदि, भणितं च—गृहजामाता क्रियतामेष इति, अन्यथा प्रधानावश्वावेष गृहीत्वा यास्यति, सा नैच्छत्, ततोऽश्वस्वामी प्राह—लक्षणयुक्तेनाश्वेनान्येऽपि बहवोऽश्वाः सम्पद्यन्ते कुटुम्बं च परिवर्द्धते, लक्षणयुक्तौ चेमावश्वौ, तस्मात्क्रियतामेतदिति, ततः प्रतिपन्नं तया, दत्ता तस्मै स्वदुहिता, कृतो गृहजामातेति। अश्वस्वामिनो वैनयिकीबुद्धिः ८। 'गंठि'ति पाटलिपुरे नगरे मुरुण्डो राजा, तत्र परराष्ट्रराजेन त्रीणि कौतुकनिमित्तं प्रेषितानि, तद्यथा—'मूढं सूत्रं समा यष्टिरलक्षितद्वारः समुद्गको जतुना घोलितः' तानि च मुरुण्डेन राज्ञा सर्वेषामप्यात्मपुरुषाणां दर्शितानि, परं केनापि न ज्ञातानि, तत आकारिताः पालिप्ताचार्याः, पृष्टं राज्ञा–भगवन्! यूयं जानीत ?, सूरय उक्तवन्तो-बाढं, ततः सूत्रमुष्णोदके क्षिप्तम्, उष्णोदकसम्पर्काच्च विलीनं मदनमिति लब्धः सूत्रस्यान्तः, यष्टिरपि पानीये क्षिप्ता, ततो गुरुभागो मूलमिति ज्ञातं, समुद्गकेऽप्युष्णोदके क्षिप्ते जतु सर्वं गलितमिति द्वारं प्रगटं बभूव, ततो राजा सूरीन् प्रत्यवादीत्–भगवन्! यूयमपि दुर्विज्ञेयं किमपि कौतुकं कुरुत येन तत्र प्रेषयामि, ततः सूरिभिस्तुम्बकमेकस्मिन् प्रदेशे खण्डमेकमपहाय रत्नानां भृतं,

सलक्षणाश्वग्रन्थिह० ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||६६--६८||

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

ततस्तथा तत्खण्डं सीवितं यथा न केनापि लक्ष्यते, भणिताश्च परराष्ट्रराजकीयाः पुरुषाः–एतदभङ्क्त्वा इतो रत्नानि गृहीतव्यानि, न शक्तं तैरेवं कर्त्तुं । पादलिप्तसूरीणां वैनयिकी बुद्धिः ९ । 'अगए'त्ति क्वचित्पुरे कोऽपि राजा, स च परचक्रेण सर्वतो रोद्धुमारब्धः, ततस्तेन राज्ञा सर्वाण्यपि पानीयानि विनाशयितव्यानीति विषकरः सर्वत्र पातितः, तत कोऽपि कियद्विषमानयति, तत्रैको वैद्यो यवमात्रं विषमानीय राज्ञः समर्प्पितवान्–देव ! गृहाण विषमिति, राजा च स्तोकं विषं दृष्ट्वा चुकोप तस्मै, वैद्यो विज्ञपयामास–देव ! सहस्रवेधीदं विषं तस्मादप्रसादं मा कार्षीः, राजाऽवादीत्–कथमेतदवसेयं ?, स उवाच–देव ! आनाय्यतां कोऽपि जीर्णो हस्ती, आनायितो राज्ञा हस्ती, ततो वैद्येन तस्य हस्तिनः पुच्छदेशे बालकमेकमुत्पाट्य तदीयरन्ध्रे विषं सञ्चारितं, विषं च प्रसरमाददानं यत्र यत्र प्रसरति तत्तत्सर्वं विपन्नं कुर्वत् दृश्यते, वैद्यश्च राजानमभिधत्ते–देव ! सर्वोऽप्येष हस्ती विषमयो जातः, योऽप्येनं भक्षयति सोऽपि विषमयो भवति, एवमेतद्विषं सहस्रवेधि, ततो राजा हस्तिहानिदूनचेतास्तं प्रत्युवाच—अस्ति कोऽपि हस्तिनः प्रतिकारविधिः ?, सोऽवादीत्–बाढमस्ति, ततस्तस्मिन्नेव बालरन्ध्रेऽगदः प्रदत्तः, ततः सर्वोऽपि झटित्येव प्रशान्तो विषविकारः, प्रगुणीबभूव हस्ती, तुतोष राजा तस्मै वैद्याय । वैद्यस्य वैनयिकी बुद्धिः १० । 'रहिए गणिया य'त्ति स्थूलभद्रकथानके रथिकस्य यत् सहकारफललुम्बित्रोटनं यच्च गणिकायाः सर्षपराशेरुपरि नर्त्तनं ते द्वे अपि वैनयिकीबुद्धिफले ११-१२ । 'सीये'त्यादि, क्वचित्पुरे कोऽपि राजा, तत्पुत्राः केनाप्याचार्येण शिक्षयितुमारब्धाः, ते च तस्मै आचार्याय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभूतं द्रव्यं दत्तवन्तः, राजा च द्रव्यलोभी तं मारयितुमिच्छति, तैश्च पुत्रैः कथञ्चिदेतद् ज्ञात्वा चिन्तितम्–अस्माकमेष विद्यादायी परमार्थपिता, ततः कथमप्येनमापदो निस्तारयामः, ततो यदा भोजनाय समागतः स्नानशाटिकां याचते तदा ते कुमाराः शुष्कामपि शाटीं वदन्ति—"अहो सीया साडी" द्वारसम्मुखं च तृणं कृत्वा वदन्ति—अहो दीर्घं तृणं, पूर्वं च क्रौञ्चकेन सदैव प्रदक्षिणीक्रियते, सम्प्रति तु स तस्मात्पञ्चं भ्रमितः, तत आचार्येण ज्ञातं–सर्वं मम विरक्तं, केवलमेते कुमारा मम भक्तिवशात् ज्ञापयन्ति, ततो यथा न लक्ष्यते तथा पलाययामास, कुमाराणामाचार्यस्य च वैनयिकी बुद्धिः १३। 'निव्वोदएणं'ति काऽपि वणिग्भार्या चिरं प्रोषिते भर्त्तरि दास्या निजसद्भावं निवेदयति–आनय कमपि पुरुषमिति, ततस्तया समानीतो, नखप्रक्षालनादिकं च सर्वं तस्य कारितं, रात्रौ च तौ द्वावपि सम्भोगाय द्वितीयभूमिकामारूढौ, मेघश्च वृष्टिं कर्तुमारब्धवान्, ततस्तेन तृषापीडितेन पुरुषेण नीत्रोदकं पीतं, तदपि च त्वग्विषभुजङ्गसंस्पृष्टमिति तत्पानेन पञ्चत्वमुपगतः, ततस्तया वणिग्भार्यया निशापश्चिमयाम एव शून्यदेवकुलिकायां मोचितः, प्रभाते च दृष्टो दाण्डपाशिकैः, परिभावितं सद्यः तत्तस्य नखादिकर्म्म, ततः पृष्टाः सर्वेऽपि नापिताः–केनेदं भोः कृतमस्य नखादिकं कर्म्मेति?, तत एकेन नापितेनोक्तं—मया कृतममुकाभिधवणिग्भार्यादासचेट्यादेशेन, ततः सा पृष्टा–सापि च पूर्वं न कथितवती, ततो हन्यमाना यथावस्थितं कथयामास, दाण्डपाशिकानां वैनयिकी बुद्धिः १४। 'गोणे घोडगपडणं च रुक्खाओ' कोऽप्यकृतपुण्यो यद्यत्करोति तत्सर्वमापदे प्रभवति, ततोऽन्यदा

वैनयिकी-बुद्धुदाहरणानि

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

मित्रं बलीवर्दौ याचित्वा हलं वाहयति, अन्यदा च विकालवेलायां तावानीय वाटके क्षिप्तौ, स च वयस्यो भोजनं कुर्वन्नास्ते, ततः स तस्य पार्श्वे न गतः केवलं तेनापि तौ दृष्ट्वाऽवलोकिताविति स स्वगृहं गतः, तौ च बलीवर्दौ वाटकान्निःसृत्यान्यत्र गतौ, ततोऽप्यपहृतौ तस्करैः, स च बलीवर्दस्वामी तमकृतपुण्यं वराकं बलिवर्दौ याचते, स च दातुं न शक्नोति, ततो नीयते तेन राजकुलं, पथि च गच्छतस्तस्य कोऽप्यश्वारूढः पुरुषः सम्मुखमागच्छति, स चाश्वेन पातितः, अश्वश्च पलायमानो वर्त्तते, ततस्तेनोक्तम्–आहन्यतामेष दण्डेनाश्व इति, तेन चाकृतपुण्येन सोऽश्वो मर्मण्याहतः, ततो मृत्युमुपागमत्, ततस्तेनापि पुरुषेण स वराको गृहीतः, ते च यावन्नगरमायातास्तावत्करणमुत्थितमितिकृत्वा ते नगरबहिष्प्रदेशे एवोषिताः, तत्र च बहवो नटाः सुप्ता वर्त्तन्ते, स चाकृतपुण्योऽचिन्तयत्–यथा नास्मादापत्समुद्रात् मे निस्तारोऽस्तीति वृक्षे गलपाशेनात्मानं बद्ध्वा म्रियेयेति तेन तथैव कर्तुमारब्धं, परं जीर्णदण्डिवस्त्रखण्डेन गले पाशो बद्धः, तच्च दण्डीवस्त्रखण्डमतिदुर्बलमिति त्रुटितं, ततः स वराकोऽधस्तात्सुप्तनटमहत्तरस्योपरि पपात, सोऽपि च नटमहत्तरस्तद्भाराक्रान्तगलप्रदेशः पञ्चत्वमगमत्, ततो नटैरपि स प्रतिगृहीतः, गताः प्रातः सर्वेऽपि राजकुलं, कथितः सर्वैरपि स्वः स्वः व्यतिकरः, ततः कुमारामात्येन स वराकः पृष्टः, सोऽपि दीनवदनोऽवादीद्—देव ! यदेते ब्रुवते तत्सर्वं सत्यमिति, ततः तस्योपरि सञ्जातकृपः कुमारामात्योऽवादीत्–एष बलीवर्दौ तुभ्यं दास्यति, तव पुनरक्षिणी उत्पाटयिष्यति, एष हि तदैवानृणो बभूव यदा त्वया चक्षुर्भ्यामवलोकितौ बली-

२० २५ ॥१६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६६--६८॥

दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

वदौ, यदि पुनस्त्वया चक्षुर्भ्यां नावलोकितौ बलीवर्दौ स्यातां तदैषोऽपि स्वगृहं न यायात्, न हि यो यस्मै यस्य समर्प्पणायागतः स तस्यानिवेदने समर्पणीयमेवमेव मुक्त्वा स्वगृहं याति, तथा द्वितीयोऽश्वस्वामी शब्दितः, एषोऽश्वं तुभ्यं दास्यति, तव पुनरेष जिह्वां छेत्स्यति, यदा हि त्वदीयजिह्वयोक्तम्–एनमश्वं दण्डेन ताडयेति तदाऽनेन दण्डेनाहतोऽश्वो, नान्यथा, तत एष दण्डेनाऽऽहन्ता दण्ड्यते तव न पुनर्जिह्वेति कोऽयं नीतिपथः?, तथा नटान् प्रत्याह—अस्य पार्श्वे न किमप्यस्ति ततः किं दापयामः?, एतावत्पुनः कारयामः–एषोऽधस्तात् स्थास्यति, त्वदीयः पुनः कोऽपि प्रधानो यथैष वृक्षे गलपाशेनात्मानं बद्धा मुक्तवान् तथाऽऽत्मानं मुञ्चत्विति, ततः सर्वैरपि मुक्तः, कुमारामात्यस्य वैनयिकी बुद्धिः १५। उक्ता वैनयिकी बुद्धिः, कर्म्मजाया बुद्धेर्लक्षणमाह—

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला। साहुक्कारफलवई कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ६७ ॥ हेरण्णिए १ करिसए २ कोलिअ ३ डोवे अ ४ मुत्ति ५ घय ६ पवए ७। तुन्नाए ८ वद्धई य ९ पूयइ १० घड ११ चित्तकारे अ १२ ॥ ६८ ॥

'उवओगे'त्यादि, उपयोजनमुपयोगो–विवक्षितकर्म्मणि मनसोऽभिनिवेशः सारः—तस्यैव विवक्षितः परमार्थः, उपयोगेन दृष्टः सारो यया सा उपयोगदृष्टसारा, अभिनिवेशोपलब्धकर्म्मपरमार्था इत्यर्थः, तथा कर्मणि प्रसङ्गः—अभ्यासः परिघोलनं–विचारस्ताभ्यां विशाला–विस्तारमुपगता कर्म्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला, तथा साधु कृतं—सुष्ठु कृ-

कर्मजा-बुद्धुदाहरणानि गा.६७-८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र यत् सू० क्रमांक ॥६७॥, ॥६८॥ मुद्रितं तत् मुद्रण दोषः एव। तत्र सू० क्रमांक ६९, ७० वर्तते

*** कर्मजा बुद्धीनां दृष्टान्ताः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||६९--७०|| दीप अनुक्रम [१०४--१०५]

तमिति विद्वद्भिः प्रशंसा साधुकारः तेन युक्तं फलं साधुकारफलं तद्वती, साधुकारपुरस्सरं वेतनादिलाभरूपं तस्याः फलमित्यर्थः, सा तथा कर्मसमुत्था बुद्धिर्भवति । अस्या अपि विनेयजनानुग्रहार्थमुदाहरणैः स्वरूपं दर्शयति—'हेरण्णिए' इत्यादौ षष्ठ्यर्थे सप्तमी, ततोऽयमर्थो–हैरण्यके–हैरण्यकस्य कर्मजा बुद्धिः, एवं सर्वत्रापि योजना कार्या, हैरण्यको हि स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तोऽन्धकारेऽपि हस्तस्पर्शविशेषेण रूपकं यथावस्थितं परीक्षते । 'करिसग'त्ति अत्रोदाहरणं—कोऽपि तस्करो रात्रौ वणिजो गृहे पद्माकारं खातं खातवान्, ततः प्रातरलक्षितस्तस्मिन्नेव गृहे समागत्य जनेभ्यः प्रशंसामाकर्णयति, तत्रैकः कर्षकोऽब्रवीत्–किं नाम शिक्षितस्य दुष्करत्वं ?, यद्येन सदैवाभ्यस्तं कर्म स तत्प्रकर्षप्राप्तं करोति, नात्र विस्मयः, ततः स तस्कर एतद्वाक्यममर्षवैश्वानरसन्धुक्षणसममाकर्ण्य जज्वाल कोपेन, ततः पृष्टवान् कमपि पुरुषं—कोऽयं कस्य वा सत्क इति ?, ज्ञात्वा च तमन्यदा क्षुरिकामाकृष्य गतः क्षेत्रे तस्य पार्श्वे, रे ! मारयामि त्वां सम्प्रति, तेनोक्तं–किमिति ?, सोऽब्रवीत्–त्वया तदानीं न मम खातं प्रशंसितमितिकृत्वा, सोऽब्रवीत्–सत्यमेतत्, यो यस्मिन् कर्मणि सदैवाभ्यासपरः स तद्विषये प्रकर्षवान् भवति, तत्राहमेव दृष्टान्तः, तथाहि-अमून् मुद्गान् हस्तगतान् यदि भणसि तर्हि सर्वानप्यधोमुखान् पातयामि यद्वा ऊर्द्धमुखान् अथवा पार्श्वस्थितानिति, ततः सोऽधिकतरं विस्मितचेताः प्राह—पातय सर्वानप्यधोमुखानिति, विस्तारितो भूमौ पटः पातिताः सर्वेऽप्यधोमुखा मुद्गाः, जातो महान् विस्मयश्चौरस्य, प्रशंसितं भूयो भूयस्तस्य कौशलमहो विज्ञानमहो विज्ञानमिति,

कर्मजा-बुद्धुदा-हरणानि-गा. ६७-८

२०

॥१६४॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥६९--७०॥

दीप अनुक्रम [१०४--१०५]

वदति चौरो–यदि नाधोमुखाः पातिता अभविष्यन् ततो नियमात् त्वामहममारयिष्यमिति, कर्षकस्य चौरस्य च कर्म्मजा बुद्धिः । 'कोलिय'त्ति कौलिकः- तन्तुवायः, स मुष्ट्या तन्तूनादाय जानाति—एतावद्भिः कण्डकैः पटो भविष्यति । 'डोए'त्ति दर्वी वर्द्धकिर्जानाति–एतावदत्र मास्यतीति । 'मुत्ति'ति मणिकारो मौक्तिकमाकाशे प्रक्षिप्य शूकरवालं तथा धारयति यथा पतितो मौक्तिकस्य रन्ध्रे स प्रविशतीति । 'घय'त्ति घृतविक्रयी स विज्ञानप्रकर्षप्राप्तो यदि रोचते तर्हि शकटे स्थितोऽधस्तात् कुण्डिकानालेऽपि घृतं प्रक्षिपति । 'पवय'त्ति प्लवकः, स चाकाशस्थितानि करणानि करोति । 'तुण्णाग'त्ति सीवनकर्म्मकर्त्ता, स च स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तस्तथा सीवति यथा प्रायो यत्केनापि न लक्ष्यते । 'वड्ढइ'ति वर्द्धकिः, स च स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तोऽमित्वापि देवकुलरथादीनां प्रमाणं जानाति । 'पूयइ'त्ति आपूपिकः, स चामित्वाप्यपूपानां दलस्य मानं जानाति । 'घड'त्ति घटकारः स्वविज्ञानप्रकर्षप्राप्तः प्रथमत एव प्रमाणयुक्तां मृदं गृह्णाति । 'चित्तकारे'त्ति चित्रकारः, स च रूपकभूमिकाममित्वाऽपि रूपकप्रमाणं जानाति तावन्मात्रं वा वर्णं कुञ्चिकायां गृह्णाति यावन्मात्रेण प्रयोजनमिति ॥ उक्ता कर्मजा बुद्धिः, सम्प्रति पारिणामिक्या लक्षणमाह–

अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिआ वयविवागपरिणामा । हिअनिस्सेअसफलवई बुद्धी परिणामिआ नाम ॥ ७१ ॥ अभए १ सिट्ठि २ कुमारे ३ देवी ४ उदिओदए हवइ राया ५ । साहू य नंदिसेणे ६ धणदत्ते ७ सावग ८ अमच्चे ९ ॥ ७२ ॥ खमए १० अमच्चपुत्ते ११ चाणक्के १२

पारिणामिक्युदाहरणानि गा. ७१-४ ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारिणामिकी बुद्धीनां दृष्टान्ताः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||७१--७४|

दीप अनुक्रम [१०६--११०]

चेव थूलभद्दे अ १३। नासिकसुंदरिनंदे १४ वइरे १५ परिणामबुद्धीए ॥ ७३ ॥ चलणाहण १६ आमंडे १७ मणी अ १८ सप्पे अ १९ खग्गि २० थूभिंदे २१। परिणामियबुद्धीए एवमाई उदाहरणा ॥ ७४ ॥ से तं असुअनिस्सियं ॥

'अणुमाणे'त्यादि, लिङ्गालिङ्गिनि ज्ञानमनुमानं, तच्च स्वार्थानुमानमिह द्रष्टव्यं, अन्यथा हेतुग्रहणस्य नैरर्थक्यापत्तेः, अनुमानप्रतिपादकं वचो हेतुः, परार्थानुमानमित्यर्थः, अथवा ज्ञापकमनुमानं, कारकं हेतुः, दृष्टान्तः प्रतीतः, आह– अनुमानग्रहणेन दृष्टान्तस्य गतत्वादलमस्योपन्यासेन, उच्यते, अनुमानस्य क्वचिद्दृष्टान्तमन्तरेणान्यथानुपपत्तिग्राहकप्रमाणबलेन प्रवृत्तेः, यथा सात्मकं जीवच्छरीरं, प्राणादिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः, न च दृष्टान्तोऽनुमानस्याङ्गं, यत उक्तम्— "अन्यथाऽनुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?" ततः पृथग् दृष्टान्तस्योपादानं, तत्र साध्यस्योपमाभूतो दृष्टान्तः, तथा चोक्तम्—"यः साध्यस्योपमाभूतः, [स] दृष्टान्त इति कथ्यते।" अनुमानहेतुदृष्टान्तैः साध्यमर्थं साधयतीति अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका, तथा कालकृतो देहावस्थाविशेषो वयस्तद्विपाके परिणामः–पुष्टता यस्याः सा वयोविपाकपरिणामा, तथा हितम्—अभ्युदयो निःश्रेयसं–मोक्षस्ताभ्यां फलवती, ते द्वे अपि तस्याः फले इत्यर्थः, बुद्धिः परिणामिकी नाम। अस्या अपि शिष्यगणहितायोदाहरणैः स्वरूपं प्रकटयति—'अभये'त्यादिगाथात्रयं, अस्यार्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि च कथानकानि प्रायोऽतीव गुरूणि प्रसिद्धानि च ततो ग्रन्थान्तरेभ्योऽवसेयानि, इह त्वक्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ॥७१--७४॥

दीप अनुक्रम [१०६--११०]

रयोजनामात्रमेव केवलं करिष्यते । तत्र 'अभय'त्ति अभयकुमारस्य यच्चण्डप्रद्योताद्वरचतुष्टयमार्गणं यच्चण्डप्रद्योतं बद्ध्वा नगरमध्येनारटन्तं नीतवानित्यादि सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'सेट्ठि'त्ति काष्ठश्रेष्ठी, तस्य यत्स्वभार्यादुश्चरितमवलोक्य प्रव्रज्याप्रतिपत्तिकरणं, यच्च पुत्रे राज्यमनुशासति वर्षाचतुर्मासकानन्तरं विहारक्रमं कुर्वतः पुत्रसमक्षं धिग्जातीयैरुपस्थापिताया अक्षरिकाया आपन्नसत्त्वायास्त्वदीयोऽयं गर्भस्त्वं च ग्रामान्तरं प्रति चलितः ततः कथमहं भविष्यामीति वदन्त्याः प्रवचनापयशोनिवारणाय यदि मदीयो गर्भस्ततो योनेर्विनिर्गच्छतु नो चेदुदरं भित्त्वा विनिर्गच्छत्विति यत् शापप्रदानं, सा परिणामिकी बुद्धिः । 'कुमारे'त्ति मोदकप्रियस्य कुमारस्य प्रथमे वयसि वर्त्तमानस्य कदाचिद्गुणन्यां गतस्य प्रमदादिभिः सह यथेच्छं मोदकान् भक्षितवतोऽजीर्णरोगप्रादुर्भावादतिपूतिगन्धि वातकायमुत्सृजतो या उद्गता चिन्ता, यथा अहो! तादृशान्यपि मनोहराणि कर्णिकादीनि द्रव्याणि शरीरसम्पर्कवशात्पूतिगन्धानि जातानि, तस्माद् धिगिदमशुचि शरीरं, धिग्मोहो, यदेतस्यापि शरीरस्य कृते जन्तुः पापान्यारभते, इत्यादिरूपा सा पारिणामिकी बुद्धिः, तत ऊर्ध्वं तस्य शुभशुभतराध्यवसायभावतोऽन्तर्मुहूर्त्तेन केवलज्ञानोत्पत्तिः । 'देवि'त्ति देव्याः पुष्पवत्यभिधानायाः प्रव्रज्यां परिपाल्य देवत्वेनोत्पन्नाया यत्पुष्पचूलाभिधानायाः स्वपुत्र्याः स्वप्ने नरकदेवलोकप्रगटनेन प्रबोधकरणं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'उदिओदए'त्ति उदितोदयस्य राज्ञः श्रीकान्तापतेः पुरिमतालपुरे राज्यमनुशासतः श्रीकान्तानिमित्तं वाणारसीवास्तव्येन धर्मरुचिना राज्ञा सर्वबलेन समागत्य निरुद्धस्य

पारिणामिक्युदाहरणानि गा. ७१-४ ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||७१--७४|

दीप अनुक्रम [१०६--११०]

प्रभूतजनपरिक्षयभयेन यद्वैश्रवणमुपवासं कृत्वा समाहूय सनगरस्यात्मनोऽन्यत्र सङ्क्रामणं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'साहू य नंदिसेणे'त्ति साधोः श्रेणिकपुत्रस्य नन्दिषेणस्य स्वशिष्यस्य व्रतमुज्झितुकामस्य स्थिरीकरणाय भगवद्वर्द्धमानस्वामिवन्दननिमित्तचलितमुक्ताभरणश्वेताम्बरपरिधानरूपरामणीयकविनिर्जितामरसुन्दरीकस्वान्तःपुरदर्शनं कृतं सा पारिणामिकी बुद्धिः, स हि नन्दिषेणस्य तादृशमन्तःपुरं नन्दिषेणपरित्यक्तं दृष्ट्वा दृढतरं संयमे स्थिरीबभूव । 'धणदत्ते'त्ति धनदत्तस्य सुंसमाया निजपुत्र्याः चिलातीपुत्रेण मारितायाः कालमपेक्ष्य यत्पललभक्षणं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'सावगो'त्ति कोऽपि श्रावकः प्रत्याख्यातपरस्त्रीसम्भोगः कदाचिन्निजजायासखीमवलोक्य तत्रातीवाध्युपपन्नः, तं च तादृशं दृष्ट्वा तद्भार्योऽचिन्तयत्–नूनमेष यदि कथमप्येतस्मिन्नध्यवसाये वर्त्तमानो म्रियते तर्हि नरकगतिं तिर्यग्गतिं वा याति तस्मात्करोमि कञ्चिदुपायमिति, तत एवं चिन्तयित्वा स्वपतिमभाणीत्–मा त्वमातुरीभूः, अहं ते तां विकालवेलायां सम्पादयिष्यामि, तेन प्रतिपन्नं, ततो विकालवेलायामीषदन्धकारे जगति प्रसरति स्वसख्या वस्त्राभरणानि परिधाय सा स्वसखीरूपेण रहसि तमुपासृपत्, स च सेयं मद्भार्यासखीत्यवगम्य तां परिभुक्तवान्, परिभोगे कृते चापगतकामाध्यवसायोऽस्मरच्च प्रागृहीतं व्रतं, ततो व्रतभङ्गो मे समुदपादीति खेदं कर्तुं प्रवृत्तः, ततस्तद्भार्या तस्मै यथावस्थितं निवेदयामास, ततो मनाक् स्वस्थीबभूव, गुरुपादमूलं च गत्वा दुष्टमनःसङ्कल्पनिमित्तव्रतभङ्गविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं प्रतिपन्नवान्, श्राविकायाः पारिणामिकी बुद्धिः । 'अमच्चे'त्ति वरधनुःपितुर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मात्यस्य ब्रह्मदत्तकुमारविनिर्गमनाय यत् सुरङ्गाखननं, सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'खमए'त्ति क्षपकस्य कोपवशेन मृत्वा सर्प्पत्वेनोत्पन्नस्य ततोऽपि मृत्वा जातराजपुत्रस्य प्रव्रज्याप्रतिपत्तौ चतुरः क्षपकान् पर्युपासीनस्य यद्भोजनवेलायां तैः क्षपकैः पात्रे निष्ठ्यूतनिक्षेपेऽपि क्षमाकरणमात्मनिन्दनं क्षपकगुणप्रशंसा सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'अमच्चपुत्ते'त्ति अमात्यपुत्रस्य वरधनुर्नाम्नो ब्रह्मदत्तकुमारविषये दीर्घपृष्ठस्वरूपज्ञापनादिषु तेषु २ प्रयोजनेषु पारिणामिकी बुद्धिः । 'चाणक्के'त्ति चाणाक्यस्य चन्द्रगुप्तस्य राज्यमनुशासतो भाण्डागारे निष्ठिते सति यदेकदिवसजाताश्वादियाचनं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'थूलभद्दे'त्ति स्थूलभद्रस्वामिनः पितरि मारिते नन्देनामात्यपदपरिपालनाय प्रार्थ्यमानस्यापि यत्प्रव्रज्याप्रतिपत्तिकरणं सा पारिणामिकी बुद्धिः ।'नासिकसुंदरिनंदे'त्ति नासिक्यपुरे सुन्दरीभर्तृनन्दस्य भ्रात्रा साधुना यन्मेरुशिरसि नयनं यच्च देवमैथुनकं दर्शितं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'वइर'त्ति वज्रस्वामिनो बालभावेऽपि वर्त्तमानस्य मातरमवगणय्य सङ्घबहुमानकरणं सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'चलणाहण'त्ति कोऽपि राजा तरुणैर्युद्ध्याद्यते—यथा देव! तरुणा एव पार्श्वे म्रियन्तां, किं स्थविरैः वलिपलितविशोभितशरीरैः?, ततो राजा तान् प्रति परीक्षानिमित्तं ब्रूते—यो मां शिरसि पादेन ताडयति तस्य को दण्ड इति?, ते प्राहुः–तिलमात्राणि खण्डानि स विकृत्य मार्यते इति, ततः स्थविरान् पप्रच्छ, तेऽवोचत्—देव! परिभाव्य कथयामः, ततस्तैरेकान्ते गत्वा चिन्तितं–को नाम हृदयवल्लभां देवीमतिरिच्यान्यो देवं शिरसि ताडयितुमीष्टे, हृदयवल्लभा च विशेषतः सन्माननीयेति,

पारिणामिक्युदाहरणानि गा. ७१-४ ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७...] + गाथा ||७१--७४|

दीप अनुक्रम [१०६--११०]

ततस्ते समागत्य राजानं विज्ञपयामासुः—देव! स विशेषतः सत्कारणीय इति, ततो राजा परितोषमुपागतस्तान् प्रशंसितवान्—को नाम वृद्धान् विहायान्य एवंविधबुद्धिभाग् भवति, ततः सदैव स्थविरान् पार्श्वे धारयामास न तरुणानिति, राज्ञः स्थविराणां च पारिणामिकी बुद्धिः । 'आमंडे'त्ति कृत्रिममामलकमिति, कठिनत्वादकालत्वाच्च केनापि यथावस्थितं ज्ञातं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः । 'मणि'त्ति कोऽपि सर्पो वृक्षमारुह्य सदैव पक्षिणामण्डानि भक्षयति, अन्यदा च स वृक्षस्थितो निपतितः, मणिश्च तस्य तत्रैव कचित् प्रदेशे स्थितः, तस्य च वृक्षस्याधस्तात् कूपोऽस्ति, उपरिस्थितमणिप्रभाच्छुरितं च सकलमपि कूपोदकं रक्तीभूतमुपलक्ष्यते, कूपादाकृष्टं च स्वाभाविकं दृश्यते, एतच्च बालकेन केनापि निजपितुः स्थविरस्य निवेदितं, सोऽपि तत्र समागत्य सम्यक्परिभाव्य मणिं गृहीतवान्, तस्य पारिणामिकी बुद्धिः । 'सप्पे'त्ति सर्पस्य चण्डकौशिकस्य भगवन्तं प्रति या चिन्ताऽभूत्–ईदृगयं महात्मेत्यादिका सा पारिणामिकी बुद्धिः । 'खग्ग'त्ति कोऽपि श्रावकः प्रथमयौवनमदमोहितमना धर्ममकृत्वा पञ्चत्वमुपागतः खड्गः समुत्पन्नः, यस्य गच्छतो द्वयोरपि पार्श्वयोश्चर्म्माणि लम्बन्ते स जीवविशेषः खड्गः, स चाटव्यां चतुष्पथे जनं मारयित्वा खादति, अन्यदा च तेन पथा गच्छतः साधून् दृष्टवान्, स चाक्रमितुं न शक्नोति, ततस्तस्य जातिस्मरणं भक्तप्रत्याख्यानं देवलोकगमनं, तस्य पारिणामिकी बुद्धिः । 'थूभ'(भिंदे)त्ति विशालायां पुरि कूलवालकेन विशालाभङ्गाय यन्मुनिसुव्रतस्वामिपादुकास्तूपोत्खातनं सा तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ।

पारिणामिक्युदाहरणानि गा. ७१-४

२०

॥१६७॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७]

दीप अनुक्रम [१११]

पारिणामिक्या बुद्धेरेवमादीन्युदाहरणानि । 'सेत्त'मित्यादि, तदेतदश्रुतनिश्रितम् ॥

से किं तं सुअनिस्सिअं ?, २ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–उग्गह १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४

(सू० २७)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तच्छ्रुतनिश्रितं मतिज्ञानं ?, गुरुराह—श्रुतनिश्रितं मतिज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अवग्रह ईहा अपायो धारणा च, तत्र अवग्रहणमवग्रहः—अनिर्देश्यसामान्यमात्ररूपार्थग्रहणमित्यर्थः, यदाह चूर्णिकृत्—"सामन्नस्स रूवादिविसेसणरहियस्स अनिद्देसस्स अवग्गहणमवग्गह" इति । तथा ईहनमीहा, सद्भूतार्थपर्यालोचनरूपा चेष्टा इत्यर्थः, किमुक्तं भवति—अवग्रहादुत्तरकालमवायात्पूर्वं सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखोऽसद्भूतार्थविशेषपरित्यागाभिमुखः प्रायोऽत्र मधुरत्वादयः शङ्खादिशब्दधर्म्मा दृश्यंते न खरकर्कशनिष्ठुरतादयः शार्ङ्गादिशब्दधर्म्मा इत्येवंरूपो मतिविशेष ईहा, आह च भाष्यकृत्–"भूयाभूयविसेसादाणच्चायाभिमुहमीहा" तथा तस्यैवावगृहीतस्येहितस्यार्थस्य निर्णयरूपोऽध्यवसायोऽवायः शाङ्ग एवायं शार्ङ्ग एवा (व वा) यमित्यादिरूपोऽवधारणात्मक प्रत्ययोऽवाय इत्यर्थः, तस्यैवार्थस्य निर्णीतस्य धरणं धारणा, सा च त्रिधा—अविच्युतिर्वासना स्मृतिश्च, तत्र तदुपयोगादविच्यवनमविच्युतिः, सा चान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा, ततस्तयाऽऽहितो यः संस्कारः स वासना, सा च सङ्ख्येयमसङ्ख्येयं वा कालं यावद्भवति, ततः कालान्तरे कुतश्चि-

श्रुतनिश्रित-मतिभेदाः सू. २७

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'मति'नाम् अवग्रह आदि चत्वारः भेदाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७]

दीप अनुक्रम [१११]

त्तादृशार्थदर्शनादिकारणात् संस्कारस्य प्रबोधे यज्ज्ञानमुदयते—तदेवेदं यत् मया प्रागुपलब्धमित्यादिरूपं सा स्मृतिः, उक्तं च—"तदनंतरं तदत्थाविच्चवणं जो उ वासणाजोगो । कालंतरेण जं पुण अणुसरणं धारणा सा उ ॥ १ ॥" एताश्चाविच्युतिवासनास्मृतयो धारणालक्षणसामान्यान्वर्थयोगाद्धारणाशब्दवाच्याः ॥

से किं तं उग्गहे ?, उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अत्थुग्गहे अ वंजणुग्गहे अ । (सू. २८)

'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयमवग्रहः ?, सूरिराह—अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च, तत्र अर्थ्यते इत्यर्थः अर्थस्यावग्रहणं अर्थावग्रहः—सकलरूपादिविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यसामान्यमात्ररूपार्थग्रहणमेकसामयिकमित्यर्थः । तथा व्यज्यते अनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं, तच्चोपकरणेन्द्रियस्य श्रोत्रादेः शब्दादिपरिणतद्रव्याणां च परस्परं सम्बन्धः, सम्बन्धे हि सति सोऽर्थः शब्दादिरूपः श्रोत्रादीन्द्रियेण व्यञ्जयितुं शक्यते, नान्यथा, ततः सम्बन्धो व्यञ्जनं, तथा चाह भाष्यकृत्—"वंजिज्जइ जेणऽत्थो घडोव्व दीवेण वंजणं तं च । उवगरणिंदियसद्दाइपरिणयद्दव्वसंबंधो ॥ १ ॥" व्यञ्जनेन—सम्बन्धेनावग्रहणं–सम्बध्यमानस्य शब्दादिरूपस्यार्थस्याव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः, अथवा व्यज्यन्ते इति व्यञ्जनानि, 'कृद्बहुल'मिति वचनात् कर्मण्यनट्, व्यञ्जनानां शब्दादिरूपतया परिणतानां द्रव्याणामुपकरणेन्द्रियसम्प्राप्तानामवग्रहः—अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः,

१ तदनन्तरं तदर्थाविच्यवनं यस्तु वासनायोगः । कालान्तरे यत्पुनरनुस्मरणं धारणा सा तु ॥ १ ॥ २ व्यज्यते येनार्थो घट इव दीपेन व्यञ्जनं तच्च । उपकरणेन्द्रियशब्दादिपरिणतद्रव्यसंबन्धः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं–उपकरणेन्द्रियं तेन स्वसम्बद्धस्यार्थस्य–शब्दादेरवग्रहणम्–अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः, इयमत्र भावना–उपकरणेन्द्रियशब्दादिपरिणतद्रव्यसम्बन्धे प्रथमसमयादारभ्यार्थावग्रहात् प्राक् या सुप्तमत्तमूर्च्छितादिपुरुषाणामिव शब्दादिद्रव्यसम्बन्धमात्रविषया काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्रा सा व्यञ्जनावग्रहः, स चान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः । अत्राह–ननु व्यञ्जनावग्रहवेलायां न किमपि संवेदनं संवेद्यते, तत्कथमसौ ज्ञानरूपो गीयते ?, उच्यते, अव्यक्तत्वान्न संवेद्यते, ततो न कश्चिद्दोषः,तथाहि–यदि प्रथमसमयेऽपि शब्दादिपरिणतद्रव्यैरुपकरणेन्द्रियस्य सम्पृक्तौ काचिदपि न ज्ञानमात्रा भवेत् ततो द्वितीयेऽपि समये न भवेत्, विशेषाभावात्, एवं यावच्चरमसमयेऽपि, अथ च चरमसमये ज्ञानमर्थावग्रहरूपं जायमानमुपलभ्यते, ततः प्रागपि क्वापि कियती ज्ञानमात्रा द्रष्टव्या, अथ मन्येथाः–मा भूत्प्रथमसमयादिषु शब्दादिपरिणतद्रव्यसम्बन्धेऽपि काचिदपि ज्ञानमात्रा, शब्दादिपरिणतद्रव्याणां तेषु समयेषु स्तोकत्वात्, चरमसमये तु भविष्यति, शब्दादिरूपपरिणतद्रव्यसमूहस्य तदानीं भूयसो भावात्, तदयुक्तं, यतो यदि प्रथमसमयादिषु शब्दादिद्रव्याणां स्तोकत्वात् सम्पृक्तावव्यक्ताऽपि काचिदपि ज्ञानमात्रा न समुल्लसेत् तर्हि प्रभूतसमुदायसम्पर्केऽपि न भवेत्, न खलु सिकताकणेषु प्रत्येकमसति तैललेशे समुदायेऽपि तैलं समुद्भवदुपलभ्यते, अस्ति च चरमसमये प्रभूतशब्दादिद्रव्यसम्पृक्तौ ज्ञानं ततः प्राक्तनेष्वपि समयेषु स्तोकस्तोकतरैरपि शब्दादिपरिणतद्रव्यैः सम्बन्धे काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्राऽभ्युपगन्तव्या, अन्यथा चरमसमयेऽपि ज्ञानानुपपत्तेः, तथा चोक्तं–

व्यञ्जनाव-ग्रहेज्ञानं

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८]

दीप अनुक्रम [११२]

"जं सव्वहा न वीसुं सव्वेसुवि तं न रेणुतेल्लंव। पत्तेयमणिच्छंतो कहमिच्छसि समुदये नाणं? ॥ १ ॥" ततः स्थितमेतत्–व्यञ्जनावग्रहो ज्ञानरूपः, केवलं तेषु ज्ञानमव्यक्तमेव बोद्धव्यं । चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, ते च स्वगता अनेकभेदा अग्रे स्वयमेव सूत्रकृता वर्णयिष्यन्ते, आह–प्रथमं व्यञ्जनावग्रहो भवति ततोऽर्थावग्रहः, ततः कस्मादिह प्रथममर्थावग्रह उपन्यस्तः?, उच्यते, स्पष्टतयोपलभ्यमानत्वात्, तथाहि–अर्थावग्रहः स्पष्टरूपतया सर्वैरपि जन्तुभिः संवेद्यते, शीघ्रतरगमनादौ सकृत्सत्वरमुपलम्भे मया किञ्चिद् दृष्टं परं न परिभावितं सम्यगिति व्यवहारदर्शनात्, अपि च–अर्थावग्रहः सर्वेन्द्रियमनोभावी व्यञ्जनावग्रहस्तु नेति प्रथममर्थावग्रह उक्तः ॥ सम्प्रति तु व्यञ्जनावग्रहादूर्ध्वमर्थावग्रह इति क्रममाश्रित्य प्रथमं व्यञ्जनावग्रहस्वरूपं प्रतिपिपादयिषुः शिष्यं प्रश्नं कारयति—

से किं तं वंजणुग्गहे?, वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-सोइंदिअवंजणुग्गहे घाणिंदियवंजणुग्गहे जिब्भिंदियवंजणुग्गहे फासिंदिअवंजणुग्गहे। से तं वंजणुग्गहे (सू. २९)

'से किं त'मित्यादि,अथ कोऽयं व्यञ्जनावग्रहः?, आचार्य आह–व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–'श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह' इत्यादि, अत्राह–सत्सु पञ्चस्विन्द्रियेषु षष्ठे च मनसि कस्मादयं चतुर्विधो व्यावर्ण्यते?, उच्यते, इह व्यञ्जनमुपकरणेन्द्रियस्य शब्दादिद्रव्याणां च परस्परं सम्बन्ध उच्यते, सम्बन्धश्चतुर्णामेव श्रोत्रेन्द्रियादीनां, न नयनमन-

१ यत् सर्वथा न विष्वक् सर्वेष्वपि तत् न रेणुतैलवत्। प्रत्येकमनिच्छन् कथमिच्छसि समुदाये ज्ञानम्? ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोः, तयोरप्राप्यकारित्वात्, आह—कथमप्राप्यकारित्वं तयोरवसीयते ?, उच्यते, विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात्, तथाहि–यदि प्राप्तमर्थं चक्षुर्मनो वा गृह्णीयात् तर्हि यथा स्पर्शनेन्द्रियं स्रक्चन्दनादिकं अङ्गारादिकं च प्राप्तमर्थं परिच्छिन्दत्तत्कृतानुग्रहोपघातभाग् भवति तथा चक्षुर्मनसी अपि भवेतां, विशेषाभावात्, न च भवतः, तस्मादप्राप्यकारिणी ते, ननु दृश्येते एव चक्षुषोऽपि विषयकृतानुग्रहोपघातौ, तथाहि–घनपटलविनिर्मुक्ते नभसि सर्वतो निबिडजरठिमोपेतं करप्रसरमभिसर्प्पयन्तमंशुमालिनमनवरतमवलोकमानस्य भवति चक्षुषो विघातः, शशाङ्ककरकदम्बकं यदिवा तरङ्गमालोपशोभितं जलं तरुमण्डलं च शाद्वलं निरन्तरं निरीक्षमाणस्य चानुग्रहः, तदेतदपरिभावितभाषितं, यतो न ब्रूमः—सर्वथा विषयकृतानुग्रहोपघातौ न भवतः, किन्त्वेतावदेव वदामो–यदा विषयं विषयतया चक्षुरवलम्बते तदा तत्कृतावनुग्रहोपघातौ तस्य न भवत इति तदप्राप्यकारि, शेषकालं तु प्राप्तेनोपघातकेनोपघातो भविष्यति अनुग्राहकेण चानुग्रहः, तत्रांशुमालिनो रश्मयः सर्वत्रापि प्रसरमुपदधाना यदाऽंशुमालिनः सम्मुखमीक्षते तदा ते चक्षुर्देशमपि प्राप्नुवन्ति, ततश्चक्षुःसम्प्राप्तास्ते स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरुपघ्नन्ति, शीतांशुरश्मयश्च स्वभावत एव शीतलत्वादनुग्राहकाः, ततस्ते चक्षुःसम्प्राप्ताः सन्तस्ते स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरनुगृह्णन्ति, तरङ्गमालासङ्कुलजलावलोकने च जलकणसम्पृक्तसमीरावयवसंस्पर्शतोऽनुग्रहो भवति, शाद्वलतरुमण्डलावलोकनेऽपि शाद्वलतरुच्छायासम्पर्कशीतीभूतसमीरणसंस्पर्शात्, शेषकालं तु जलावलोकनेऽनुग्रहाभिमान उपघाताभावादवसेयः, भवति चोपघाताभावेऽनुग्रहा-

चक्षुषःप्राप्यकारित्वम्

५ १० १३

Jain Education International • For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिमानो यथाऽतिसूक्ष्माक्षरनिरीक्षणाद्विनिवृत्त्य यथासुखं नीलीरक्तवस्त्राद्यवलोकने, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, अन्यथा समाने सम्पर्के यथा सूर्यमीक्षमाणस्य सूर्येणोपघातो भवति तथा हुतवहजलशूलाद्यालोकने दाहक्लेदपाटनादयोऽपि कस्मान्न भवन्तीति ?। अपिच–यदि चक्षुः प्राप्यकारि तर्हि स्वदेशगतरजोमलाञ्जनशिलाकादिकं किं न पश्यति ?, तस्मादप्राप्यकार्येव चक्षुः। ननु यदि चक्षुरप्राप्यकारि तर्हि मनोवत्कस्मादविशेषेण सर्वानपि दूरव्यवहितादीनर्थान् न गृह्णाति ?, यदि हि प्राप्ते परिच्छिन्द्यात्तर्हि यदेवानावृतमदूरदेशं वा तदेव गृह्णीयात् नावृतं दूरदेशं वा, तत्र चक्षुरश्मीनां गमनासम्भवः सम्पर्काभावात्, ततो युज्यते चक्षुषो ग्रहणाग्रहणे, नान्यथा, तथा चोक्तम्—"प्राप्यकारि चक्षुः, उपलब्ध्यनुपलब्ध्योरनावरणेतरापेक्षणात् अदूरेतरापेक्षणाच्च, यदि" हि चक्षुरप्राप्यकारि भवेत्तदाऽऽवरणभावादनुपलब्धिः अन्यथोपलब्धिरिति न स्यात्, न हि तदावरणमुपघातकरणसमर्थं, प्राप्यकारित्वे तु मूर्त्तद्रव्यप्रतिघातादुपपत्तिमान् व्याघातोऽतिदूरे च गमनाभावादिति,प्रयोगश्चात्र–न चक्षुषो विषयपरिमाणं, अप्राप्यकारित्वात्,मनोवत्, तदेतदयुक्ततरं, दृष्टान्तस्य साध्यविकलत्वात्, न खलु मनोऽप्यशेषान् विषयान् गृह्णाति, तस्यापि सूक्ष्मेष्वागमगम्यादिष्वर्थेषु मोहदर्शनात्, तस्माद् यथा मनोऽप्राप्यकार्यपि स्वावरणक्षयोपशमसापेक्षत्वात् नियतविषयं तथा चक्षुरपि स्वावरणक्षयोपशमसापेक्षत्वादप्राप्यकार्यपि योग्यदेशावस्थितनियतविषयमिति न व्यवहितानामुपलम्भप्रसङ्गो नापि दूरदेशस्थितानामिति। अपि च—दृष्टमप्राप्यकारित्वेऽपि तथास्वभावविशेषाद्योग्यदेशापेक्षणं, यथाऽयस्कान्तस्य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न खल्वयस्कान्तोऽयसोऽप्राप्यकर्षणे प्रवर्त्तमानः सर्वस्याप्ययसो जगद्वर्त्तिन आकर्षको भवति, किन्तु प्रतिनियतस्यैव, (यत्तु)शङ्करस्वामी प्राह—"अयस्कान्तोऽपि प्राप्यकारी,अयस्कान्तच्छायाणुभिः सह समाकृष्यमाणवस्तुनः सम्बन्धभावात्, केवलं ते छायाणवः सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते" इति, तदेतदुन्मत्तप्रलपितं, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्, न हि तत्र छायाणुसम्भवग्राहकं प्रमाणमस्ति, न चाप्रमाणकं प्रतिपत्तुं शक्नुमः, अथास्ति ग्राहकं प्रमाणमनुमानं, इह यदाकर्षणं तत्संसर्गपूर्वकं, यथाऽयोगोलकस्य सन्दंशेन, आकर्षणं चायसोऽयस्कान्तेन, तत्र साक्षादयस्कान्ते संसर्गः प्रत्यक्षबाधित इत्यर्थात् छायाणुभिः सह द्रष्टव्य इति, तदपि बालिशजल्पितं, हेतोरनैकान्तिकत्वात्, मन्त्रेण व्यभिचारात्, तथाहि—मन्त्रः स्मर्यमाणोऽपि विवक्षितं वस्त्वाकर्षति, न च तत्र कोऽपि संसर्ग इति, अपिच—यथा छायाणवः प्राप्तमयः समाकर्षन्ति तथा काष्ठादिकमपि प्राप्तं कस्मान्नाकर्षन्ति?, शक्तिप्रतिनियमादिति चेत् ननु स शक्तिप्रतिनियमोऽप्राप्तावपि तुल्य एवेति व्यर्थं छायाणुपरिकल्पनं। अन्यस्त्वाह—अस्ति चक्षुषः प्राप्यकारित्वे व्यवहितार्थानुपलब्धिरनुमानं प्रमाणं, तदयुक्तं, अत्रापि हेतोरनैकान्तिकत्वात्, काचाभ्रपटलस्फटिकैरन्तरितस्याप्युपलब्धेः, अथेदमाचक्षीथाः—नायना रश्मयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्ति, नायनाश्च रश्मयस्तैजसत्वान्न तेजोद्रव्यैः प्रतिस्खल्यन्ते, ततो न कश्चिद्दोषः, तदपि न मनोरमं, महाज्वालादौ स्खलनोपलब्धेः, तस्मादप्राप्यकारि चक्षुरिति स्थितं॥ एवं मनसोऽप्राप्यकारित्वं भावनीयं, तत्रापि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावाद्, अन्यथा तोयादिचिन्तायामनुग्रहोऽग्निशस्त्रादिचिन्तायां

चक्षुषःप्राप्यकारित्वम्

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१७१॥

चोपघातो भवेत्, ननु दृश्यते मनसोऽपि हर्षादिभिरनुग्रहः, शरीरोपचयदर्शनात्, तथाहि—हर्षप्रकर्षवशान्मनसोऽपि पुष्टता भवति, तद्वशाच्च स्वशरीरस्योपचयः, तथोपघातोऽपि शोकादिभिर्दृश्यते, शरीरदौर्बल्योरःक्षतादिदर्शनात्, अतिशोककरणतो हि मनसो विघातः सम्भवति, ततस्तद्वशाच्छरीरदौर्बल्यमतिचिन्तावशाच्च हृद्रोग इति, तदेतदतीवासम्बद्धं, यत इह मनसोऽप्राप्यकारित्वं साध्यमानं वर्त्तते, विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात्, न चेह विषयकृतानुग्रहोपघातौ त्वया मनसो दर्श्येते, तत्कथं व्यभिचारः?, मनस्तु स्वयं पुद्गलमयत्वाच्छरीरस्यानुग्रहोपघातौ करिष्यति, यथेष्टानिष्टरूप आहारः, तथाहि—इष्टरूप आहारः परिभुज्यमानः शरीरस्य पोषमाधत्ते, अनिष्टरूपस्तूपसङ्घातं(स्तूपघातं), तथा मनोऽप्यनिष्टपुद्गलोपचितमतिशोकादिचिन्तानिबन्धनं शरीरस्य हानिमादधाति,इष्टपुद्गलोपचितं च हर्षादिकारणं पुष्टिं, उक्तं च–'इट्ठानिट्ठाहारऽब्भवहारे होंति पुट्ठिहाणीओ । जह तह मणसो ताओ पुग्गलगुणउत्ति को दोसो? ॥१॥" तस्मात् मनोऽपि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावादप्राप्यकारीति स्थितं ॥ इह सुगतमतानुसारिणः श्रोत्रमप्यप्राप्यकारि प्रपद्यन्ते, तथा च तद्ग्रन्थः—"चक्षुः श्रोत्रं मनोऽप्राप्यकारी"ति,तदयुक्तं, इहाप्राप्यकारि तत्प्रतिपत्तुं शक्यते यस्य विषयकृतानुग्रहोपघाताभावो, यथा चक्षुर्मनसोः, श्रोत्रस्य च शब्दकृत उपघातो दृश्यते, सद्योजातबालकस्य समीपे महाप्रयत्नताडितझल्लरीझात्कारश्रवणतो यद्वा विद्युत्प्रपाते तत्प्रत्यासन्नदेशवर्त्तिनां निर्घोषश्रवणतो बधिरीभावदर्शनात्,

१ इष्टानिष्टाहाराभ्यवहारे भवतः पुष्टिहानी । यथा तथा मनसस्ते पुद्गलगुणत्वादिति को दोषः ? ॥ १ ॥

मनसोऽप्राप्यकारिता

२०

॥१७१॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दपरमाणवो हि उत्पत्तिदेशादारभ्य सर्वतो जलतरङ्गन्यायेन प्रसरमभिगृह्णानाः श्रोत्रेन्द्रियदेशमागच्छन्ति, ततः सम्भवत्युपघातः, ननु यदि श्रोत्रेन्द्रियं देशं प्राप्तमेव शब्दं गृह्णाति नाप्राप्तं तर्हि यथा गन्धादौ गृह्यमाणे न तत्र दूरासन्नादितया भेदप्रतीतिरेवं शब्देऽपि न स्यात्, प्राप्तो हि विषयः परिच्छिद्यमानः सर्वोऽपि सन्निहित एव, तत्कथं तत्र दूरासन्नादिभेदप्रतीतिर्भवितुमर्हति?, अथ च प्रतीयते शब्दो दूरासन्नादितया, तथा च लोके वक्तारः श्रूयन्ते–क्वापि दूरे शब्द इति, अन्यच्च–यदि प्राप्तः शब्दो गृह्यते श्रोत्रेन्द्रियेण तर्हि चाण्डालोक्तोऽपि शब्दः श्रोत्रियेण श्रोत्रेन्द्रियसंस्पृष्टो गृह्यते इति श्रोत्रेन्द्रियस्य चाण्डालस्पर्शदोषप्रसङ्गः, तन्न श्रेयः श्रोत्रेन्द्रियस्य प्राप्यकारित्वं, तदेतदतिमहामोहस्य मलीमसभाषितं, त (य)तो यद्यपि शब्दः प्राप्तो गृह्यते श्रोत्रेन्द्रियेण तथापि यत उत्थितः शब्दस्तस्य दूरासन्नत्वे शब्देऽपि स्वभाववैचित्र्यसम्भवाद्दूरासन्नादिभेदप्रतीतिर्भवति,तथाहि—दूरादागतः शब्दः क्षीणशक्तिकत्वात्खिन्न उपलक्ष्यते अस्पष्टरूपो वा, ततो लोको वदति–दूरे शब्दः श्रूयते, अस्य च वाक्यस्यायं भावार्थो–दूरादागतः शब्दः श्रूयते इति, स्यादेतद्–एवमतिप्रसङ्गः प्राप्नोति, तथाहि–एतदपि वक्तुं शक्यते–दूरे रूपमुपलभ्यते, किमुक्तं भवति?–दूरागतं रूपमुपलभ्यते इति, ततश्चक्षुरपि प्राप्यकारि प्राप्नोति, न चेष्यते, तस्मान्नैतत्समीचीनमिति, तदयुक्तं, यत इह चक्षुषो रूपकृतावनुग्रहोपघातौ नोपलभ्येते, श्रोत्रेन्द्रियस्य तु शब्दकृत उपघातोऽस्ति, एतच्च प्रागेवोक्तं, ततो नातिप्रसङ्गापादनमुपपत्तिमत्, अन्यच्च–प्रत्यासन्नोऽपि जनः पवनस्य प्रतिकूलमवतिष्ठमानः शब्दं न शृणोति, पवनवर्त्मनि तु

श्रोत्रस्याप्राप्तिकारिता

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्त्तमानो दूरदेशस्थितोऽपि शृणोति, तथा च लोके वक्तारो–न वयं प्रत्यासन्ना अपि त्वदीयं वचः शृणुमः, पवनस्य प्रतिकूलमवस्थानात्, यदि पुनरप्राप्तमेव शब्दं रूपमिव जनाः प्रमिणुयुः तर्हि वातस्य प्रतिकूलमप्यवतिष्ठमाना रूपमिव शब्दं प्रमिणुयुः, न च प्रमिण्वन्ति, तस्मात्प्राप्ता एव शब्दपरमाणवः श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यन्ते इति अवश्यमभ्युपगन्तव्यं, तथा च सति पवनस्य प्रतिकूलमवष्टिमानानां श्रोत्रेन्द्रियं न शब्दपरमाणवो बैपुल्येन प्राप्नुवन्ति, तेषामन्यथा वातेन नीयमानत्वात्, ततो न ते शृण्वन्तीति न काचित्क्षतिः, यदपि चोक्तं–'चाण्डालस्पर्शदोषः प्राप्नोती'ति, तदपि चेतनाविकलपुरुषभाषितमिवासमीचीनं, स्पर्शास्पर्शव्यवस्थाया लोके काल्पनिकत्वात्, तथाहि–न स्पर्शव्यवस्था लोके पारमार्थिकी, तथाहि—यामेव भुवमग्रे चाण्डालः स्पृशन् प्रयाति तामेव पृष्ठतः श्रोत्रियोऽपि, तथा यामेव नावमारोहति स्म चाण्डालस्तामेवारोहति श्रोत्रियोऽपि, तथा स एव मारुतश्चाण्डालमपि स्पृष्ट्वा श्रोत्रियमपि स्पृशति, न च तत्र लोके स्पर्शदोषव्यवस्था, तथा शब्दपुद्गलस्पर्शेऽपि न भवतीति न कश्चिद्दोषः, अपि च–यथा केतकीदलनिचयं शतपत्रादिपुष्पनिचयं वा शिरसि निबध्य वपुषि वा मृगमदचन्दनाद्यवलेपनमारचय्य विपणिवीथ्यामागत्य चाण्डालोऽवतिष्ठते तदा तद्गतकेतकीदलादिगन्धपुद्गलाः श्रोत्रियादिनासिकास्वपि प्रविशन्ति, ततस्तत्रापि चाण्डालस्पर्शदोषः प्राप्नोतीति तद्दोषभयान्नासिकेन्द्रियमप्राप्यकारि प्रतिपत्तव्यं, न चैतद्भवतोऽप्यागमे प्रतिपाद्यते, ततो बालिशजल्पितमेतदिति कृतं प्रसङ्गेन ॥ केचित्पुनः श्रोत्रेन्द्रियस्य प्राप्यकारित्वमभ्युपगच्छन्तः शब्दस्याम्बरगुणत्वं प्रतिप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [११३]

शब्दस्य द्रव्यत्वम्

द्यन्ते, तदयुक्तं, आकाशगुणतायां शब्दस्यामूर्त्तत्वप्रसक्तेः, यो हि यद्गुणः स तत्समानधर्मा, यथा ज्ञानमात्मनः, तथाहि–अमूर्त्त आत्मा,ततस्तद्गुणो ज्ञानमप्यमूर्त्तमेव, एवं शब्दोऽपि यद्याकाशगुणस्तर्ह्याकाशस्यामूर्त्तत्वाच्छब्दस्यापि तद्गुणत्वेनामूर्त्तता भवेत्, न चासौ युक्तिसङ्गता, तल्लक्षणायोगात्, मूर्त्तिविरहो ह्यमूर्त्तताया लक्षणं, न च शब्दानां मूर्त्तिविरहः, स्पर्शवत्त्वात्, तथाहि–स्पर्शवन्तः शब्दाः, तत्सम्पर्कादुपघातदर्शनाल्लोष्टवत्, न चायमसिद्धो हेतुः, यतो दृश्यते सद्योजातबालकानां कर्णदेशाभ्यर्णीकृतगाढास्फालितझल्लरीझात्कारश्रवणतः श्रवणस्फोटो, न चेत्थमुपघातकृत्त्वमस्पर्शवत्त्वे सम्भवति, यथा विहायसः, ततो विपक्षे गमनासम्भवान्नानैकान्तिकोऽपि, अतश्च स्पर्शवन्तः शब्दाः, तैरभिघाते गिरिगह्वरभित्त्यादिषु शब्दोत्थानाल्लोष्टवत्, अयमपि हेतुरुभयोरपि सिद्धः, तथाहि–श्रूयन्ते तीव्रप्रयत्नोच्चारितशब्दाभिघाते गिरिगह्वरादिषु प्रतिशब्दाः प्रतिदिक्, ततः स्पर्शवत्त्वान्मूर्त्ता एव शब्दाः, 'रूपस्पर्शादिसन्निवेशो मूर्त्ति'रिति वचनप्रामाण्यात्, ततः कथमिवाकाशगुणत्वं शब्दानामुपपत्तिमत्? । अपि च–तदाकाशमेकमनेकं वा?, यद्येकं तर्हि योजनलक्षादपि श्रूयते, आकाशस्यैकत्वेन शब्दस्य च तद्गुणतया दूरासन्नादिभेदाभावात्, अथानेकमेवं सति वदनदेश एव स विद्यते इति कथं भिन्नदेशवर्त्तिभिः श्रोतृभिः श्रूयते?, वदनदेशाकाशगुणतया तस्य श्रोतृगतश्रोत्रेन्द्रियाकाशसम्बन्धाभावात्, अथ च श्रोत्रेन्द्रियाकाशसम्बन्धतया तच्छ्रवणमभ्युपगम्यते, तन्नाकाशगुणत्वाभ्युपगमः शब्दस्य श्रेयान्, नन्वाकाशगुणत्वमन्तरेण शब्दस्यावस्थानमेव नोपपद्यते, अवश्यं हि पदार्थेन स्थितिमता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

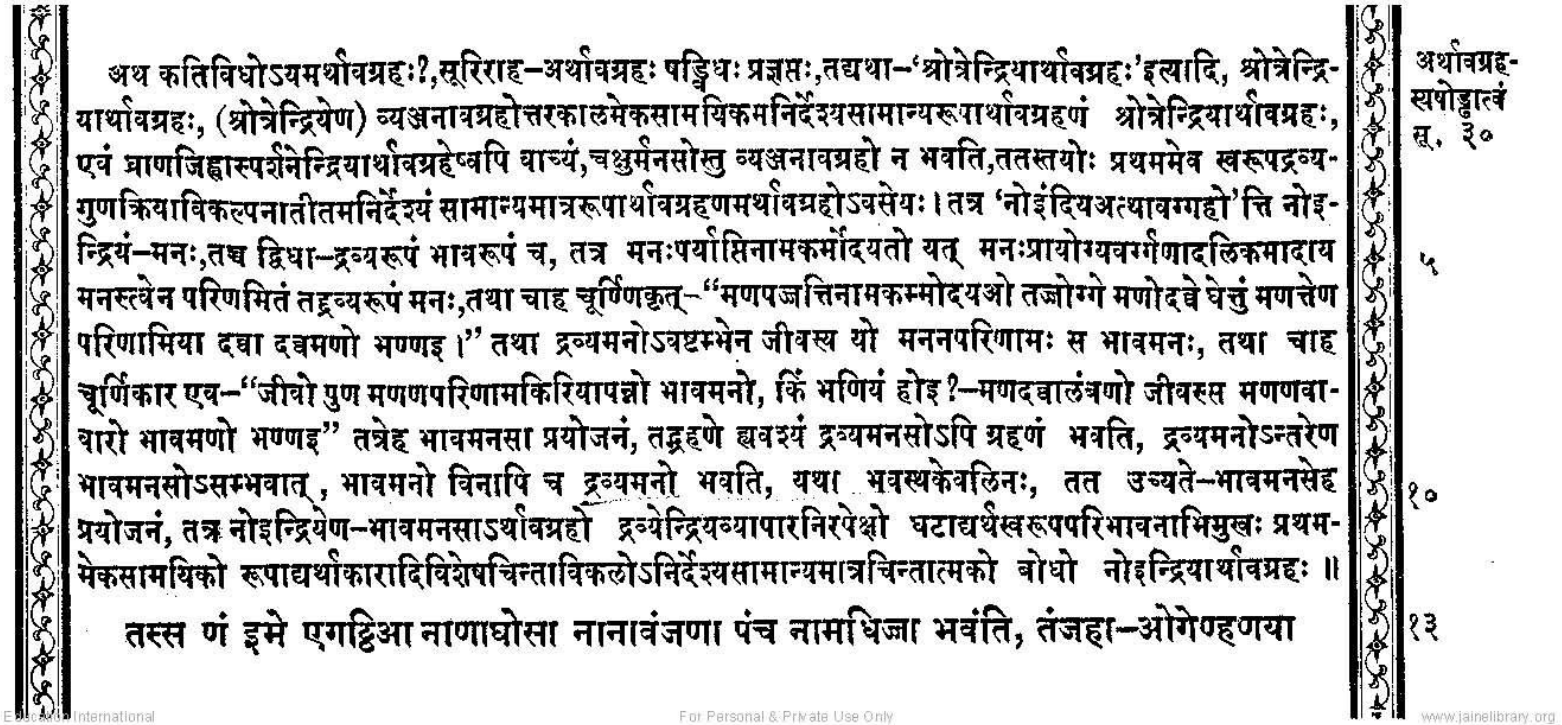
भवितव्यं, तत्र रूपरसस्पर्शगन्धानां पृथिव्यादिमहाभूतचतुष्टयमाश्रयः, शब्दस्य त्वाकाशमिति, तदयुक्तम्, एवं सति पृथिव्यादीनामप्याकाशगुणत्वप्रसक्तेः, तेषामप्याकाशाश्रितत्वात्, न खल्वाकाशमन्तरेण पृथिव्यादीनामप्यन्यदाश्रयः, अगुणत्वात्पृथिव्यादीनामाकाशगुणत्वमनुपपन्नमिति चेत्, न, आकाशाश्रितत्वेन भवन्नीत्या बलादपि तद्गुणत्वप्रसक्तेः, अथ नाश्रयणमात्रं तद्गुणत्वनिबन्धनं किन्तु समवायः, स चास्ति शब्दस्याकाशे न तु पृथिव्यादीनामिति, ननु कोऽयं समवायो नाम?, एकत्र लोलीभावेनावस्थानं यथा पृथिव्यादिरूपाद्योरिति चेत्, न तर्हि शब्दस्याकाशगुणत्वमाकाशेन सहैकत्र लोलीभावेन तस्याप्रतिपत्तेः, अथाऽऽकाशे उपलभ्यमानत्वात्तद्गुणता शब्दस्य, तूलकादेरपि तर्ह्याकाशे उपलभ्यमानत्वात्तद्गुणत्वं प्राप्नोति, अथ तूलकादेः परमार्थतः पृथिव्यादिस्थानमाकाशे तूपलम्भो वायुना सञ्चार्यमाणत्वात्, यद्येवं तर्हि शब्दस्यापि न परमार्थतः स्थानमाकाशं किन्तु श्रोत्रादि, यत्पुनराकाशेऽवस्थानमुपलभ्यते तद्वायुना सञ्चार्यमाणत्वादवसेयं, तथाहि–यतो यतो वायुः सञ्चरति ततस्ततः शब्दोऽपि गच्छति, वातप्रतिकूलशब्दस्याश्रवणात्, उक्तं च—"यथा च प्रेर्यते तूलमाकाशे मातरिश्वना। तथा शब्दोऽपि किं वायोः, प्रतीपं कोऽपि शब्दवित् ॥१॥" तन्नाकाशगुणः शब्दः, किन्तु पुद्गलमय इति स्थितम्।

शब्दस्य द्रव्यत्वम्

॥१७३॥

से किं तं अत्थुग्गहे?, अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-सोइंदिअअत्थुग्गहे चक्खिंदिअअत्थुग्गहे घाणिंदिअअत्थुग्गहे जिब्भिंदिअअत्थुग्गहे फासिंदिअअत्थुग्गहे नोइंदिअअत्थुग्गहे। (सू० ३०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



अथ कतिविधोऽयमर्थावग्रहः?,सूरिराह–अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः,तद्यथा–'श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः'इत्यादि, श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, (श्रोत्रेन्द्रियेण) व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालमेकसामयिकमनिर्देश्यसामान्यरूपार्थावग्रहणं श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, एवं घ्राणजिह्वास्पर्शनेन्द्रियार्थावग्रहेष्वपि वाच्यं,चक्षुर्मनसोस्तु व्यञ्जनावग्रहो न भवति,ततस्तयोः प्रथममेव स्वरूपद्रव्यगुणक्रियाविकल्पनातीतमनिर्देश्यं सामान्यमात्ररूपार्थावग्रहणमर्थावग्रहोऽवसेयः। तत्र 'नोइंदियअत्थावग्गहो'त्ति नोइन्द्रियं–मनः,तच्च द्विधा–द्रव्यरूपं भावरूपं च, तत्र मनःपर्याप्तिनामकर्मोदयतो यत् मनःप्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमितं तद्द्रव्यरूपं मनः,तथा चाह चूर्णिकृत्–"मणपज्जत्तिनामकम्मोदयओ तज्जोग्गे मणोदव्वे घेत्तुं मणत्तेण परिणामिया दव्वा दव्वमणो भण्णइ।" तथा द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणामः स भावमनः, तथा चाह चूर्णिकार एव–"जीवो पुण मणणपरिणामकिरियापन्नो भावमनो, किं भणियं होइ?–मणदव्वालंबणो जीवस्स मणणवावारो भावमणो भण्णइ" तत्रेह भावमनसा प्रयोजनं, तद्ग्रहणे ह्यवश्यं द्रव्यमनसोऽपि ग्रहणं भवति, द्रव्यमनोऽन्तरेण भावमनसोऽसम्भवात्, भावमनो विनापि च द्रव्यमनो भवति, यथा भवस्थकेवलिनः, तत उच्यते–भावमनसेह प्रयोजनं, तत्र नोइन्द्रियेण–भावमनसाऽर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रियव्यापारनिरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभावनाभिमुखः प्रथममेकसामयिको रूपाद्यर्थाकारादिविशेषचिन्ताविकलोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रचिन्तात्मको बोधो नोइन्द्रियार्थावग्रहः ॥

तस्स णं इमे एगट्ठिआ नाणाघोसा नानावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तंजहा–ओगेण्हणया

अर्थावग्रहस्योद्भवत्वं सू. ३०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवधारणया सवणया अवलंबणया मेहा । सेत्तं उग्गहे (सू० ३१)

'तस्य' सामान्येनावग्रहस्य 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे 'अमूनि' वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि 'नानाघोसाणि'त्ति घोषाः– उदात्तादयः स्वरविशेषाः, आह च चूर्णिकृत्–"घोसा उदात्तादओ सरविसेसा" नाना घोषा येषां तानि नानाघोषाणि, तथा नाना व्यञ्जनानि–कादीनि येषां तानि नानाव्यञ्जनानि, पञ्च नामान्येव नामधेयानि भवन्ति, 'तद्यथे'ति तेषामेवोपदर्शने, 'ओगिण्हणया' इत्यादि, यदा पुनरवग्रहविशेषानपेक्ष्यामूनि पञ्चापि नामधेयानि चिन्त्यन्ते तदा परस्परं भिन्नार्थानि वेदितव्यानि, तथाहि—इहावग्रहस्त्रिधा, तद्यथा–व्यञ्जनावग्रहः सामान्यार्थावग्रहो विशेषसामान्यार्थावग्रहश्च, तत्र विशेषसामान्यार्थावग्रह औपचारिकः,स चानन्तरमेवाग्रे दर्शयिष्यते, तत्र 'ओगिण्हणय'त्ति अवगृह्यतेऽनेनेति अवग्रहणं, करणेऽनट्, व्यञ्जनावग्रहप्रथमसमयप्रविष्टशब्दादिपुद्गलादानपरिणामः, तद्भावोऽवग्रहणता । तथा 'उवधारणय'त्ति धार्यतेऽनेनेति धारणं, उप-सामीप्येन धारणं उपधारणं-व्यञ्जनावग्रहेऽपि द्वितीयादिसमयेषु प्रतिसमयमपूर्वापूर्वशब्दादिपुद्गलादानपुरस्सरं प्राक्तनप्राक्तनसमयगृहीतशब्दादिपुद्गलधारणपरिणामः तद्भाव उपधारणता,तथा 'सवणय-'त्ति श्रूयतेऽनेनेति श्रवणम्-एकसामयिकः सामान्यार्थावग्रहरूपो बोधपरिणामः तद्भावः श्रवणता, तथा 'अवलंबणय'त्ति अवलम्ब्यते इति अवलम्बनं, 'कृद्बहुल'मिति वचनात्कर्मण्यनट्, विशेषसामान्यार्थावग्रहः, कथं विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमिति ? चेत्, उच्यते,–इह शब्दोऽयमित्यपि ज्ञानं विशेषावगमनरूपत्वादवायज्ञानं, तथाहि–शब्दोऽयं

अवग्रहैकार्थिकानि सू० ३१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [११५]

नाशब्दो–रूपादिः इति शब्दस्वरूपावधारणं विशेषावगमः, ततोऽस्मात् यत्पूर्वमनिर्देश्यसामान्यमात्रग्रहणमेकसामयिकं स पारमार्थिकार्थावग्रहः, तत ऊर्द्धं तु यत्किमिदमिति विमर्शनं सा ईहा, तदनन्तरं तु यच्छब्दस्वरूपावधारणं शब्दोऽयमिति तदवायज्ञानं, तत्रापि यदा उत्तरधर्म्मजिज्ञासा भवति—किमयं शब्दः शाङ्खः किं वा शार्ङ्गः ? इति तदा पाश्चात्यं शब्द इति ज्ञानं विशेषावगमापेक्षया सामान्यमात्रालम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते, स च परमार्थतः सामान्यविशेषरूपार्थालम्बन इति विशेषसामान्यार्थावग्रह इत्युच्यते, इदमेव च शब्द इति ज्ञानमवलम्ब्य किमयं शाङ्ख :? किं वा शार्ङ्गः ? इति ज्ञानमुदयते, ततो विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बन इत्युक्तः, ततोऽवलम्बनस्य भावोऽवलम्बनता, ततोऽप्यूर्द्धं किमयं शाङ्खः ? किं वा शार्ङ्ग इतीहित्वा यच्छाङ्ख एव शार्ङ्ग एव वेति ज्ञानं तदवायज्ञानं, तदपि च किमयं शाङ्खोऽपि शब्दः मन्द्रः किं वा तार? इत्युत्तरविशेषजिज्ञासायां पाश्चात्यं पाश्चात्यमवायज्ञानमुत्तरोत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यार्थावलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते, किं मन्द्रः ? किं वा तारः ? इतीह मन्द्र एवायं तार एवायमित्यवायः, एवमुत्तरोत्तरविशेषजिज्ञासायां पाश्चात्यं पाश्चात्यमवायज्ञानमुत्तरोत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यार्थावलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते, यदा उत्तरधर्मजिज्ञासा न भवति तदा तदंत्यं विशेषज्ञानमवायज्ञानमेव, नावग्रह इत्युपचर्यते, उपचारनिबन्धनाभावात्, उत्तरविशेषाकाङ्क्षाया अपगमात्, ततस्तदनन्तरमविच्युतिरूपा धारणा प्रवर्त्तते, वासनास्मृती तु सर्वेष्वपि विशेषावगमेषु द्रष्टव्ये, तथा चाह प्रवचनोपनिषद्वेदी भगवान् जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः–

अवग्रहैकार्थिकानि सू. ३१

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [११५]

"सामन्नमेत्तगहणं निच्छयओ समयमोग्गहो पढमो । तत्तोऽणंतरमीहियवत्थुविसेसस्स जोऽवाओ ॥ १ ॥ सो पुण-रीहावायाविक्खाओ उग्गहत्ति उवयरिओ । एस विसेसावेक्खा सामन्नं गेण्हए जेण ॥ २ ॥ तत्तोऽणंतरमीहा तओ अवाओ य तविसेसस्स । इह सामन्नविसेसाऽवेक्खा जावंतिमो भेओ ॥३॥ सव्वत्थेहावाया निच्छयओ मोत्तुमाइसा-मन्नं । संववहारत्थं पुण सव्वत्थावग्गहोऽवाओ ॥ ४ ॥ तरतमजोगाभावेऽवाओ चिय धारणा तदंतंमि । सव्वत्थ वासणा पुण भणिया कालंतरसई य ॥ ५ ॥ "त्ति, तथा 'मेह'त्ति मेधा प्रथमं विशेषसामान्यार्थावग्रहमतिरित्योत्तरः सर्वोऽपि विशेषसामान्यार्थावग्रहः ॥ तदेवमुक्तानि पञ्चापि नामधेयानि भिन्नार्थानि, यत्र तु व्यञ्जनावग्रहो न घटते तत्राद्यं भेदद्वयं न द्रष्टव्यं, 'सेत्तं उग्गहो'त्ति निगमनम् ।

से किं तं ईहा ?, २ छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–सोइंदिअईहा चक्खिंदियईहा घाणिंदिअईहा जि-ब्भिंदिअईहा फासिंदिअईहा नोइंदिअईहा, तीसे णं इमे एगट्ठिआ नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तंजहा–आभोगणया मग्गणया गवेसणया चिंता विमंसा, से त्तं ईहा॥ (सू. ३२)

१ सामान्यमात्रग्रहणं निश्चयतः समयमवग्रहः प्रथमः । ततोऽनन्तरमीहितवस्तुविशेषस्य योऽपायः ॥ १ ॥ स पुनरीहापायापेक्षयाऽवग्रह इति उपचरितः । एष विशेषापेक्षया सामान्यं गृह्णाति येन ॥ २ ॥ ततोऽनन्तरमीहा ततोऽपायश्च तद्विशेषस्य । इह सामान्यविशेषापेक्षा यावदन्तिमो भेदः ॥ ३ ॥ सर्वत्रेहापायौ निश्चयतो मुक्त्वाऽऽदिसामान्यम् । संव्यवहारार्थं पुनः सर्वत्रावग्रहोऽपायः ॥४॥ तारतम्ययोगाभावेऽपाय एव धारणा तदन्ते । सर्वत्र वासना पुनर्भणिता कालान्तरस्मृतिश्च ॥५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ केयमीहा ?, ईहा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियेहा इत्यादि, तत्र श्रोत्रेन्द्रियेणेहा श्रोत्रेन्द्रियेहा, श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहमधिकृत्य या प्रवृत्ता ईहा सा श्रोत्रेन्द्रियेहा इत्यर्थः, एवं शेषा अपि साधनीयाः। 'तीसे ण'मित्यादि सुगमं, नवरं सामान्यत एकार्थिकानि, विशेषचिन्तायां पुनर्भिन्नार्थानि, तत्र 'आभोगणय'त्ति आभोग्यतेऽनेनेति आभोगनं–अर्थावग्रहसमनन्तरमेव सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमालोचनं तस्य भाव आभोगनता, तथा मार्ग्यतेऽनेनेति मार्गणं–सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव तदूर्द्धमन्वयव्यतिरेकधर्मान्वेषणं तद्भावो मार्गणता, तथा–गवेष्यतेऽनेनेति गवेषणं-तत ऊर्द्धं सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मत्यागतोऽन्वयधर्माध्यासालोचनं तद्भावो गवेषणता, ततो मुहुर्मुहुः क्षयोपशमविशेषतः स्वधर्मानुगतसद्भूतार्थविशेषचिन्तनं चिन्ता, तत ऊर्द्धं क्षयोपशमविशेषात्स्पष्टतरं सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्वयधर्मापरित्यागतोऽन्वयधर्मविमर्शनं विमर्शः। 'से त्तं ईहे'ति निगमनम्।

ईहाया भेदाएकार्थिकानि च सू. ३३

से किं तं अवाए ?, अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–सोइंदिअअवाए चक्खिंदिअअवाए घाणिंदिअअवाए जिब्भिंदिअअवाए फासिंदिअअवाए नोइंदिअअवाए। तस्स णं इमे एगट्ठिआ नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवन्ति, तंजहा–आउट्टणया पच्चाउट्टणया अवाए बुद्धी विण्णाणे, से तं अवाए ॥ (सू. ३३)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र श्रोत्रेन्द्रियेणावायः श्रोत्रेन्द्रियावायः, श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तमर्थावग्रहमधिकृत्य यः प्रवृत्तोऽपायः स श्रोत्रेन्द्रियापाय इत्यर्थः, एवं शेषा अपि भावनीयाः। 'तस्स ण'मित्यादि प्राग्वत्, अत्रापि सामान्यत एकार्थिकानि, विशेषचिन्तायां पुनर्नानार्थानि, तत्र आवर्त्तते–ईहातो निवृत्यापायभावं प्रत्यभिमुखो वर्त्तते येन बोधपरिणामेन स आवर्त्तनस्तद्भाव आवर्त्तनता, तथा आवर्त्तनं प्रति ये गता अर्थविशेषेषूत्तरोत्तरेषु विवक्षिता अपायप्रत्यासन्नतरा बोधविशेषास्ते प्रत्यावर्त्तनाः तद्भावः प्रत्यावर्त्तनता, तथा अपायो–निश्चयः सर्वथा ईहाभावाद्विनिवृत्तस्यावधारणा–अवधारितमर्थमवगच्छतो यो बोधविशेषः सोऽपाय इत्यर्थः, ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात्स्थिरतया पुनः, पुनः स्पष्टतरमवबुध्यमानस्य या बोधपरिणतिः सा बुद्धिः, तथा विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं–क्षयोपशमविशेषादेवावधारितार्थविषय एव तीव्रतरधारणाहेतुर्बोधविशेषः, 'सेत्तं अवाए' इति निगमनम्।

से किं तं धारणा ?, धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–सोइंदिअधारणा चक्खिंदिअधारणा घाणिंदिअधारणा जिब्भिंदिअधारणा फासिंदिअधारणा नोइंदिअधारणा। तीसे णं इमे एगट्ठिआ नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तंजहा–धारणा साधारणा ठवणा पइट्ठा कोट्ठे, से तं धारणा ॥ (सू. ३४)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४]

दीप अनुक्रम [११७]

'से किं त'मित्यादि सुगमं यावद्धारणा इत्यादि, अत्रापि सामान्यत एकार्थानि विशेषार्थचिन्तायां पुनर्भिन्नार्थानि, तत्रापायानन्तरमवगतस्यार्थस्याविच्युत्याऽन्तर्मुहूर्त्तकालं यावद्धरणं धारणा, ततस्तमेवार्थमुपयोगात् च्युतं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तादुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयकालात् परतो यत्स्मरणं सा धारणा, तथा स्थापनं स्थापना, अपायावधारितस्यार्थस्य हृदि स्थापनं, वासनेत्यर्थः, अन्ये तु धारणास्थापनयोर्व्यत्यासेन स्वरूपमाचक्षते, तथा प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा–अपायावधारितस्यैवार्थस्य हृदि प्रभेदेन प्रतिष्ठापनमित्यर्थः, कोष्ठ इव कोष्ठः अविनष्टसूत्रार्थधारणमित्यर्थः । 'सेत्तं धारणा' सेयं धारणा ॥ सम्प्रति अवग्रहादेः कालप्रमाणप्रतिपादनार्थमाह— धारणैकार्थिकानि अवग्रहादिकालमानं च सू. ३५

उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिआ ईहा,अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ॥ (सू. ३५)॥ एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहिअनाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य। से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं?,पडिबोहगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा अमुगा अमुगत्ति, तत्थ चोअगे पन्नवगं एवं वयासी–किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]

असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति?, एवं वदंतं चोअगं पण्णवए एवं वयासी-नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, से तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं । से किं तं मल्लग-दिट्ठंतेणं?, मल्लगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा, से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरिअं होइ ताहे हुंति करेइ, नो चेव णं जाणइ केवि एस सद्दाइ?, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ णं धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]

अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ-अमुगे एस सद्दे, तओ णं अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केई पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा, तेणं रूवत्ति उग्गहिए नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ-अमुगे एस रूवेत्ति, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं। से जहानामए केई पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घाइज्जा, तेणं गंधत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस गंधेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केई पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा, तेणं रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ-अमुगे एस रसे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पवि-

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

५

१०

११

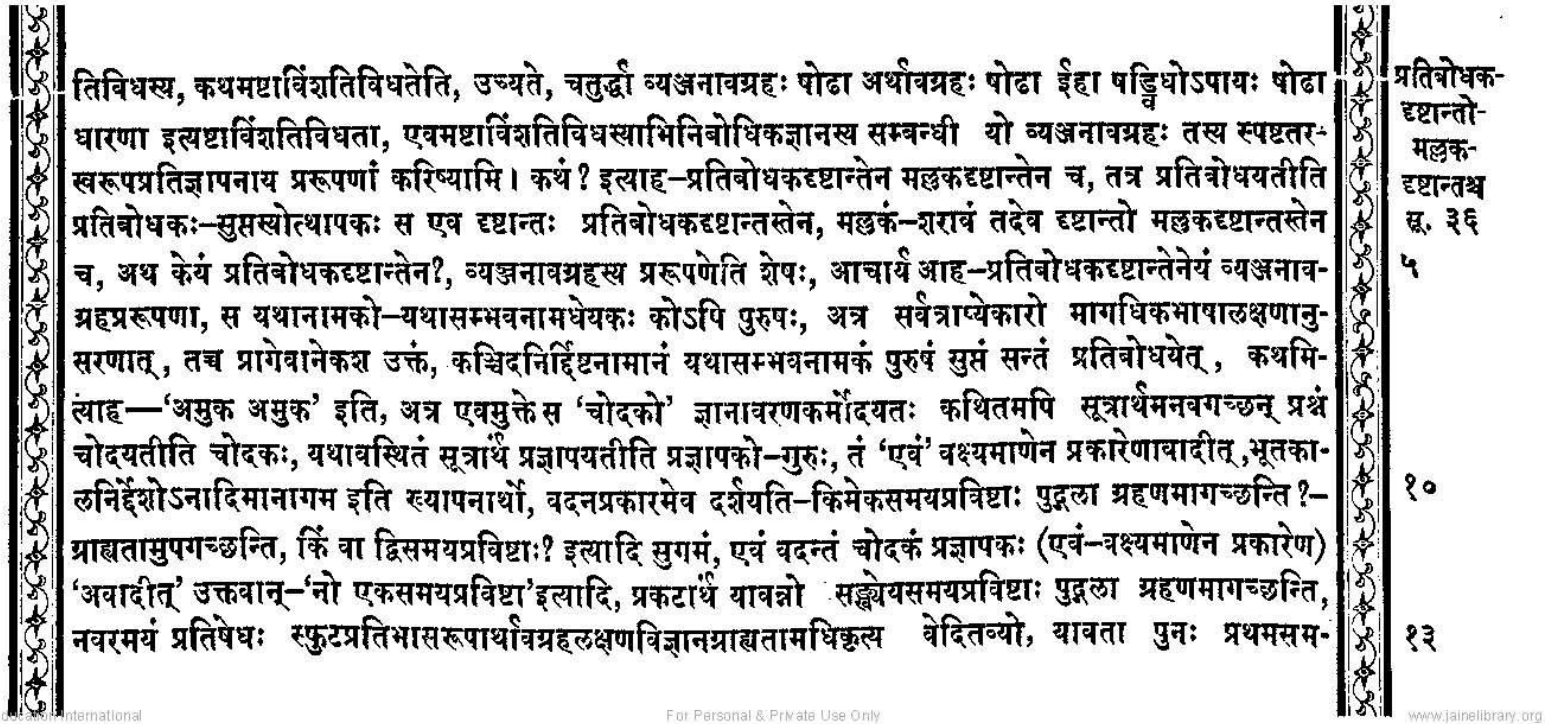
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं। से जहानामए केई पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा, तेणं फासेत्ति उग्गहिए,नो चेव णं जाणइ के वेस फासओत्ति,तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ-अमुगे एस फासे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केई पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा, तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सुमिणेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ-अमुगे एस सुमिणे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं॥ (सू. ३६)

अवग्रहः–अर्थावग्रह एकसामयिकः, आन्तर्मुहूर्त्तिकी ईहा, आन्तर्मुहूर्तिकोऽवायः, धारणा सङ्ख्येयं वा कालमसङ्ख्येयं वा,तत्र सङ्ख्येयवर्षायुषां सङ्ख्येयकालमसङ्ख्येयवर्षायुषामसङ्ख्येयं कालं,सा च धारणा सङ्ख्येयमसङ्ख्येयं वा कालं यावद्वासनारूपा द्रष्टव्या,अविच्युतिस्मृत्योरजघन्योत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात्,यत उक्तं भाष्यकृता–"अत्थोग्गहो जहन्नं समओ सेसोग्गहादओ वीसुं। अंतोमुहुत्तमेगं तु वासणा धारणं मोत्तुं॥१॥"एवं 'अट्ठावीसे'त्यादि, 'एवम्'उक्तेन प्रकारेणाष्टाविंश-

१ अर्थावग्रहो जघन्यतः समयः शेषा अवग्रहादयो विष्वक् । अन्तर्मुहूर्तमेकमेव वासनां धारणां मुक्त्वा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तिविधस्य, कथमष्टाविंशतिविधतेति, उच्यते, चतुर्द्धा व्यञ्जनावग्रहः षोढा अर्थावग्रहः षोढा ईहा षड्विधोऽपायः षोढा धारणा इत्यष्टाविंशतिविधता, एवमष्टाविंशतिविधस्याभिनिबोधिकज्ञानस्य सम्बन्धी यो व्यञ्जनावग्रहः तस्य स्पष्टतर-स्वरूपप्रतिज्ञापनाय प्ररूपणां करिष्यामि। कथं? इत्याह–प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च, तत्र प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः–सुप्तस्योत्थापकः स एव दृष्टान्तः प्रतिबोधकदृष्टान्तस्तेन, मल्लकं–शरावं तदेव दृष्टान्तो मल्लकदृष्टान्तस्तेन च, अथ केयं प्रतिबोधकदृष्टान्तेन?, व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणेति शेषः, आचार्य आह–प्रतिबोधकदृष्टान्तेनेयं व्यञ्जनाव-ग्रहप्ररूपणा, स यथानामको–यथासम्भवनामधेयकः कोऽपि पुरुषः, अत्र सर्वत्राप्येकारो मागधिकभाषालक्षणानु-सरणात्, तच्च प्रागेवानेकश उक्तं, कञ्चिदनिर्दिष्टनामानं यथासम्भवनामकं पुरुषं सुप्तं सन्तं प्रतिबोधयेत्, कथमि-त्याह—'अमुक अमुक' इति, अत्र एवमुक्ते स 'चोदको' ज्ञानावरणकर्मोदयतः कथितमपि सूत्रार्थमनवगच्छन् प्रश्नं चोदयतीति चोदकः, यथावस्थितं सूत्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापको–गुरुः, तं 'एवं' वक्ष्यमाणेन प्रकारेणावादीत्,भूतका-लनिर्देशोऽनादिमानागम इति ख्यापनार्थो, वदनप्रकारमेव दर्शयति–किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति?–ग्राह्यतामुपगच्छन्ति, किं वा द्विसमयप्रविष्टाः? इत्यादि सुगमं, एवं वदन्तं चोदकं प्रज्ञापकः (एवं–वक्ष्यमाणेन प्रकारेण) 'अवादीत्' उक्तवान्–'नो एकसमयप्रविष्टा'इत्यादि, प्रकटार्थं यावन्नो सङ्ख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नवरमयं प्रतिषेधः स्फुटप्रतिभासरूपार्थावग्रहलक्षणविज्ञानग्राह्यतामधिकृत्य वेदितव्यो, यावता पुनः प्रथमसम-

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यादप्यारभ्य किञ्चित्किञ्चिदव्यक्तं ग्रहणमागच्छन्तीति प्रतिपत्तव्यं ? 'जं वंजणोग्गहणमिति भणियं विन्नाणं अवत्त'-मिति वचनप्रमाण्यात्, 'असंखेज्जे'त्यादि, आदित आरभ्य प्रतिसमयप्रवेशनेनासङ्ख्येयान् समयान् यावत् ये प्रविष्टा-स्तेऽसङ्ख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति–अर्थावग्रहरूपविज्ञानग्राह्यतामुपयान्ति, असङ्ख्येयसमयप्रविष्टेषु तेषु चरमसमये प्रविष्टाः पुद्गला अर्थावग्रहविज्ञानमुपजनयन्तीत्यर्थः, अर्थावग्रहविज्ञानाच्च प्राक् सर्वोऽपि व्यञ्जनावग्रहः, एषा प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणा । व्यञ्जनावग्रहस्य च कालो जघन्यत आवलिकाऽसङ्ख्येयभागः, उत्कर्षतः सङ्ख्येयावलिकाः, ता अपि सङ्ख्येया आवलिका आनपानपृथक्त्वकालमाना वेदितव्याः, यत उक्तम्— "वंजणवग्गहकालो आवलियासंखभागतुल्लो उ । थोवा उक्कोसा पुण आणापाणूपुहुत्तंति ॥ १ ॥" 'सेत्त'मित्यादि निगमनं, सेयं प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणा ।

'से किं त'मित्यादि, अथ केयं मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणा ?, सोऽनिर्दिष्टस्वरूपो यथानामकः कश्चि-त्पुरुषः 'आपाकशिरसः' आपाकः प्रतीतः तस्य शिरसो मल्लकं–शरावं गृहीत्वा, इदं हि किल रूक्षं भवति ततोऽस्यो-पादानं, तत्र मल्लके एकमुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, तत्रैव तद्भावपरिणतिमापन्न इत्यर्थः, ततो द्वितीयं प्रक्षिपेत्सोऽपि

१ यद्व्यञ्जनावग्रहणमिति भणितं विज्ञानमव्यक्तं. २ व्यञ्जनावग्रहकाल आवलिकासंख्यभागतुल्य एव । स्तोकात् उत्कृष्टात्पुनरानप्राणपृथक्त्वमिति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विनष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यस्तन्मल्लकं 'रावेहिइ'इति देश्योऽयं शब्दः,आर्द्रतां नेष्यति, शेषं सुगमं 'यावदेव'मित्यादि, एवमेव उदकबिन्दुभिरिव निरन्तरं प्रक्षिप्यमाणैः प्रक्षिप्यमाणैरनन्तैः शब्दरूपतापरिणतैः पुद्गलैर्यदा तद्व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा हुङ्कारं मुञ्चति–तदा तान्पुद्गलाननिर्दिश्यरूपतया परिच्छिनत्तीति भावार्थः। अत्र व्यञ्जनशब्देनोपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतं वा द्रव्यं तयोः सम्बन्धो वा गृह्यते,तेन न कश्चिद्विरोधः, आह च— भाष्यकृत्–"तोएण मल्लगंपिव वंजणमापूरियंति जं भणियं। तं दव्वमिंदियं वा तस्संबंधो व न विरोहो ॥ १ ॥" तत्र यदा व्यञ्जनं उपकरणेन्द्रियमधिक्रियते तदा पूरितमिति कोऽर्थः?–परिपूर्णं भृतं व्याप्तमित्यर्थः, यदा व्यञ्जनं द्रव्यमभिगृह्यते तदा पूरितमिति–प्रभूतीकृतं स्वप्रमाणमानीतं स्वव्यक्तौ समर्थीकृतमित्यर्थः, यदा तु व्यञ्जनं द्वयोरपि सम्बन्धो गृह्यते तदा पूरितमिति किमुक्तं भवति?–तावत् सम्बन्धोऽभूत् यावति सति ते शब्दादिपुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, आह चूर्णिकृत्–"यदा पुग्गलदव्वा वंजणं तया पूरियंति–पभूया ते पुग्गलदव्वा जाया–सं प्रमाणमानीताः सविसयपडिबोहसमत्था जाया" "इत्यादि, जया उवगरणिंदियं वंजणं तया पूरियंति कहं?, उच्यते, जाहे तेहिं पोग्गलेहिं तं दविंदियं आवृतं भरियं वापितं तया पूरियंति भण्णइ, जया उभयसंबंधो वंजणं तया पूरियंति कहं?, उच्यते, दविंदियस्स पोग्गला अंगीभावमागता, पोग्गला दविंदिये अभिषिक्ता इत्यर्थः, तदा पूरियंति भन्नइ" इति, एवं च यदा पूरितं भवति व्यञ्जनं तदा हुं इति करोति—अर्थावग्रहरूपेण ज्ञानेन तमर्थं गृह्णाति, किं च?, नामजात्यादिक-

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

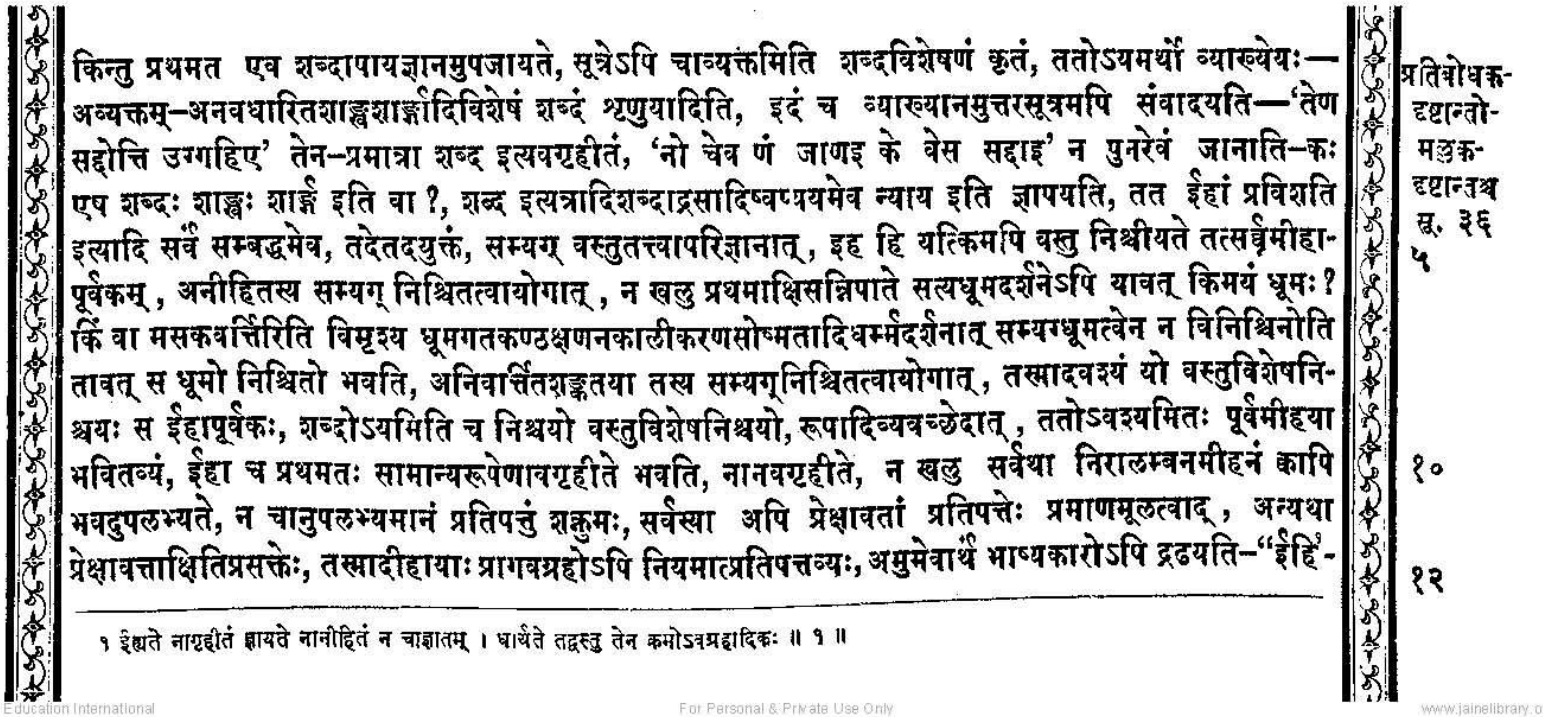
दीप अनुक्रम [११९--१२०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



ल्पनारहितं, तथा चाह–'नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ'त्ति न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादिरर्थ इति, स्वरूपद्रव्यगुणक्रियाविशेषकल्पनारहितमनिर्देश्यं सामान्यमात्रं गृह्णातीत्यर्थः, एवंरूपसामान्यमात्रग्रहणकारणत्वादर्थावग्रहस्य, एतस्माच्च पूर्वः सर्वोऽपि व्यञ्जनावग्रहः, एषा मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणा, हुंकारकरणं चार्थावग्रहबलप्रवर्त्तितं, तत ईहां प्रविशति–किमिदं किमिदमिति विमर्शं कर्त्तुमारभते, 'ततः' ईहानन्तरं क्षयोपशमविशेषभावात् जानाति–अमुक एष शब्दादिरिति, 'ततः' एवंरूपे ज्ञानपरिणामे प्रादुर्भवति सति सोऽपायं प्रविशति, ततोऽपायानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तकालं यावदुपगतं भवति–सामीप्येनात्मनि शब्दादिज्ञानं परिणतं भवति, अविच्युतिरन्तर्मुहूर्त्तकालं यावत्प्रवर्त्तते इत्यर्थः, ततो धारणां प्रविशति, सा च धारणा वासनारूपा द्रष्टव्या, यत आह–'तत्तो ण'मित्यादि, ततो धारणायां प्रवेशात् 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे सङ्ख्येयं वा असङ्ख्येयं वा कालं हृदि धारयति, तत्र सङ्ख्येयवर्षायुषः सङ्ख्येयकालं, असङ्ख्येयवर्षायुषस्त्वसङ्ख्येयं कालम् । अत्राह—सुसमझीकृत्य पूर्वोक्तः प्रकारः सर्वोऽपि घटते, जाग्रतस्तु शब्दश्रवणसमनन्तरमेवावग्रहेहाव्यतिरेकेणावायज्ञानमुपजायते, तथाप्रतिप्राणि संवेदनात्, तन्निषेधार्थमाह—'से जहानामए'इत्यादि, स यथानामकः कश्चिज्जाग्रदपि पुरुषोऽव्यक्तं शब्दं शृणुयात्, अव्यक्तमेव प्रथमं शब्दं शृणोति, अव्यक्तं नाम अनिर्देश्यस्वरूपं नामजात्यादिकल्पनारहितं, अनेनावग्रहमाह, अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियस्य सम्बन्धी व्यञ्जनावग्रहमन्तरेण न भवति ततो व्यञ्जनावग्रहोऽप्युक्तो वेदितव्यः, अत्राह—नन्वेवं क्रमो न कोऽप्युपलभ्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



किन्तु प्रथमत एव शब्दापायज्ञानमुपजायते, सूत्रेऽपि चाव्यक्तमिति शब्दविशेषणं कृतं, ततोऽयमर्थो व्याख्येयः— अव्यक्तम्–अनवधारितशाङ्गशार्ङ्गादिविशेषं शब्दं शृणुयादिति, इदं च व्याख्यानमुत्तरसूत्रमपि संवादयति—'तेण सद्दोत्ति उग्गहिए' तेन–प्रमात्रा शब्द इत्यवगृहीतं, 'नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ' न पुनरेवं जानाति–कः एष शब्दः शाङ्गः शार्ङ्ग इति वा ?, शब्द इत्यत्रादिशब्दाद्रसादिष्वप्ययमेव न्याय इति ज्ञापयति, तत ईहां प्रविशति इत्यादि सर्वं सम्बद्धमेव, तदेतदयुक्तं, सम्यग् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, इह हि यत्किमपि वस्तु निश्चीयते तत्सर्वमीहापूर्वकम्, अनीहितस्य सम्यग् निश्चितत्वायोगात्, न खलु प्रथमाक्षिसन्निपाते सत्यधूमदर्शनेऽपि यावत् किमयं धूमः ? किं वा मसकवर्त्तिरिति विमृश्य धूमगतकण्ठक्षणनकालीकरणसोष्मतादिधर्म्मदर्शनात् सम्यग्धूमत्वेन न विनिश्चिनोति तावत् स धूमो निश्चितो भवति, अनिवर्त्तितशङ्कतया तस्य सम्यग्निश्चितत्वायोगात्, तस्मादवश्यं यो वस्तुविशेषनिश्चयः स ईहापूर्वकः, शब्दोऽयमिति च निश्चयो वस्तुविशेषनिश्चयो, रूपादिव्यवच्छेदात्, ततोऽवश्यमितः पूर्वमीहया भवितव्यं, ईहा च प्रथमतः सामान्यरूपेणावगृहीते भवति, नानवगृहीते, न खलु सर्वथा निरालम्बनमीहनं क्वापि भवदुपलभ्यते, न चानुपलभ्यमानं प्रतिपत्तुं शक्नुमः, सर्वस्या अपि प्रेक्षावतां प्रतिपत्तेः प्रमाणमूलत्वाद्, अन्यथा प्रेक्षावत्ताक्षितिप्रसक्तेः, तस्मादीहायाः प्रागवग्रहोऽपि नियमात्प्रतिपत्तव्यः, अमुमेवार्थं भाष्यकारोऽपि द्रढयति–"ईहि'-

१ ईह्यते नागृहीतं ज्ञायते नानीहितं न चाज्ञातम् । धार्यते तद्वस्तु तेन क्रमोऽवग्रहादिकः ॥ १ ॥

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ नागहियं नजइ नानीहियं न यानायं । धारिजइ तं वत्थुं तेण कमो उग्गहाईओ ॥ १ ॥" अवग्रहश्च शब्दोऽयमिति ज्ञानात्पूर्वं प्रवर्त्तमानोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रग्रहणरूप एवोपपद्यते, नान्यः, अत एवोक्तं सूत्रकृता–'अव्यक्तं शब्दं शृणुयादि'ति, स हि परमार्थतः शब्द एव, ततः प्रज्ञापकस्तं शब्दमनूद्य तद्विशेषणमाचष्टे—अव्यक्तमिति, तं शब्दमव्यक्तं शृणोति, किमुक्तं भवति?—शब्दव्यक्त्यापि व्यक्तं न शृणोति, किन्तु सामान्यमात्रमनिर्देश्यं गृह्णातीत्यर्थः, यदपि चोक्तं—तेन प्रमात्रा शब्द इत्यवगृहीतमिति, तत्र शब्द इति प्रतिपादयति प्रज्ञापकः सूत्रकारो, न पुनः तेन प्रमात्रा शब्द इति अवगृह्यते, शब्द इति ज्ञानस्यापायरूपत्वात्, तथाहि—शब्दोऽयमिति, किमुक्तं भवति?—न शब्दाभावो, न च रूपादिः, किन्तु शब्द एवायमिति, ततो विशेषनिश्चयरूपत्वादयमवगमोऽपायरूप एव, नावग्रहरूपः, अथ च अवग्रहप्रतिपादनार्थमिदमुच्यमानं वर्त्तते ततः शब्द इति प्रज्ञापकः सूत्रकारो वदति, न पुनस्तेन प्रमात्रा शब्द इत्यवगृह्यते इति स्थितं, तथा चाह सूत्रकृत्—'नो चेव ण' मित्यादि, न पुनरेवं जानाति–क एष शब्दादिरर्थ इति, शब्दादिरूपतया तमर्थं न जानातीति भावार्थः, अनिर्देश्यसामान्यमात्रप्रतिभासात्मकत्वादर्थावग्रहस्य, अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियघ्राणेन्द्रियादीनां व्यञ्जनावग्रहपूर्वक इति पूर्वं व्यञ्जनावग्रहोऽपि द्रष्टव्यः, तदेवं सर्वत्राप्यवग्रहेहापूर्वमवायज्ञानमुपजायते, केवलमभ्यासदशामापन्नस्य शीघ्रं शीघ्रतरमवग्रहादयः प्रवर्त्तन्ते इति कालसौक्ष्म्यात्ते स्पष्टं न संवेद्यन्ते इति स्थितं। तत ईहां प्रविशति, इह केचिदीहां संशयमात्रं मन्यन्ते, तदयुक्तं, संशयो हि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]

नामाज्ञानमिति, ज्ञानांशरूपा चेहा, ततः सा कथमज्ञानरूपा भवितुमर्हति ?, नन्वीहापि किमयं शाङ्खः किंवा शार्ङ्गः ? इत्येवंरूपतया प्रवर्त्तते, संशयोऽपि चैवमेव, ततः कोऽनयोः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, इह यत् ज्ञानं शाङ्खशार्ङ्गादिविशेषाननेकानालम्बते न वासद्भूतं विशेषमपासितुं शक्नोति, किन्तु सर्वात्मना शयानमिव वर्त्तते–कुण्ठीभूतं तिष्ठतीत्यर्थः, तदसद्भूतविशेषापर्युदासपरिकुण्ठितं संशयज्ञानमुच्यते, यत्पुनः सद्भूतार्थविशेषविषये हेतूपपत्तिव्यापारतया सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखमसद्भूतविशेषत्यागाभिमुखं च तदीहा, आह च भाष्यकृत्—"जंमणेगत्थालंबणमपज्जुदासपरिकुंठियं चित्तं । सयइव सव्वप्पणओ तं संसयरूवमन्नाणं ॥ १ ॥ जं पुण सयत्थहेऊववत्तिवावारतप्परममोहं । भूयाभूयविसेसादाणचायाभिमुहमीहा ॥ २ ॥" इह यदि वस्तु सुबोधं भवति विशिष्टश्च मतिज्ञानावरणक्षयोपशमो वर्त्तते ततोऽन्तर्मुहूर्त्तकालेन नियमात्तद्वस्तु निश्चिनोति, यदि पुनर्वस्तु दुर्बोधं न च तथाविधो विशिष्टो मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्तत ईहोपयोगादच्युतः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तकालमीहते, एवमीहोपयोगाविच्छेदेन प्रभूतान्यन्तर्मुहूर्त्तानि यावदीहते, तत ईहानन्तरं जानाति–अमुक एषोऽर्थः शब्द इति, इदं च ज्ञानमवायरूपं, ततोऽस्मिन् ज्ञाने प्रादुर्भवति 'ण'मिति वाक्यालङ्कारेऽपायं प्रविशति, ततः 'से' तस्य उपगतम्–अविच्युत्या सामीप्येनात्मनि परिणतं

प्रति वो दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टनतश्च सू. ३६

५

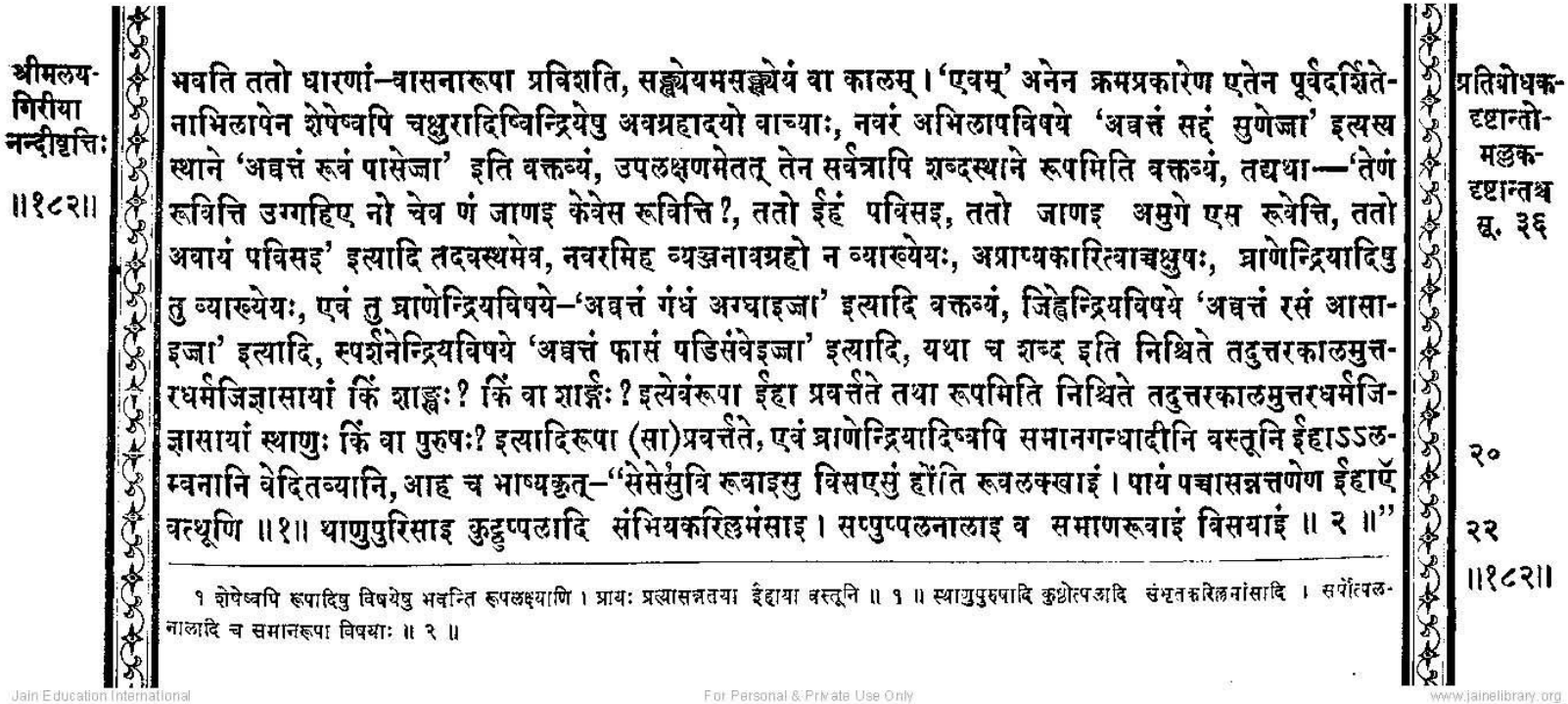
१०

१ यदनेकार्थालम्बनमपर्युदासपरिकुण्ठितं चित्तम् । शेत इव सर्वात्मना तत् संशयरूपमज्ञानम् ॥ १ ॥ यत्पुनः सदर्थहेतूपपत्तिव्यापारतत्परममोघम् । भूताभूतविशेषादानत्यागाभिमुखमीहा ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१८२॥

भवति ततो धारणां–वासनारूपा प्रविशति, सङ्ख्येयमसङ्ख्येयं वा कालम्। 'एवम्' अनेन क्रमप्रकारेण एतेन पूर्वदर्शितेनाभिलापेन शेषेष्वपि चक्षुरादिष्विन्द्रियेषु अवग्रहादयो वाच्याः, नवरं अभिलापविषये 'अवत्तं सद्दं सुणेज्जा' इत्यस्य स्थाने 'अवत्तं रूवं पासेज्जा' इति वक्तव्यं, उपलक्षणमेतत् तेन सर्वत्रापि शब्दस्थाने रूपमिति वक्तव्यं, तद्यथा—'तेणं रूवित्ति उग्गहिए नो चेव णं जाणइ केवेस रूवित्ति?, ततो ईहं पविसइ, ततो जाणइ अमुगे एस रूवेत्ति, ततो अवायं पविसइ' इत्यादि तदवस्थमेव, नवरमिह व्यञ्जनावग्रहो न व्याख्येयः, अप्राप्यकारित्वाच्चक्षुषः, घ्राणेन्द्रियादिषु तु व्याख्येयः, एवं तु घ्राणेन्द्रियविषये–'अवत्तं गंधं अग्घाइज्जा' इत्यादि वक्तव्यं, जिह्वेन्द्रियविषये 'अवत्तं रसं आसाइज्जा' इत्यादि, स्पर्शनेन्द्रियविषये 'अवत्तं फासं पडिसंवेइज्जा' इत्यादि, यथा च शब्द इति निश्चिते तदुत्तरकालमुत्तरधर्मजिज्ञासायां किं शाङ्गः? किं वा शार्ङ्गः? इत्येवंरूपा ईहा प्रवर्त्तते तथा रूपमिति निश्चिते तदुत्तरकालमुत्तरधर्मजिज्ञासायां स्थाणुः किं वा पुरुषः? इत्यादिरूपा (सा)प्रवर्त्तते, एवं घ्राणेन्द्रियादिष्वपि समानगन्धादीनि वस्तूनि ईहाऽऽलम्बनानि वेदितव्यानि, आह च भाष्यकृत्–"सेसेसुवि रूवाइसु विसएसुं होंति रूवलक्खाइं। पायं पचासन्नत्तणेण ईहाए वत्थूणि ॥१॥ थाणुपुरिसाइ कुट्ठुप्पलादि संभियकरिल्लमंसाइ। सप्पुप्पलनालाइ व समाणरूवाइं विसयाइं ॥ २ ॥"

१ शेषेष्वपि रूपादिषु विषयेषु भवन्ति रूपलक्ष्याणि। प्रायः प्रत्यासन्नतया ईहाया वस्तूनि ॥ १ ॥ स्थाणुपुरुषादि कुष्ठोत्पलादि संभृतकरिल्लमांसादि। सर्पोत्पलनालादि च समानरूपा विषयाः ॥ २ ॥

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

२०

२२

॥१८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]

'से जहानामए' इत्यादि,स यथानामकः कोऽपि पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं प्रतिसंवेदयेत् , अव्यक्तं नाम सकलविशेषविकलमनिर्देश्यमितियावत् स्वप्नमिति प्रज्ञापकः सूत्रकारो वदति, स तु प्रतिपत्ता स्वप्नादिव्यक्तिविकलं किञ्चिदनिर्देश्यमेव तदानीं गृह्णाति, तथाऽनेन प्रतिपन्ना 'सुविणोत्ति उग्गहिए'त्ति स्वप्नमिति अवगृहीतं, अत्रापि स्वप्न इति प्रज्ञापको वदति, स तु प्रतिपत्ता अशेषविशेषवियुक्तमेवावगृहीतवान् , तथा चाह–न पुनरेवं जानाति–क एष स्वप्न इति ?, स्वप्न इत्यपि तमर्थं न जानातीति भावः, तत ईहां प्रविशतीत्यादि प्राग्वत् , एवं स्वप्नमधिकृत्य नोइन्द्रियस्यार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः। अनेन चोल्लेखेनान्यत्रापि विषये वेदितव्याः,तदेवं मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहप्ररूपणां कुर्वता प्रसङ्गतोऽष्टाविंशतिसङ्ख्या अपि मतिज्ञानस्य भेदाः सप्रपञ्चमुक्ताः,सम्प्रति मल्लकदृष्टान्तमुपसंहरति–'सेत्तं मल्लगदिट्ठंतेणं' एवं मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणा। एते चावग्रहादयोऽष्टाविंशतिभेदाः प्रत्येकं बह्वादिभिः सेतरैः सर्वसङ्ख्यया द्वादशसङ्ख्यैर्भेदैर्भिद्यमाना यदा विवक्ष्यन्ते तदा षट्त्रिंशदधिकं भेदानां शतत्रयं भवति, तत्र बह्वादयः शब्दमधिकृत्य भाव्यन्ते–शङ्खपटहादिनानाशब्दसमूहं पृथगेकैकं यदाऽवगृह्णाति तथा बह्ववग्रहः, यदा त्वेकमेव कञ्चिच्छब्दमवगृह्णाति तदाऽबह्ववग्रहः, तथा शङ्खपटहादिनानाशब्दसमूहमध्ये एकैकं शब्दमनेकैः पर्यायैः स्निग्धगाम्भीर्यादिभिर्विशिष्टं यथावस्थितं यदाऽवगृह्णाति तदा स बहुविधावग्रहः, यदा त्वेकमनेकं वा शब्दमेकपर्यायविशिष्टमवगृह्णाति तदा सोऽबहुविधावग्रहः, यदा तु अचिरेण जानाति तदा स क्षिप्रावग्रहः, यदा तु चिरेण तदाऽक्षिप्रावग्रहः, तमेव शब्दं स्वरूपेण यदा जानाति न लिङ्गप-

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो· मल्लक-दृष्टान्तश्च सू. ३६

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३५-३६]

दीप अनुक्रम [११९--१२०]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१८३॥

रिग्रहात् तदाऽनिश्रितावग्रहः, लिङ्गपरिग्रहेण त्ववगच्छतो निश्रितावग्रहः, अथवा परधर्मैर्विमिश्रितं यद्ग्रहणं तन्मिश्रितावग्रहः, यत्पुनः परधर्मैरमिश्रितस्य ग्रहणं तदमिश्रितावग्रहः, तथा निश्चितमवगृह्णतो निश्चितावग्रहः, सन्दिग्धमवगृह्णतः सन्दिग्धावग्रहः, सर्वदैव बह्वादिरूपेणावगृह्णतो ध्रुवावग्रहः, कदाचिदेव पुनर्बह्वादिरूपेणावगृह्णतोऽध्रुवावग्रहः, एष च बहुबहुविधादिरूपोऽवग्रहो विशेषसामान्यावग्रहरूपो द्रष्टव्यः, नैश्चयिकस्यावग्रहस्य सकलविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यसामान्यमात्रग्राहिण एकसामयिकस्य बहुविधादिविशेषग्राहकत्वासम्भवात्, बह्वादीनामनन्तरोक्तं व्याख्यानं भाष्यकारोऽपि प्रमाणयति–"नाणासद्दसमूहं बहुविहं सुणेइ भिन्नजातीयं। बहुविहमणेगभूयं एक्केक्कं निद्धमहुराइ ॥१॥ खिप्पमचिरेण तं चिय सरूवओ जमनिस्सियमलिंगं। निच्छियमसंसयं जं धुवमचंतं न उ कयाइ ॥ २ ॥ एत्तो चिय पडिवक्खं साहेज्जा निस्सिए विसेसोऽयं। परधम्मेहिं विमिस्सं मिस्सियमविमिस्सियं इयरं ॥ ३ ॥" यदा पुनरालोकस्य मन्दमन्दतरमन्दतमस्पष्टस्पष्टतरस्पष्टतमत्वादिभेदतो विषयस्याल्पत्वमहत्त्वसन्निकर्षादिभेदतः क्षयोपशमस्य च तारतम्यभेदतो भिद्यमानं मतिज्ञानं चिन्त्यते तदा तदनन्तभेदं प्रतिपत्तव्यम् ॥ सम्प्रति पुनर्द्रव्यादिभेदतश्चतुःप्रकारतामाह—

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ न पासइ, खेत्तओ णं आभिणि-

प्रतिबोधक-दृष्टान्तो-मल्लक दृष्टान्तश्च सू. ३६

२०

॥१८३॥

२५

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(आभिनिबोधिक) मति-ज्ञानस्य द्रव्य आदि चतुर्भेदाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५--८०॥

दीप अनुक्रम [१२१--१२८]

बोहिअनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ न पासइ, कालओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वकालं जाणइ न पासइ, भावओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ न पासइ । उग्गह ईहाऽवाओ य धारणा एव हुंति चत्तारि । आभिणिबोहिय-नाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥ ७५ ॥ अत्थाणं उग्गहणंमि उग्गहो तह विआलणे ईहा । ववसायंमि अवाओ धरणं पुण धारणं बिंति ॥ ७६ ॥ उग्गह इक्कं समयं ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु । कालमसंखं संखं च धारणा होइ नायव्वा ॥७७॥ पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु । गंधं रसं च फासं च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ ७८ ॥ भासासमसेढीओ सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ । वीसेढी पुण सद्दं सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ७९ ॥ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा । सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहिअं ॥ ८० ॥ से तं आभिणिबोहिअनाण-परोक्खं, [से तं मइनाणं] ॥ (सू० ३७)

१ अत्थाणं उग्गहणं च उग्गहं तह वियालणं ईहं । ववसायं च अवायं धरणं पुण धारणं बिंति ॥ १ ॥ इति पाठान्तरापेक्षिणी मूलव्याख्याऽत्र ॥

मतेर्विषयो-भेदाःकालः स्पृष्टतादि

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५-८०॥

दीप अनुक्रम [१२१-१२८]

'तं समासओ' इत्यादि, 'तत्' मतिज्ञानं 'समासतः' सङ्क्षेपेण चतुर्विधं, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, आभिनिबोधिकज्ञानी 'आदेसेणं'ति आदेशः–प्रकारः, स च द्विधा–सामान्यरूपो विशेषरूपश्च, तत्रेह सामान्यरूपो ग्राह्यः, तत आदेशेन–द्रव्यजातिरूपसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि–धर्मास्तिकायादीनि जानाति किञ्चिद्विशेषतोऽपि, यथा धर्म्मास्तिकायो धर्म्मास्तिकायस्य प्रदेशः, तथा धर्म्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भहेतुरमूर्त्तो लोकाकाशप्रमाण इत्यादि, न पश्यति–सर्वात्मना धर्म्मास्तिकायादीन्न पश्यति, घटादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपि, अथवा आदेश इति–सूत्रादेशस्तस्मात्सूत्रादेशात्सर्वद्रव्याणि–धर्म्मास्तिकायादीनि जानाति, न तु साक्षात् सर्वाणि पश्यति, ननु यत्सूत्रादेशतो ज्ञानमुपजायते तच्छ्रुतज्ञानं भवति तस्य शब्दार्थपरिज्ञानरूपत्वादथ च मतिज्ञानमभिधीयमानं वर्त्तते तत्कथमादेशः इति सूत्रादेशो व्याख्यातः?, तदयुक्तं, सम्यग् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, इह हि श्रुतभावितमतेः श्रुतोपलब्धेष्वपि अर्थेषु सूत्रानुसारमन्तरेण येऽवग्रहेहापायादयो बुद्धिविशेषाः प्रादुष्यन्ति ते मतिज्ञानमेव, न श्रुतज्ञानं, सूत्रानुसारनिरपेक्षत्वात्, आह च भाष्यकृत्—"आदेसोत्ति व सुत्तं सुओवलद्धेसु तस्स मइनाणं । पसरइ तब्भावणया विणावि सुत्ताणुसारेणं ॥ १ ॥" एवं क्षेत्रादिष्वपि वाच्यं, नवरं तान् सर्वथा न पश्यति, तत्र क्षेत्रं लोकालोकात्मकं, कालः सर्वाद्धारूपोऽतीतानागतवर्त्तमानरूपो वा, भावाश्च पञ्चसङ्ख्या औदयिकादयः, तथा चाह–

१ आदेश इति वा सूत्रं श्रुतोपलब्धेषु तस्य मतिज्ञानम् । प्रसरति तद्भावनया विनाऽपि सूत्रानुसारेण ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाष्यकृत्—"आएसोत्ति पगारो ओघाएसेण सव्वदव्वाइं । धम्मत्थिकाइआइं जाणइ न उ सव्वभावेणं ॥ १ ॥ खेत्तं लोकालोकं कालं सव्वद्धमहव तिविहं वा । पंचोदइयाईए भावे जं नेयमेवइयं ॥ २ ॥" सम्प्रति सङ्ग्रहगाथां प्रतिपादयति—'उग्गहो' इत्यादि, अवग्रहः–प्राग्निरूपितशब्दार्थस्तथा ईहा अपायश्च, चशब्दः पृथगवग्रहादिस्वरूपस्वातन्त्र्यप्रदर्शनार्थः, अवग्रहादयः परस्परं पर्याया न भवन्तीति भावार्थः, अथवा चशब्दः समुच्चये, तस्य च व्यवहितः प्रयोगो धारणा चेत्येवं द्रष्टव्यः, एवकारः क्रमप्रदर्शनार्थः, 'एवम्' एतेन क्रमेण 'समासेन'सङ्क्षेपेण चत्वारि आभिनिबोधिकज्ञानस्य भिद्यन्ते इति भेदा विकल्पा अंशा इत्यर्थः त एव वस्तूनि भवन्ति, तथाहि—नानवगृहीतमीह्यते नानीहितं निश्चीयते नानिश्चितं धार्यते इति । इदानीमेतेषामवग्रहादीनां स्वरूपं प्रतिपिपादयिषुराह–'अत्थाण'मित्यादि, अर्थानां—रूपादीनामवग्रहणं चशब्दोऽवग्रहणस्य अव्यक्तत्वसामान्यमात्रसामान्यविशेषविषयत्वापेक्षया स्वगतभेदबाहुल्यसूचकः,अवग्रहं ब्रुवते इति योगः, 'तथे'त्यानन्तर्ये विचारणं–पर्यालोचनमर्थानामिति वर्त्तते ईहां ब्रुवते, तथा विविधोऽवसायो व्यवसायो–निर्णयस्तं चार्थानामिति वर्त्तते अपायं ब्रुवते इति संसर्गः, धरणं पुनरर्थानामविच्युतिस्मृतिवासनारूपां धारणां ब्रुवते तीर्थकरगणधराः, अनेन स्वमनीषिकाव्युदासमाह । अन्ये त्वेवं पठन्ति–"अत्थाणं उग्गह-

मतेर्विषयो-भेदाःकालः स्पृष्टतादि

५

१०

१ आदेश इति प्रकारः ओघादेशेन सर्वद्रव्याणि । धर्मास्तिकायिकादीनि जानाति न तु सर्वभावेन ॥ १ ॥ क्षेत्रं लोकालोकं कालं सर्वाद्धामथवा त्रिविधं वा । पञ्चौदयिकादिकान् भावान् यत् ज्ञेयमेतावत् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५--८०॥

दीप अनुक्रम [१२१--१२८]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१८५॥

णंमि उग्गहो" इत्यादि, तत्रैवं व्याख्यानम्–अर्थानामवग्रहणे सत्यवग्रहो नाम मतिविशेषो भवतीत्येवं ब्रुवते, एवमीहादिष्वपि योजना कार्या, भावार्थः प्राग्वदेव। इदानीमभिहितस्वरूपाणामवग्रहादीनां कालप्रमाणमभिधित्सुराह— 'उग्गहो' इत्यादि, अवग्रहः–अर्थावग्रहो नैश्चयिक एकसमयं यावद्भवति, समयः परमनिकृष्टः कालविभागः, स च प्रवचनप्रतिपादितादुत्पलपत्रशतव्यतिभेदोदाहरणात् जरत्पट्टशाटिकापाटनदृष्टान्ताच्चावसेयः, व्यञ्जनावग्रहविशेषसामान्यार्थावग्रहौ तु पृथक् २ अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणौ ज्ञातव्यौ, ईहा चापायश्च ईहापायौ मुहूर्त्तार्द्धं ज्ञातव्यौ, मुहूर्त्तो घटिकाद्वयप्रमाणः कालविशेषः तस्यार्द्धं मुहूर्त्तार्द्धं, तुशब्दो विशेषणार्थः, स चैतद्विशिनष्टि–व्यवहारापेक्षया एतन्मुहूर्त्तार्द्धमित्युच्यते, परमार्थतः पुनरन्तर्मुहूर्त्तमवसेयं, अन्ये पुनरेवं पठन्ति—"मुहूमंतं तु" तत्र मकारोऽलाक्षणिकः, तत एवं द्रष्टव्यं–मुहूर्त्तान्तः–मुहूर्त्तस्यान्तः–मध्यं मुहूर्त्तान्तः, अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, इह 'पारे मध्येऽग्रेऽन्तः षष्ठ्या वे'ति विकल्पेनान्तःशब्दस्य प्राग् निपातो भवति, ततः सूत्रेऽन्तःशब्दस्य प्राग्निपातो न विहितः, तथा धारणा कालमसङ्ख्यं–पल्योपमादिलक्षणं सङ्ख्येयं च–वर्षादिरूपं यावद्भवति ज्ञातव्या, धारणा चेह वासनारूपा द्रष्टव्या, अविच्युतिस्मृती तु प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणे वेदितव्ये ॥ तदेवमवग्रहादीनां स्वरूपमभिधाय श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ताप्राप्तविषयतां प्रतिपिपादयिषुराह–'पुट्ठं सुणेइ' इत्यादि, इह श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दं शृणोति स्पृष्टं–स्पृष्टमात्रं, स्पृष्टं नाम आलिङ्गितं यथा तनौ रेणुसङ्घातः, अथ कथं स्पृष्टमात्रमेव शब्दं शृणोति ?, उच्यते, इह शेषेन्द्रियगणापेक्षया श्रोत्रेन्द्रियमतिशयेन पटु, तथा गन्धादिद्रव्यापेक्षया

मतेर्विषयोभेदाःकालः स्पृष्टतादि

१५

२०

॥१८५॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५--८०॥

दीप अनुक्रम [१२१--१२८]

मतेर्विषयो-भेदाःकालः स्पृष्टतादि

शब्दद्रव्याणि सूक्ष्माणि प्रभूतानि भावुकानि च, अत एव सर्वतस्तदिन्द्रियं प्राप्नुवन्ति, ततस्तानि स्पृष्टमात्राण्यपि श्रोत्रेन्द्रियेण ग्रहीतुं शक्यन्ते, रूपं पुनः पश्यति अस्पृष्टमेव, तुरेवकारार्थः, अप्राप्यकारित्वाच्चक्षुषः,तथा गन्धं रसं च स्पर्शं च, चशब्दौ समुच्चयार्थौ, बद्धस्पृष्टं घ्राणादिभिरिन्द्रियैर्विनिश्चिनोतीति व्यागृणीयात् , इह बद्धस्पृष्टमिति स्पृष्टबद्धमिति विज्ञेयं, प्राकृतशैल्या चान्यथा सूत्रे उपन्यासः, तत्र स्पृष्टमित्यात्मनाऽऽलिङ्गितं बद्धं-तोयवदात्मप्रदेशैरात्मीकृतं आलिङ्गितानन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतमित्यर्थः । इह शब्दमुत्कर्षतो द्वादशयोजनेभ्य आगतं शृणोति, न परतः, शेषाणि तु गन्धादिद्रव्याणि प्रत्येकं नवभ्यो २ योजनेभ्य आगतानि घ्राणादिभिरिन्द्रियैर्गृह्णाति जीवो, न परतः, परतः समागतानां द्रव्याणां मन्दपरिणामतया इन्द्रियग्राह्यत्वासम्भवात्, जघन्यतस्तु शब्दादिद्रव्याणि अङ्गुलासङ्ख्येयभागादागतानि, चक्षुषस्तु जघन्यतो योग्यो विषयोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागवर्त्ती वेदितव्यः, उत्कर्षतस्त्वात्माङ्गुलेन सातिरेको योजनलक्षः, एतदपि चाभासुरद्रव्यमधिकृत्योच्यते, भासुरं तु द्रव्यमेकविंशतियोजनलक्षेभ्योऽपि परतः पश्यंति, यथा पुष्करवरद्वीपार्द्धे मानुषोत्तरनगप्रत्यासन्नवर्त्तिनः कर्कसंक्रान्तौ सूर्यबिम्बं, तथा चोक्तम्—"लक्खेहिं एगवीसाए सातिरेगेहिं पुक्खरद्धंमि । उदए पेच्छंति नरा सूरं उक्कोसए दिवसे ॥ १ ॥" अत्राह—ननु स्पृष्टं शृणोति शब्दमित्युक्तं, तत्र शब्दप्रयोगोत्सृष्टान्येव केवलानि शब्दद्रव्याणि शृणोति उतान्यान्येव तद्भावितानि आहोश्चिन्मिश्राणीति?, उच्यते,

१ लक्षेष्वेकविंशतौ सातिरेकेषु पुष्करार्धे । उदये प्रेक्षन्ते नराः सूर्यमुत्कृष्टे दिवसे । (कर्कसंक्रान्त्या दिवसे) ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५-८०॥

दीप अनुक्रम [१२१-१२८]

न तावत्केवलानि, यतो वासकानि शब्दद्रव्याणि शब्दयोग्यानि च द्रव्याणि सकललोकव्यापीनि ततोऽवश्यं तद्वासितानि शृणोति मिश्राणि वा, न केवलान्येवोत्सृष्टानि, तथा चाह—'भासासमे'त्यादि, भाष्यत इति भाषा–वाक् शब्दरूपतया उत्सृज्यमाना द्रव्यसन्ततिः सा च वर्णात्मिका भेरीझाङ्कारादिरूपा वा द्रष्टव्या, तस्याः समाः श्रेणयः, श्रेणयो नाम क्षेत्रप्रदेशपङ्क्तयोऽभिधीयन्ते, ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते यासूत्सृष्टा सती भाषा प्रथमसमय एव लोकान्तमनुधावति, भाषासमश्रेणयः, समश्रेणिग्रहणं विश्रेणिव्यवच्छेदार्थं, भाषासमश्रेणीः इतोगतः प्राप्तो भाषासमश्रेणीतः, भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थः, यं शब्दं पुरुषादिसम्बन्धिनं भेर्यादिसम्बन्धिनं वा शृणोति यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात्तं मिश्रं शृणोति, उत्सृष्टशब्दद्रव्यभावितापान्तरालस्थद्रव्यमिश्रं शृणोतीति भावार्थः। 'वीसेढी'त्यादि, अत्रेत इति वर्त्तते, ततोऽयमर्थः–विश्रेणिं पुनरितः–प्राप्तो, विश्रेणिव्यवस्थितः पुनरित्यर्थः, अथवा विश्रेणिस्थितो विश्रेणिरित्युच्यते, शब्दं शृणोति नियमात्पराघाते सति, नान्यथा, किमुक्तं भवति?–उत्सृष्टशब्दद्रव्यशब्दा (शब्दद्रव्या) भिघातेन यानि वासितानि शब्दद्रव्याणि तान्येव केवलानि शृणोति, न कदाचिदपि उत्सृष्टानि, कुत इति चेद्, उच्यते, तेषामनुश्रेणिगमनात्प्रतिघाताभावाच्च। सम्प्रति विनेयजनसुखप्रतिपत्तये मतिज्ञानस्य पर्यायशब्दानभिधित्सुराह–'ईहे'त्यादि, एते ईहादयः शब्दाः सर्वेऽपि परमार्थतो मतिवाचकाः पर्यायशब्दाः, परं विनेयजनबुद्धिप्रकाशनाय किञ्चिद्भेदाद् भेदोऽमीषां प्रदर्श्यते–ईहनमीहा–सदर्थपर्यालोचनं, अपोहनमपोहः निश्चय इत्यर्थः, विमर्शनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३७] + ॥७५--८०॥

दीप अनुक्रम [१२१--१२८]

विमर्शः–अपायादवागीहायाः परिणामविशेषः,मार्गणं मार्गणा–अन्वयधर्मान्वेषणं,चः समुच्चये,गवेषणं गवेषणा–व्यतिरेकधर्मालोचनं, तथा संज्ञानं संज्ञा-व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः, तथा स्मरणं स्मृतिः–पूर्वानुभूतालम्बनः प्रत्ययविशेषः,मननं मतिः–कथञ्चिदर्थपरिच्छित्तावपि सूक्ष्मधर्म्मालोचनरूपा बुद्धिः,प्रज्ञापनं प्रज्ञा-विशिष्टक्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतयथावस्थितधर्मालोचनरूपा संवित्, सर्वमिदमाभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः,'सेत्त'मित्यादि, तदेतदाभिनिबोधिकज्ञानं ॥ साम्प्रतं प्रागुपन्यस्तसकलचरणकरणक्रियाधारश्रुतज्ञानस्वरूपजिज्ञासया शिष्यः प्रश्नयति–

श्रुतज्ञान-भेदाः सू. ३८

से किं तं सुयनाणपरोक्खं?, सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पन्नत्तं, तंजहा–अक्खरसुयं १ अणक्खरसुयं २ सण्णिसुअं ३ असण्णिसुअं ४ सम्मसुअं ५ मिच्छसुअं ६ साइअं ७ अणाइअं ८ सपज्जवसिअं ९ अपज्जवसिअं १० गमिअं ११ अगमिअं १२ अंगपविट्ठं १३ अणंगपविट्ठं १४। (सू. ३८)

अथ किं तच्छ्रुतज्ञानं?, आचार्य आह—श्रुतज्ञानं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतं संज्ञिश्रुतमसंज्ञिश्रुतं सम्यक्श्रुतं मिथ्याश्रुतं सादि अनादि सपर्यवसितमपर्यवसितं गमिकमगमिकमङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टं च। ननु अक्षरश्रुतानक्षरश्रुतरूप एव भेदद्वये शेषभेदा अन्तर्भवन्ति तत्किमर्थं तेषां भेदोपन्यासः?, उच्यते, इहाव्युत्पन्नमतीना विशेषावगमसम्पादनाय महात्मनां शास्त्रारम्भप्रयासो, न चाक्षरश्रुतानक्षरश्रुतरूपभेदद्वयोपन्यासमात्रादव्युत्प-

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतज्ञानस्य चतुर्दश-भेदाः वर्णयते

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१८७॥

न्नमतयः शेषभेदानवगन्तुमीशते, ततोऽभ्युत्पन्नमतिविनेयजनानुग्रहाय शेषभेदोपन्यास इति ॥ साम्प्रतमुपन्यस्तानां भेदानां स्वरूपमनवगच्छन् आद्यं भेदमधिकृत्य शिष्यः प्रश्नं करोति—

से किं तं अक्खरसुअं?, अक्खरसुअं तिविहं पन्नत्तं, तंजहा–सन्नक्खरं वंजणक्खरं लद्धिअक्खरं, से किं तं सन्नक्खरं?, २ अक्खरस्स संठाणागिई, सेत्तं सन्नक्खरं। से किं तं वंजणक्खरं?, वंजणक्खरं अक्खरस्स वंजणाभिलावो, से तं वंजणक्खरं। से किं तं लद्धिअक्खरं?, लद्धिअक्खरं अक्खरलद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तंजहा–सोइंदिअलद्धिअक्खरं चक्खिंदियलद्धिअक्खरं घाणिंदियलद्धिअक्खरं रसणिंदियलद्धिअक्खरं फासिंदियलद्धिअक्खरं नोइंदियलद्धिअक्खरं, से तं लद्धिअक्खरं, से तं अक्खरसुअं॥ से किं तं अणक्खरसुअं?, अणक्खरसुअं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा–ऊससिअं नीससिअं निच्छूढं खासिअं च छीअं च। निस्सिंघिअमणुसारं अणक्खरं छेलिआईअं ॥ ८१ ॥ से तं अणक्खरसुअं (सू० ३९)

अथ किं तदक्षरश्रुतं?, सूरिराह–अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—सञ्ज्ञाक्षरं व्यञ्जनाक्षरं लब्ध्यक्षरं च, तत्र 'क्षर सञ्चलने' न क्षरति–न चलतीत्यक्षरं–ज्ञानं, तद्धि जीवस्वाभाव्यादनुपयोगेऽपि तत्त्वतो न प्रच्यवते, यद्यपि च सर्वं

अक्षरानक्षरश्रुतं सू. ३९

॥१८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३९] + ॥८१॥

दीप अनुक्रम [१३०--१३२]

ज्ञानमविशेषेणाक्षरं प्राप्नोति तथाऽपीह श्रुतज्ञानस्य प्रस्तावादक्षरं श्रुतज्ञानमेव द्रष्टव्यं, न शेषं, इत्थम्भूतभावाक्षरकारणं वाऽकारादि वर्णजातं ततस्तदप्युपचारादक्षरमुच्यते, ततश्चाक्षरं च तच्छ्रुतं च-श्रुतज्ञानं च अक्षरश्रुतं, भावश्रुतमित्यर्थः, तच्च लब्ध्यक्षरं वेदितव्यं, तथाऽक्षरात्मकम्-अकारादिवर्णात्मकं श्रुतमक्षरश्रुतं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः, तच्च सञ्ज्ञाक्षरं व्यञ्जनाक्षरं च द्रष्टव्यं, अथ किं तत्सञ्ज्ञाक्षरं?, अक्षरस्याकारादेः संस्थानाकृतिः—संस्थानाकारः, तथाहि—सञ्ज्ञायतेऽनयेति सञ्ज्ञा–नाम तन्निबन्धनं–तत्कारणमक्षरं संज्ञाक्षरं, संज्ञायाश्च निबन्धनमाकृतिविशेषः, आकृतिविशेष एव नाम्नः करणाद्व्यवहरणाच्च, ततोऽक्षरस्य पट्टिकादौ संस्थापितस्य संस्थानाकृतिः संज्ञाक्षरमुच्यते, तच्च ब्राह्म्यादिलिपिभेदतोऽनेकप्रकारं, तत्र नागरीं लिपिमधिकृत्य किञ्चित्प्रदर्श्यते–मध्ये स्फाटितचुल्लीसन्निवेशसदृशो रेखासन्निवेशो णकारो वक्रीभूतश्चपुच्छसन्निवेशसदृशो ढकार इत्यादि, 'से त्त'मित्यादि, तदेतत् संज्ञाक्षरं। अथ किं तद्व्यञ्जनाक्षरं?, आचार्य आह—व्यञ्जनाक्षरमक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः, तथाहि—व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं–भाष्यमाणमकारादिकं वर्णजातं, तस्य विवक्षितार्थाभिव्यञ्जकत्वात्, व्यञ्जनं च तदक्षरं च व्यञ्जनाक्षरं, ततो युक्तमुक्तं-व्यञ्जनाक्षरमक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः, अक्षरस्याकारादेर्वर्णजातस्य व्यञ्जनेन–अत्र भावे अनट् व्यञ्जकत्वेनाभिलापः–उच्चारणं, अर्थव्यञ्जकत्वेनोच्चार्यमाणमकारादि वर्णजातमित्यर्थः।'से किं त'मित्यादि, अथ किं तल्लब्ध्यक्षरं?, लब्धिः–उपयोगः, स चेह प्रस्तावात् शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी गृह्यते, लब्धिरूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं, भावश्रुतमित्यर्थः, 'अक्खरलद्धिय-

अक्षरानक्षरश्रुतं सू. ३९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३९] + ॥८१॥

दीप अनुक्रम [१३०--१३२]

स्से'त्यादि, अक्षरे–अक्षरस्योच्चारणेऽवगमे वा लब्धिर्यस्य सोऽक्षरलब्धिकः तस्य, अकाराद्यक्षरानुविद्धश्रुतलब्धिसमन्वितस्येत्यर्थः, लब्ध्यक्षरं भावश्रुतं समुत्पद्यते, शब्दादिग्रहणसमनन्तरमिन्द्रियमनोनिमित्तं शब्दार्थपर्यालोचनानुसारि शाङ्खोऽयमित्याद्यक्षरानुविद्धं ज्ञानमुपजायते इत्यर्थः, नन्विदं लब्ध्यक्षरं सञ्ज्ञिनामेव पुरुषादीनामुपपद्यते नासञ्ज्ञिनामेकेन्द्रियादीनां, तेषामकारादीनां वर्णानामवगमे उच्चारणे वा लब्ध्यसम्भवात्, न हि तेषां परोपदेशश्रवणं सम्भवति येनाकारादिवर्णानामवगमादि भवेत्, अथचैकेन्द्रियादीनामपि लब्ध्यक्षरमिष्यते, तथाहि—पार्थिवादीनामपि भावश्रुतमुपवर्ण्यते–'दव्वसुयाभावंमिवि भावसुयं पत्थिवाईण'मिति वचनप्रामाण्याद्, भावश्रुतं च शब्दार्थपर्यालोचनानुसारि विज्ञानं, शब्दार्थपर्यालोचनं चाक्षरमन्तरेण न भवतीति, सत्यमेतत्, किन्तु यद्यपि तेषामेकेन्द्रियादीनां परोपदेशश्रवणासम्भवस्तथापि तेषां तथाविधक्षयोपशमभावतः कश्चिदव्यक्तोऽक्षरलाभो भवति यद्वशादक्षरानुषक्तं श्रुतज्ञानमुपजायते, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, तथाहि—तेषामप्याहाराद्यभिलाष उपजायते, अभिलाषश्च प्रार्थना, सा च यदीदमहं प्राप्नोमि ततो भव्यं भवतीत्याद्यक्षरानुविद्धैव, ततस्तेषामपि काचिदव्यक्ताक्षरलब्धिरवश्यं प्रतिपत्तव्या, ततस्तेषामपि लब्ध्यक्षरं सम्भवतीति न कश्चिद्दोषः । तथा लब्ध्यक्षरं पोढा, तद्यथा—'श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षर'मित्यादि, इह यच्छ्रोत्रेन्द्रियेण शब्दश्रवणे सति शाङ्खोऽयमित्याद्यक्षरानुविद्धं शब्दार्थपर्यालोचनानुसारि विज्ञानं तच्छ्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरं,

१ द्रव्यश्रुताभावेऽपि भावश्रुतं पार्थिवादीनाम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३९] + ॥८१॥

दीप अनुक्रम [१३०--१३२]

तस्य श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तत्वात्, यत्पुनश्चक्षुषा आम्रफलाद्युपलभ्याम्रफलमित्याद्यक्षरानुविद्धं शब्दार्थपर्यालोचनात्मकं विज्ञानं तच्चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरं, एवं शेषेन्द्रियलब्ध्यक्षरमपि भावनीयं, 'सेत्त'मित्यादि, तदेतत् लब्ध्यक्षरं, तदेतदक्षरश्रुतं । अथ किं तदनक्षरश्रुतं ?–अनक्षरात्मकं श्रुतमनक्षरश्रुतं, आचार्य आह–अनक्षरश्रुतमनेकविधम्–अनेकप्रकारं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'ऊससिय'मित्यादि, उच्छ्वसनमुच्छ्वसितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, तथा निःश्वसनं निःश्वसितं निष्ठीवनं निष्ठ्यूतं कासनं कासितं, चशब्दः समुच्चयार्थः, क्षवणं क्षुतं, एषोऽपि चशब्दः समुच्चयार्थः परमस्य व्यवहितः प्रयोगः, सेंटितादिकं चेत्येवं द्रष्टव्यः, तथा निस्सिंघनं निस्सिङ्घितं, अनुस्वारवदनुस्वारं, सानुस्वारमित्यर्थः, तथा सेंटितादिकं चानक्षरश्रुतं, इह उच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुतं द्रष्टव्यं,ध्वनिमात्रत्वाद्भावश्रुतस्य कारणत्वात्कार्यत्वाच्च, तथाहि–यदाऽभिसन्धिपूर्वकं स विशेषतरमुच्छ्वसितादि कस्यापि पुंसः कस्यचिदर्थस्य ज्ञप्तये प्रयुङ्क्ते तदा तदुच्छ्वसितादि प्रयोक्तुर्भावश्रुतस्य फलं श्रोतुश्च भावश्रुतस्य कारणं भवति ततो द्रव्यश्रुतमित्युच्यते, अथ ब्रवीथाः–एवं तर्हि करादिचेष्टाया अपि द्रव्यश्रुतत्वप्रसङ्गः, साऽपि हि बुद्धिपूर्विका क्रियमाणा तत्कर्तुर्भावश्रुतस्य फलं द्रष्टुश्च भावश्रुतस्य कारणमिति, नैष दोषः, श्रुतमित्यन्वर्थाश्रयणात्, तथाहि–यच्छ्रूयते तच्छ्रुतमित्युच्यते, न च करादिचेष्टा श्रूयते, ततो न तत्र द्रव्यश्रुतत्वप्रसङ्गः, उच्छ्वसितादिकं तु श्रूयते अनक्षरात्मकं च ततस्तदनक्षरश्रुतमित्युक्तं, 'सेत्त'मित्यादि, तदेतदनक्षरश्रुतं ॥

से किं तं सण्णिसुअं ?, २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा–कालिओवएसेणं हेऊवएसेणं दिट्ठिवाओव-

अक्षरानक्षरश्रुतं सू. ३९

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एसेणं, से किं तं कालिओवएसेणं?, कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं असन्नीति लब्भइ, से तं कालिओवएसेणं । से किं तं हेऊवएसेणं?, जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विआ करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विआ करणसत्ती से णं असण्णीत्ति लब्भइ, से तं हेऊवएसेणं । से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं?, दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुअस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुअस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ, से तं दिट्ठिवाओवएसेणं, से तं सण्णिसुअं से तं असण्णिसुअं । (सू० ४०)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्संज्ञिश्रुतं?, संज्ञानं संज्ञा साऽस्यास्तीति संज्ञी तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं, आचार्य आह— संज्ञिश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, संज्ञिनस्त्रिभेदत्वात्, तदेव त्रिभेदत्वं संज्ञिनो दर्शयति, तद्यथा–कालिक्युपदेशेन १ हेतूपदेशेन २ दृष्टिवादोपदेशेन ३, तत्र कालिक्युपदेशेनेत्यत्रादिपदलोपाद्दीर्घकालिक्युपदेशेनेति द्रष्टव्यं । 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन संज्ञी?, इह दीर्घकालिकीसंज्ञा कालिकीति व्यपदिश्यते, आदिपदलोपाद् , उपदेशनमुप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशः–कथनमित्यर्थः दीर्घकालिक्या उपदेशः दीर्घकालिक्युपदेशस्तेन, आचार्य आह–कालिक्युपदेशेन संज्ञी स उच्यते यस्य प्राणिनोऽस्ति–विद्यते ईहा–सदर्थपर्यालोचनमपोहो–निश्चयो मार्गणा–अन्वयधर्म्मान्वेषणरूपा गवेषणा–व्यतिरेकधर्म्मस्वरूपपर्यालोचनं चिन्ता–कथमिदं भूतं कथं चेदं सम्प्रति कर्त्तव्यं कथं चैतद्भविष्यतीति पर्यालोचनं, विमर्शनं विमर्शः–इदमित्थमेव घटते इत्थं वा तद्भूतमित्थमेव वा तद्भावीति यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिर्णयः, स प्राणी 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे संज्ञीति लभ्यते, स च गर्भव्युत्क्रान्तिकपुरुषादिरौपपातिकश्च देवादिर्मनःपर्याप्तियुक्तो विज्ञेयः, तस्यैव त्रिकालविषयचिन्ताविमर्शादिसम्भवाद्, आह च भाष्यकृत्–"इहं दीहकालिगी कालिगित्ति सन्ना जया सुदीहंपि। संभरइ भूयमेस्सं चिंतेइ य किह णु कायवं? ॥ १ ॥ कालियसन्नित्ति तओ जस्स मई सो य तो मणोजोग्गे। खंधेऽणंते घेत्तुं मन्नइ तल्लद्धिसंपत्तो ॥ २ ॥" एष च प्रायः सर्वमप्यर्थं स्फुटरूपमुपलभते, तथाहि—यथा चक्षुष्मान् प्रदीपादिप्रकाशेन स्फुटमर्थमुपलभते तथैषोऽपि मनोलब्धिसम्पन्नो मनोद्रव्यावष्टम्भसमुत्थविमर्शवशतः पूर्वापरानुसन्धानेन यथावस्थितं स्फुटमर्थमुपलभते, यस्य पुनर्नास्ति ईहा अपोहो मार्गणा गवेषणा चिन्ता विमर्शः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, स च सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियविकलेन्द्रियादिर्विज्ञेयः,स हि स्वल्पस्वल्पतरमनोलब्धिसम्पन्नत्वादस्फुटमस्फुटतरमर्थं

१ इह दीर्घकालिकी कालिकीति संज्ञा यया सुदीर्घमपि। स्मरति भूतमेष्यं चिन्तयति च कथं नु कर्तव्यम्? ॥ १ ॥ कालिकसंज्ञीति सको यस्य मतिः स च ततो मनोयोग्यान्। स्कन्धाननन्तान् गृहीत्वा मन्यते तल्लब्धिसंपन्नः ॥ १ ॥

संज्ञासंज्ञिश्रुतं सू. ४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४०]

दीप अनुक्रम [१३३]

जानाति, तथाहि—संज्ञिपञ्चेन्द्रियापेक्षया सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियोऽस्फुटमर्थं जानाति, ततोऽप्यस्फुटं चतुरिन्द्रियः, ततोऽप्यस्फुटतरं त्रीन्द्रियः, ततोऽप्यस्फुटतमं द्वीन्द्रियः, ततोऽप्यस्फुटतममेकेन्द्रियः, तस्य प्रायो मनोद्रव्यासम्भवात्, केवलमव्यक्तमेव किञ्चिदतीवाल्पतरं मनो द्रष्टव्यं,यद्वशादाहारादिसंज्ञा अव्यक्तरूपाः प्रादुष्यन्ति, 'सेत्त'मित्यादि, सोऽयं कालिक्युपदेशेन संज्ञी । 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं हेतूपदेशेन संज्ञी?, हेतुः कारणं निमित्तमित्यनर्थान्तरं, उपदेशनमुपदेशः हेतोरुपदेशनं हेतूपदेशस्तेन, किमुक्तं भवति?–कोऽयं संज्ञित्वनिबन्धनहेतुमुपलभ्य कालिक्युपदेशेनासंज्ञ्यपि संज्ञीति व्यवहियते?,आचार्य आह—हेतूपदेशेन संज्ञा यस्य प्राणिनोऽस्ति–विद्यतेऽभिसन्धारणम्–अव्यक्तेन व्यक्तेन वा विज्ञानेनालोचनं तत्पूर्विका–तत्कारणिका 'करणशक्तिः' करणं क्रिया तस्यां शक्तिः–प्रवृत्तिः स प्राणी 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे हेतूपदेशेन संज्ञीति भण्यते, एतदुक्तं भवति–यो बुद्धिपूर्वकं स्वदेहपरिपालनार्थमिष्टेष्वाहारादिषु वस्तुषु प्रवर्त्तते अनिष्टेभ्यश्च निवर्त्तते स हेतूपदेशेन संज्ञी, स च द्वीन्द्रियादिरपि वेदितव्यः, तथाहि—इष्टानिष्टविषयप्रवृत्तिनिवृत्तिसचिन्तनं न मनोव्यापारमन्तरेण सम्भवति, मनसा पर्यालोचनं संज्ञा, सा च द्वीन्द्रियादेरपि विद्यते, तस्यापि प्रतिनियतेष्टानिष्टविषयप्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्, ततो द्वीन्द्रियादिरपि हेतूपदेशेन संज्ञी लभ्यते, नवरमस्य चिन्तनं प्रायो वर्त्तमानकालविषयं न भूतभविष्यद्विषयमिति न कालिक्युपदेशेन संज्ञी लभ्यते, यस्य पुनर्नास्त्यभिसन्धारणापूर्विका करणशक्तिः स प्राणी 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे हेतूपदेशेनाप्यसंज्ञी लभ्यते, स च पृथिव्यादिरेकेन्द्रियो वेदि-

१५

२०

॥१९०॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

तव्यः, तस्याभिसन्धिपूर्वकमिष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्त्यसम्भवात्, या अपि चाहारादिसंज्ञाः पृथिव्यादीना वर्त्तन्ते ता अप्यत्यन्तमव्यक्तरूपा इति तदपेक्षयापि न तेषां संज्ञित्वव्यपदेशः, उक्तं च भाष्यकृता—"जे पुण संचिंतेउं इट्ठाणिट्ठेसु विसयवत्थूसुं। वत्तंति नियत्तंति य सदेहपरिपालणाहेउं ॥ १ ॥ पाएण संपइ चिय कालंमि न याइदीहकालण्णू। ते हेउवायसण्णी निच्चिट्ठा होंति अस्सण्णी ॥ २ ॥" अन्यत्रापि हेतूपदेशेन संज्ञित्वमाश्रित्योक्तं–'कृमिकीटपतङ्गाद्याः समनस्काः जङ्गमाश्चतुर्भेदाः। अमनस्काः पञ्चविधाः पृथिवीकायादयो जीवाः ॥ १ ॥' 'सेत्त'मित्यादि, सोऽयं हेतूपदेशेन संज्ञी। 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञी?, दृष्टिः दर्शनं–सम्यक्त्वादि वदनं वादः दृष्टीनां वादो दृष्टिवादस्तदुपदेशेन, तदपेक्षयेत्यर्थः, आचार्य आह–दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी लभ्यते, संज्ञानं संज्ञा–सम्यग्ज्ञानं तदस्यास्तीति[स] संज्ञी–सम्यग्दृष्टिस्तस्य यच्छ्रुतं तत्संज्ञिश्रुतं, सम्यक्श्रुतमिति भावार्थः, तस्य क्षयोपशमेन–तदावारकस्य कर्म्मणः क्षयोपशमभावेन संज्ञी लभ्यते, किमुक्तं भवति?–सम्यग्दृष्टिः क्षायोपक्षमिकज्ञानयुक्तो दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञी भवति, स च यथाशक्ति रागादिनिग्रहपरो वेदितव्यः, स हि सम्यग्दृष्टिः सम्यग्ज्ञानी वा यो रागादीन् निगृह्णाति, अन्यथा हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्यभावतः सम्यग्दृष्टित्वाद्ययोगात्, उक्तं च—"तज्ज्ञान-

संज्ञिसंज्ञि-श्रुतं सू. ४०

५

१०

१ ये पुनः संचिन्त्य इष्टानिष्टेषु विषयवस्तुषु। वर्त्तन्ते निवर्तन्ते च स्वदेहपरिपालनाहेतोः ॥ १ ॥ प्रायेण साम्प्रत एव काले न चातिदीर्घकालज्ञाः। ते हेतुवादसंज्ञिनः निश्चेष्टा भवन्त्यसंज्ञिनः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४०]

दीप अनुक्रम [१३३]

मेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः । तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥ १ ॥" अन्यस्तु मिथ्यादृष्टिरसंज्ञी, तथा चाह—'असंज्ञिश्रुतस्य' मिथ्याश्रुतस्य क्षयोपशमेनासंज्ञीति लभ्यते, 'से त्त'मित्यादि निगमनं, सोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञी । तदेवं संज्ञिनस्त्रिभेदत्वात् श्रुतमपि तदुपाधिभेदात् त्रिविधमुपन्यस्तं । अत्राह-ननु प्रथमं हेतूपदेशेन संज्ञी वक्तुं युज्यते, हेतूपदेशेनाल्पमनोलब्धिसम्पन्नस्यापि द्वीन्द्रियादेः संज्ञित्वेनाभ्युपगतत्वात् तस्य चाविशुद्धतरत्वात्, ततः कालिक्युपदेशेन हेतूपदेशसंज्ञापेक्षया कालिक्युपदेशेन संज्ञिनो मनःपर्यासियुक्ततया विशुद्धत्वात्, तत्किमर्थमुत्क्रमोपन्यासः?, उच्यते, इह सर्वत्र सूत्रे यत्र क्वचित् संज्ञी असंज्ञी वा परिगृह्यते तत्र सर्वत्रापि प्रायः कालिक्युपदेशेन गृह्यते न हेतूपदेशेन नापि दृष्टिवादोपदेशेन, तत एतत्सम्प्रत्ययार्थं प्रथमं कालिक्युपदेशेन संज्ञिनो ग्रहणं, उक्तं च—"संज्ञिनेति असंज्ञिनेति य सवसुए कालिओवएसेणं । पायं संववहारो कीरइ तेणाइओ स कओ ॥ १ ॥" ततोऽनन्तरमप्रधानत्वाद्धेतूपदेशेन संज्ञिनो ग्रहणं, ततः सर्वप्रधानत्वादन्ते दृष्टिवादोपदेशेनेति । 'सेत्त'मित्यादि, तदेतत्संज्ञिश्रुतम्, असंज्ञिश्रुतमपि प्रतिपक्षाभिधानादेव प्रतिपादितं, तत आह–'सेत्तं असन्निसुयं' तदेतदसंज्ञिश्रुतं ॥

से किं तं सम्मसुअं ?, जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खि-

१ संज्ञीति असंज्ञीति च सर्वश्रुते कालिक्युपदेशेन । प्रायः संव्यवहारः क्रियते तेनादौ स कृतः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यकश्रुतस्य वर्णनं एवं तस्य भेदानाम् नामानि

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [१३४]

अमहिअपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं, तंजहा–आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपण्णत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुअं ११ दिट्ठिवाओ १२, इच्चेअं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुअं अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुअं, तेण परं भिण्णेसु भयणा, से तं सम्मसुअं। (सू. ४१)

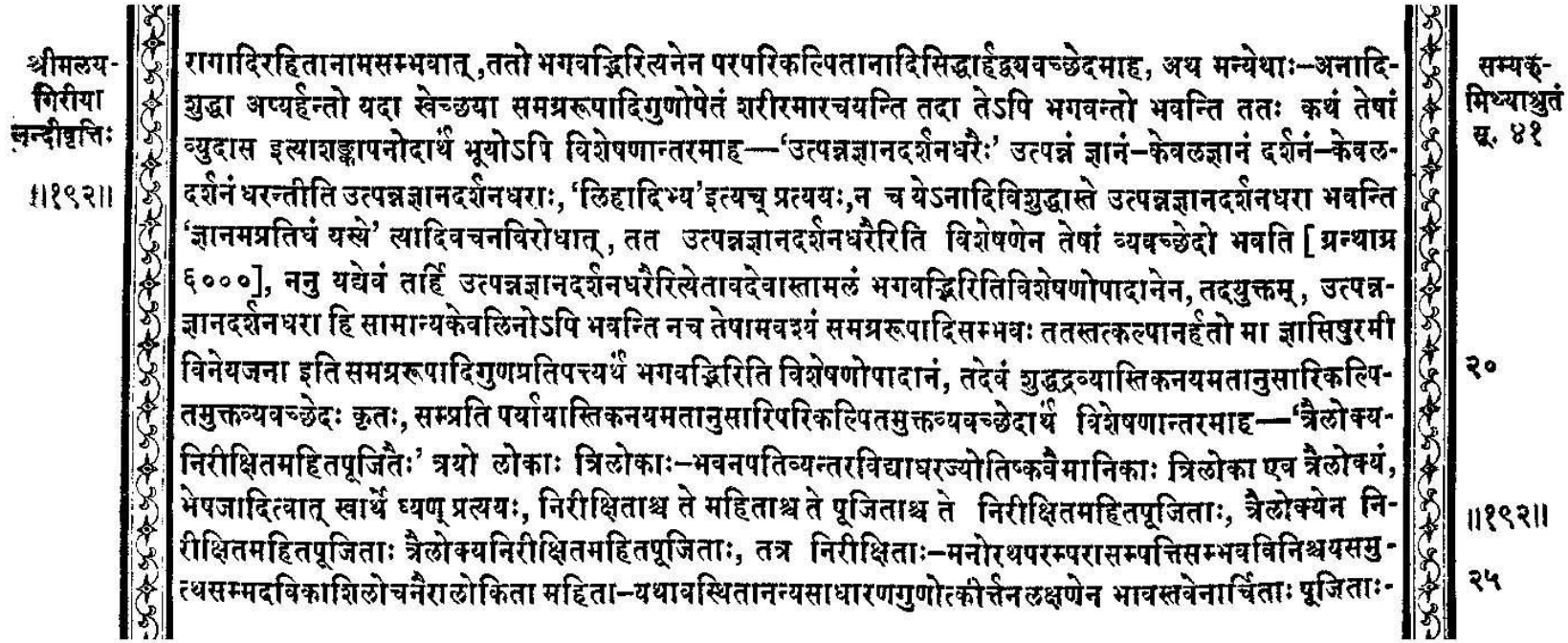
सम्यक्-मिथ्याश्रुतं सू. ४१

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्सम्यक्श्रुतं?, आचार्य आह—सम्यक्श्रुतं यदिदमर्हद्भिः–अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः–तीर्थकरास्तैरर्हद्भिः, ते चार्हन्तः कैश्चिच्छुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिभिरनादिसिद्धा एव मुक्तात्मानोऽभ्युपगम्यन्ते, तथा च ते पठन्ति–"ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥१॥" इत्यादि, एवंरूपाश्चापि ते वहव इष्यन्ते स्थापनादिद्वारेण च विशिष्टां पूजामर्हन्ति ततोऽर्हन्तोऽप्युच्यन्ते ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह–'भगवद्भिः' भगः–समग्रैश्वर्यादिरूपः, उक्तं च–"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः। धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना ॥१॥" भगो विद्यते येषां ते भगवन्तः तैर्भगवद्भिः, इहानादिसिद्धानां रूपमात्रमपि नोपपद्यते किं पुनः समग्रं रूपम्, अशरीरत्वात्, शरीरस्य च रागादिकार्यतया तेषां

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४१] दीप अनुक्रम [१३४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१९२॥

रागादिरहितानामसम्भवात्, ततो भगवद्भिरित्यनेन परपरिकल्पितानादिसिद्धार्हद्व्यवच्छेदमाह, अथ मन्येथाः–अनादिशुद्धा अप्यर्हन्तो यदा स्वेच्छया समग्ररूपादिगुणोपेतं शरीरमारचयन्ति तदा तेऽपि भगवन्तो भवन्ति ततः कथं तेषां व्युदास इत्याशङ्कापनोदार्थं भूयोऽपि विशेषणान्तरमाह—'उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः' उत्पन्नं ज्ञानं–केवलज्ञानं दर्शनं–केवलदर्शनं धरन्तीति उत्पन्नज्ञानदर्शनधराः, 'लिहादिभ्य'इत्यच् प्रत्ययः,न च येऽनादिविशुद्धास्ते उत्पन्नज्ञानदर्शनधरा भवन्ति 'ज्ञानमप्रतिघं यस्ये' त्यादिवचनविरोधात्, तत उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैरिति विशेषणेन तेषां व्यवच्छेदो भवति [ग्रन्थाग्र ६०००], ननु यद्येवं तर्हि उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैरित्येतावदेवास्तामलं भगवद्भिरितिविशेषणोपादानेन, तदयुक्तम्, उत्पन्नज्ञानदर्शनधरा हि सामान्यकेवलिनोऽपि भवन्ति नच तेषामवश्यं समग्ररूपादिसम्भवः ततस्तत्कल्पानर्हतो मा ज्ञासिषुरमी विनेयजना इति समग्ररूपादिगुणप्रतिपत्त्यर्थं भगवद्भिरिति विशेषणोपादानं, तदेवं शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिकल्पितमुक्तव्यवच्छेदः कृतः, सम्प्रति पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तव्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह—'त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः' त्रयो लोकाः त्रिलोकाः–भवनपतिव्यन्तरविद्याधरज्योतिष्कवैमानिकाः त्रिलोका एव त्रैलोक्यं, भेषजादित्वात् स्वार्थे ष्यण् प्रत्ययः, निरीक्षिताश्च ते महिताश्च ते पूजिताश्च ते निरीक्षितमहितपूजिताः, त्रैलोक्येन निरीक्षितमहितपूजिताः त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजिताः, तत्र निरीक्षिताः–मनोरथपरम्परासम्पत्तिसम्भवविनिश्चयसमुत्थसम्मदविकाशिलोचनैरालोकिता महिता–यथावस्थितानन्यसाधारणगुणोत्कीर्त्तनलक्षणेन भावस्तवेनार्चिताः पूजिताः-

सम्यक्-मिथ्याश्रुतं सू. ४१

२०

॥१९२॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [१३४]

सुगन्धिपुष्पप्रकरप्रक्षेपादिना द्रव्यस्तवेन, तत्र सुगता अपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिस्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजिता इष्यन्ते, तथा चाह स्वयम्भूः–"देवागमनभोयान चामरादिविभूतयः । मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥" इति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह–'अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञैः' न चातीतानागतज्ञाः सुगताः सम्भवन्ति, तेषामेकान्तक्षणिकत्वाभ्युपगमेन सर्वथाऽतीतानागतयोरसत्त्वाद्, असतां च ग्रहणासम्भवादित्यत्र बहु वक्तव्यं तच्च प्रायः प्रागेवोक्तमन्यत्र(च) धर्म्मसङ्ग्रहणीटीकादाविति नोच्यते, इह व्यवहारनयमतानुसारिभिः कैश्चिदृषयोऽप्यतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञा इष्यन्ते, तथा च तद्ग्रन्थः–"ऋषयः संयतात्मानः, फलमूलानिलाशनाः । तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥ अतीतानागतान् भावान्, वर्त्तमानांश्च भारत! । ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ॥२॥" इत्यादि, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह–'सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः' ते तु ऋषयः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनश्च न भवन्ति, ततस्तेषां व्युदासः । तदेवं द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकनयमतव्यवच्छेदफलतया विशेषणसाफल्यमुक्तं, विचित्रनयमताभिज्ञेन तु अन्यथापि विशेषणसाफल्यं वाच्यं, न कश्चिद्विरोधः, प्रणीतम्—अर्थकथनद्वारेण प्ररूपितं, किं तदित्याह—'द्वादशाङ्गं' श्रुतरूपस्य परमपुरुषस्याङ्गानीवाङ्गानि द्वादशाङ्गानि–आचाराङ्गादीनि यस्मिन् तत् द्वादशाङ्गं 'गणिपिडगं'ति गणो–गच्छो गुणगणो वाऽस्यास्तीति गणी–आचार्यस्तस्य पिटकमिव पिटकं, सर्वस्वमित्यर्थः, गणि-

सम्यक् श्रुताधिकारः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिटकं, अथवा गणिशब्दः परिच्छेदवचनोऽ(प्य)स्ति, तथा चोक्तम्—"आयारंमि अहीए जं नाओ होइ समणधम्मो उ । तम्हा आयारधरो भन्नइ पढमं गणिट्ठाणं ॥ १ ॥" ततश्च गणीनां पिटकं गणिपिटकं परिच्छेदसमूह इत्यर्थः, तद्यथा—'आयारो' इत्यादि पाठसिद्धं यावत् दृष्टिवादः, अनङ्गप्रविष्टमप्यावश्यकादि तत्त्वतोऽर्हत्प्रणीतत्वात्परमार्थतो द्वादशाङ्गातिरिक्तार्थाभावाच्च द्वादशाङ्गग्रहणेन गृहीतं द्रष्टव्यं, इदं च द्वादशाङ्गादि सर्वमेव द्रव्यास्तिकनयमतापेक्षया तदभिधेयपञ्चास्तिकायभाववन्नित्यं स्वाम्यसम्बन्धचिन्तायां च स्वरूपेण चिन्त्यमानं सम्यक्श्रुतं स्वामिसम्बन्धचिन्तायां तु सम्यग्दृष्टेः सम्यक्श्रुतं मिथ्यादृष्टेर्मिथ्याश्रुतं, एतदेव श्रुतं परिमाणतो व्यक्तं दर्शयति—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं यश्चतुर्दशपूर्वी तस्य सकलमपि सामायिकादि बिन्दुसारपर्यवसानं नियमात् सम्यक्श्रुतं, ततोऽधोमुखपरिहान्या नियमतः सर्वं सम्यक्श्रुतं तावद्वक्तव्यं यावदभिन्नदशपूर्विणः—सम्पूर्णदशपूर्वधरस्य, सम्पूर्णदशपूर्वधरत्वादिकं हि नियमतः सम्यग्दृष्टेरेव, न मिथ्यादृष्टेः, तथास्वाभाव्यात्, तथाहि—यथा अभव्यो ग्रन्थिदेशमुपागतोऽपि तथास्वभावत्वात् न ग्रन्थिभेदमाधातुमलम्, एवं मिथ्यादृष्टिरपि श्रुतमवगाहमानः प्रकर्षतोऽपि तावदवगाहते यावत्किञ्चिन्यूनानि दश पूर्वाणि भवन्ति, परिपूर्णानि तु तानि नावगाढुं शक्नोति, तथास्वभावत्वादिति, 'तेण परं भन्नइ भयणा' अत्र 'तेणे'ति व्यत्ययोऽप्यासामि'ति प्राकृतलक्षणवशात्पञ्चम्यर्थे तृतीया, ततोऽयमर्थः—ततः सम्पूर्णदशपूर्वधरत्वात्

१ आचारेऽधीते यज्ज्ञातो भवति श्रमणधर्मेषु । तस्मादाचारधरो भण्यते प्रथमं गणिस्थानम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [१३४]

पश्चानुपूर्व्या परं–भिन्नेषु दशसु पूर्वेषु भजना–विकल्पना, कदाचित् सम्यक्श्रुतं कदाचिन्मिथ्याश्रुतमित्यर्थः, इयमत्र भावना–सम्यग्दृष्टेः प्रशमादिगुणगणोपेतस्य सम्यक्श्रुतं, यथावस्थितार्थतया तस्य सम्यक् परिणमनात्, मिथ्यादृष्टेस्तु मिथ्याश्रुतं, विपरीतार्थतया तस्य परिणमनात्, 'सेत्त'मित्यादि, तदेतत्सम्यक्श्रुतम् ।

मिथ्याश्रुताधिकारः सू. ४२

से किं तं मिच्छासुअं ?, २ जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पिअं, तंजहा–भारहं रामायणं भीमासुरुक्खं कोडिल्लयं सगडभद्दिआओ खोड (घोडग) मुहं कप्पासिअं नागसुहुमं कणगसत्तरी वइसेसिअं बुद्धवयणं तेरासिअं काविलिअं लोगाययं सट्ठितंतं माढरं पुराणं वागरणं भागवं पायंजली पुस्सदेवयं लेहं गणिअं–सउणरुअं नाडयाइं, अहवा बावत्तरि कलाओ चत्तारि अ वेआ संगोवंगा, एआइं मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहिआइं मिच्छासुअं, एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहिआइं सम्मसुअं, अहवा मिच्छदिट्ठिस्सवि एयाइं चेव सम्मसुअं, कम्हा ?, सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते मिच्छदिट्ठिआ तेहिं चेव समएहिं चोइआ समाणा केइ सपक्खदिट्ठीओ चयंति, से तं मिच्छासुअं (सू० ४२)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तन्मिथ्याश्रुतं ?, आचार्य आह—मिथ्याश्रुतं यदिदमज्ञानिकैः, तत्र यथाऽल्पधना

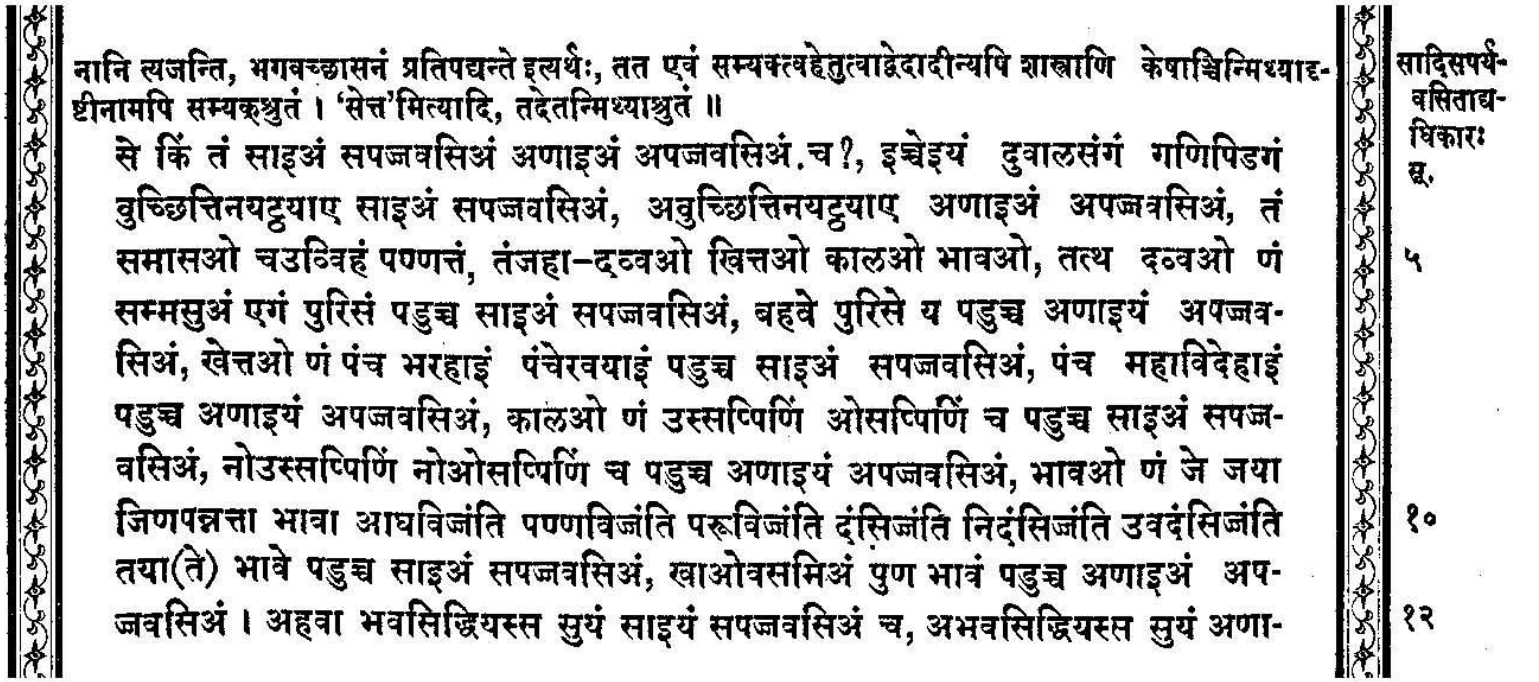
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकेऽधना उच्यन्ते एवं सम्यग्दृष्टयोऽप्यल्पज्ञानभावादज्ञानिका उच्यन्ते तत आह—मिथ्यादृष्टिभिः, किंवि०?–'स्व-च्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं' तत्रावग्रहेहे तु बुद्धिः, अपायधारणे मतिः, स्वच्छन्देन–स्वाभिप्रायेण तत्त्वतः सर्वज्ञप्रणीतानु-सारमन्तरेणेत्यर्थः,बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं, स्वबुद्धिकल्पनाशिल्पनिर्मितमित्यर्थः, तद्यथा–'भारतमित्यादि यावच्चत्तारि वेया संगोवंगा' भारतादयश्च ग्रन्था लोके प्रसिद्धास्ततो लोकत एव तेषां स्वरूपमव-गन्तव्यं, ते च स्वरूपतो यथावस्थितवस्त्वभिधानविकलतया मिथ्याश्रुतमवसेयाः, एतेऽपि च स्वामिसम्बन्धचिन्तायां भाज्याः,तथा चाह–'एयाइं'इत्यादि, एतानि–भारतादीनि शास्त्राणि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि भवन्ति ततो विपरीताभिनिवेशवृद्धिहेतुत्वान्मिथ्याश्रुतं, एतान्येव च भारतादीनि शास्त्राणि सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि भव-न्ति, सम्यक्त्वेन–यथावस्थिताऽसारतापरिभावनरूपेण परिगृहीतानि, तस्य सम्यक्श्रुतं, तद्गतासारतादर्शनेन स्थिरतरस-म्यक्त्वपरिणामहेतुत्वात्, 'अहवे'त्यादि, अथवा मिथ्यादृष्टेरपि सतः कस्यचिदेतानि भारतादीनि शास्त्राणि सम्यक्श्रुतं, शिष्य आह—कस्मात् ?, आचार्य आह—सम्यक्त्वहेतुत्वात्, सम्यक्त्वहेतुत्वमेव भावयति–यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयः तैरेव समयैः-सिद्धान्तैर्वेदादिभिः पूर्वापरविरोधेन–यथा रागादिपरीतः पुरुषस्तावन्नातीन्द्रियमर्थमवबुध्यते रागादिपरी-तत्वाद् अस्मादृशवद्, वेदेषु चातीन्द्रियाः प्रायोऽर्था व्याचक्ष्यन्ते अतीन्द्रियार्थदर्शी च वीतरागः सर्वज्ञो नाभ्युपगम्यते ततः कथं वेदार्थप्रतीतिरित्येवमादिलक्षणेन नोदिताः सन्तः केचन विवेकिनः सत्या(त्यक्या)दय इव स्वपक्षदृष्टीः–स्वदर्श-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२]

दीप अनुक्रम [१३५]



नानि त्यजन्ति, भगवच्छासनं प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः, तत एवं सम्यक्त्वहेतुत्वाद्वेदादीन्यपि शास्त्राणि केषाञ्चिन्मिथ्यादृष्टीनामपि सम्यक्श्रुतं । 'सेत्त'मित्यादि, तदेतन्मिथ्याश्रुतं ॥

से किं तं साइअं सपज्जवसिअं अणाइअं अपज्जवसिअं च?, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइअं सपज्जवसिअं, अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइअं अपज्जवसिअं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ णं सम्मसुअं एगं पुरिसं पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं, खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं, कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, नोउस्सप्पिणिं नोओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं, भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति तया(ते) भावे पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, खाओवसमिअं पुण भावं पडुच्च अणाइअं अपज्जवसिअं । अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्स सुयं अणा-

सादिसपर्यवसिताद्यधिकारः सू.

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतस्य सादि-अनादि तथा अपर्यवसित-सपर्यवसितत्वम्

इयं अपज्जवसियं(च), सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्जवक्खरं निप्फज्जइ, सव्वजीवाणंपि अ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा,–'सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं'। से तं साइअं सपज्जवसिअं, सेत्तं अणाइयं अपज्जवसिअं (सू. ४३)

अथ किं तत्सादि सपर्यवसितमनादि अपर्यवसितं च ?, तत्र सहादिना वर्त्तते इति सादि, तथा पर्यवसानं पर्यवसितं, भावे क्तप्रत्ययः,सह पर्यवसितेन वर्त्तते इति सपर्यवसितं,आदिरहितमनादि, न पर्यवसितमपर्यवसितं, आचार्य आह— इत्येतद्द्वादशाङ्गं गणिपिटकं 'धोच्छित्तिनयट्ठयाए' इत्यादि, व्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयो व्यवच्छित्तिनयः, पर्यायास्तिकनय इत्यर्थः, तस्यार्थो व्यवच्छित्तिनयार्थः, पर्याय इत्यर्थः, तस्य भावो व्यवच्छित्तिनयार्थता तया, पर्यायापेक्षयेत्यर्थः, किमित्याह—सादिसपर्यवसितं नारकादिभवपरिणत्यपेक्षया जीव इव, 'अवुच्छित्तिनयट्ठयाए'त्ति अव्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थोऽव्यवच्छित्तिनयार्थो, द्रव्यमित्यर्थः, तद्भावस्तत्ता तया, द्रव्यापेक्षया इत्यर्थः, किमित्याह—अनादिअपर्यवसितं त्रिकालावस्थायित्वाज्जीववद्, अधिकृतमेवार्थं द्रव्यक्षेत्रादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयति–'तत्' श्रुतज्ञानं 'समासतः' संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे सम्यक्श्रुतमेकं पुरुषं प्रतीत्य सादिसपर्यवसितं, कथमिति चेत्? उच्यते, सम्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

क्त्वावासौ ततः प्रथमपाठतो वा सादि पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमादभावतो महाग्लानत्वभावतो वा सुरलोकगमनसम्भवतो वा विस्मृतिमुपागते केवलज्ञानोत्पत्तिभावतो वा सर्वथा विप्रनष्टे सपर्यवसितं, बहून् पुरुषान् कालत्रयवर्त्तिनः पुनः प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, सन्तानेन प्रवृत्तत्वात्, कालवत्, तथा क्षेत्रतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे पञ्च भरतानि पञ्चैरवतानि प्रतीत्य सादिसपर्यवसानं, कथं?, उच्यते, तेषु क्षेत्रेष्ववसर्पिण्यां सुषमदुष्षमापर्यवसाने उत्सर्पिण्यां तु दुष्षमसुषमाप्रारम्भे तीर्थकरधर्म्मसङ्घानां प्रथमतयोत्पत्तेः सादि, एकान्तदुष्षमादौ च काले तदभावात् सपर्यवसितं, तथा महाविदेहान् प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, तत्र प्रवाहापेक्षया तीर्थकारादीनामव्यवच्छेदात्, तथा कालतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, अवसर्पिणीमुत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादिसपर्यवसितं, तथाहि—अवसर्पिण्यां तिसृष्वेव समासु सुषमदुष्षमादुष्षमसुषमादुष्षमारूपासूत्सर्पिण्यां तु द्वयोः समयोः दुष्षमसुषमासुषमदुष्षमारूपयोर्भवति, न परतः, ततः सादिसपर्यवसितं, अत्र चोत्सर्पिण्यवसर्पिणीस्वरूपज्ञापनार्थं कालचक्रं विंशतिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणं विनेयजनानुग्रहार्थं यथा मूलवृत्तिकृता दर्शितं तथा वयमपि दर्शयामः—"चत्तारि सागरोवमकोडिकोडीउ संतईए उ। एगंतसुस्समा खलु जिणेहिँ सव्वेहिँ निद्दिट्ठा ॥ १ ॥ तीए पुरिसाणमाऊ तिन्नि य पलियाइं तह पमाणं च। तिन्नेव गाउयाइं आइएँ भणंति समयन्नू ॥ २ ॥ उवभोगपरीभोगा जम्मंतरसुकयबीयजाया उ।

१ चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः सैतस्या तु। एकान्तसुषमा खलु जिनैः सर्वैर्निर्दिष्टा ॥ १ ॥ तस्यां पुरुषाणामायुस्त्रीणि च पल्योपमानि तथा प्रमाणं च। श्रीण्येव गव्यूतानि आदौ भणन्ति समयज्ञाः ॥ २ ॥ उपभोगपरीभोगा जन्मान्तरसुकृतबीजजातास्तु।

सादिसपर्यवसिताद्यधिकारः सू. ४३

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥१९६॥

कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसं विणा तेसिं ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पयारा कप्पतरू समणसमयकेऊहिं । धीरेहिं विनिद्दिट्ठा मणोरहापूरगा एए ॥ ४ ॥ मत्तंगया य भिंगा तुडिअंगा दीव जोइ चित्तङ्गा । चित्तरसा मणियंगा गेहा-गारा अणिय(गि)णा य ॥ ५ ॥ मत्तंगएसु मज्जं सुहपेज्जं भायणाणि भिंगेसु । तुडियंगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगा-राणि ॥ ६ ॥ दीवसिहा जोइसनामया य निचं करंति उज्जोयं । चित्तंगेसु य मल्लं चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥ ७ ॥ मणियंगेसु य भूसणवराणि भवणाणि भवणरुक्खेसुं । आइण्णे(अणिगिणे)सु य इच्छियवत्थाणि बहुप्पगाराणि ॥८॥ एएसु य अन्नेसु य नरनारिगणाण ताणमुवभोगा । भवियपुणब्भवरहिया इय सव्वण्णू जिणा बिंति ॥ ९ ॥ तो तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीउ वीयरागेहिं । सुसमत्ति समक्खाया पवाहरूवेण धीरेहिं ॥ १० ॥ तीए पुरिसाणमाउं दोन्नि उ पलियाइं तह पमाणं च । दो चेव गाउयाइं आईए भणंति समयन्नू ॥ ११ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिंपि य

१ कल्पतरुसमूहात् भवन्ति क्लेशं विना तेषाम् ॥ ३ ॥ ते पुनर्दशप्रकाराः कल्पतरवः श्रमणसमयकेतुभिः । धीरैर्विनिर्दिष्टा मनोरथापूरका एते ॥ ४ ॥ मत्ताङ्गदाश्च भृङ्गास्त्रुटिताङ्गा दीपज्योतिश्चित्राङ्गाः । चित्ररसा मण्यङ्गाः गृहाकारा अनग्नाश्च ॥ ५ ॥ मत्ताङ्गदेषु मद्यं सुखपेयं भाजनानि भृङ्गेषु । त्रुटिताङ्गेषु च संगततुटितानि बहुप्रकाराणि ॥ ६ ॥ दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च नित्यं कुर्वन्त्युद्योतम् । चित्राङ्गेषु च माल्यं चित्ररसा भोजनार्थाय ॥ ७ ॥ मण्यङ्गेषु च भूषणवराणि भवनानि भवनवृक्षेषु । आकीर्णेषु चेप्सितानि च (प्रार्थितानि) वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ॥८॥ एतेषु चान्येषु च नरनारीगणानां तेषामुपभोगाः । भावि पुनर्भवरहिता इति सर्वज्ञा जिना ब्रुवते ॥ ९ ॥ ततस्त्रिस्रः सागरोपमकोटीकोटीमाना वीतरागैः । सुषमेति समाख्याता प्रवाहरूपेण धीरैः ॥ १० ॥ तस्यां पुरुषाणामायुः द्वे तु पल्योपमे तथा प्रमाणं च । द्वे एव गव्यूते आदौ भणन्ति समयज्ञाः ॥ ११ ॥ उपभोगपरिभोगास्तेषामपि च

सादिसपर्य-वसिताध्य-धिकारः सू. ४३

२०

॥१९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

कप्पपायवेहिंतो। होंति किलेसेण विणा पायं पुण्णाणुभावेणं ॥१२॥ तो सुसमदुस्समाए पवाहरूवेण कोडिकोडीओ। अयराण दोन्नि सिट्ठा जिणेहिँ जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमाउं एगं पलिअं तहा पमाणं च। एगं च गाउयं तीऍ आईए भणंति समयन्नू ॥ १४ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिंपि य कप्पपायवेहिंतो। होंति किलेसेण विणा नवरं पुण्णाणुभावेणं ॥ १५ ॥ सूसमदुसमावसेसे पढमजिणो धम्मनायगो भयवं। उप्पण्णो सुहपुण्णो सिप्पकलादंसओ उसभो ॥ १ ॥ तो दुसमसूसमूणा बायालीसाइ वरिससहस्सेहिं। सागरकोडाकोडी एमेव जिणेहिँ पण्णत्ता ॥१७॥ तीए पुरिसाणमाउं पुव्वपमाणेण तह पमाणं च। धणुसंखा निद्दिट्ठं विसेस सुत्ताओ नायव्वं ॥१८॥ उवभोगपरीभोगा पवरोसहिमाइएहिं विन्नेया। जिणचक्किवासुदेवा सव्वेऽवि इमाइ वोलीणा ॥ १९ ॥ इगवीससहस्साइं वासाणं दूसमा इमीए उ। जीवियमाणुवभोगाइयाइं दीसंति हायंति ॥ २० ॥ एत्तो य किलिट्ठयरा जीय-

सादिसपर्यवसिताध्यधिकारः सू. ४३

५

८

१ कल्पपादपेभ्यः। भवन्ति क्लेशेन विना प्रायः पुण्यानुभावेन ॥१२॥ तदा सुषमदुष्षमायां प्रवाहरूपेण कोटीकोट्यौ। अतरयोर्द्वे शिष्टे जिनैर्जितरागद्वेषैः ॥१३॥ तस्यां पुरुषाणामायुरेकं पल्योपमं तथा प्रमाणं च। एकं च गव्यूतं तस्यां पुरुषाणां आदौ भणन्ति समयज्ञाः ॥ १४ ॥ उपभोगपरीभोगास्तेषामपि च कल्पपादपेभ्यः। भवन्ति क्लेशेन विना नवरं पुण्यानुभावेन ॥ १५ ॥ सुषमदुष्षमावशेषे प्रथमजिनो धर्मनायको भगवान्। उत्पन्नः पूर्णशुभः शिल्पकलादर्शको वृषभः ॥ १६ ॥ ततः दुष्षमसुषमा ऊना द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः। सागरोपमकोटीकोटी एवमेव जिनैः प्रज्ञप्ता ॥ १७ ॥ तस्यां पुरुषाणामायुः पूर्वप्रमाणेन तथा प्रमाणं च। धनुःसंख्यया निर्दिष्टं विशेषः सूत्रात् ज्ञातव्यः ॥ १८ ॥ उपभोगपरीभोगाः प्रवरौषध्यादिभिर्विज्ञेयाः। जिनचक्रिवासुदेवाः सर्वेऽप्यस्यां व्यतिक्रान्ताः ॥ १९ ॥ एकविंशतिः सहस्राणि वर्षाणां दुष्षमाऽस्यां तु। जीवितमानोपभोगादिकानि दृश्यन्ते हीयमानानि ॥ २० ॥ अतश्च क्लिष्टतरा जीवित–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

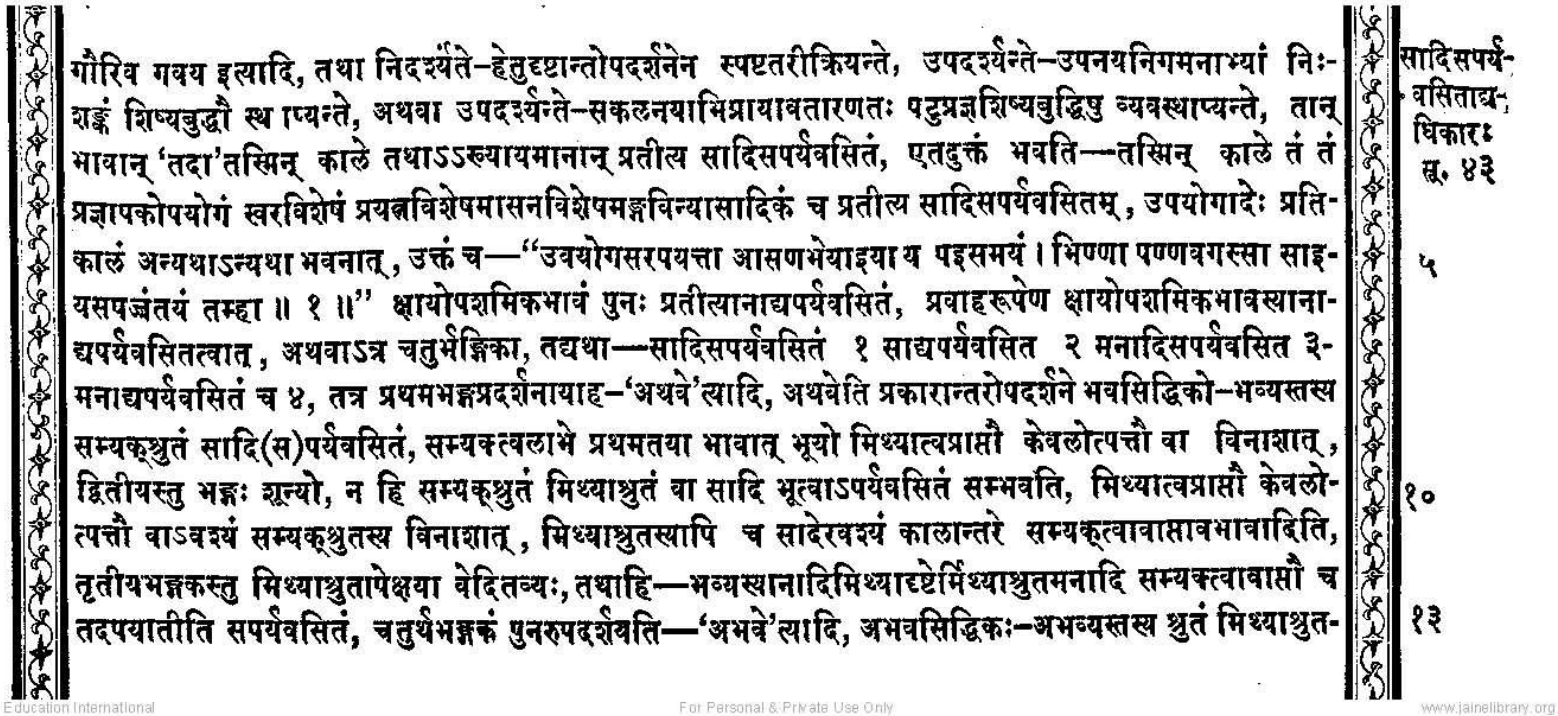
प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

पमाणाइएहिं निद्दिट्ठा । अइदूसमत्ति घोरा वाससहस्साइ इगवीसा ॥ २१ ॥ ओसप्पिणीए एसो कालविभागो जिणेहि निद्दिट्ठो । एसो चिय पडिलोमं विन्नेओस्सप्पिणीएऽवि ॥२२॥ एयं तु कालचक्कं सिस्सजणाणुग्गहट्ठि(ट्ठ)या भणिअं । संखेवेण महत्थो विसेस सुत्ताओ नायव्वो ॥ २३ ॥" "नोउसप्पिणी'त्यादि, नोत्सर्प्पिणीमवसर्प्पिणीं प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, महाविदेहेषु हि नोत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीरूपः कालः, तत्र च सदैवावस्थितं सम्यक्श्रुतमित्यनाद्यपर्यवसितं, तथा भावतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, 'ये'इत्यनिर्दिष्टनिर्देशे ये केचन यदा पूर्वाह्णादौ जिनैः प्रज्ञप्ता जिनप्रज्ञप्ता भावाः–पदार्थाः 'आघविज्जंति'त्ति प्राकृतत्वादाख्यायन्ते, सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते इत्यर्थः, प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदप्रदर्शनेनाख्यायन्ते,तेषां नामादीनां भेदाः प्रदर्श्यन्ते इत्यर्थः, प्ररूप्यन्ते नामादिभेदस्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते नामादीनां भेदानां स्वरूपमाख्यायते इति भावार्थः, यथा—"पंजायाणभिधेयं ठियमन्नत्थे तदत्थनिरवेक्खं । जाइच्छियं च नामं जाव दव्वं च पाएणं ॥ १ ॥ जं पुण तदत्थसुन्नं तदभिप्पाएण तारिसागारं । कीरइ व निरागारं इत्तरमियरं च सा ठवणा ॥ २ ॥" इत्यादि, तथा दर्श्यन्ते–उपमानमात्रोपदर्शनेन प्रकटीक्रियन्ते, यथा

१ प्रमाणादिकैर्निर्दिष्टा । अतिदुष्षमेति (माऽति) घोरा वर्षसहस्राणि एकविंशतिः ॥ २१ ॥ अवसर्पिण्यामेष कालविभागो जिनैर्निर्दिष्टः । एष एव प्रतिलोमो विज्ञेय उत्सर्पिण्यामपि ॥ २२ ॥ एतत्तु कालचक्रं शिष्यजनानुग्रहार्थाय भणितम् । संक्षेपेण महार्थो विशेषः सूत्रात् ज्ञातव्यः ॥ २३ ॥ २ पर्यायानभिधेयं स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम् । यादृच्छिकं च नाम यावद्द्रव्यं च प्रायेण ॥ १ ॥ यत्पुनस्तदर्थशून्यं तदभिप्रायेण तादृशाकारम् । क्रियते वा निराकारमित्वरमितरच्च सा स्थापना ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



गौरिव गवय इत्यादि, तथा निदर्श्यते–हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन स्पष्टतरीक्रियन्ते, उपदर्श्यन्ते–उपनयनिगमनाभ्यां निःशङ्कं शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते, अथवा उपदर्श्यन्ते–सकलनयाभिप्रायावतारणतः पटुप्रज्ञशिष्यबुद्धिषु व्यवस्थाप्यन्ते, तान् भावान् 'तदा' तस्मिन् काले तथाऽऽख्यायमानान् प्रतीत्य सादिसपर्यवसितं, एतदुक्तं भवति—तस्मिन् काले तं तं प्रज्ञापकोपयोगं स्वरविशेषं प्रयत्नविशेषमासनविशेषमङ्गविन्यासादिकं च प्रतीत्य सादिसपर्यवसितम्, उपयोगादेः प्रतिकालं अन्यथाऽन्यथा भवनात्, उक्तं च—"उवयोगसरपयत्ता आसणभेयाइया य पइसमयं। भिण्णा पण्णवगस्सा साइयसपज्जवंतयं तम्हा ॥ १ ॥" क्षायोपशमिकभावं पुनः प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, प्रवाहरूपेण क्षायोपशमिकभावस्यानाद्यपर्यवसितत्वात्, अथवाऽत्र चतुर्भङ्गिका, तद्यथा—सादिसपर्यवसितं १ साद्यपर्यवसित २ मनादिसपर्यवसित ३-मनाद्यपर्यवसितं च ४, तत्र प्रथमभङ्गप्रदर्शनायाह–'अथवे'त्यादि, अथवेति प्रकारान्तरोपदर्शने भवसिद्धिको–भव्यस्तस्य सम्यक्श्रुतं सादि(स)पर्यवसितं, सम्यक्त्वलाभे प्रथमतया भावात् भूयो मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वा विनाशात्, द्वितीयस्तु भङ्गः शून्यो, न हि सम्यक्श्रुतं मिथ्याश्रुतं वा सादि भूत्वाऽपर्यवसितं सम्भवति, मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वाऽवश्यं सम्यक्श्रुतस्य विनाशात्, मिथ्याश्रुतस्यापि च सादेरवश्यं कालान्तरे सम्यक्त्वावाप्तावभावादिति, तृतीयभङ्गकस्तु मिथ्याश्रुतापेक्षया वेदितव्यः, तथाहि—भव्यस्यानादिमिथ्यादृष्टेर्मिथ्याश्रुतमनादि सम्यक्त्वावाप्तौ च तदपयातीति सपर्यवसितं, चतुर्थभङ्गकं पुनरुपदर्शयति—'अभवे'त्यादि, अभवसिद्धिकः–अभव्यस्तस्य श्रुतं मिथ्याश्रुत-

सादिसपर्यवसिताद्यधिकारः सू. ४३

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनाद्यपर्यवसितं, तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्, एषा चतुर्भङ्गिका यथा श्रुतस्योक्ता तथा मतेरपि द्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्योऽन्यानुगतत्वात्, केवलमिह श्रुतस्य प्रक्रान्तत्वात्साक्षात्तस्यैव दर्शिता, अत्राह–ननु तृतीयभङ्गे चतुर्थ-भङ्गे वा श्रुतस्यानादिभाव उक्तः, स च जघन्य उत मध्यम आहोश्विदुत्कृष्टः?, उच्यते, जघन्यो मध्यमो वा न तूत्कृष्टो, यतस्तस्येदं मानं–'सव्वागासे'त्यादि, सर्वं च तदाकाशं च–सर्वाकाशं, लोकालोकाकाशमित्यर्थः, तस्य प्रदेशाः–निर्विभागा भागाः सर्वाऽऽकाशप्रदेशास्तेषामग्रं–प्रमाणं सर्वाकाशप्रदेशाग्रं तत्सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितम्-अनन्तशो गुणितमेकैक-स्मिन्नाकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायभावात् पर्यायाग्राक्षरं निष्पद्यते-पर्यायपरिमाणाक्षरं निष्पद्यते, इयमत्र भावना-सर्वा-काशप्रदेशपरिमाणं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशो गुणितं यावत्परिमाणं भवति तावत्प्रमाणं सर्वाकाशपर्यायाणामग्रं भवति,एकै-कस्मिन्नाकाशप्रदेशे यावन्तोऽगुरुलघुपर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्र पिण्डिता एतावन्तो भवन्तीत्यर्थः, एतावत्प्रमाणं चाक्षरं भवति,इह स्तोकत्वाद्धर्मास्तिकायादयः साक्षात्सूत्रे नोक्ताः, परमार्थतस्तु तेऽपि गृहीता द्रष्टव्याः,ततोऽयमर्थः–सर्वद्रव्यप्र-देशाग्रं सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशो गुणितं यावत्परिमाणं भवति तावत्प्रमाणं–सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं, एतावत्परिमाणं चाक्षरं भवति, तदपि चाक्षरं द्विधा—ज्ञानमकारादिवर्णजातं च, उभयत्रापि अक्षरशब्दप्रवृत्ते रूढत्वात्, द्विविधमपि चेह गृह्यते, विरोधाभावात्, ननु ज्ञानं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं सम्भवतु, यतो ज्ञानमिहाविशेषोक्तौ सर्वद्रव्यपर्यायपरिमा-णतुल्यताऽभिधानात् प्रक्रमाद्वा केवलज्ञानं ग्रहीष्यते, तच्च सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं घटत एव, तथाहि—यावन्तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

जगति रूपिद्रव्याणां ये गुरुलघुपर्याया ये च रूपिद्रव्याणामरूपिद्रव्याणां वाऽगुरुलघुपर्यायास्तान् सर्वानपि साक्षात्करतलकलितमुक्ताफलमिव केवलालोकेन प्रतिक्षणमवलोकते भगवान्, न च येन स्वभावेनैकं पर्यायं परिच्छिनत्ति तेनैव स्वभावेन पर्यायान्तरमपि, तयोः पर्याययोरेकत्वप्रसक्तेः, तथाहि—घटपर्यायपरिच्छेदनस्वभावं यज्ज्ञानं तद्यदा पटपर्यायं परिच्छेत्तुमलं तदा पटपर्यायस्यापि घटपर्यायरूपताऽऽपत्तिः, अन्यथा तस्य तत्परिच्छेदकत्वानुपपत्तेः, तथारूपस्वभावाभावात्, ततो यावन्तः परिच्छेद्याः पर्यायास्तावन्तः परिच्छेदकास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा वेदितव्याः, स्वभावाश्च पर्यायास्ततः पर्यायानधिकृत्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं केवलज्ञानमुपपद्यते, यदकारादिकं वर्णजातं तत्कथं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवितुमर्हति ?, तत्पर्यायराशेः सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्त्तमानत्वात्, तदयुक्तं, अकारादेरपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यत्वाद्, आह च भाष्यकृत्–"एक्केक्कमक्खरं पुण सपरपज्जायभेयओ भिन्नं । तं सव्वदव्वपज्जायरासिमाणं मुणेयव्वं ॥१॥" अथ कथं स्वपरपर्यायापेक्षया सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यता ?, उच्यते, इह अ अ अ इत्युदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च, पुनरप्येकैको द्विधा—सानुनासिको निरनुनासिकश्चेत्यकारस्य षड् भेदाः, तांश्च षड् भेदानकारः केवलो लभते, एवं ककारेणापि संयुक्तो लभते षड् भेदानेवं खकारेण एवं यावद्धकारेण, एवमेकैकेकेवलव्यञ्जनसंयोगे यथा षट् २ भेदान् लभते तथा सजातीयविजातीयव्यञ्जनद्विकसंयोगेऽपि, एवं स्वरान्तरसंयु-

१ एकैकमक्षरं पुनः स्वपरपर्यायभेदतो भिन्नम् । तत् सर्वद्रव्यपर्यायराशिमानं ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥

स्वपरपर्यायाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥१९९॥

क्तत्तद्व्यञ्जनसहितोऽप्यनेकान् भेदान् लभते, अपिच—एकैकोऽप्युदात्तादिको भेदः स्वरविशेषादनेकभेदो भवति, वाच्यभेदादपि समानवर्णश्रेणीकस्यापि शब्दस्य भेदो जायते, तथाहि—न येनैव स्वभावेन करशब्दः हस्तमाचष्टे तेनैव स्वभावेन किरणमपि, किन्तु स्वभावभेदेन, तथाऽकारोऽपि तेन तेन ककारादिना संयुज्यमानस्तं तमर्थं ब्रुवाणो भिन्नस्वभावो वेदितव्यः, ते च स्वभावा अनन्ता ज्ञातव्याः, वाच्यस्यानन्तत्वात्, एते च सर्वेऽप्यकारस्य स्वपर्यायाः, शेषास्तु सर्वेऽपि घटादिपर्याया आकारादिपर्यायाश्च परपर्यायाः, ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः, तेऽपि चाकारस्य सम्बन्धिनो द्रष्टव्याः, आह—ये स्वपर्यायास्ते तस्य सम्बन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्यायास्ते विभिन्नवस्त्वाश्रयत्वात् कथं तस्य सम्बन्धिनो व्यपदिश्यन्ते?, उच्यते, इह द्विधा सम्बन्धः—अस्तित्वेन नास्तित्वेन च, तत्रास्तित्वेन सम्बन्धः स्वपर्यायैर्यथा घटस्य रूपादिभिः, नास्तित्वेन सम्बन्धः परपर्यायैः,तेषां तत्रासम्भवात्, यथा घटावस्थायां मृदः पिण्डाकारेण पर्यायेण, यत एव च ते तस्य न सन्तीति नास्तित्वसम्बन्धेन सम्बद्धाः अत एव च ते परपर्याया इति व्यपदिश्यन्ते, अन्यथा तेषामपि तत्रास्तित्वसंभवात् स्वपर्याया एव ते भवेयुः, ननु ये यत्र न विद्यन्ते ते कथं तस्येति व्यपदिश्यन्ते?, न खलु धनं दरिद्रस्य न विद्यते इति तत्तस्य सम्बन्धि व्यपदेष्टुं शक्यं, मा प्रापत् लोकव्यवहारातिक्रमः, तदेतत् महामोहमूढमनस्कतासूचकं, यतो यदि नाम ते नास्तित्वसम्बन्धमधिकृत्य तस्येति न व्यपदिश्यन्ते तर्हि सामान्यतो न सन्तीति प्राप्तं, तथा च स्वरूपेणापि न भवेयुः, न चैतदुष्टमिष्टं वा, तस्मादवश्यं ते नास्तित्वसम्बन्धमङ्गीकृत्य तस्येति व्यपदेश्याः, धनमपि च नास्तित्वसम्बन्धमधिकृत्य दरिद्रस्येति व्यपदिश्यत एव, तथा च लोके वक्तारो–धन-

स्वपर्यायाः १५ २० ॥१९९॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मस्य दरिद्रस्य न विद्यते इति, यदपि चोक्तं–'न तत्तस्येति व्यपदेष्टुं शक्य'मिति, तत्रापि तदस्तित्वेन तस्येति व्यपदेष्टुं न शक्यं, न पुनर्नास्तित्वेनापि, ततो न कश्चिल्लौकिकव्यवहारातिक्रमः, ननु नास्तित्वमभावः अभावश्च तुच्छरूपः तुच्छत्वेन च सह कथं सम्बन्धः?, तुच्छस्य सकलशक्तिविकलतया सम्बन्धशक्तेरप्यभावात्, अन्यच्च–यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्वं तर्हि नास्तित्वेन सह सम्बन्धो भवतु, परपर्यायैस्तु सह कथं?, न खलु घटः पटाभावेन सम्बद्धः पटेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथाप्रतीतेरभावात्, तदेतदसमीचीनं, सम्यक्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, तथाहि— नास्तित्वं नाम तेन तेन रूपेणाभवनमिष्यते, तच्च तेन तेन रूपेणाभवनं वस्तुनो धर्मः, ततो नैकान्तेन तत्तुच्छरूपमिति न तेन सह सम्बन्धाभावः, तदपि च तेन तेन रूपेणाभवनं तं तं पर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा, तथाहि—यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेन तेन रूपेण मया न भवितव्यमिति सामर्थ्यात्तं तं पर्यायमपेक्षते इति सुप्रतीतमेतत्, ततस्तेन तेन पर्यायेणाभवनस्य तं तं पर्यायमपेक्ष्य सम्भवात्तेऽपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति तस्येति व्यपदिश्यन्ते, एवंरूपायां च विवक्षायां पटोऽपि घटस्य सम्बन्धी भवत्येव, पटमपेक्ष्य घटे पटरूपेणाभवनस्य भावात्, तथा च लौकिका अपि घटपटादीन् परस्परमितरेतराभावमधिकृत्य सम्बद्धान् व्यवहरन्तीत्यविगीतमेतत्, इतश्च ते परपर्यायास्तस्येति व्यपदिश्यन्ते–स्वपर्यायविशेषणत्वेन तेषामुपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणत्वेनोपयुज्यन्ते ते तस्य पर्याया यथा घटस्य रूपादयः पर्यायाः परस्परविशेषकाः, उपयुज्यन्ते चाकारस्य पर्यायाणां विशेषकतया घटादिपर्यायाः,

स्वपर-पर्यायाः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

तानन्तरेण तेषां स्वपर्यायव्यपदेशासम्भवात्, तथाहि–यदि ते परपर्याया न भवेयुस्तर्ह्यकारस्य स्वपर्यायाः स्वपर्याया इत्येवं न व्यपदिश्येरन्, परापेक्षया स्वव्यपदेशस्य भावात्, ततः स्वपर्यायव्यपदेशकारणतया तेऽपि परपर्यायाः तस्योपयोगिन इति तस्येति व्यपदिश्यन्ते, अपिच—सर्वं वस्तु प्रतिनियतस्वभावं, सा च प्रतिनियतस्वभावता प्रतियोग्यभावात्मकतोपनिबन्धना, ततो यावन्न प्रतियोगिविज्ञानं भवति तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मकं तत्त्वतो ज्ञातुं शक्यते, तथा च सति घटादिपर्यायाणामपि अकारस्य प्रतियोगित्वात्तदपरिज्ञाने नाकारो याथात्म्येनावगन्तुं शक्यते इति घटादिपर्याया अपि अकारस्य पर्यायाः, तथा चात्र प्रयोगः—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य सम्बन्धी, यथा घटस्य रूपादयः, घटादिपर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न याथात्म्येनोपलब्धिरिति ते तस्य सम्बन्धिनः, न चायमसिद्धो हेतुः, घटादिपर्यायरूपप्रतियोग्यपरिज्ञाने तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगादिति, आह च भाष्यकृत्—"जेसुं अनाएसु तओ न नज्जए नज्जए य नाएसुं। कह तस्स ते न धम्मा?, घडस्स रूवाइधम्मव्व ॥१॥" तस्माद् घटादिपर्याया अपि अकारस्य सम्बन्धिन इति स्वपरपर्यायापेक्षयाऽकारः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणः, एवमाकारादयोऽपि वर्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणा वेदितव्याः एवं घटादिकमपि प्रत्येकं सर्वं वस्तुजातं परिभावनीयं, न्यायस्य समानत्वात्, न चैतदनार्षं, यत उक्तमाचाराङ्गे—"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ

१ येष्वज्ञातेषु स को न ज्ञायते ज्ञायते च ज्ञातेषु। कथं तस्य ते न धर्माः घटस्य रूपादिधर्मा इव ॥ १ ॥

२०

॥२००॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से एगं जाणइ" अस्यायमर्थः–य एकं वस्तूपलभते सर्वपर्यायैः स नियमात्सर्वमुपलभते, सर्वोपलब्धिमन्तरेण विवक्षितस्यैकस्य स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनाऽवगन्तुमशक्यत्वात्, यश्च सर्वं सर्वात्मना साक्षादुपलभते स एकं स्वपरपर्यायभेदभिन्नं जानाति, तथाऽन्यत्राप्युक्तम्—"एको भावः सर्वथा येन दृष्टः,सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः। सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टा, एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥१॥" तदेवमकारादिकमपि वर्णजातं केवलज्ञानमिव सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः। अपिच–केवलज्ञानमपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं, यतस्तदात्मस्वभावरूपं न घटादिवस्तुस्वभावात्मकं,ततो ये घटादिस्वपर्यायास्ते तस्य परपर्यायाः ये तु परिच्छेदकत्वस्वभावास्ते, स्वपर्याया परपर्यायाः अपि च पूर्वोक्तयुक्तेस्तस्य सम्बन्धिन इति स्वपरपर्यायभेदभिन्नं, तथा चाह भाष्यकृत्—"वत्थुंसहावं पइ तंपि सपरपज्जायभेदभिन्नं तु। तं जेण जीयभावो भिन्ना य तओ घडाईया ॥१॥" ततः पर्यायपरिमाणचिन्तायां परमार्थतो न कश्चिदकारादिश्रुतकेवलज्ञानयोर्विशेषः, अयं तु विशेषः–केवलज्ञानं स्वपर्यायैरपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यमकारादिकं तु स्वपरपर्यायैरेव, तथाहि—अकारस्य स्वपर्यायाः सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमभागकल्पाः, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्ततमभागोनाः सर्वद्रव्यपर्यायाः, ततः स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणमकारादिकं भवति, आह च भाष्यकृत्—"सर्वे-

१ वस्तुस्वभावं प्रति तदपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं तु। तत् येन जीवभावः भिन्नाश्च ततो घटादिकाः ॥ १ ॥ २ स्वपर्यायैस्तु केवलेन तुल्यं न भवति न परैः। स्वपरपर्यायैस्तु तत्तुल्यं केवलेनैव ॥ १ ॥

स्वपर-पर्यायाः

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

पज्जाएहि उ केवलेण तुल्लं न होइ न परेहिं। सयपरपज्जाएहिं तु तं तुल्लं केवलेणेव ॥१॥" यथा चाकारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानि द्रष्टव्यानि, न्यायस्य समानत्वात्, इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षरमुच्यते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति तथापि श्रुताधिकारादिहाक्षरश्रुतज्ञानमवसेयं, श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभूतं ततो मतिज्ञानमपि, तदेवं यतः श्रुतज्ञानमकारादिकं चोत्कर्षतः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तच्च सर्वोत्कृष्टश्रुतकेवलिनो द्वादशाङ्गविदः सङ्गच्छते, न शेषस्य, ततोऽनादिभावः श्रुतस्य जन्तूनां जघन्यो मध्यमो वा द्रष्टव्यो,न तूत्कृष्ट इति स्थितम्। अपर आह—नन्वनादिभाव एव श्रुतस्य कथमुपपद्यते ?, यावता यदा प्रबलश्रुतज्ञानावरणस्यानर्द्धिनिद्रारूपदर्शनावरणादयः सम्भवन्ति तदा सम्भाव्यते साकल्येन श्रुतस्यावरणं, यथाऽवध्यादिज्ञानस्य, ततोऽवध्यादिज्ञानमिवादिमदेव युज्यते श्रुतमपि नानादिमदिति कथं तृतीयचतुर्थभङ्गसम्भवः ?, तत आह–'सव्वजीवाणंपि' सर्वजीवानामपि णमिति वाक्यालङ्कारे अक्षरस्य-श्रुतज्ञानस्य [श्रुतसंलुलितकेवलस्येति तु भाष्यकृत्]श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानावि नाभावि ततो मतिज्ञानस्यावि अनन्तभागो 'नित्योद्घाटितः' सर्वदैवानावृतः सोऽपि च—अनन्ततमो भागोऽनेकविधः, तत्र सर्वजघन्यश्चैतन्यमात्रं, तत्पुनः सर्वोत्कृष्टश्रुतावरणस्यानर्द्धिनिद्रोदयभावेऽपि नाव्रियते, तथाजीवस्वाभाव्यात्, तथा चाह—'जइ पुण'इत्यादि, यदि पुनः सोऽपि अनन्ततमो भाग आव्रियते तेन तर्हि जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात्, जीवो हि नाम चैतन्यलक्षणस्ततो यदि प्रबलश्रुतावरणस्यानर्द्धिनिद्रोदयभावे चैतन्यमात्रमप्यावियेत तर्हि जीवस्य स्वस्वभावपरित्यागादजीवतैव

१ श्रुतं स्वपर्यायैः अनन्तभागे इत्यध्याहार्यं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [१३६]

सम्पनीपद्येत, न चैतदृष्टमिष्टं वा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्कारात्, अत्रैव दृष्टान्तमाह—'सुट्ठुवी'त्यादि, सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः, इयमत्र भावना—यथा निबिडनिबिडतरमेघपटलैराच्छादितयोरपि सूर्याचन्द्रमसोर्नैकान्तेन तत्प्रभानाशः सम्पद्यते,सर्वस्य सर्वथा स्वभावापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात्, एवमनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरणकर्मपरमाणुभिरेकैकस्यात्मप्रदेशस्याऽऽवेष्टितपरिवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्या[प्य] भावो भवति, ततो यत्सर्वजघन्यं तन्मतिश्रुतात्मकमतः सिद्धोऽक्षरस्यानन्ततमो भागो नित्योद्घाटितः, तथा च सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य चानादिभावः प्रतिपद्यमानो न विरुध्यते इति स्थितं। 'सेत्त'मित्यादि, तदेतत् सादि सपर्यवसितमनाद्यपर्यवसितं च ॥

से किं तं गमिअं ?, २ दिट्ठिवाओ, अगमिअं कालिअं सुअं, सेत्तं गमिअं, सेत्तं अगमिअं। अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। से किं तं अंगबाहिरं ?, अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–आवस्सयं च आवस्सयवइरित्तं च। से किं तं आवस्सयं ?, आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–सामाइअं चउवीसत्थवो वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं, सेत्तं आवस्सयं। से किं तं आवस्सयवइरित्तं ?, आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–कालिअं च उक्कालिअं च। से किं तं उक्कालिअं ?, उक्कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा–दसवेआलिअं

आवश्यक-कालिको-त्कालिः कानि

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतस्य गमिक-अगमिक एवं अङ्गप्रविष्ठ-अनङ्गप्रविष्ठ भेदानां वर्णनम्

कप्पिआकप्पिअं चुल्लकप्पसुअं महाकप्पसुअं उववाइअं रायपसेणिअं जीवाभिगमो पण्णवणा महापण्णवणा पमायप्पमायं नंदी अणुओगदाराइं देविंदत्थओ तंदुलवेआलिअं चंदाविज्झयं सूरपण्णत्ती पोरिसिमंडलं मंडलपवेसो विज्जाचरणविणिच्छओ गणिविज्जा झाणविभत्ती मरणविभत्ती आयविसोही वीयरागसुअं संलेहणासुअं विहारकप्पो चरणविही आउरपच्चक्खाणं महापच्चक्खाणं एवमाइ, से तं उक्कालिअं। से किं तं कालिअं?, कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा–उत्तरज्झयणाइं दसाओ कप्पो ववहारो निसीहं महानिसीहं इसिभासिआइं जंबूदीवपन्नत्ती दीवसागरपन्नत्ती चंदपन्नत्ती खुड्डिआ विमाणपविभत्ती महल्लिआ विमाणपविभत्ती अंगचूलिआ वग्गचूलिआ विवाहचूलिआ अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए धरणोववाए वेसमणोववाए वेलंधरोववाए देविंदोववाए उट्ठाणसुए समुट्ठाणसुए नागपरिआवणिआओ निरयावलियाओ कप्पिआओ कप्पवडिंसिआओ पुप्फिआओ पुप्फचूलिआओ वण्हीदसाओ, एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स तहा संखिज्जाइं पइन्न-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [१३७]

गसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं चोद्दसपइन्नगसहस्साणि भगवओ वद्धमाणसामिस्स, अहवा जस्स जत्तिआ सीसा उप्पत्तिआए वेणइआए कम्मियाए पारिणामिआए चउव्विहाए बुद्धीए उववेआ तस्स तत्तिआइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेअबुद्धावि तत्तिआ चेव, सेत्तं कालिअं, सेत्तं आवस्सयवइरित्तं, से तं अणंगपविट्ठं। (सू० ४४)

आवश्यक-कालिको-त्कालि-कानि

अथ किं तद्गमिकं?, इहादिमध्यावसानेषु किञ्चिद्विशेषतो भूयो भूयस्तस्यैव सूत्रस्योच्चारणं गमः, तत्रादौ—"सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु" इत्यादि, एवं मध्यावसानयोरपि यथासम्भवं द्रष्टव्यं, गमा अस्य विद्यन्ते इति गमिकं, 'अतोऽनेकस्वरा'दिति मत्वर्थीय इकप्रत्ययः, उक्तं च चूर्णौ—"आई मज्झेऽवसाणे वा किंचिविसेसजुत्तं दुगाइसयग्गसो तमेव पढिज्जमाणं गमियं भन्नइ"त्ति, तच्च गमिकं प्रायो दृष्टिवादः, तथा चाह—'गमियं दिट्ठीवाओ,' तद्विपरीतमगमिकं, तच्च प्राय आचारादि कालिकश्रुतम्, असदृशपाठात्मकत्वात्, तथा चाह—'अगमियं कालियसुयं' 'सेत्त'मित्यादि,तदेतद्गमिकमगमिकं च। 'तं समासओ' इत्यादि, तद्गमिकमगमिकं च, अथवा तत्—सामान्यतः श्रुतमर्हदुपदेशानुसारि समासतः—सङ्क्षेपेण द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टमङ्गबाह्यं च, अत्राह—ननु पूर्वमेव चतु-

५

१०

१ आदौ मध्येऽवसाने वा किञ्चिद्विशेषयुक्तं व्यादिशतामभशः तदेव पठ्यमानं गमिकं भण्यते ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशभेदोद्देशाधिकारेऽङ्गप्रविष्टमङ्गबाह्यं चेत्युपन्यस्तं, तत्किमर्थं भूयस्तत्समासत इत्याद्युपन्यासेन तदेव न्यस्यते इति?, उच्यते, इह सर्वं एव श्रुतभेदा अङ्गानङ्गप्रविष्टरूपे भेदद्वय एवान्तर्भवन्ति, तत एतदर्थख्यापनार्थं भूयोऽप्युद्देशेनाभिधानं, अथवाऽङ्गानङ्गप्रविष्टमर्हदुपदेशानुसारि ततः प्राधान्यख्यापनार्थं भूयोऽपि तस्योद्देशेनाभिधानमित्यदोषः, तत्राङ्गप्रविष्टमिति–इह पुरुषस्य द्वादशाङ्गानि भवन्ति, तद्यथा—द्वौ पादौ द्वे जङ्घे द्वे उरुणी द्वे गात्रार्द्धे द्वौ बाहू ग्रीवा शिरश्च, एवं श्रुतरूपस्यापि परमपुरुषस्याऽऽचारादीनि द्वादशाङ्गानि क्रमेण वेदितव्यानि, तथा चोक्तं–"पायदुगं जंघोरू गायदुगद्धं तु दो य बाहू य। गीवा सिरं च पुरिसो बारस अङ्गो सुयविसिट्ठो ॥१॥" श्रुतपुरुषस्याङ्गेषु प्रविष्टमङ्गप्रविष्टम्–अङ्गभावेन व्यवस्थितमित्यर्थः, यत्पुनरेतस्यैव द्वादशाङ्गात्मकस्य श्रुतपुरुषस्य व्यतिरेकेण स्थितमङ्गबाह्यत्वेन व्यवस्थितं तदनङ्गप्रविष्टं, अथवा यद्गणधरदेवकृतं तदङ्गप्रविष्टं मूलभूतमित्यर्थः, गणधरदेवा हि मूलभूतमाचारादिकं श्रुतमुपरचयन्ति, तेषामेव सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसम्पन्नतया तद्रचयितुमीशत्वात्, न शेषाणां, ततः तत्कृतं सूत्रं मूलभूतमित्यङ्गप्रविष्टमुच्यते, यत्पुनः शेषैः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य विरचितं तदनङ्गप्रविष्टं, अथवा यत्सर्वदैव नियतमाचारादिकं श्रुतं तदङ्गप्रविष्टं, तथाहि–आचारादिकं श्रुतं सर्वेषु क्षेत्रेषु सर्वकालं चार्थं क्रमं चाधिकृत्यैवमेव व्यवस्थितं ततस्तदङ्गप्रविष्टमुच्यते, अङ्गप्रविष्टमङ्गभूतं मूलभूतमित्यर्थः, शेषं तु यच्छ्रुतं तदनियतमतस्तदनङ्गप्रविष्टमुच्यते, उक्तं च–

१५

२०

॥२०३॥

२३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"गणधरकयमङ्गकयं जं कय थेरेहिँ बाहिरं तं तु। नियय वऽङ्गपविट्ठं अणियय सुय बाहिरं भणियं ॥ १ ॥" तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथममङ्गबाह्यमधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह–'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदङ्गबाह्यं?, सूरिराह–अङ्गबाह्यं श्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आवश्यकं चावश्यकव्यतिरिक्तं च, तत्रावश्यं कर्त्तव्यं आवश्यकं, अवश्यकर्त्तव्यक्रियाऽनुष्ठानमित्यर्थः, अथवा गुणानामभिविधिना वश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकम्–अवश्यकर्त्तव्यसामायिकादिक्रियानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं श्रुतमपि आवश्यकं, चशब्दः स्वगतानेकभेदसूचकः। 'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदावश्यकं?, सूरिराह—आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'सामायिक'मित्यादि, निगदसिद्धं, 'सेत्त'मित्यादि तदेतदावश्यकं। 'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तं?, आचार्य आह–आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—कालिकमुत्कालिकं च, तत्र यद्दिवसनिशाप्रथमपश्चिमपौरुषीद्वय एव पठ्यते तत्कालिकं, कालेन निर्वृत्तं कालिकमितिव्युत्पत्तेः, यत्पुनः कालवेलावर्जं पठ्यते तदुत्कालिकं, आह च चूर्णिकृत्—"तत्थ कालियं जं दिणराई[ए]ण पढमचरमपोरिसीसु पढिज्जई। जं पुण कालवेलावज्जं पढिज्जइ तं उक्कालियं"ति, तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथममुत्कालिकमधिकृत्य प्रश्नसूत्रमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदुत्कालिकं श्रुतं?, सूरिराह—उत्कालिकं श्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–दशवैकालिकं तच्च सुप्रतीतं, तथा कल्पाकल्पप्रतिपादकमध्ययनं कल्पाकल्पं, तथा कल्पनं कल्पः–स्थ-

१ गणधरकृतमङ्गीकृतं यत्कृतं स्थविरैर्बाह्यं तत्तु। नियतं वाङ्गप्रविष्टमनियतश्रुतं बाह्यं भणितम् ॥ १ ॥

आवश्यक-कालिको त्कालि-कानि

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विरादिकल्पः तत्प्रतिपादकं श्रुतं कल्पश्रुतं, तत्पुनर्द्विभेदं, तद्यथा—'चुल्लकप्पसुयं महाकप्पसुयं' एकमल्पग्रन्थमल्पार्थं च द्वितीयं महाग्रन्थं महार्थं च, शेषा ग्रन्थविशेषाः प्रायः सुप्रतीताः, तथापि लेशतोऽप्रसिद्धान् व्याख्यास्यामः, तत्र 'पण्णवण'त्ति जीवादीनां पदार्थानां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना, सैव बृहत्तरा महाप्रज्ञापना, तथा प्रमादाप्रमादस्वरूपभेदफलविपाकप्रतिपादकमध्ययनं प्रमादाप्रमादं, तत्र प्रमादस्वरूपमेवं-प्रचुरकर्म्मेन्धनप्रभवनिरन्तराविध्यातशारीरमानसानेकदुःखहुतवहज्वालाकलापपरीतमशेषमेव संसारवासगृहं पश्यंस्तन्मध्यवर्त्त्यपि सति च तन्निर्गमनोपाये वीतरागप्रणीतधर्म्मचिन्तामणौ यतो विचित्रकर्मोदयसाचिव्यजनितात् परिणामविशेषादपश्यन्निव तद्भयमविगणय्य विशिष्टपरलोकक्रियाविमुख एवास्ते जीवः स खलु प्रमादः, तस्य च प्रमादस्य ये हेतवो मद्यादयस्तेऽपि प्रमादास्तत्कारणत्वात्, उक्तं च—"मज्जं विसय कसाया निद्दा विगहा य पंचमी भणिया । एए पंच पमाया जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥" एतस्य च पञ्चप्रकारस्यापि प्रमादस्य फलं दारुणो विपाकः, उक्तं च–"श्रेयो विषमुपभोक्तुं क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन । संसारबन्धनगतैर्न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥१॥ अस्यामेव हि जातौ नरमुपहन्याद्विषं हुताशो वा । आसेवितः प्रमादो हन्याज्जन्मान्तरशतानि ॥ २ ॥ यत्र प्रयान्ति पुरुषाः स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् । तत्र निमित्तमनार्यः प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥ संसारबन्धनगतो जातिजराव्याधिमरणदुःखार्त्तः । यन्नोद्विजते सत्त्वः सोऽप्य-

१ मद्यं विषयाः कषायाः निद्रा विकथा च पञ्चमी भणिता । एते पञ्च प्रमादा जीवं पातयन्ति संसारे ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [१३७]

पराधः प्रमादस्य ॥ ४ ॥ आज्ञाप्यते यदवशस्तुल्योदरपाणिपादवदनेन । कर्म च करोति बहुविधमेतदपि फलं प्रमादस्य ॥५॥ इह हि प्रमत्तमनसः सोन्मादमदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः । यत्कृत्यं तदकृत्वा सततमकार्येष्वभिपतन्ति ॥ ६ ॥ तेषामभिपतितानामुद्भ्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् । वर्द्धन्त एव दोषा वनतरव इवाम्बुसेकेन ॥७॥ दृष्ट्वाऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीतापि भ्राम्यति वायुना नौः । लब्ध्वा वैराग्यं भ्रष्टयोगः प्रमादाद्भूयो भूयः संसृतौ वम्भ्रमीति ॥८॥ एवं प्रतिपक्षद्वारेणाप्रमादस्यापि स्वरूपादयो वाच्याः, 'नन्दी'त्यादि सुगमं, 'सूरियपन्नत्ति'त्ति सूर्यचर्याप्रज्ञपनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा सूर्यप्रज्ञप्तिः, तथा 'पौरुषीमण्डल'मिति पुरुषः–शङ्कुः पुरुषशरीरं वा तस्मान्निष्पन्ना पौरुषी 'तत आगत' इत्यण्, आह च चूर्णिकृत्–'पुरिसोत्ति संकू पुरिससरीरं वा, तत्र पुरिसाओ निप्फन्ना पोरिसी' इति, इयमत्र भावना-सर्वस्यापि वस्तुनो यदा स्वप्रमाणच्छाया जायते तदा पौरुषी भवति, एतच्च पौरुषीप्रमाणमुत्तरायणस्यान्ते दक्षिणायनस्यादौ चैकं दिनं भवति, ततः परमङ्गुलस्याष्टावैकषष्टिभागा दक्षिणायने वर्द्धन्ते उत्तरायणे च हसन्ति, एवं मण्डले २ अन्याऽन्या पौरुषी यत्राध्ययने व्यावर्ण्यते तदध्ययनं पौरुषीमण्डलं, तथा यत्राध्ययने चन्द्रस्य सूर्यस्य च दक्षिणेषु उत्तरेषु च मण्डलेषु सञ्चरतो यथा मण्डलात् मण्डले प्रवेशो भवति तथा व्यावर्ण्यते तदध्ययनं मण्डलप्रवेशः, तथा 'विद्याचरणविनिश्चय' इति, विद्येति–ज्ञानं, तच्च सम्यग्दर्शनसहितमवगन्तव्यं, अन्यथा ज्ञानत्वायोगात्, चरणं–चारित्रमेतेषां फलविनिश्चयप्रतिपादको ग्रन्थो विद्याचरणविनिश्चयः, तथा 'गणिविज्जे'ति सवालवृद्धो गच्छो

उत्कालिकाधि० ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणः सोऽस्यास्तीति गणी–आचार्यस्तस्य विद्या–ज्ञानं गणिविद्या, सा चेह ज्योतिष्कनिमित्तादिपरिज्ञानरूपा वेदितव्या, ज्योतिष्कनिमित्तादिकं सम्यक् परिज्ञाय प्रव्राजनसामायिकारोपणोपस्थापनश्रुतोद्देशानुज्ञागणारोपणादिशानुज्ञाविहारक्रमादिषु प्रयोजनेषूपस्थितेषु प्रशस्ते तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रयोगे यत् यत्र कर्त्तव्यं भवति तत्तत्र सूरिणा कर्त्तव्यं, तथा चेन्न करोति तर्हि महान् दोषः, उक्तं च—"जोइसनिमित्तनाणं गणिणो पव्वावणाइकज्जेसुं । उवजुज्जइ तिहिकरणाइजाणणट्ठऽज्जहा दोसो ॥ १ ॥"[1] ततो यानि सामायिकादीनि प्रयोजनानि यत्र तिथिकरणादौ कर्त्तव्यानि भवन्ति तानि तत्र यस्यां ग्रन्थपद्धतौ व्यावर्ण्यन्ते सा गणिविद्या, तथा 'ध्यानविभक्ति'रिति ध्यानानि-आर्त्तध्यानादीनि तेषां विभजनं विभक्तिर्यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा ध्यानविभक्तिः, तथा मरणानि–प्राणत्यागलक्षणानि, तानि च द्विधा–प्रशस्तान्यप्रशस्तानि च, तेषां विभजनं–पार्थक्येन स्वरूपप्रकटनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा मरणविभक्तिः, तथाऽऽत्मनो–जीवस्यालोचनप्रायश्चित्तप्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्रकारेण विशुद्धिः–कर्मविगमलक्षणा प्रतिपाद्यते यस्यां ग्रन्थपद्धतौ साऽऽत्मविशुद्धिः, तथा 'वीतरागश्रुत'मिति सरागव्यपोहेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तद्वीतरागश्रुतं, तथा 'संलेखनाश्रुत'मिति द्रव्यभावसंलेखना यत्र श्रुते प्रतिपाद्यते तत्संलेखनाश्रुतं, तत्रोत्सर्गत इयं द्रव्यसं-

१ ज्योतिषनिमित्तज्ञानं गणिनः प्रव्राजनादिकार्येषु । उपयुज्यते तिथिकरणादिज्ञानार्थमन्यथा दोषः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [१३७]

लेखना—"चत्तारि विचित्ताइं विगईनिज्जूहियाइं चत्तारि। संवच्छरे उ दोन्नि उ एगंतरियं च आयामं ॥१॥ नाइवि-
गिट्ठो य तवो छम्मासे परिमियं च आयामं। अन्नेवि य छम्मासे होइ विगिट्ठं तवोकम्मं ॥२॥ वासं च कोडिसहियं आ-
यामं कट्टु आणुपुव्वीए। गिरिकंदरंमि गंतुं पायवगमणं अह करेइ ॥३॥"भावसंलेखना तु क्रोधादिकषायप्रतिपक्षाभ्यासः, उत्कालि-काधि०
तथा 'विहारकल्प'इति विहरणं विहारः तस्य कल्पो–व्यवस्था स्थविरकल्पादिरूपा यत्र वर्ण्यते ग्रन्थे स विहारकल्पः,
तथा ('चरणविधि'रिति) चरणं-चारित्रं तस्य विधिर्यत्र वर्ण्यते स चरणविधिः, तथा 'आतुरप्रत्याख्यान'मिति, आतुरः– ५
चिकित्साक्रियाव्यपेतस्तस्य प्रत्याख्यानं यत्राध्ययने विधिपूर्वकमुपवर्ण्यते तदातुरप्रत्याख्यानं, विधिश्चातुरस्य प्रत्याख्या-
नदानविषये चूर्णिकृतैवमुपदर्शितः—"गिलाणं किरियातीयं गीयत्था पच्चक्खावेंति दिणे २ दव्वहासं करेंता अंते य सव्व-
दव्वदायणाए भत्तवेरग्गं जणइत्ता भत्ते वितिण्हस्स भवचरिमपच्चक्खाणं कारवेंति"त्ति। तथा ('महाप्रत्याख्यान'मिति)
महत्प्रत्याख्यानं यत्र वर्ण्यते तन्महाप्रत्याख्यानं, इह चूर्णिकारेण कृता भावना दर्श्यते—"थेरकप्पेण जिणकप्पेण वा १०
विहरित्ता अंते थेरकप्पिया बारस वासे संलेहणं करेत्ता जिणकप्पिया पुण विहारेणेव संलीढा तहावि जहाजुत्तं संलेहणं

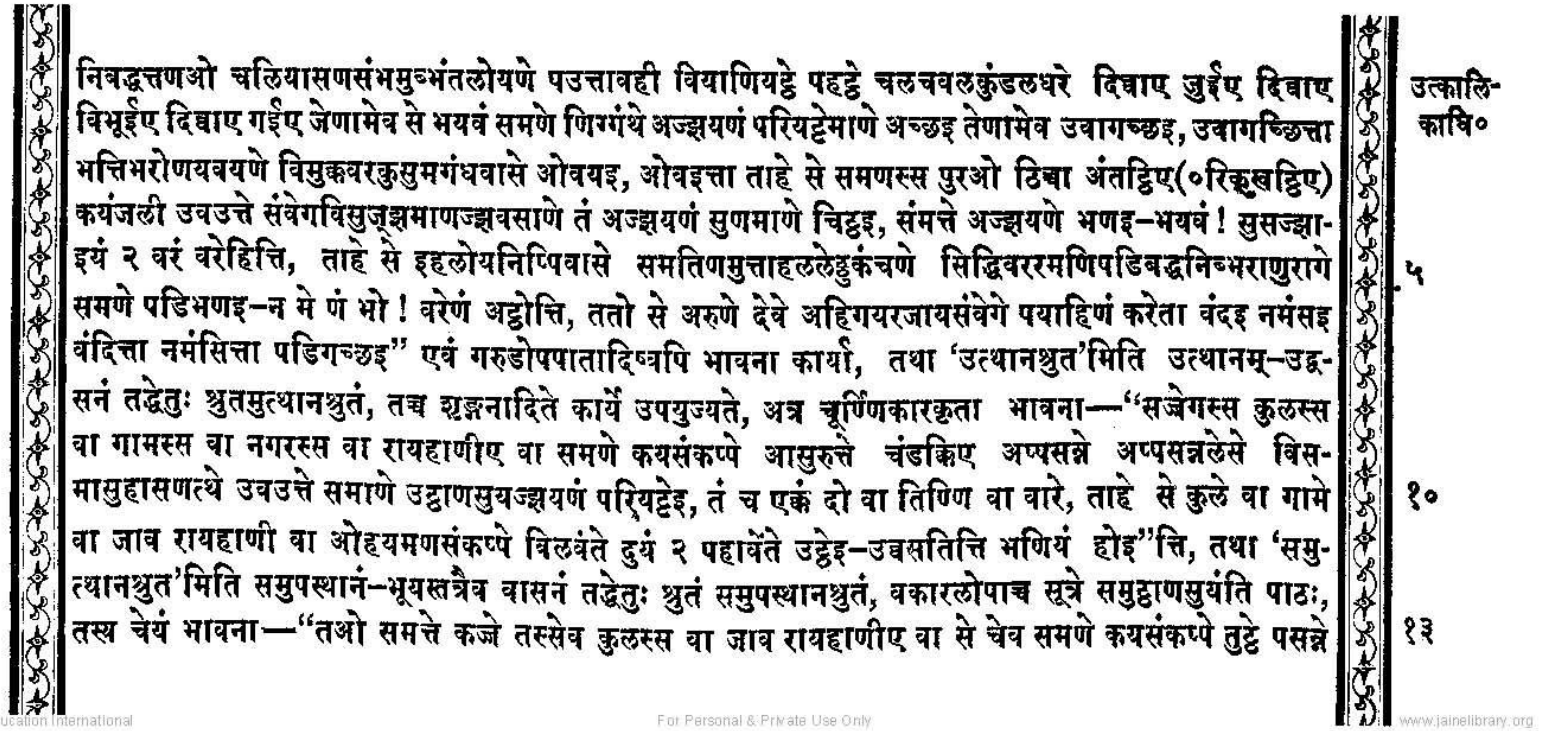
१ चत्वारि विचित्राणि विकृतिनिर्यूढानि चत्वारि। संवत्सरौ तु द्वौ तु एकान्तरितं चाचामाम्लम् ॥ १ ॥ नातिविकृष्टं च तपः षण्मासान् परिमितं चाचामाम्लम्। अन्यानपि षण्मासान् भवति विकृष्टं तपःकर्म ॥ २ ॥ वर्षं च कोटीसहितानि आचामाम्लानि कृत्वाऽऽनुपूर्व्या। गिरिकन्दरां तु गत्वा पादपोपगमनमथ करोति ॥ ३ ॥ २ ग्लानं क्रियातीतं गीतार्थाः प्रत्याख्यापयन्ति दिने दिने द्रव्यहासं कारयन्तोऽन्ते च सर्वद्रव्यदर्शनेन भक्तवैराग्यं जनयित्वा भक्ते वितृष्णस्य भव-चरमप्रत्याख्यानं कारयन्तीति। ३ स्थविरकल्पेन जिनकल्पेन वा विहृत्यान्ते स्थविरकल्पिका द्वादश वर्षाणि संलेखनां कृत्वा जिनकल्पिकाः पुनर्विहारेणैव संलिखिता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेत्ता निवाघायं सचेट्ठा चेव भवचरिमं पच्चक्खंति, एवं सवित्थरं जत्थज्झयणे वण्णिज्जइ तमज्झयणं महापच्चक्खाणं" [बृहट्टीकासत्कमेतत्]—'एवं तावदमून्यध्ययनानि–एतान्यध्ययनानि जहाभिहाणत्थाणि भणियाणि' 'सेत्त'मित्यादि, निगमनं, तदेतदुत्कालिकमुपलक्षणं चैतदिति, उक्तमुत्कालिकं। 'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्कालिकं?, कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथेत्यादि, 'उत्तराध्ययनानि' सवार्ण्यपि चाध्ययनानि प्रधानान्येव तथाऽप्यमून्येव रूढ्योत्तराध्ययनशब्दवाच्यत्वेन प्रसिद्धानि, 'दसाओ' इत्यादि प्रायो निगदसिद्धं, 'निशीथ'मिति निशीथवन्निशीथं, इदं प्रतीतमेव, तस्मात्परं यद्ग्रन्थार्थाभ्यां महत्तरं तन्महानिशीथं, तथा आवलिकाप्रविष्टानामितरेषां वा विमानानां प्रविभक्तिः—प्रविभजनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा विमानप्रविभक्तिः, सा चैका श्लोकग्रन्थार्था द्वितीया महाग्रन्थार्था, तत्राऽऽद्या क्षुल्लिका विमानप्रविभक्तिः द्वितीया महाविमानप्रविभक्तिः, तथा 'अङ्गचूलिके'ति अङ्गस्य–आचारादेश्चूलिकाऽङ्गचूलिका, चूलिका नाम उक्तानुक्तार्थसङ्ग्रहात्मिका ग्रन्थपद्धतिः, तथा 'वर्गचूलिके'ति वर्गः–अध्ययनानां समूहो यथाऽन्तकृद्दशास्वष्टौ वर्गा इत्यादि तेषां चूलिका, तथा व्याख्या—भगवती तस्याश्चूलिका व्याख्याचूलिका, तथा 'अरुणोपपात' इति, अरुणो नाम देवः तद्वक्तव्यताप्रतिपादको यो ग्रन्थः परावर्त्यमानश्च तदुपपातहेतुः सोऽरुणोपपातः, तथा चात्र चूर्णिकारो भावनामकार्षीत्–'जाहे तमज्झयणं उवउत्ते समाणे अणगारे परियट्टेइ ताहे से अरुणदेवे समय-

स्वापि यथायोगं संलेखनां कृत्वा निर्व्याघातं सचेष्टा एव भवचरमं प्रत्याख्यान्ति, एवं सविस्तरं यत्राध्ययने वर्ण्यते तदध्ययनं महाप्रत्याख्यानम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



निबद्धत्तणओ चलियासणसंभमुब्भंतलोयणे पउत्तावही वियाणियट्ठे पहट्ठे चलचवलकुंडलधरे दिवाए जुईए दिवाए विभूईए दिवाए गईए जेणामेव से भयवं समणे णिग्गंथे अज्झयणं परियट्टेमाणे अच्छइ तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तिभरोणयवयणे विमुक्कवरकुसुमगंधवासे ओवयइ, ओवइत्ता ताहे से समणस्स पुरओ ठिचा अंतट्ठिए(०रिक्खट्ठिए) कयंजली उवउत्ते संवेगविसुज्झमाणज्झवसाणे तं अज्झयणं सुणमाणे चिट्ठइ, संमत्ते अज्झयणे भणइ–भयवं! सुसज्झाइयं २ वरं वरेहित्ति, ताहे से इहलोयनिप्पिवासे समतिणमुत्ताहललेट्ठुकंचणे सिद्धिवररमणिपडिबद्धनिब्भराणुरागे समणे पडिभणइ–न मे णं भो! वरेणं अट्ठोत्ति, ततो से अरुणे देवे अहिगयरजायसंवेगे पयाहिणं करेता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पडिगच्छइ" एवं गरुडोपपातादिष्वपि भावना कार्या, तथा 'उत्थानश्रुत'मिति उत्थानम्–उद्भवनं तद्धेतुः श्रुतमुत्थानश्रुतं, तच्च शङ्खनादिते कार्ये उपयुज्यते, अत्र चूर्णिकारकृता भावना—"सजेगस्स कुलस्स वा गामस्स वा नगरस्स वा रायहाणीए वा समणे कयसंकप्पे आसुरुत्ते चंडकिए अप्पसन्ने अप्पसन्नलेसे विसमासुहासणत्थे उवउत्ते समाणे उट्ठाणसुयज्झयणं परियट्टेइ, तं च एकं दो वा तिण्णि वा वारे, ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा ओहयमणसंकप्पे विलवंते दुयं २ पहावेंते उट्ठेइ–उवसतित्ति भणियं होइ"त्ति, तथा 'समुत्थानश्रुत'मिति समुपस्थानं–भूयस्तत्रैव वासनं तद्धेतुः श्रुतं समुपस्थानश्रुतं, वकारलोपाच्च सूत्रे समुट्ठाणसुयंति पाठः, तस्य चेयं भावना—"तओ समत्ते कज्जे तस्सेव कुलस्स वा जाव रायहाणीए वा से चेव समणे कयसंकप्पे तुट्ठे पसन्ने

उत्कालिकावि० ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [१३७]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥२०७॥

पसन्नलेसे समसुहासणत्थे उवउत्ते समाणे समुट्ठाणसुयज्झयणं परियट्टेइ, तं च एकं दो तिन्नि वा वारे, ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा पहट्ठचित्ते पसत्थं मंगलं कलयलं कुणमाणे मंदाए गईए सललियं आगच्छइ समुवट्ठिए–आवासइत्तिवुत्तं भवइ, सम्मं उ(सु)वट्ठाणसुयंति वत्तवे वकारलोवाओ समुट्ठाणसुयंति भणियं, तहा जइ अप्पणावि पुव्वुट्ठियं गामाइ भवइ तहावि जइ से समणे एवंकयसंकप्पे अज्झयणं परियट्टेइ तओ पुणरवि आवासेइ" तथा 'नागपरियावणिय'त्ति नागाः—नागकुमारास्तेषां परिज्ञा यस्यां ग्रन्थपद्धतौ भवति सा नागपरिज्ञा, तस्याश्चेयं चूर्णिकृतोपदर्शिता भावना—"जाहे तं अज्झयणं समणे निग्गंथे परियट्टेइ ताहे अकयसंकप्पस्सवि ते नागकुमारा तत्थत्था चेव तं समणं परियाणंति-वंदंति नमंसंति बहुमाणं च करेंति, सिंगनादितकज्जेसु य वरदा भवंति" तथा 'निरयावलियाओ'त्ति यत्रावलिकाप्रविष्टा इतरे च नरकावासाः प्रसङ्गतस्तद्वासिनश्च नारास्तिर्यञ्चो वा वर्ण्यन्ते ता निरयावलिकाः, एकस्मिन्नपि ग्रन्थे वाच्ये बहुवचनं शब्दशक्तिस्वाभाव्यात्, यथा पञ्चाला इत्यादौ, तथा 'कल्पिका' इति याः सौधर्म्मादिकल्पगतवक्तव्यतागोचरा ग्रन्थपद्धतयस्ताः कल्पिकाः, एवं कल्पावतंसिका द्रष्टव्याः, नवरं तासामियं चूर्णिकृतोपदर्शिता भावना—'सोहम्मीसाणकप्पेसु जाणि कप्पविमाणाणि ताणि कप्पवडिंसताणि जासु वण्णिज्जंति तेसु कप्पवडिंसएसु विमाणेसु देवी जा जेण तवोविसेसेण उववण्णा एयंपि वण्णिज्जइ ताओ कप्पवडिंसियाओ वुच्चंति' तथा 'पुप्फिता'इति यासु ग्रन्थपद्धतिषु गृहवाससमुत्कलनपरित्यागेन प्राणिनः संयमभावपुष्पिताः सुखिता उषिता भूयः

उत्कालि-काधि०

२०

॥२०७॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयमभावपरित्यागतो दुःखाद्यवासिमुकुलनेन मुकुलिताः पुनस्तत्परित्यागेन पुष्पिताः प्रतिपाद्यन्ते ताः पुष्पिता उ- उत्कालि-
च्यन्ते, अधिकृतार्थविशेषप्रतिपादिकाः पुष्पचूडाः, तथा 'वृष्णिदशा' इति 'नाम्न्युत्तरपदस्य वे'ति लक्षणवशादादिप- काधि०
दस्यान्धकशब्दरूपस्य लोपः, ततोऽयं परिपूर्णः शब्दः—अन्धकवृष्णिदशा इति, अयं चान्वर्थः—अन्धकवृष्णिनराधि-
पकुले ये जातास्तेऽपि अन्धकवृष्णयः तेषां दशाः–अवस्थाश्चरितगतिसिद्धिगमनलक्षणा यासु ग्रन्थपद्धतिषु वर्ण्यन्ते ता
अन्धकवृष्णिदशाः, अथवाऽन्धवृष्णिवक्तव्यताप्रतिपादिका दशा-अध्ययनानि अन्धकवृष्णिदशाः, आह च चूर्णिकृत्– ५
"अन्धकवण्हिणो जे कुले अंधगसद्दलोवाओ वण्हिणो भणिया तेसिं चरियं गती सिज्झणा य जत्थ भणिया ता व-
ण्हिदसाओ, दसत्ति अवत्था अज्झयणा वा" इति। 'एवमाइया' इत्यादि, कियन्ति नामग्राहमाख्यातुं शक्यन्ते प्रकीर्ण-
कानि ?, तत एवमादीनि चतुरशीतिः प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हतः श्रीऋषभस्वामिनस्तीर्थकृतः, तथा सङ्ख्येयानि
प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमानामजितादीनां जिनवरेन्द्राणां तीर्थकराणाम् , एतानि च यस्य यावन्ति भवन्ति तस्य ता-
वन्ति प्रथमानुयोगतो वेदितव्यानि, तथा चतुर्दश प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हतो वर्द्धमानस्वामिनः, इयमत्र भाव- १०
ना—इह भगवत ऋषभस्वामिनश्चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्याः श्रमणा आसीरन् , ततः प्रकीर्णकरूपाणि चाध्ययनानि का-
लिकोत्कालिकभेदभिन्नानि सर्वसङ्ख्यया चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्यान्यभवन् , कथमिति चेत् ?, उच्यते, इह यद्भगवद्भ-
दुपदिष्टं श्रुतमनुसृत्य भगवन्तः श्रमणा विरचयन्ति तत्सर्वं प्रकीर्णकमुच्यते, अथवा श्रुतमनुसरतो यदात्मनो वचन- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कौशलेन धर्म्मदेशनादिषु ग्रन्थपद्धतिरूपतया भाषन्ते तदपि सर्वं प्रकीर्णकं, भगवत ऋषभस्वामिन उत्कृष्टा श्रमण-सम्पदा आसीत् चतुरशीतिसहस्रप्रमाणा, ततो घटन्ते प्रकीर्णकान्यपि भगवतश्चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्यानि, एवं मध्यम-तीर्थकृतामपि सङ्ख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि भावनीयानि, भगवतस्तु वर्द्धमानस्वामिनश्चतुर्दश श्रमणसहस्राणि, तेन प्र-कीर्णकान्यपि भगवतश्चतुर्दश सहस्राणि, अत्र द्वे मते–एके सूरयः प्रज्ञापयन्ति–इदं किल चतुरशीतिसहस्रादिकं ऋष-भादीनां तीर्थकृतां श्रमणपरिमाणं प्रधानसूत्रविरचनसमर्थान् श्रमणानधिकृत्य वेदितव्यं, इतरथा पुनः सामान्यश्रमणाः प्रभूततरा अपि तस्मिन् २ ऋषभादिकाले आसीरन्, अपरे पुनरेवं प्रज्ञापयन्ति–ऋषभादितीर्थकृतां जीवतामिदं च-तुरशीतिसहस्रादिकं श्रमणपरिमाणं प्रवाहतः पुनरेकैकस्मिन् तीर्थे भूयांसः श्रमणा वेदितव्याः, तत्र ये प्रधानसूत्रविर-चनशक्तिसमन्विताः सुप्रसिद्धतद्ग्रन्था अतत्कालिका अपि तीर्थे वर्त्तमानास्तत्राधिकृता द्रष्टव्याः, एतदेव मतान्तरमुप-दर्शयन्नाह–'अथवे'त्यादि, अथवेति प्रकारान्तरोपदर्शने, यस्य ऋषभादेस्तीर्थकृतो यावन्तः शिष्यास्तीर्थे औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्म्मजया पारिणामिक्या चतुर्विधया बुद्ध्या उपेताः-समन्विता आसीरन् तस्य–ऋषभादेस्तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राण्यभवन्, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव, अत्रैके व्याचक्षते–इह एकैकस्य तीर्थकृतस्तीर्थेऽपरि-माणानि प्रकीर्णकानि भवन्ति, प्रकीर्णककारिणामपरिमाणत्वात्, केवलमिह प्रत्येकबुद्धरचितान्येव प्रकीर्णकानि द्रष्टव्यानि, प्रकीर्णकपरिमाणेन प्रत्येकबुद्धपरिमाणप्रतिपादनात्, स्यादेतत्–प्रत्येकबुद्धानां शिष्यभावो विरुध्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [१३७]

तदेतदसमीचीनं, यतः प्रव्राजकाचार्यमेवाधिकृत्य शिष्यभावो निषिध्यते, न तु तीर्थकरोपदिष्टशासनप्रतिपन्नत्वेनापि, ततो न कश्चिद्दोषः, तथा च तेषां ग्रन्थः–"इह तित्थे अपरिमाणा पइन्नगा, पइन्नगसामिअपरिमाणत्तणओ, किं तु इह सुत्ते पत्तेयबुद्धपणीयं पइन्नगं भाणियव्वं, कम्हा ?, जम्हा पइण्णगपरिमाणेण चेव पत्तेयबुद्धपरिमाणं कीरइ, (इति) भणियं 'पत्तेयबुद्धावि तत्तिया चेव'त्ति, चोयग आह—'नणु पत्तेयबुद्धा सिस्सभावो य विरुज्झए' आयरिओ आह–तित्थयरपणीयसासणपडिवन्नत्तणओ तस्सीसा हवंती"ति, अन्ये पुनरेवमाहुः–सामान्येन प्रकीर्णकैस्तुल्यत्वात् प्रत्येकबुद्धानामत्राभिधानं, न तु नियोगतः प्रत्येकबुद्धरचितान्येव प्रकीर्णकानीति, 'सेत्त'मित्यादि, तदेतत्कालिकं, तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तं, तदेतदनङ्गप्रविष्टमिति ।

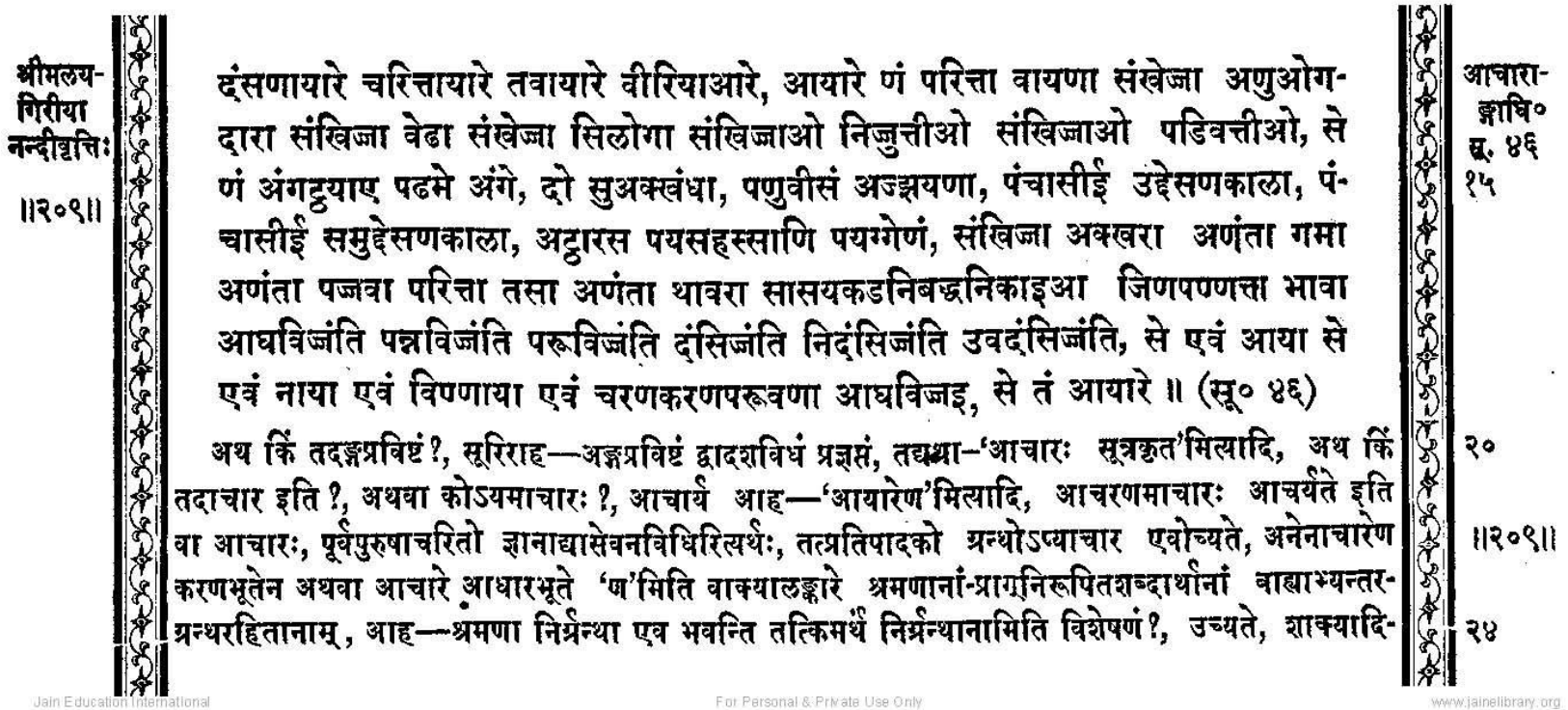
अङ्गाप्रविष्टानि सू. ४५

से किं तं अंगपविट्ठं ?, अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तंजहा–आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइअदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुअं ११ दिट्ठिवाओ १२ (सू० ४५) से किं तं आयारे ?, आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोअरविणयवेणइयसिक्खाभासाअभासाचरणकरणजायामायावित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–नाणायारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गप्रविष्ठ सूत्रस्य १२ भेदाः

प्रत सूत्रांक [४५-४६] दीप अनुक्रम [१३८--१३९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२०९॥

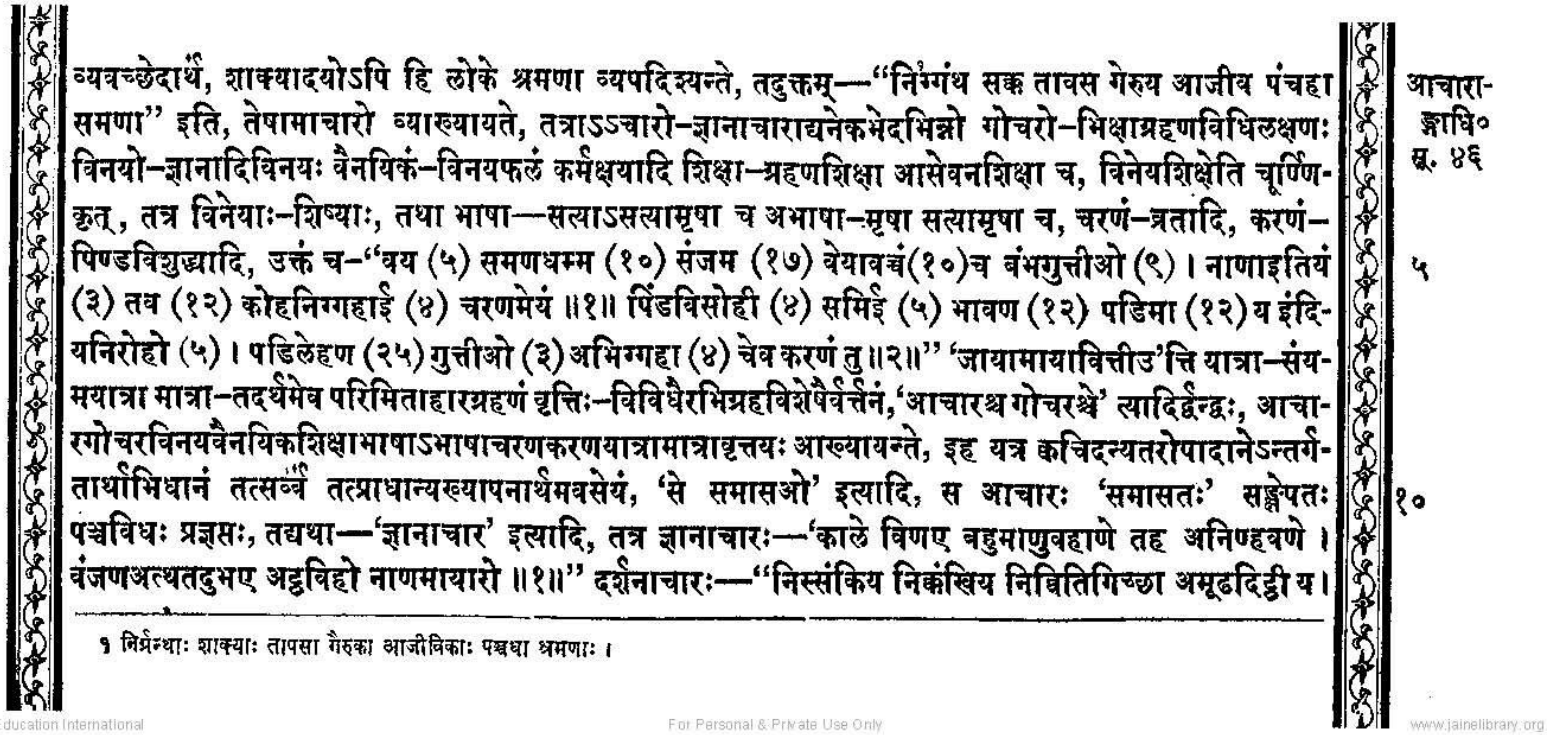
दंसणायारे चरित्तायारे तवायारे वीरियाआरे, आयारे णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओग-दारा संखिज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुअक्खंधा, पणुवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पं-चासीई समुद्देसणकाला, अट्ठारस पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया से एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं आयारे ॥ (सू० ४६)

अथ किं तदङ्गप्रविष्टं?, सूरिराह—अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–'आचारः सूत्रकृत'मित्यादि, अथ किं तदाचार इति?, अथवा कोऽयमाचारः?, आचार्य आह—'आयारेण'मित्यादि, आचरणमाचारः आचर्यते इति वा आचारः, पूर्वपुरुषाचरितो ज्ञानाद्यासेवनविधिरित्यर्थः, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽप्याचार एवोच्यते, अनेनाचारेण करणभूतेन अथवा आचारे आधारभूते 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे श्रमणानां-प्राग्निरूपितशब्दार्थानां बाह्याभ्यन्तर-ग्रन्थरहितानाम्, आह—श्रमणा निर्ग्रन्था एव भवन्ति तत्किमर्थं निर्ग्रन्थानामिति विशेषणं?, उच्यते, शाक्यादि-

आचारा-ङ्गादि० सू. ४६ १५ २० ॥२०९॥ २४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	आचार-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते



व्यवच्छेदार्थं, शाक्यादयोऽपि हि लोके श्रमणा व्यपदिश्यन्ते, तदुक्तम्—"निग्गंथ सक्क तावस गेरुय आजीव पंचहा समणा" इति, तेषामाचारो व्याख्यायते, तत्राऽऽचारो–ज्ञानाचाराद्यनेकभेदभिन्नो गोचरो–भिक्षाग्रहणविधिलक्षणः विनयो–ज्ञानादिविनयः वैनयिकं–विनयफलं कर्मक्षयादि शिक्षा–ग्रहणशिक्षा आसेवनशिक्षा च, विनेयशिक्षेति चूर्णिकृत्, तत्र विनेयाः–शिष्याः, तथा भाषा—सत्याऽसत्यामृषा च अभाषा–मृषा सत्यामृषा च, चरणं–व्रतादि, करणं–पिण्डविशुद्ध्यादि, उक्तं च–"वय (५) समणधम्म (१०) संजम (१७) वेयावच्चं(१०)च बंभगुत्तीओ (९) । नाणाइतियं (३) तव (१२) कोहनिग्गहाई (४) चरणमेयं ॥१॥ पिंडविसोही (४) समिई (५) भावण (१२) पडिमा (१२) य इंदियनिरोहो (५) । पडिलेहण (२५) गुत्तीओ (३) अभिग्गहा (४) चेव करणं तु ॥२॥" 'जायामायावित्तीउ'त्ति यात्रा–संयमयात्रा मात्रा–तदर्थमेव परिमिताहारग्रहणं वृत्तिः–विविधैरभिग्रहविशेषैर्वर्त्तनं,'आचारश्च गोचरश्चे' त्यादिर्द्वन्द्वः, आचारगोचरविनयवैनयिकशिक्षाभाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तयः आख्यायन्ते, इह यत्र क्वचिदन्यतरोपादानेऽन्तर्गतार्थाभिधानं तत्सर्व्वं तत्प्राधान्यख्यापनार्थमवसेयं, 'से समासओ' इत्यादि, स आचारः 'समासतः' सङ्क्षेपतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'ज्ञानाचार' इत्यादि, तत्र ज्ञानाचारः—'काले विणए बहुमाणुवहाणे तह अनिण्हवणे । वंजणअत्थतदुभए अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥" दर्शनाचारः—"निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।

१ निर्ग्रन्थाः शाक्याः तापसा गैरुका आजीविकाः पञ्चधा श्रमणाः ।

आचारा-ङ्गाधि० सू. ४६

५

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५-४६]

दीप अनुक्रम [१३८--१३९]

उववूह थिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥ १॥" प्रभावकाश्च तीर्थस्वामी द्रष्टव्याः—'अईसेस इड्ढियायरिय वाई धम्मकहि खवग नेमित्ती । विज्जा रायागणसंमया य तित्थं पभावंति ॥ १ ॥' चारित्राचारः—'पणिहाणजोगजुत्तो पंचहिं समिईहिँ तिहि उ गुत्तीहिं । एस चरित्तायारो अट्ठविहो होइ नायव्वो ॥ १ ॥' तपआचारः—'बारसविहंमिवि तवे अब्भिंतरबाहिरे जिणुवइट्ठे । अगिलाएँ अणाजीवी नायव्वो सो तवायारो ॥ १ ॥' वीर्याचारः—'अणिगूहिअबलविरिओ परक्कमइ जो जहुत्तमाउत्तो । जुंजइ य जहाथामं नायव्वो वीरियायारो ॥ १ ॥' 'आयारे ण'मित्यादि, आचारे 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे 'परित्ता' परिमिता तं तं प्रज्ञापकं पाठकं चाधिकृत्याद्यन्तोपलब्धिः अथवा उत्सर्प्पिणीमवसर्प्पिणीं वा प्रतीत्य परीता वा द्रष्टव्या, काऽसावित्याह–'वाचना' वाचना नाम सूत्रस्यार्थस्य वा प्रदानं, यदि पुनः सामान्यतः प्रवाहमधिकृत्य चिन्त्यते तदाऽनन्ता, तथा चाह चूर्णिकृत्–"सुत्तस्स अत्थस्स वा पयाणं वायणा, सा परित्ता, अणंता न भवति, आईअंतोवलंभणओ, अहवा उस्सप्पिणीओसप्पिणीकालं पडुच्च परित्ता, तीयाणागयसद्धं च पडुच्च अणंता" इति, तथा सङ्ख्येयान्यनुयोगद्वाराणि–उपक्रमादीनि, तानि ह्यध्ययनमध्ययनं प्रति प्रवर्त्तन्ते, अध्ययनानि च सङ्ख्येयानीतिकृत्वा, तथा सङ्ख्येया वेढा, वेढो नाम छन्दोविशेषः, तथा सङ्ख्येयाः श्लोकाः–सुप्रतीताः, तथा सङ्ख्येया निर्युक्तयः, तथा सङ्ख्येयाः प्रतिपत्तयः, प्रतिपत्तयो नाम द्रव्यादिपदार्थाभ्युपगमाः प्रतिमाद्यभिग्रहविशेषा वा, ताः सूत्रनिबद्धाः सङ्ख्येयाः, आह च चूर्णिकृत्–"दवाइपयत्थब्भुवगमा पडिमादभिग्गहवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५-४६]

दीप अनुक्रम [१३८--१३९]

सेसा वा पडिवत्तीओ सुत्तपडिबद्धा संखेज्ज"त्ति, 'से ण'मित्यादि, स आचारो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे अङ्गार्थतया–अङ्गाथत्वेन, अर्थग्रहणं परलोकचिन्तायां सूत्रादर्थस्य गरीयस्त्वख्यापनार्थं, अथवा सूत्रार्थोभयरूप आचार इति ख्यापनार्थं, प्रथममङ्गम्, एकारान्तता सर्वत्र मागधभाषालक्षणानुसरणाद्वेदितव्या, स्थापनामधिकृत्य प्रथममङ्गमित्यर्थः, तथा द्वौ श्रुतस्कन्धौ–अध्ययनसमुदायरूपौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, तद्यथा–"सत्थपरिन्ना (१) लोगविजओ (२) सीओसणिज्ज (३) संमत्तं (४)। आवंति (५) धुय (६) विमोहो (७) महापरिन्नो (८) वहाणसुयं (९)॥१॥" एतानि नवाध्ययनानि प्रथमश्रुतस्कन्धे, "पिंडेसण (१) सेज्जि (२) रिया (३) भासज्जाया (४) य वत्थ (५) पाएसा (६)। उग्गहपडिमा (७) सत्तसत्तिक्कया (१४) य भावण (१५) विमुत्ती (१६)॥१॥" अत्र 'सेज्जिरिय'त्ति शय्याऽध्ययनमीर्याऽध्ययनं च 'वत्थपाएस'त्ति वस्त्रैषणाध्ययनं पात्रैषणाध्ययनं च, अमूनि षोडशाध्ययनानि द्वितीयश्रुतस्कन्धे, एवमेतानि निशीथवर्जानि पञ्चविंशतिरध्ययनानि भवन्ति, तथा पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, कथमिति चेत्?, उच्यते, इहाङ्गस्य श्रुतस्कन्धस्याध्ययनस्योद्देशकस्य चैक एवोद्देशनकालः, एवं शस्त्रपरिज्ञायां सप्तोद्देशनकालाः लोकविजये षट् शीतोष्णीयाध्ययने चत्वारः सम्यक्त्वाध्ययने चत्वारः लोकसाराध्ययने षट् धुताध्ययने पञ्च विमोहाध्ययनेऽष्टौ महापरिज्ञायां सप्त उपधानश्रुते चत्वारः पिण्डैषणायामेकादश शय्यैषणाध्ययने त्रयः ईर्याध्ययने त्रयः भाषाध्ययने द्वौ वस्त्रैषणाध्ययने द्वौ पात्रैषणाध्ययने द्वौ अवग्रहप्रतिमाध्ययने द्वौ सप्त सप्तकिकाऽध्ययनेषु भावनायामेको विमुक्तावेकश्च,

आचाराङ्गाधिकारः सू. ४६

५

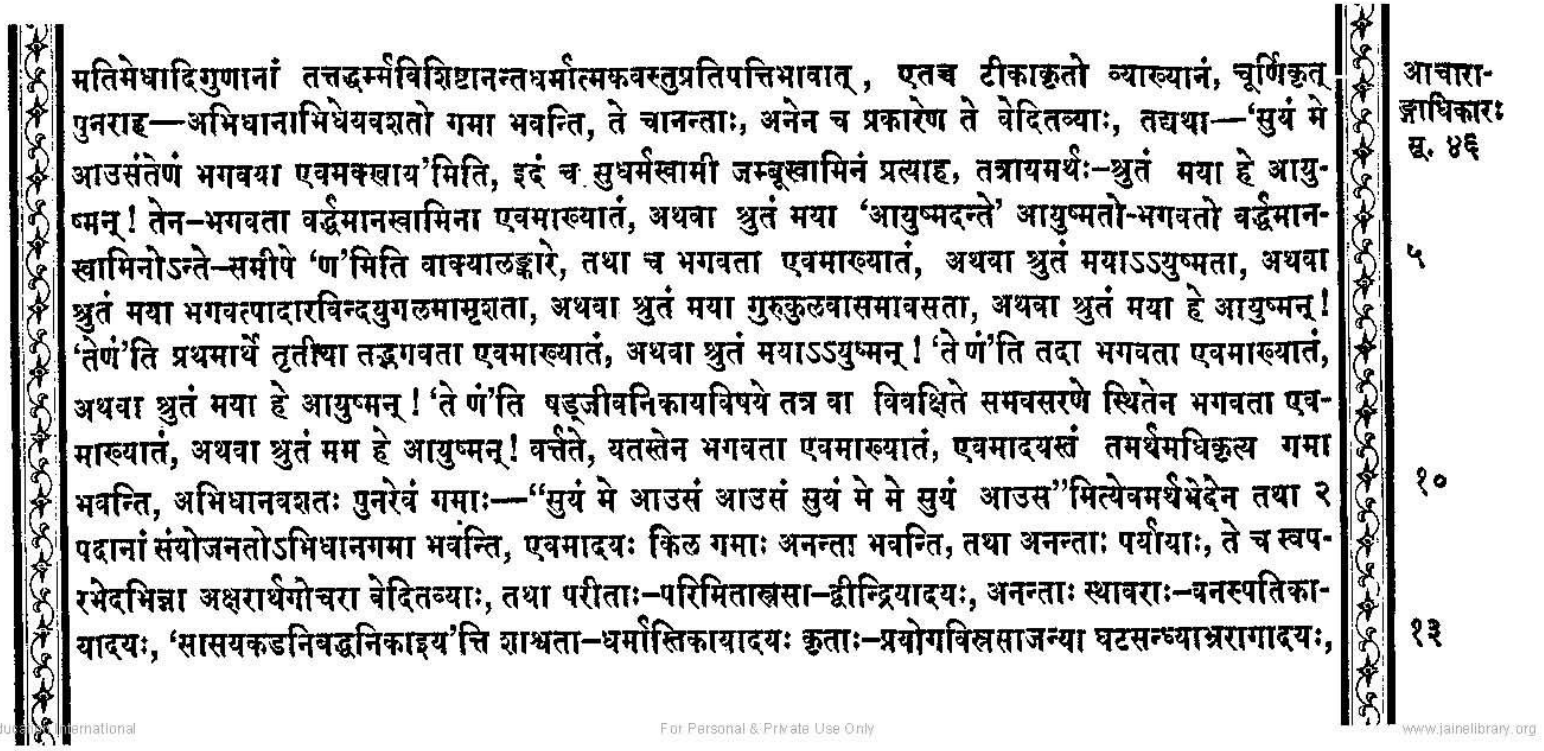
१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवमेते सर्वेऽपि पिण्डिताः पञ्चाशीतिर्भवन्ति, अत्र सङ्ग्रहगाथा—"सत्त (१) य छ २ चउ (३) चउरो (४) य छ (५) पंच (६) अट्ठेव(७) सत्त (८) चउरो (९) य । एक्कार (१०) त्तिय (११) तिय (१२) दो (१३) तिय दो (१४-१५-१६) सत्ते(२३)क्को(क्क) (२४) एक्को (२५) य ॥१॥" एवं समुद्देशनकाला अपि पञ्चाशीतिर्भावनीयाः, तथा पदाग्रेण–पदपरिमाणेनाष्टादश पदसहस्राणि, इह यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं, अत्र पर आह—यदाऽऽचारे द्वौ श्रुतस्कन्धौ पञ्चविंशतिरध्ययनानि पदाग्रेण चाष्टादश पदसहस्राणि तर्हि यद् भणितं–"नवबंभचेरमइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ"इति तद्विरुध्यते, अत्र हि नवब्रह्मचर्याध्ययनमात्र एवाष्टादशपदसहस्रप्रमाण आचार उक्तः, अस्मिंस्त्वध्ययने श्रुतस्कन्धद्वयात्मकः पञ्चविंशत्यध्ययनरूपोऽष्टादशपदसहस्रप्रमाण इति, ततः कथं न परस्परविरोधः ?, तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह द्वौ श्रुतस्कन्धौ पञ्चविंशतिरध्ययनानि एतत्समग्रस्याचारस्य परिमाणमुक्तं,अष्टादशः पदसहस्राणि पुनः प्रथमश्रुतस्कन्धस्य नवब्रह्मचर्याध्ययनस्य, विचित्रार्थनिबद्धानि हि सूत्राणि भवन्ति, अत एव चैषां सम्यगर्थावगमो गुरूपदेशतो भवति, नान्यथा, तथा चाह चूर्णिकृत्—"दो सुयखंधा पणवीसं अज्झयणाणि एयं आयरंगसहियस्स आयारस्स पमाणं भणियं,अट्ठारसपयसहस्सा पुण पढमसुयक्खंधस्स नवबंभचेरमइयस्स पमाणं, विचित्तअत्थनिबद्धाणि य सुत्ताणि गुरूवएसओ सिं अत्थो जाणियव्वो"त्ति । तथा सङ्ख्येयानि अक्षराणि, पदानां सङ्ख्येयत्वात्, तथा 'अणंता गमा' इति इह गमाः–अर्थगमा गृह्यन्ते, अर्थगमा नाम अर्थपरिच्छेदाः, ते चानन्ताः, एकस्मादेव सूत्रादतिशायि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



मतिमेधादिगुणानां तत्तद्धर्म्मविशिष्टानन्तधर्मात्मकवस्तुप्रतिपत्तिभावात्, एतच्च टीकाकृतो व्याख्यानं, चूर्णिकृत् पुनराह—अभिधानाभिधेयवशतो गमा भवन्ति, ते चानन्ताः, अनेन च प्रकारेण ते वेदितव्याः, तद्यथा—'सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खाय'मिति, इदं च सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह, तत्रायमर्थः–श्रुतं मया हे आयुष्मन्! तेन–भगवता वर्द्धमानस्वामिना एवमाख्यातं, अथवा श्रुतं मया 'आयुष्मदन्ते' आयुष्मतो-भगवतो वर्द्धमानस्वामिनोऽन्ते–समीपे 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, तथा च भगवता एवमाख्यातं, अथवा श्रुतं मयाऽऽयुष्मता, अथवा श्रुतं मया भगवत्पादारविन्दयुगलमामृशता, अथवा श्रुतं मया गुरुकुलवासमावसता, अथवा श्रुतं मया हे आयुष्मन्! 'तेणं'ति प्रथमार्थे तृतीया तद्भगवता एवमाख्यातं, अथवा श्रुतं मयाऽऽयुष्मन्! 'ते णं'ति तदा भगवता एवमाख्यातं, अथवा श्रुतं मया हे आयुष्मन्! 'ते णं'ति षड्जीवनिकायविषये तत्र वा विवक्षिते समवसरणे स्थितेन भगवता एवमाख्यातं, अथवा श्रुतं मम हे आयुष्मन्! वर्त्तते, यतस्तेन भगवता एवमाख्यातं, एवमादयस्तं तमर्थमधिकृत्य गमा भवन्ति, अभिधानवशतः पुनरेवं गमाः—"सुयं मे आउसं आउसं सुयं मे मे सुयं आउस"मित्येवमर्थभेदेन तथा २ पदानां संयोजनतोऽभिधानगमा भवन्ति, एवमादयः किल गमाः अनन्ता भवन्ति, तथा अनन्ताः पर्यायाः, ते च स्वपरभेदभिन्ना अक्षरार्थगोचरा वेदितव्याः, तथा परीताः–परिमितास्त्रसा–द्वीन्द्रियादयः, अनन्ताः स्थावराः–वनस्पतिकायादयः, 'सासयकडनिबद्धनिकाइय'त्ति शाश्वता–धर्मास्तिकायादयः कृताः–प्रयोगविस्रसाजन्या घटसन्ध्याभ्ररागादयः,

आचाराङ्गाधिकारः सू. ४६

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५-४६]

दीप अनुक्रम [१३८--१३९]

एते सर्वेऽपि त्रसादयो निबद्धाः–सूत्रे स्वरूपतः उक्ता निकाचिताः–निर्युक्तिसङ्ग्रहणिहेतूदाहरणादिभिरनेकधा व्यवस्थापिता जिनप्रज्ञसा भावाः–पदार्थाः आख्यायन्ते–सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते प्रज्ञाप्यन्ते–नामादिभेदोपन्यासेन प्ररूप्यन्ते–नामादीनामेव भेदानां सप्रपञ्चस्वरूपकथनेन पृथग् विभक्ताः ख्याप्यन्ते प्रदर्श्यन्ते–उपमाप्रदर्शनेन यथा गौरिव गवय इत्यादि निदर्श्यन्ते–हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन उपदर्श्यन्ते–निगमनेन शिष्यबुद्धौ निःशङ्कं व्यवस्थाप्यन्ते। साम्प्रतमाचाराङ्गग्रहणे फलं प्रतिपादयति—'से एव'मित्यादि, 'स' इति आचाराङ्गग्राहकोऽभिसम्बध्यते, एवमात्मा–एवंरूपो भवति, अयमत्र भावः—अस्मिन्नाचाराङ्गे भावतः सम्यगधीते सति तदुक्तक्रियानुष्ठानपरिपालनात्साक्षान्मूर्त्त इवाऽऽचारो भवतीति, आह च टीकाकृत्–"तदुक्तक्रियापरिणामाव्यतिरेकात्स एवाचारो भवतीत्यर्थः" इति, तदेवं क्रियामधिकृत्योक्तं, सम्प्रति ज्ञानमधिकृत्याह—'एवं नाय'त्ति यथाऽऽचाराङ्गे निबद्धा भावास्तथा तेषां भावानां ज्ञाता भवति, तथा 'एवं विन्नाय'त्ति यथा निर्युक्तिसङ्ग्रहणिहेतूदाहरणादिभिर्विविधं प्ररूपितास्तथा विविधं ज्ञाता भवति, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽचारे आख्यायते, 'सेत्तं आयारे' त्ति सोऽयमाचारः।

से किं तं सूअगडे?,सूअगडे णं लोए सूइज्जइ अलोए सूइज्जइ लोआलोए सूइज्जइ जीवा सूइज्जन्ति अजीवा सूइज्जंति जीवाजीवा सूइज्जंति ससमए सूइज्जइ परसमए सूइज्जइ ससमयपरसमए सूइज्जइ, सूअगडे णं असीअस्स किरियावाइसयस्स चउरासीइए अकिरिआवाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृत्-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

अवाईणं बत्तीसाए वेणइअवाईणं तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडिअसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठा-
विज्जइ, सूअगडे णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा
संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए बिइए अंगे दो सुअक्खंधा
तेवीसं अज्झयणा तित्तीसं उद्देसणकाला तित्तीसं समुद्देसणकाला छत्तीसं पयसहस्साणि पय-
ग्गेणं संखिज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयक-
डनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जति निदंसिज्जंति उवदं-
सिज्जंति, से एवं आया से एवं नाया से एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ,
सेत्तं सूअगडे २ (सू० ४७)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्सूत्रकृतं ?, 'सूच पैशून्ये' सूचनात्सूत्रं निपातनाद्रूपनिष्पत्तिः, भावप्रधानश्चायं सूत्रशब्दः, ततोऽयमर्थः—सूत्रेण कृतं, सूत्ररूपतया कृतमित्यर्थः, यद्यपि च सर्वमङ्गं सूत्ररूपतया कृतं तथापि रूढिवशादेतदेव सूत्रकृतमुच्यते, न शेषमङ्गं, आचार्य आह—सूत्रकृतेन अथवा सूत्रकृते 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे लोकः सूच्यते इत्यादि निगदसिद्धं यावत् 'असीयस्स किरियावाइसयस्से'त्यादि, अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य चतुर-

सूत्रकृताङ्गाधिकारः सू. ४७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

शीतेरक्रियावादिनां सप्तषष्टेरज्ञानिकानां द्वात्रिंशतो वैनयिकानां सर्वसङ्ख्यया त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां पाषण्डिशतानां 'व्यूहं' प्रतिक्षेपं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते । तत्र न कर्त्तारमन्तरेण क्रिया पुण्यबन्धादिलक्षणा सम्भवति तत एवं परिज्ञाय तां क्रियाम्–आत्मसमवायिनीं वदन्ति तच्छीलाश्च ये ते क्रियावादिनः, ते पुनरात्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणेनामुनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः, जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरापुण्यापुण्यमोक्षरूपान् नव पदार्थान् परिपाट्या पट्टिकादौ विरचय्य जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदावुपन्यसनीयौ, तयोरधो नित्यानित्यभेदौ, तयोरप्यधः कालेश्वरात्मनियतिस्वभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चैवं विकल्पाः कर्त्तव्याः, तद्यथा—अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पः, अस्य च विकल्पस्यायमर्थः–विद्यते स्वत्वयमात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च कालतः कालवादिनो मते, कालवादिनश्च नाम ते मन्तव्या ये कालकृतमेव सर्वं जगत् मन्यन्ते, तथा च ते आहुः—न कालमन्तरेण चम्पकाशोकसहकारादिवनस्पतिकुसुमोद्गमफलबन्धादयो हिमकणानुषक्तशीतप्रपातनक्षत्रगर्भाधानवर्षादयो वा ऋतुविभागसम्पादिता बालकुमारयौवनवलिपलितागमादयो वाऽवस्थाविशेषा घटन्ते, प्रतिनियतकालविभाग एव तेषामुपलभ्यमानत्वात्, अन्यथा सर्वमव्यवस्थया भवेत्, न चैतद् दृष्टमिष्टं वा, अपिच—मुद्गपक्तिरपि न कालमन्तरेण लोके भवन्ती दृश्यते, किन्तु कालक्रमेण, अन्यथा स्थालीन्धनादिसामग्रीसम्पर्कसम्भवे प्रथमसमयेऽपि तस्या भावप्रसङ्गो, न च भवति, तस्माद्यद्यत्कृतकं तत्सर्वं कालकृतमिति, तथा चोक्तम्—"न कालव्यतिरेकेण, गर्भबालशु-

१५ २० ॥२१३॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भादिकम् । यत्किञ्चिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किञ्च कालादृते नैव, मुद्गपक्तिरपीक्ष्यते । स्थाल्या- दिसन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मता ॥२॥ कालाभावे च गर्भादि, सर्वं स्यादव्यवस्थया । परेष्टहेतुसद्भावमात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ कालः पचति भूतानि, कालः संहरति प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥" अत्र 'परेष्टहेतुसद्भावमात्रादि'ति पराभिमतवनितापुरुषसंयोगादिमात्ररूपहेतुसद्भावमात्रादेव 'तदुद्भवादि'ति गर्भाद्युद्भवप्रसङ्गादिति, तथा कालः पचति–परिपाकं नयति परिणतिं नयति 'भूतानि' पृथिव्यादीनि, तथा कालः संहरति प्रजाः–पूर्वपर्यायात् प्रच्याव्य पर्यायान्तरेण प्रजालोकान् स्थापयति, तथा कालः सुप्तेषु जनेषु जागर्त्ति, काल एव तं तं सुप्तं जनमापदो रक्षतीति भावः, तस्माद् हिः–स्फुटं दुरतिक्रमः अपाकर्तुमशक्यः काल इति । उक्तेनैव प्रकारेण द्वितीयोऽपि विकल्पो वक्तव्यो, नवरं कालवादिन इति वक्तव्ये ईश्वरवादिन इति वक्तव्यं, तद्यथा—अस्ति जीवः स्वतो नित्य ईश्वरतः, ईश्वरवादिनश्च सर्वं जगदीश्वरकृतं मन्यन्ते, ईश्वरं च सहसिद्धज्ञानवैराग्यधर्म्मैश्वर्यरूपचतु- तुष्टयं प्राणिनां स्वर्गापवर्गयोः प्रेरकमिति, तदुक्तम्—"ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥१॥ अन्यो(ज्ञो) जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ २ ॥" इत्यादि, एवं तृतीयो विकल्प आत्मवादिनां, आत्मवादिनो नाम 'पुरुष एवेदं सर्व'मित्यादि प्रतिपन्नाः । चतुर्थो विकल्पो नियतिवादिनां, ते ह्येवमाहुः–नियतिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यद्वशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव

क्रियावाद्य- धिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

रूपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा, तथाहि—यद्यदा यतो भवति तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यकारणभावव्यवस्था प्रतिनियतरूपव्यवस्था च न भवेत्, नियामकाभावात्, तत एव कार्यनैयत्यतः प्रतीयमानामिमां नियतिं को नाम प्रमाणकुशलो बाधितुं क्षमते?, मा प्रापदन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघातप्रसङ्गः, तथा चोक्तम्—"नियतेनैव रूपेण, सर्वे भावा भवन्ति यत्। ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदैव यतो यावत्तत्तदैव ततस्तथा। नियतं जायते न्यायात् (नान्यात्), क एनां बाधितुं क्षमः? ॥२॥" पञ्चमो विकल्पः स्वभाववादिनां, ते हि स्वभाववादिन एवमाहुः–इह सर्वे भावाः स्वभाववशादुपजायन्ते, तथाहि–मृदः कुम्भो भवति न पटादि, तन्तुभ्योऽपि पट उपजायते न कुम्भादि, एतच्च प्रतिनियतभवनं न तथास्वभावतामन्तरेण घटाकोटीसण्टङ्कमाटीकते, तस्मात् सकलमिदं स्वभावकृतमवसेयं, अपिच–आस्तामन्यत् कार्यजातं इह मुद्गपक्तिरपि न स्वभावमन्तरेण भवितुमर्हति, तथाहि—स्थालीन्धनकालादिसामग्रीसम्भवेऽपि न काङ्कटुकमुद्गानां पक्तिरुपलभ्यते, तस्माद्यद्यद्भावे भवति यदभावे च न भवति तत्तदन्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्कृतमिति स्वभावकृता मुद्गपक्तिरप्येष्टव्या, ततः सकलमेवेदं वस्तुजातं स्वभावहेतुकमवसेयमिति। तत एवं स्वत इति पदेन लब्धाः पञ्च विकल्पाः, एवं परत इत्यनेनापि पञ्च लभ्यन्ते, परत इति–परेभ्यो व्यावृत्तेन रूपेण विद्यते खल्वयमात्मेत्यर्थः, एवं नित्यत्वापरित्यागेन दश विकल्पा लब्धाः, एवमनित्यपदेनापि दश, सर्वे मिलिता विंशतिः, एते च जीवपदार्थेन लब्धाः, एवमजीवादिष्वष्टसु पदार्थेषु प्रत्येकं

२०

॥२१४॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

विंशतिर्विंशतिर्विकल्पा लभ्यन्ते, ततो विंशतिर्नवगुणिताः शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनां भवति॥ तथा न कस्यचित्प्र- क्रियावाद- तिक्षणमनवस्थितस्य पदार्थस्य क्रिया सम्भवति उत्पत्त्यनन्तरमेव विनाशादित्येवं ये वदन्ति तेऽक्रियावादिनः, तथा अधिकारः चाहुः एके–"क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां कुतः क्रिया?। भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥१॥" एते चात्मादिनास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिसङ्ख्या द्रष्टव्याः,पुण्यापुण्यवर्जितशेषजीवाजीवादिपदार्थ- सप्तकन्यासस्तथैव च जीवादिसप्तकस्याधः प्रत्येकं स्वपरविकल्पोपादानं, असत्त्वादात्मनो नित्यानित्यविकल्पौ न स्तः, ५ कालादीनां च पञ्चानामधस्तात्षष्ठी यदृच्छा न्यस्यते, इह यदृच्छावादिनः सर्वेऽप्यक्रियावादिनः एव, न केचिदपि क्रि- यावादिनः, ततः प्राक् यदृच्छा नोपन्यस्ता, तत एवं विकल्पाभिलापः–नास्ति जीवः स्वतः कालत इति इत्येको विकल्पः, एवमीश्वरादिभिरपि यदृच्छापर्यन्तैः, सर्वे मिलिताः षड् विकल्पाः, अमीषां च विकल्पानामर्थः प्राग्वद्भा- वनीयः, नवरं यदृच्छात इति यदृच्छावादिनां मते, अथ के ते यदृच्छावादिनः?, उच्यते, इह ये भावानां सन्ताना- पेक्षया न प्रतिनियतं कार्यकारणभावमिच्छन्ति किन्तु यदृच्छया ते यदृच्छावादिनः, तथा च ते एवमाहुः—"न १० खलु प्रतिनियतो वस्तूनां कार्यकारणभावः, तथाप्रमाणेनाग्रहणात्, तथाहि—शालूकादपि जायते शालूको गोम- यादपि जायते शालूकः वह्नेरपि वह्निरुपजायते अरणिकाष्ठादपि धूमादपि जायते धूमोऽग्नीन्धनसम्पर्कादपि जायते कन्दादपि जायते कदली बीजादपि वटादयो बीजादुपजायन्ते शाखैकदेशादपि, ततो न प्रतिनियतः क्वचिदपि १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कार्यकारणभाव इति यदृच्छातः क्वचित्किञ्चिद्भवतीति प्रतिपत्तव्यं, न खल्वन्यथा वस्तुसद्भावं पश्यन्तोऽन्यथाऽऽत्मानं प्रेक्षावन्तः परिक्लेशयन्तीति, यथा च स्वतः षड्विकल्पा लब्धाः तथा नास्ति परतः कालत इत्येवमपि षड्विकल्पा लभ्यन्ते, सर्वेऽपि मिलिता द्वादश विकल्पा जीवपदे लब्धाः, एवमजीवादिषु षट्सु पदार्थेषु प्रत्येकं द्वादश २ विकल्पा लभ्यन्ते, ततो द्वादशभिः सप्त गुणिताश्चतुरशीतिर्भवन्ति अक्रियावादिनां विकल्पाः ॥ तथा कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीति अज्ञानिकाः, 'अतोऽनेकस्वरा'दिति मत्वर्थीय इकप्रत्ययः, अथवाऽज्ञानेन चरन्तीति अज्ञानिकाः–असञ्चिन्त्यकृतबन्धवैफल्यादिप्रतिपत्तिलक्षणाः, तथाहि ते एवमाहुः–न ज्ञानं श्रेयः,तस्मिन् सति परस्परं विवादयोगतश्चित्तकालुष्यादिभावतो दीर्घतरसंसारप्रवृत्तेः, तथाहि—केनचित्पुरुषेणान्यथा देशिते सति वस्तुनि विवक्षितो ज्ञानी ज्ञानगर्वाध्मातमानसस्तस्योपरि कलुषचित्तस्तेन सह विवादमारभते, विवादे च क्रियमाणे तीव्रतीव्रतरचित्तकालुष्यभाव(स्त)तोऽहङ्कारः ततश्च प्रभूततराशुभकर्म्मबन्धसम्भवः, तस्माच्च दीर्घतरः संसारः, तथा चोक्तम्—"अन्नेण अन्नहा देसियंमि भावंमि नाणगव्वेणं। कुणइ विवायं कलुसियचित्तो तत्तो य से बंधो ॥ १ ॥" यदा पुनर्न ज्ञानमाश्रीयते तदा नाहङ्कारसम्भवो नापि परस्योपरि चित्तकालुष्यभावः ततो न कर्मबन्धसम्भवः, अपिच—सञ्चिन्त्य क्रियते कर्मबन्धः, स दारुणविपाकः, अत एव चावश्यंवेद्यः, तस्य तीव्राध्यवसायतो निष्पन्नत्वात्, यस्तु मनोव्यापारमन्तरेण कायवाक्कर्मवृत्तिमात्रतो विधीयते न तत्र मनसोऽभिनिवेशस्ततो नासाववश्यंवेद्यो, नापि तस्य दारुणो विपाकः, केव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

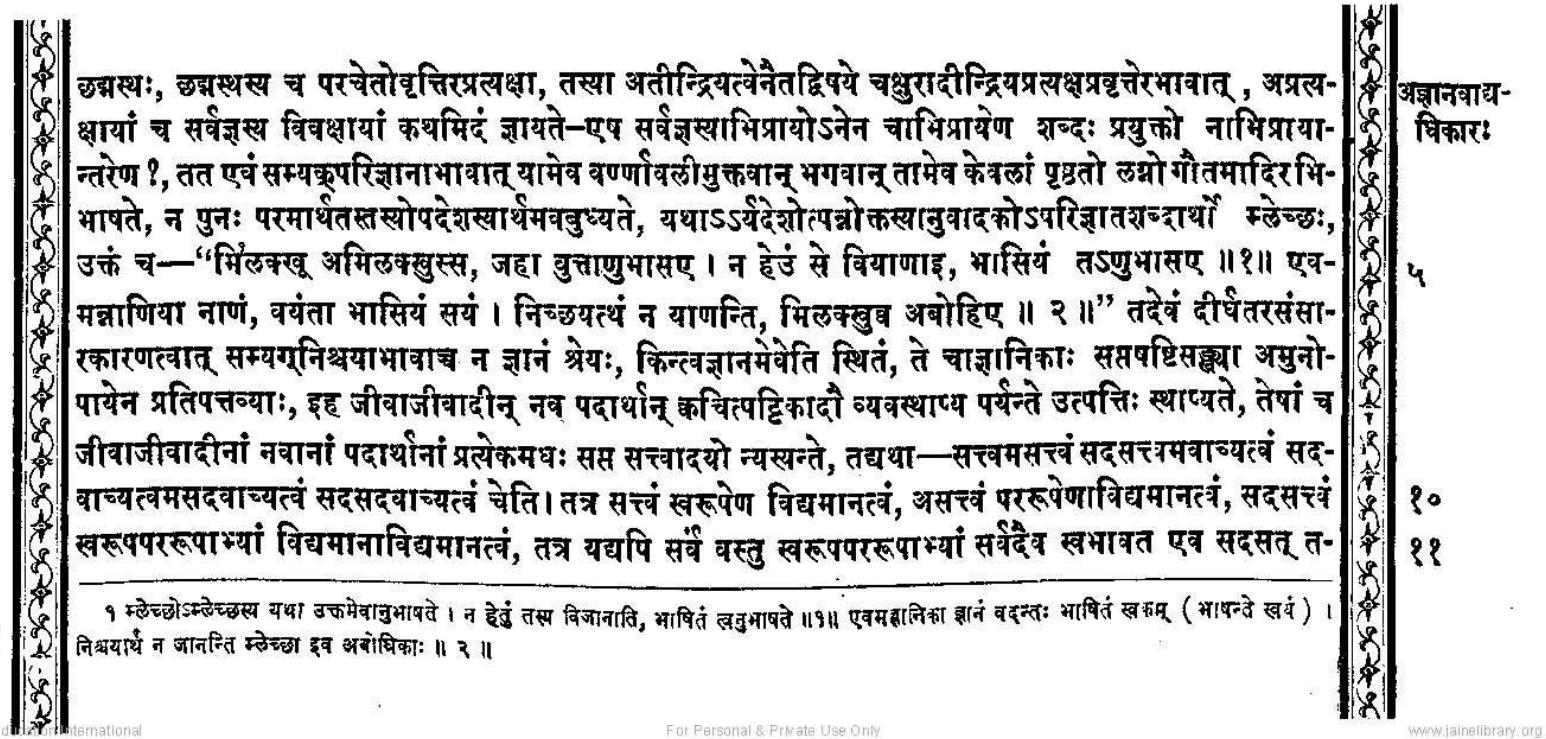
लमतिशुष्कसुधापङ्कधवलितभित्तिगतरजोमल इव स कर्मसङ्गः स्वत एव शुभाध्यवसायपवनविक्षोभितोऽपयाति, मनसोऽभिनिवेशाभावश्चाज्ञानाभ्युपगमे समुपजायते, ज्ञाने सत्यभिनिवेशसम्भवात्, तस्मादज्ञानमेव मुमुक्षुणा मुक्तिपथप्रवृत्तेनाभ्युपगन्तव्यं न ज्ञानमिति, अन्यच्च—भवेद्युक्तो ज्ञानस्याभ्युपगमो यदि ज्ञानस्य निश्चयः कर्तुं पार्येत यावता स एव न पार्यते, तथाहि—सर्वेऽपि दर्शनिनः परस्परं भिन्नमेव ज्ञानं प्रतिपन्नाः ततो न निश्चयः कर्तुं शक्यते—किमिदं ज्ञानं सम्यग् नेदमिति?, उक्तं च—"सव्वे य मिहो भिन्नं नाणं इह नाणिणो जओ बिंति । तीरइ न तओ काउं विणिच्छओ एवमेयंति ॥ १ ॥" अथोच्येत—इह यत्सकलवस्तुस्तोमसाक्षात्कारिभगवदुपदेशादुपजायते ज्ञानं तत्सम्यग् नेतरत्, असर्वज्ञमूलत्वादिति, सत्यमेतत्, किन्तु स एव सकलवस्तुस्तोमसाक्षात्कारीति कथं ज्ञायते?, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्,अपिच—सुगतादयोऽपि सौगतादिभिः सकलवस्तुस्तोमसाक्षात्कारिण इष्यन्ते, तर्किं सुगतादिः सकलवस्तुस्तोमसाक्षात्कारीति प्रतिपद्यतामस्माभिः किंवा भगवद्वर्द्धमानस्वामीति तदवस्थ एव निश्चयाभावः?, स्यादेतत्—किमत्र संशयेन?, यस्य पादारविन्दयुगलं प्रणिणंसवो दिवौकसः परस्परमहमहमिकया विशिष्टविशिष्टतरविभूतिद्युतिपरिकलिताः शतसहस्रसङ्ख्येन विमाननिवहेन सकलमपि नभोमण्डलमाच्छादयन्तो महीमवतीर्य पूजादिकमातन्वन्ति स्म स भगवान् वर्द्धमानस्वामी सर्वज्ञो न शेषाः सुगतादयः, मनुष्या हि मूढमनस्का अपि सम्भाव्यन्ते न देवाः,

१ सर्वे च मिथो भिन्नं ज्ञानमिह ज्ञानिनो यतो ब्रुवते । शक्यते न ततः कर्तुं विनिश्चय एवमेतदिति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ततो यदि शेषा अपि सुगतादयः सर्वज्ञा अभविष्यन् तर्हि तेषामपि देवाः पूजामकरिष्यन् न च कृतवन्तस्तस्मान्न ते सर्वज्ञाः, तदेतत्स्वदर्शनानुरागतरलितमनस्कतासूचकं, यतो वर्द्धमानस्वामिनो दिवः समागत्य देवास्तथा पूजां कृतवन्त इत्येतदपि कथमवसीयते ?, भगवतश्चिरातीतत्वेनेदानीं तद्भावग्राहकप्रमाणाभावात्, सम्प्रदायादवसीयते इति चेत् ननु सोऽपि सम्प्रदायो न धूर्त्तपुरुषप्रवर्त्तितः किन्तु सत्यपुरुषप्रवर्तित एवेति कथमवगन्तव्यं ?, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्, न चाप्रमाणकं वयं प्रतिपत्तुं क्षमाः, मा प्रापदप्रेक्षावत्ताप्रसङ्गः, अन्यच्च–मायाविनः स्वयमसर्वज्ञा अपि जगति स्वस्य सर्वज्ञभावं प्रचिकटयिषवस्तथाविधेन्द्रजालवशाद्दर्शयन्ति देवानितस्ततः सञ्चरतः स्वस्य च पूजादिकं कुर्वतः, ततो देवागमदर्शनादपि कथं तस्य सर्वज्ञत्वनिश्चयः ?, तथा चाह भावत्क एव स्तुतिकारः समन्तभद्रः—'देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥" भवतु वा वर्द्धमानस्वामी सर्वज्ञः तथापि तत्सत्कोऽयमाचारादिक उपदेशो न पुनः केनापि धूर्त्तेन स्वयं विरचय्य प्रवर्त्तित इति कथमवसेयं ?, अतीन्द्रियत्वेनैतद्विषये प्रमाणाभावात्, अथवा भवत्वेषोऽपि निश्चयो यथाऽयमाचारादिक उपदेशो वर्द्धमानस्वामिन इति, तथापि तस्योपदेशस्यायमर्थो नान्य इति न शक्यः प्रत्येतुं, नानार्था हि शब्दा लोके प्रवर्त्तन्ते, तथादर्शनात्, ततोऽन्यथाऽप्यर्थसम्भावनायां कथं विवक्षितार्थनियमनिश्चयः ?, अथ मन्येथास्तदात्वे तत एव सर्वज्ञात् साक्षाच्छ्रवणतो गौतमादेरर्थनियमनिश्चयोऽभूत् तत आचार्यपरम्परयेदानीमपि भवतीति, तदप्ययुक्तं, यतो नाम गातमादिरपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



छद्मस्थः, छद्मस्थस्य च परचेतोवृत्तिरप्रत्यक्षा, तस्या अतीन्द्रियत्वेनैतद्विषये चक्षुरादीन्द्रियप्रत्यक्षप्रवृत्तेरभावात्, अप्रत्यक्षायां च सर्वज्ञस्य विवक्षायां कथमिदं ज्ञायते–एष सर्वज्ञस्याभिप्रायोऽनेन चाभिप्रायेण शब्दः प्रयुक्तो नाभिप्रायान्तरेण ?, तत एवं सम्यक्परिज्ञानाभावात् यामेव वर्णावलीमुक्तवान् भगवान् तामेव केवलां पृष्टतो लग्नो गौतमादिरभिभाषते, न पुनः परमार्थतस्तस्योपदेशस्यार्थमवबुध्यते, यथाऽऽर्यदेशोत्पन्नोऽपरिज्ञातशब्दार्थो म्लेच्छः, उक्तं च—"मिलक्खू अमिलक्खुस्स, जहा वुत्ताणुभासए। न हेउं से वियाणाइ, भासियं तऽणुभासए ॥१॥ एवमन्नाणिया नाणं, वयंता भासियं सयं। निच्छयत्थं न याणन्ति, मिलक्खुव अबोहिए ॥ २ ॥" तदेवं दीर्घतरसंसारकारणत्वात् सम्यग्निश्चयाभावाच्च न ज्ञानं श्रेयः, किन्त्वज्ञानमेवेति स्थितं, ते चाज्ञानिकाः सप्तषष्टिसङ्ख्या अमुनोपायेन प्रतिपत्तव्याः, इह जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् क्वचित्पट्टिकादौ व्यवस्थाप्य पर्यन्ते उत्पत्तिः स्थाप्यते, तेषां च जीवाजीवादीनां नवानां पदार्थानां प्रत्येकमधः सप्त सप्त सत्त्वादयो न्यस्यन्ते, तद्यथा—सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वमवाच्यत्वं सदवाच्यत्वमसदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वं चेति। तत्र सत्त्वं स्वरूपेण विद्यमानत्वं, असत्त्वं पररूपेणाविद्यमानत्वं, सदसत्त्वं स्वरूपपररूपाभ्यां विद्यमानाविद्यमानत्वं, तत्र यद्यपि सर्वं वस्तु स्वरूपपररूपाभ्यां सर्वदैव स्वभावत एव सदसत् त-

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

११

१ म्लेच्छोऽम्लेच्छस्य यथा उक्तमेवानुभाषते। न हेतुं तस्य विजानाति, भाषितं त्वनुभाषते ॥१॥ एवमज्ञानिका ज्ञानं वदन्तः भाषितं स्वकम् (भाषन्ते स्वयं)। निश्चयार्थं न जानन्ति म्लेच्छा इव अबोधिकाः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थापि क्वचित् किञ्चित्कदाचिदुद्भूतं प्रमात्रा विवक्ष्यते तत एवं त्रयो विकल्पा भवन्ति, तथा तदेव सत्त्वमसत्त्वं च यदा युगपदेकेन शब्देन वक्तुमिष्यते तदा तद्वाचकः शब्दः कोऽपि न विद्यते इति अवाच्यत्वं, एते चत्वारोऽपि विकल्पाः सकलादेशा इति गीयन्ते, सकलवस्तुविषयत्वात्, यदा त्वेको भागः सन्नपरश्चावाच्यो युगपद्विवक्ष्यते तदा सदवाच्यत्वं, यदा त्वेको भागोऽसन्नपरश्चावाच्यस्तदाऽसदवाच्यत्वं, यदा त्वेको भागः सन्नपरश्चासन् परतरश्चावाच्यस्तदा सदसदवाच्यत्वमिति, न चैतेभ्यः सप्तविकल्पेभ्योऽन्यो विकल्पः सम्भवति, सर्वेष्वेतेष्वेव मध्येऽन्तर्भावात्, ततस्सप्त विकल्पा उपन्यस्ताः, सप्त विकल्पा नवभिर्गुणिता जातास्त्रिषष्टिः, उत्पत्तेश्चत्वार एवाऽऽद्या विकल्पाः, तद्यथा—सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वमवाच्यत्वं चेति, एते चत्वारोऽपि विकल्पास्त्रिषष्टिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते ततः सप्तषष्टिर्भवति, तत्र को जानाति जीवः सन्नित्येको विकल्पः, न कश्चिदपि जानाति, तद्ग्राहकप्रमाणाभावादिति भावः, ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं?, ज्ञानस्याभिनिवेशहेतुतया लोके प्रतिपन्थित्वात्, एवमसदादयोऽपि विकल्पा भावनीयाः, उत्पत्तिरपि किं सतोऽसतः सदसतोऽवाच्यस्य वेति को जानाति?, ज्ञातेन वा किं?, न किञ्चिदपि प्रयोजनमिति ॥ तथा विनयेन चरन्तीति वैनयिकाः, एते चानवधृतलिङ्गाचारशास्त्रा विनयप्रतिपत्तिलक्षणा वेदितव्याः, ते च द्वात्रिंशत्सङ्ख्या अमुनोपायेन द्रष्टव्याः—सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेष्वष्टसु स्थानेषु कायेन वाचा मनसा दानेन देशकालोपपन्नेन विनयः कार्य इति चत्वारः कायादयः स्थाप्यन्ते, चत्वारश्चाष्टभिर्गुणिता जाता द्वात्रिंशत् ॥ एतेषां च त्रयाणां त्रिषष्ठ्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

धिकानां पाखण्डिकशतानां प्रतिक्षेपः सूत्रकृताङ्गे शेषेषु च प्रकरणेषु पूर्वाचार्यैरनेकधा युक्तिभिः कृतस्ततो वयमपि स्थानाशून्यार्थं पूर्वाचार्यकृतं तेषां प्रतिक्षेपं सङ्क्षेपतो दर्शयामः—तत्र ये कालवादिनः सर्वं कालकृतं मन्यन्ते तान् प्रति ब्रूमः–कालो नाम किमेकस्वभावो नित्यो व्यापी? किंवा समयादिरूपतया परिणामी?, तत्र यद्याद्यः पक्षः तदयुक्तं, तथाभूतकालग्राहकप्रमाणाभावात्, न खलु तथाभूतं कालं प्रत्यक्षेणोपलभामहे, नाप्यनुमानेन, तदविनाभाविलिङ्गाभावात्, अथ कथं तदविनाभाविलिङ्गाभावो? यावता दृश्यते भरतरामादिषु पूर्वापरव्यवहारः, स च न वस्तुस्वरूपमात्रनिमित्तो, वर्त्तमाने च काले वस्तुस्वरूपस्य विद्यमानतया तथाव्यवहारप्रवृत्तिप्रसक्तेः, ततो यन्निमित्तोऽयं भरतरामादिषु पूर्वापरव्यवहारः स काल इति, तथाहि–पूर्वकालयोगी पूर्वो भरतचक्रवर्त्ती अपरकालयोगी चापरो रामादिरिति, ननु यदि भरतरामादिषु पूर्वापरकालयोगतः पूर्वापरव्यवहारस्तर्हि कालस्यैव कथं स्वयं पूर्वापरव्यवहारः?, तदन्यकालयोगादिति चेत्, न, तत्रापि स एव प्रसङ्ग इत्यनवस्था, अथ मा भूदेष दोष इति तस्य स्वयमेव पूर्वत्वमपरत्वं चेष्यते नान्यकालयोगादिति, तथा चोक्तम्–"पूर्वकालादियोगी यः, स पूर्वाद्यपदेशभाक्। पूर्वापरत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥" तदप्याकण्ठपीतासवप्रलापदेशीयं, यत एकान्तेनैको व्यापी नित्यः कालोऽभ्युपगम्यते, ततः कथं तस्य पूर्वादित्वसम्भवः?, अथ सहचारिसम्पर्कवशादेकस्यापि तथात्वकल्पना, तथाहि–सहचारिणो भरतादयः पूर्वाः अपरे च रामादयोऽपरास्ततस्तत्सम्पर्कवशात्कालस्यापि पूर्वापरव्यपदेशः, भवति च सहचारिणो व्यपदेशो यथा मञ्चाः

अज्ञानवाद्यधिकारः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

क्रोशन्तीति, तदेतदपि बालिशजल्पितम्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि–सहचारिणां भरतादीनां पूर्वादित्वं कालगतपूर्वादित्वयोगात् कालस्य च पूर्वादित्वं सहचारिभरतादिगतपूर्वादित्वयोगतः, तत एकासिद्धावन्यतरस्याप्यसिद्धिः, उक्तं च—"एकत्वव्यापितायां हि, पूर्वादित्वं कथं भवेत्, । सहचारिवशात्तच्चेदन्योऽन्याश्रयताऽऽगमः ॥१॥ सहचारिणां हि पूर्वत्वं, पूर्वकालसमागमात् । कालस्य पूर्वादित्वं च, सहचार्यवियोगतः ॥२॥" प्रागसिद्धावेकस्य कथमन्यस्य सिद्धिरिति तन्नायं पक्षः श्रेयान्, अथ द्वितीयः पक्षः, सोऽप्ययुक्तो, यतः समयादिरूपे परिणामिनि कालेऽविशिष्टेऽपि फलवैचित्र्यमुपलभ्यते, तथाहि—समकालमारभ्यमाणाऽपि मुद्गपक्तिरविकला कस्यचिद् दृश्यते अपरस्य तु कालान्तरेऽपि न, तथा समकालमेकस्मिन्नेव राजनि सेव्यमाने सेवकस्यैकस्य फलमचिराद् भवति अपरस्य तु कालान्तरेऽपि न, तथा समकालमपि क्रियमाणे कृष्यादिकर्म्मण्येकस्य परिपूर्णा धान्यसम्पदुपजायते अन्यस्य तु खण्डस्फुटिता न वा किञ्चिदपि, ततो यदि काल एव केवलः कारणं भवेत् तर्हि सर्वेषामपि समभेव मुद्गपक्त्यादि फलं भवेत् न च भवति तस्मान्न कालमात्रकृतं विश्ववैचित्र्यं, किन्तु कालादिसामग्रीसापेक्षं तत्तत्कर्म्मनिबन्धनमिति स्थितं ॥ यदपि चेश्वरवादिनो ब्रुवते—'ईश्वरकृतं जगदि'ति तदप्यसमीचीनं, ईश्वरग्राहकप्रमाणाभावात्, अथास्ति तद्ग्राहकं प्रमाणमनुमानं, तथाहि—यत्स्थित्वा स्थित्वाऽभिमतफलसम्पादनाय प्रवर्त्तते तद्बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं, यथा वास्यादि द्वैधीकरणादौ, प्रवर्त्तते च स्थित्वा स्थित्वा सकलमपि विश्वं स्वफलसाधनायेति, न खलु वास्यादयः स्वयमेव प्रवर्त्तन्ते, तेषामचे-

२०

॥२१८॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनत्वात्, स्वभावत एव चेत्प्रवर्त्तन्ते तर्हि सदैव तेषां प्रवर्त्तनं भवेत्, न च भवति, तस्मादवश्यं स्थित्वा स्थित्वा प्रवर्त्तने केनचित्प्रेक्षावता प्रवर्त्तकेन भवितव्यं, सकलस्यापि च जगतः स्थित्वा २ फलं साधयतः प्रवर्त्तक ईश्वर एवोपपद्यते, नान्य इतीश्वरसिद्धिः, तथाऽपरमनुमानं–यत्पारिमण्डल्यादिलक्षणसन्निवेशविशेषभाक् तच्चेतनावत्कृतं, यथा घटादि, पारिमण्डल्यादिलक्षणसन्निवेशविशेषभाक् च भूभूधरादिकमिति, तदेतदयुक्तं, सिद्धसाधनेन पक्षस्य प्रसिद्धसम्बन्धत्वात्, तथाहि–सकलमपीदं विश्ववैचित्र्यं वयं कर्म्मनिबन्धनमिच्छामो, यतोऽमी वैताढ्यहिमवदादयः पर्वता भरतैरावतविदेहान्तरद्वीपादीनि क्षेत्राणि तथा तथा प्राणिनां सुखदुःखादिहेतुतया यत्परिणमन्ते तत्र तथापरिणमने तत्तन्निवासिनामेव तेषां जन्तूनां कर्म्म कारणमवसेयं, नान्यत्, तथा च दृश्यते एव पुण्यवति राज्यमनुशासति भूपतौ तत्कर्म्मप्रभावतः सुभिक्षादयः प्रवर्त्तमानाः, कर्म च जीवाश्रितं, जीवाश्च बुद्धिमन्तश्चेतनावत्त्वात्, ततो बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितत्वे चेतनावत्कृतत्वे च साध्यमाने सिद्धसाधनं, अथ बुद्धिमान् चेतनावान् वा विशिष्ट एवेश्वरः कश्चित्साध्यते तेन न सिद्धसाधनं, तर्हि दृष्टान्तस्य साध्यविकलता, वास्यादौ च घटादौ चेश्वरस्याधिष्ठायकत्वेन कारणत्वेन वा व्याप्रियमाणस्यानुपलभ्यमानत्वाद्, वार्द्धकिकुम्भकारादीनामेव तत्रान्वयतो व्यतिरेकतो वा व्याप्रियमाणानां निश्चीयमानत्वात्, अथ वार्द्धक्यादयोऽपि ईश्वरप्रेरिता एव तत्र २ कर्मणि प्रवर्त्तन्ते न स्वतः ततो न दृष्टान्तस्य साध्यविकलता, नन्वेवं तर्हि ईश्वरोऽप्यन्येनेश्वरेण प्रेरितः स्वकर्मणि प्रवर्त्तते,न स्वतो,विशेषाभावात्,सोऽप्यन्येनेश्वरेण प्रेरित इति विकाल-

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

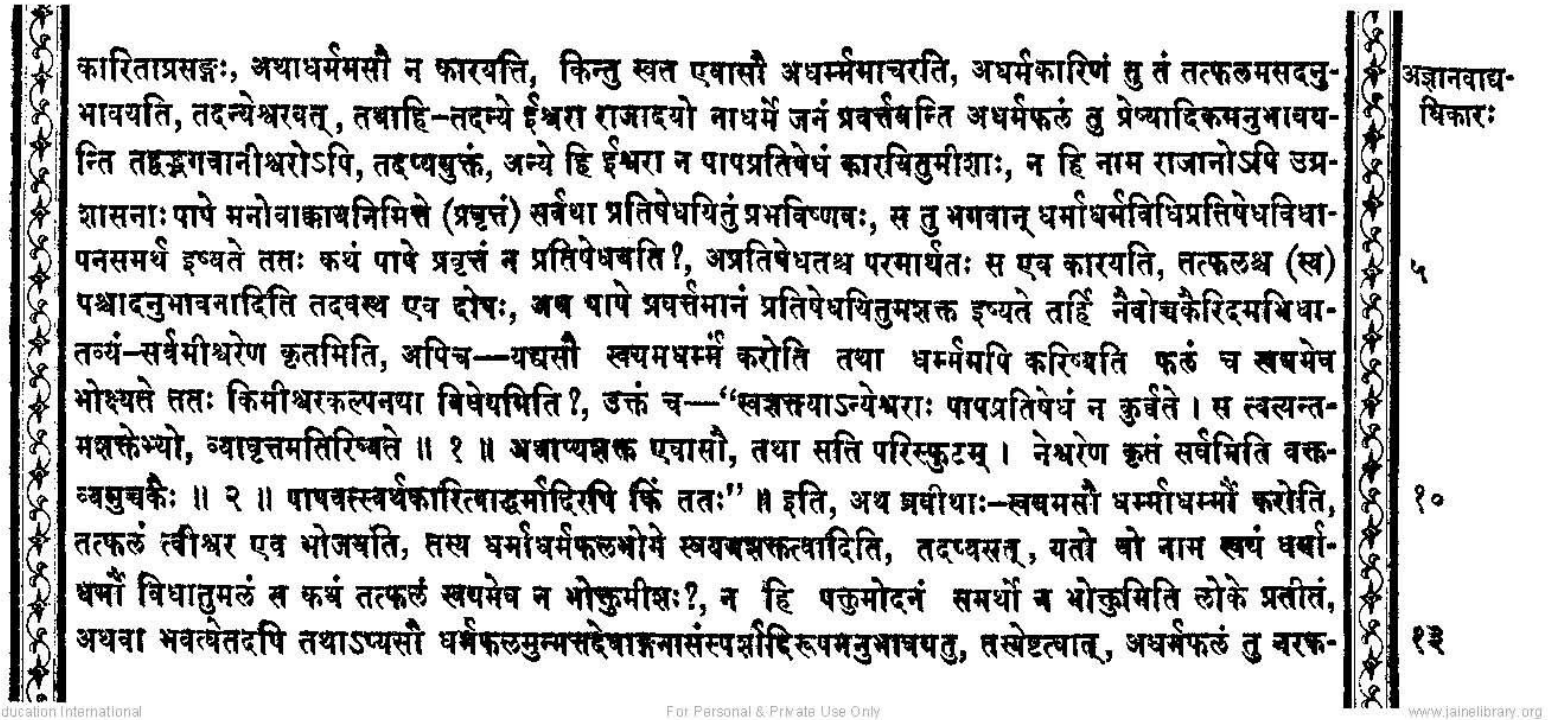
१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सन्ध्यायां तमःसन्ततिरिवाऽदृष्टपर्वन्ता ध्वान्ध्यमापादयन्ती प्रसरत्यनवस्था, अथ मन्येथा वार्द्धक्यादिको जन्तुः सर्वोऽपि स्वरूपेणाज्ञस्ततः स प्रेरित एव स्वकर्मणि प्रवर्त्तते भगवास्त्वीश्वरः सकलपदार्थज्ञाता ततो नासौ स्वकर्मण्यन्यं स्वप्रेरकमपेक्षते तेन नानवस्था, तदप्यसत्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि—सकलपदार्थयथाऽवस्थितस्वरूपज्ञातृत्वे सिद्धे सत्यन्याप्रेरितत्वसिद्धिः अन्याप्रेरितत्वसिद्धौ च सकलजगत्करणतः सर्वज्ञत्वसिद्धिरित्येकासिद्धावन्यतरस्याप्यसिद्धिः, अपिच—यद्यसौ सर्वज्ञो वीतरागश्च तत्किमर्थमन्यं जनमसद्व्यवहारे प्रवर्त्तयति?, मध्यस्था हि विवेकिनः सद्व्यवहार एव प्रवर्त्तयन्ति, नासद्व्यवहारे, स तु विपर्ययमपि करोति, ततः कथमसौ सर्वज्ञो वीतरागो वा?, अथोच्येत–सद्व्यवहारविषयमेव भगवानुपदेशं ददाति तेन सर्वज्ञो वीतरागश्च, यस्त्वधर्मकारी जनसमूहस्तं फलमसदनुभावयति येन स तस्मादधर्माद् व्यावर्त्तते, तद् उचितफलदायित्वाद्विवेकवानेव भगवानिति न कश्चिद्दोषः, तदप्यसमीक्षिताभिधानं, यतः पापेऽपि प्रथमं स एव प्रवर्त्तयति नान्यो, न च स्वयं प्रवर्त्तते, तस्माज्ज्ञत्वेन पापे धर्म्मे वा स्वयंप्रवृत्तेरयोगात्, ततः पूर्वं पापे प्रवर्त्त्य तत्फलमनुभाव्य पश्चाद्धर्म्मे प्रवर्त्तयतीति केयमीश्वरस्य प्रेक्षापूर्वकारिता?, अथ पापेऽपि प्रथमं प्रवर्त्तयति तत्कर्माधिष्ठित एव, तथाहि—तदेव तेन जन्तुना कृतं कर्म यद्वशात्पाप एव प्रवर्त्तते, ईश्वरोऽपि च भगवान् सर्वज्ञस्तथारूपं तत्कर्म साक्षात् ज्ञात्वा तं पाप एव प्रवर्त्तयति, तत्र उचितफलदायित्वान्नाप्रेक्षापूर्वकारीति, ननु तदपि कर्म तेनैव कारितं, ततस्तदपि कस्मात्प्रथमं कारयतीति स एवाप्रेक्षापूर्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



कारिताप्रसङ्गः, अथाधर्ममसौ न कारयति, किन्तु स्वत एवासौ अधर्म्ममाचरति, अधर्मकारिणं तु तं तत्फलमसदनुभावयति, तदन्येश्वरवत्, तथाहि–तदन्ये ईश्वरा राजादयो नाधर्मे जनं प्रवर्त्तयन्ति अधर्मफलं तु प्रेष्यादिकमनुभावयन्ति तद्वद्भगवानीश्वरोऽपि, तदप्यसुक्तं, अन्ये हि ईश्वरा न पापप्रतिषेधं कारयितुमीशाः, न हि नाम राजानोऽपि उग्रशासनाः पापे मनोवाक्कायनिमित्ते (प्रवृत्तं) सर्वथा प्रतिषेधयितुं प्रभविष्णवः, स तु भगवान् धर्माधर्मविधिप्रतिषेधविधापनसमर्थ इष्यते ततः कथं पापे प्रवृत्तं न प्रतिषेधयति?, अप्रतिषेधतश्च परमार्थतः स एव कारयति, तत्फलञ्च (स्व) पश्चादनुभावनादिति तदवस्थ एव दोषः, अथ पापे प्रवर्त्तमानं प्रतिषेधयितुमशक्त इष्यते तर्हि नैवोचकैरिदमभिधातव्यं–सर्वमीश्वरेण कृतमिति, अपिच—यद्यसौ स्वयमधर्म्मं करोति तथा धर्म्ममपि करिष्यति फलं च स्वयमेव भोक्ष्यते ततः किमीश्वरकल्पनया विधेयमिति?, उक्तं च—"स्वशक्त्याऽन्येश्वराः पापप्रतिषेधं न कुर्वते। स त्वत्यन्तमशक्तेभ्यो, व्यावृत्तमतिरिष्यते ॥ १ ॥ अथाप्यशक्त एवासौ, तथा सति परिस्फुटम्। नेश्वरेण कृतं सर्वमिति वक्तव्यमुचकैः ॥ २ ॥ पापवस्त्वर्थकारित्वाद्धर्मादिरपि किं ततः" ॥ इति, अथ ब्रवीथाः–स्वयमसौ धर्म्माधर्म्मौ करोति, तत्फलं त्वीश्वर एव भोजयति, तस्य धर्माधर्मफलभोगे स्वयमशक्तत्वादिति, तदप्यसत्, यतो यो नाम स्वयं धर्माधर्मौ विधातुमलं स कथं तत्फलं स्वयमेव न भोक्तुमीशः?, न हि पक्तुमोदनं समर्थो न भोक्तुमिति लोके प्रतीतं, अथवा भवत्वेतदपि तथाऽप्यसौ धर्मफलमुन्मत्तदेवाङ्गनासंस्पर्शादिरूपमनुभावयतु, तस्येष्टत्वात्, अधर्मफलं तु वरक-

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रपातादिरूपं कस्मादनुभावयति ?, न हि मध्यस्थभावमवलम्बमानाः परमकरुणापरितचेतसः प्रेक्षावन्तो निरर्थके परपीडाहेतौ कर्मणि प्रवर्त्तन्ते, क्रीडार्थो भगवतस्तथा प्रवृत्तिरिति चेत्, यद्येवं तर्हि कथमसौ प्रेक्षावान् ?, तस्य हि प्रवर्त्तने क्रीडामात्रमेव फलं, ते पुनः प्राणिनः स्थाने २ प्राणैर्वियुज्यन्ते, उक्तं च—"क्रीडार्थो तस्य वृत्तिश्चेत्, प्रेक्षापूर्वक्रिया कुतः ? । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ १ ॥" अपिच—क्रीडा लोके सरागस्योपलभ्यते भगवांश्च वीतरागः ततः कथं तस्य क्रीडा सङ्गतिमङ्गति ?, अथ सोऽपि सराग इष्यते तर्हि शेषजन्तुरिवावीतरागत्वात् न सर्वज्ञो नापि सर्वस्य कर्त्तेत्यापतितं, अथ रागादियुतोऽपि सर्वज्ञः सर्वस्य कर्त्ता च भवति तथास्वभावत्वात् ततो न कश्चिद्दोषो, न हि स्वभावे पर्यनुयोगो घटनामुपपद्यते, उक्तं च—"इदमेवं न वेत्येतत्कस्य पर्यनुयोज्यताम् ? । अग्निर्दहति नाकाशं, कोऽत्र पर्यनुयुज्यताम् ? ॥ १ ॥" तदेतदसम्यक्, यतः प्रत्यक्षतस्तथारूपस्वभावेऽवगते यदि पर्यनुयोगो विधीयते तत्रेदमुत्तरं विजृम्भते–यथा स्वभावे पर्यनुयोगो न भवतीति, यथा प्रत्यक्षेणोपलभ्यमाने वह्नेर्दाह्यं दहतो दाहकत्वरूपे स्वभावे, तथाहि—यदि तत्र कोऽपि पर्यनुयोगमाधत्ते–यथा कथमेष वह्निर्दाहकस्वभावो जातो ?, यदि वस्तुत्वेन तर्हि व्योमापि किं न दाहकस्वभावं भवति ?, वस्तुत्वाविशेषादिति, तत्रेदमुत्तरं विधीयते, दाहकत्वरूपो हि स्वभावो वह्नेः प्रत्यक्षतः एवोपलभ्यते, ततः कथमेष पर्यनुयोगमर्हति ?, न हि दृष्टेऽनुपपन्नता नाम, तथा चोक्तम्—"स्वभावेऽध्यक्षतः सिद्धे, यदि पर्यनुयुज्यते । तत्रेदमुत्तरं वाच्यं, न दृष्टेऽनुपपन्नता ॥ १ ॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वरस्तु सर्वजगत्कर्तृत्वेन सर्वज्ञत्वेन च नोपलब्धः, ततस्तत्र तथास्वभावत्वकल्पनाऽवश्यं पर्यनुयोगमाश्रयते, यदि पुनरदृष्टेऽपि तथास्वभावताकल्पना पर्यनुयोगानाश्रयाऽभ्युपगम्येत तर्हि सर्वोऽपि वादी तं तं पक्षमाश्रयन् परेण विक्षोभितस्तत्र तत्र तथास्वभावताकल्पनेन परं निरुत्तरीकृत्य लब्धजयपताक एव भवेत्, उक्तं च—"यत्किञ्चिदात्माऽभिमतं विधाय, निरुत्तरस्तत्र कृतः परेण । वस्तुस्वभावैरिति वाच्यमित्थं, तदोत्तरं स्याद्विजयी समस्तः ॥ १ ॥" किं च—सर्वं यदि जगदीश्वरकृतं मन्यते तर्हि सर्वाण्यपि शास्त्राणि सकलदर्शनगतानि तेन प्रवर्त्तितानीति प्राप्तं, तानि च शास्त्राणि परस्परविरुद्धार्थानि, ततोऽवश्यं कानिचित् सत्यानि कानिचिदसत्यानि, ततः सत्यासत्योपदेशदानात् कथमसौ प्रमाणम्?, उक्तं च—"शास्त्रान्तराणि सर्वाणि, यदीश्वरविकल्पतः । सत्यान्योपदेशश्च (स्य) प्रमाणं दानतः कथम्? ॥ १ ॥" अथ न सकलानि शास्त्राणीश्वरेण कारितानि किन्तु सत्यान्येव ततो न कश्चिद्दोषावकाशः, तर्हि शास्त्रान्तरवदेव नेश्वरेणान्यदपि व्यधायीति हता तव पक्षसिद्धिरिति । अन्यच्च–यादृग्भूतं संस्थानादि बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेनोपलब्धं तादृग्भूतमेवान्यत्रापि बुद्धिमन्तमात्मनो हेतुमनुमापयति, यथा जीर्णदेवकुलकूपादिगतं, न शेषं, न हि सन्ध्याऽभ्रमरागवल्मीकादिगतसंस्थानाद्यात्मनो बुद्धिमन्तं कर्त्तारमनुमापयति, तथाप्रतीतेरभावात्, तद्गतस्य संस्थानादेर्बुद्धिमत्कारणत्वेन निश्चयाभावात्, तथा भूभूधरादिगतमपि संस्थानादिकं न बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन निश्चितमिति कथं तद्वशाद्बुद्धिमतः कर्तुरनुमानम्?,अथ मन्येथाः–तदपि संस्थानादि तादृग्भूतमेव संस्थानादिशब्दवाच्यत्वात्,

अज्ञानवाद-धिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न चैवं तत्कर्तुर्बुद्धिमतोऽनुमाने काश्चिदपि बाधामुपलभामहे ततः सर्वं सुस्थमिति,तदयुक्तं,शब्दा हि रूढिवशाज्जात्यन्तरेऽपि प्रवर्त्तन्ते, ततः शब्दसाम्याद्यदि तथारूपवस्त्वनुमानं तर्हि घोटगादीनामपि विषाणितानुमीयतां, विशेषाभावात्, अथ तत्र प्रत्यक्षेण बाधोपलभ्यते ईश्वरानुमाने तु न ततो न कश्चिद्दोष इति, तदेतदतीव श्रमाज्ञमार्यानभिज्ञतासूचकं, यतो यत्र एव तत्र प्रत्यक्षेण बाधोपलम्भोऽत एव चान्यत्रापि शब्दसाम्यात्तथारूपवस्त्वनुमानं कर्त्तव्यं, प्रत्यक्षत एव शब्दसाम्यस्य वस्तुतथारूपेण सहाविनाभावित्वस्याभावावगमात्, न च बाधकमत्र नोपलभ्यते इत्येवानुमानं प्रवर्तते, किन्तु वस्तुसम्बन्धबलात्, तथा चोक्तम्—"न च बाध्यत इत्येवमनुमानं प्रवर्त्तते । सम्बन्धदर्शनात्तस्य, प्रवर्त्तनमिहेष्यते ॥ १ ॥" इति, स च सम्बन्धोऽत्र न विद्यते, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्, ततोऽनैकान्तिकता हेतोः, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, अन्यथा यो यो मृद्विकारः स स कुम्भकारकृतो यथा घटादिः, मृद्विकारश्चायं वल्मीकः तस्मात् कुम्भकारकृत इत्यनुमानं समीचीनतामाधनीस्कन्दते, बाधकादर्शनात्, अथास्ति बाधकमत्रादर्शनं, तथाहि—यदि तत्र कुम्भकारः कर्त्ता भवेत् तर्हि कदाचिदुपलभ्येत न चोपलभ्यते तस्मादेतदयुक्तमिति, तदेतदीश्वरानुमानेऽपि समानं, यदि हि सर्वस्यापि वस्तुजातस्येश्वरः कर्त्ता तर्हि क्वचित्कदाचिदुपलभ्येत न चोपलभ्यते तस्मान्नेदमेवमिति कृतं प्रसङ्गेन ॥ येऽपि चात्मवादिनः 'पुरुष एवेदं सर्वं'मिति प्रतिपन्नास्तेऽपि महामोहमहोरगगरलपूरमूर्च्छितमानसा वेदितव्याः, तथाहि—यदि नाम पुरुषमात्ररूपमद्वैतं तत्त्वं तर्हि यदेतदुपलभ्यते सुखित्वदुःखित्वादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्सर्वं परमार्थतोऽसत् प्राप्नोति, ततश्चैवं स्थिते यदेतदुच्यते–'प्रमाणतोऽधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्ति'रित्यादि तदेतदाकाशकुसुमसौरभवर्णनोपमानमवसेयं, अद्वैतरूपे हि तत्त्वे कुतो नरकादिभवभ्रमणरूपः संसारो ? यन्नैर्गुण्यमवगम्य तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरुपपद्यते, यदप्युच्यते–'पुरुषमात्रमेवाद्वैतं तत्त्वं, यत्तु संसारनैर्गुण्यं भावभेददर्शनं च तत्सर्वदा सर्वेषामविगानप्रतिपत्तावपि चित्रे भिन्नोन्नतभेददर्शनमिव भ्रान्तमवसेयमिति, तदप्यचारु, एतद्विषयवास्तवप्रमाणाभावात्, तथाहि–नाद्वैताभ्युपगमे किञ्चिदद्वैतग्राहकं ततः पृथग्भूतं प्रमाणमस्ति, द्वैतत्वप्रसक्तेः, न च प्रमाणमन्तरेण निष्प्रतिपक्षा तत्त्वव्यवस्था भवति, मा प्रापत्सर्वस्य सर्वेष्टार्थसिद्धिप्रसङ्गः, तथा भ्रान्तिरपि प्रमाणभूताद्वैताद् भिन्नाऽभ्युपगन्तव्या, अन्यथा प्रमाणभूतमद्वैतमप्रमाणमेव भवेत्, तदव्यतिरेकात्, तत्स्वरूपवत्, तथा च कुतस्तत्त्वव्यवस्था ?, भिन्नायां च भ्रान्तावभ्युपगम्यमानायां द्वैतं प्रसक्तमित्यद्वैतहानिः, अपि च–यदीदं सम्भाभः कुम्भाम्भोरुहादिभावभेददर्शनं भ्रान्तमुच्यते तर्हि नियमात्तदपि क्वचित्सत्यमवगन्तव्यं, अभ्रान्तदर्शनमन्तरेण भ्रान्तेरयोगात्, न खलु येन पूर्वमाशीविषो न दृष्टस्तस्य रज्ज्वामाशीविषभ्रान्तिरुपजायते, यदुक्तं—"माद्दृष्टपूर्वसर्पस्य, रज्ज्वां सर्पमतिः क्वचित् । ततः पूर्वानुसारित्वाद्भ्रान्तिरभ्रान्तिपूर्विका ॥ १ ॥" तत एवमप्यव्याहतो भेदः, अन्यच्च–'पुरुषाद्वैतरूपं तत्त्वमवश्यं परस्मै निवेदनीयं, नात्मने, आत्मनो व्यामोहाभावात्, विमोहश्चेदद्वैतप्रतिपत्तिरेव न भवेत्, अथोच्येत–यत एव व्यामोहोऽत एव तन्निवृत्त्यर्थमात्मनोऽद्वैतप्रतिपत्तिरास्थेया, तदयुक्तम्, एवं सत्यद्वैतप्रति-

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

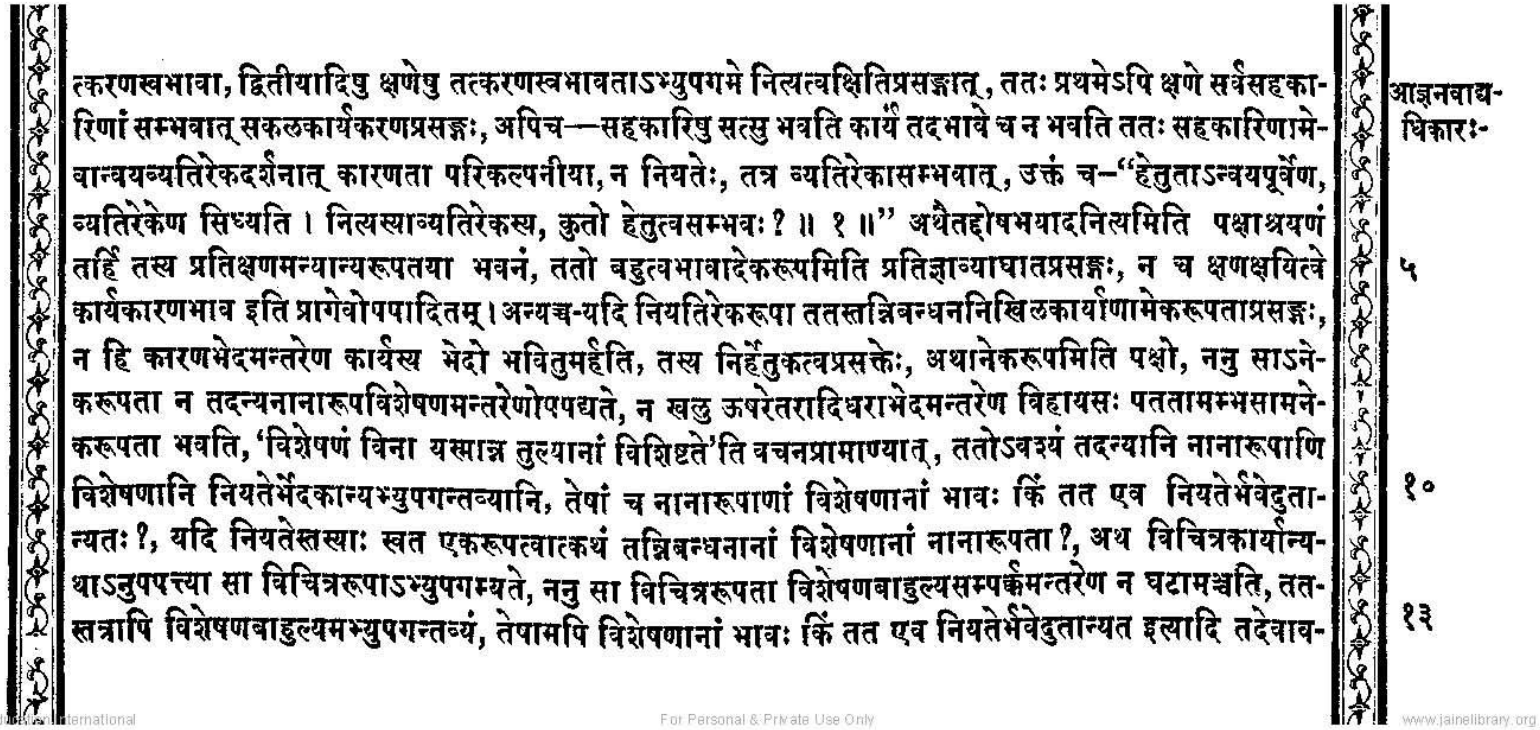
१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७] दीप अनुक्रम [१४०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

पत्त्याधानेनात्मनो व्यामोहे निवर्त्त्यमानेऽवश्यं पूर्वरूपत्यागोऽपररूपस्य चाव्यामूढतालक्षणस्योत्पत्तिरित्यद्वैतप्रतिज्ञा-
हानिः, परस्मै च प्रतिपादयन्नियमतः परमभ्युपगच्छेत्, परं चाभ्युपगच्छन् तस्मै चाद्वैतरूपं तत्त्वं निवेदयन् पिता मे
कुमारब्रह्मचारीत्यादि वदन्निव कथं नोन्मत्तः?, स्वपराभ्युपगमेनाद्वैतवचसो बाधनादिति यत्किञ्चिदेतत् ॥ यदपि च
नियतिवादिन उक्तवन्तो–नियतिर्नाम तत्त्वान्तरमस्तीति,तदपि ताड्यमानाऽतिजीर्णघट इव विचारताडनमसहमानं
शतशो विशरारुभावमाभजते, तथाहि—तन्नियतिरूपं नाम तत्त्वान्तरं भावरूपं वा स्यादभावरूपं वा?, यदि भावरूपं
तर्हि किमेकरूपमनेकरूपं वा?, यद्येकरूपं ततस्तदपि नित्यमनित्यं वा?, यदि नित्यं कथं भावानां हेतुः?, नित्यस्य
कारणत्वायोगात्, तथाहि–नित्यमाकालमेकरूपमुपवर्ण्यते, अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतया नित्यत्वस्य व्यावर्ण्ये-
नात्, ततो यदि तेन रूपेण कार्याणि जनयति तर्हि सर्वदा तेन रूपेण जनयेत्, विशेषाभावात्, न च सर्वदा
तेन रूपेण जनयति, क्वचित्कदाचित्तस्य भावस्य दर्शनात्, अपिच—यानि द्वितीयादिषु क्षणेषु कर्त्तव्यानि
कार्याणि तान्यपि प्रथमसमय एवोत्पादयेत्, तत्कारणस्वभावस्य तदानीमपि विद्यमानत्वात्, मा वा द्वितीयादिष्वपि
क्षणेषु, विशेषाभावात्, विशेषे वा बलादनित्यत्वं, 'अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूम' इति वचनप्राण्यात्, अथाविशिष्ट-
मपि नित्यं तं तं सहकारिणमपेक्ष्य कार्यं विधत्ते, सहकारिणश्च प्रतिनियतदेशकालभाविनः, ततः सहकारिभावा-
भावाभ्यां कार्यस्य क्रम इति, तदप्यसमीचीनं, यतः सहकारिणोऽपि नियतिसम्पाद्याः, नियतिश्च प्रथमक्षणेऽपि त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



त्करणस्वभावा, द्वितीयादिषु क्षणेषु तत्करणस्वभावताऽभ्युपगमे नित्यत्वक्षितिप्रसङ्गात्, ततः प्रथमेऽपि क्षणे सर्वसहकारिणां सम्भवात् सकलकार्यकरणप्रसङ्गः, अपिच—सहकारिषु सत्सु भवति कार्यं तदभावे च न भवति ततः सहकारिणामेवान्वयव्यतिरेकदर्शनात् कारणता परिकल्पनीया, न नियतेः, तत्र व्यतिरेकासम्भवात्, उक्तं च–"हेतुताऽन्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिध्यति । नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसम्भवः ? ॥ १ ॥" अथैतद्दोषभयादनित्यमिति पक्षाश्रयणं तर्हि तस्य प्रतिक्षणमन्यान्यरूपतया भवनं, ततो बहुत्वभावादेकरूपमिति प्रतिज्ञाव्याघातप्रसङ्गः, न च क्षणक्षयित्वे कार्यकारणभाव इति प्रागेवोपपादितम्। अन्यच्च-यदि नियतिरेकरूपा ततस्तन्निबन्धननिखिलकार्याणामेकरूपताप्रसङ्गः, न हि कारणभेदमन्तरेण कार्यस्य भेदो भवितुमर्हति, तस्य निर्हेतुकत्वप्रसक्तेः, अथानेकरूपमिति पक्षो, ननु साऽनेकरूपता न तदन्यनानारूपविशेषणमन्तरेणोपपद्यते, न खलु ऊषरेतरादिधराभेदमन्तरेण विहायसः पततामम्भसामनेकरूपता भवति, 'विशेषणं विना यस्मान्न तुल्यानां विशिष्टते'ति वचनप्रामाण्यात्, ततोऽवश्यं तदन्यानि नानारूपाणि विशेषणानि नियतेर्भेदकान्यभ्युपगन्तव्यानि, तेषां च नानारूपाणां विशेषणानां भावः किं तत एव नियतेर्भवेदुतान्यतः ?, यदि नियतेस्तस्याः स्वत एकरूपत्वात्कथं तन्निबन्धनानां विशेषणानां नानारूपता ?, अथ विचित्रकार्यान्यथाऽनुपपत्त्या सा विचित्ररूपाऽभ्युपगम्यते, ननु सा विचित्ररूपता विशेषणबाहुल्यसम्पर्कमन्तरेण न घटामञ्चति, ततस्तत्रापि विशेषणबाहुल्यमभ्युपगन्तव्यं, तेषामपि विशेषणानां भावः किं तत एव नियतेर्भवेदुतान्यत इत्यादि तदेवाव-

आद्यनवाद्यधिकारः-

५

१०

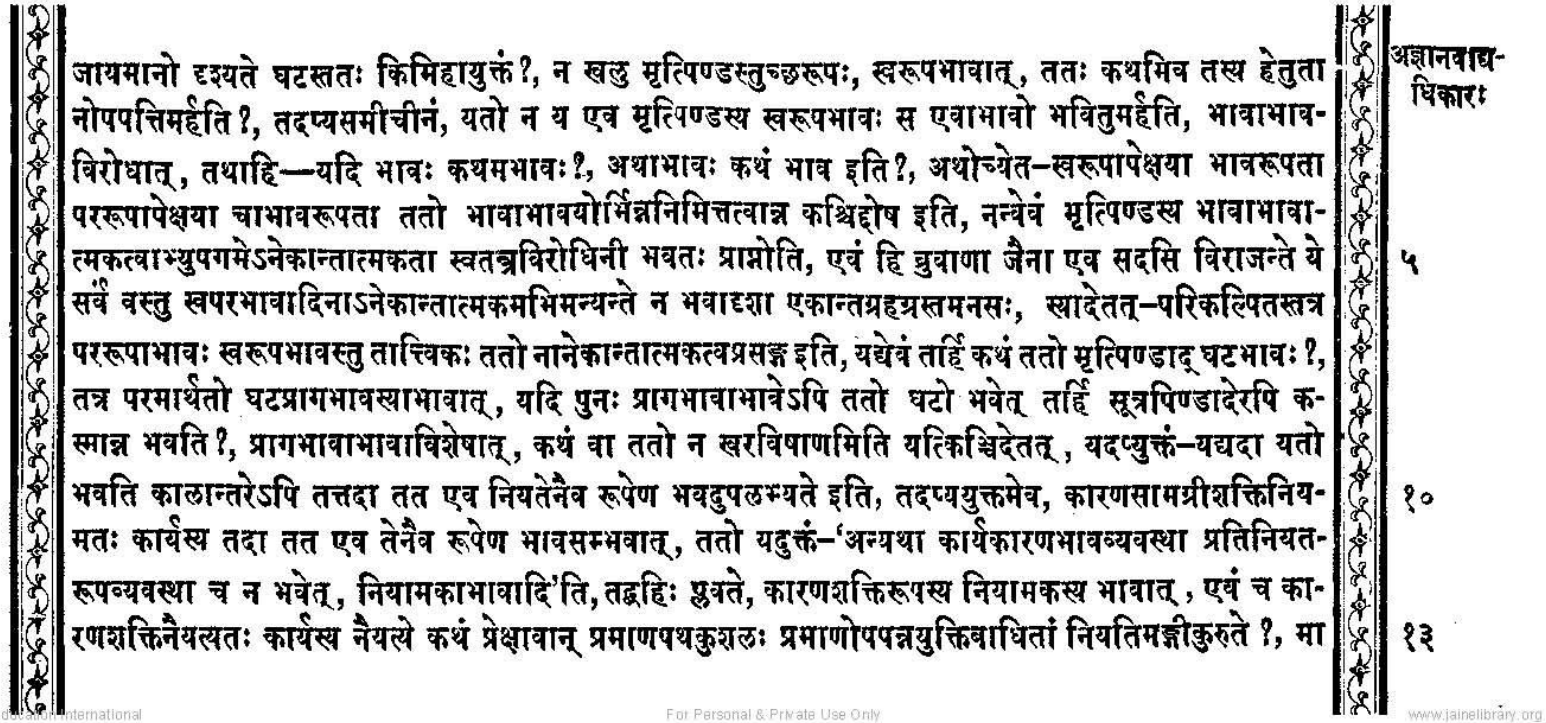
१३

नं०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

र्त्तते इत्यनवस्था, अथान्यत इति पक्षः, तदप्ययुक्तं, नियतिव्यतिरेकेणान्यस्य हेतुत्वेनानभ्युपगमादिति यत्किञ्चिदेतत्, किंच–अनेकरूपमिति पक्षाभ्युपगमे भवतः प्रतिपन्थि विकल्पयुगलमुपढौकते–तद्धि मूर्त्तं वा स्यादमूर्त्तं वा ?, यदि मूर्त्तं तर्हि नामान्तरेण कर्म्मैव प्रतिपन्नं, यस्मात्तदपि कर्म्म पुद्गलरूपत्वात् मूर्त्तमनेकं चास्माकमभिप्रेतं, भवताऽपि च नियतिरूपं तत्त्वान्तरमनेकं मूर्त्तं चाभ्युपगम्यते इत्यावयोरविप्रतिपत्तिः, अथामूर्त्तमित्यभ्युपगमस्तर्हि न तत्सुखदुःखनिबन्धनम्, अमूर्त्तत्वात्, न खल्वाकाशममूर्त्तमनुग्रहायोपघाताय वा जायते, पुद्गलानामेवानुग्रहोपघातविधानसमर्थत्वात्, "जमणुग्गहोवघाया जीवाणं पुग्गलेहिंतो" इति वचनात्, अथ मन्येथाः–दृष्टमाकाशमपि देशभेदेन सुखदुःखनिबन्धनं, तथाहि—मरुस्थलीप्रभृतिषु देशेषु दुःखं शेषेषु तु सुखमिति, तदप्यसत्, तत्रापि तदाकाशस्थितानामेव पुद्गलानामनुग्रहोपघातकारित्वात्, तथाहि—मरुस्थलीप्रायासु भूमिषु जलविकलतया न तथाविधा धान्यसम्पत्, वालुकाकुलतया चाध्वनि प्राणिनां गमनागमनविधावतिशायी पदे २ खेदो निदाघे च खरकिरणतीव्रकरनिकरसम्पर्कतो भूयान् सन्तापो जलाभ्यवहरणमपि स्वल्पीयो महाप्रयत्नसम्पाद्यं चेति महत्तत्र दुःखं, शेषेषु तद्विपर्ययात्सुखमिति तत्रापि पुद्गलानामेवानुग्रहोपघातकारित्वं नाकाशस्येति, अथाभावरूपमिति पक्षस्तदप्ययुक्तं, अभावस्य तुच्छरूपतया सकलशक्तिवियोगतः कार्यकारित्वायोगात्, नहि कटककुण्डलाद्यभावतः कटककुण्डलाद्युपजायते, तथादर्शनाभावात्, अन्यथा तत एव कटककुण्डलाद्युत्पत्तेर्विश्वस्यादरिद्रताप्रसङ्गः, नन्विह घटाभावो मृत्पिण्ड एव तस्माच्चोप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जायमानो दृश्यते घटस्ततः किमिहायुक्तं?, न खलु मृत्पिण्डस्तुच्छरूपः, स्वरूपभावात्, ततः कथमिव तस्य हेतुता नोपपत्तिमर्हति?, तदप्यसमीचीनं, यतो न य एव मृत्पिण्डस्य स्वरूपभावः स एवाभावो भवितुमर्हति, भावाभावविरोधात्, तथाहि—यदि भावः कथमभावः?, अथाभावः कथं भाव इति?, अथोच्येत–स्वरूपापेक्षया भावरूपता पररूपापेक्षया चाभावरूपता ततो भावाभावयोर्भिन्ननिमित्तत्वान्न कश्चिद्दोष इति, नन्वेवं मृत्पिण्डस्य भावाभावात्मकत्वाभ्युपगमेऽनेकान्तात्मकता स्वतन्त्रविरोधिनी भवतः प्राप्नोति, एवं हि ब्रुवाणा जैना एव सदसि विराजन्ते ये सर्वं वस्तु स्वपरभावादिनाऽनेकान्तात्मकमभिमन्यन्ते न भवादृशा एकान्तग्रहग्रस्तमनसः, स्यादेतत्–परिकल्पितस्तत्र पररूपाभावः स्वरूपभावस्तु तात्त्विकः ततो नानेकान्तात्मकत्वप्रसङ्ग इति, यद्येवं तर्हि कथं ततो मृत्पिण्डाद् घटभावः?, तत्र परमार्थतो घटप्रागभावस्याभावात्, यदि पुनः प्रागभावाभावेऽपि ततो घटो भवेत् तर्हि सूत्रपिण्डादेरपि कस्मान्न भवति?, प्रागभावाभावाविशेषात्, कथं वा ततो न खरविषाणमिति यत्किञ्चिदेतत्, यदप्युक्तं–यद्यदा यतो भवति कालान्तरेऽपि तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते इति, तदप्ययुक्तमेव, कारणसामग्रीशक्तिनियमतः कार्यस्य तदा तत एव तेनैव रूपेण भावसम्भवात्, ततो यदुक्तं–'अन्यथा कार्यकारणभावव्यवस्था प्रतिनियतरूपव्यवस्था च न भवेत्, नियामकाभावादि'ति, तद्वहिः ध्रुवते, कारणशक्तिरूपस्य नियामकस्य भावात्, एवं च कारणशक्तिनैयत्यतः कार्यस्य नैयत्ये कथं प्रेक्षावान् प्रमाणपथकुशलः प्रमाणोपपन्नयुक्तिबाधितां नियतिमङ्गीकुरुते?, मा

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२२४॥

प्रापदप्रेक्षावत्ताप्रसङ्गः, एतेन यदाहुः स्वभाववादिनः–'इह सर्वे भावाः स्वभाववशादुपजायन्ते' इति, तदपि प्रतिक्षिप्तमवगन्तव्यं, उक्तरूपाणां प्रायस्तत्रापि समानत्वात्, तथाहि–स्वभावो भावरूपो वा स्यादभावरूपो वा ?, भावरूपोऽप्येकरूपोऽनेकरूपो वेत्यादि सर्वं तदवस्थमेवात्रापि दूषणजालमुपढौकते, अपिच—यः स्वो भावः स्वभावः, आत्मीयो भाव इत्यर्थः, स च कार्यगतो वा हेतुर्भवेत् कारणगतो वा ?, न तावत्कार्यगतो, यतः कार्ये परिनिष्पन्ने सति स कार्यगतः स्वभावो भविष्यति, नानिष्पन्ने, निष्पन्ने च कार्ये कथं स तस्य हेतुः ?, यो हि यस्यालब्धलाभसम्पादनाय प्रभवति स तस्य हेतुः, कार्यं च परिनिष्पन्नतया लब्धात्मलाभं, अन्यथा तस्यैव स्वभावस्याभावप्रसङ्गात्, ततः कथं स कार्यस्य हेतुर्भवति?, कारणगतस्तु स्वभावः कार्यस्य हेतुरस्माकमपि सम्मतः, स च प्रतिकारणं विभिन्नस्तेन मृदः कुम्भो भवति न पटादिः, मृदः पटादिकरणस्वभावाभावात्, तन्तुभ्योऽपि पट एव भवति न घटादिः, तन्तूनां घटादिकरणे स्वभावाभावात्, ततो यदुच्यते–'मृदः कुम्भो भवति न पटादि'रित्यादि तत्सर्वं कारणगतस्वभावाभ्युपगमे सिद्धसाध्यतामध्यमध्यासीनमिति न नो बाधामादधाति, यदपि चोक्तम्–'आस्तामन्यत्कार्यजात'मित्यादि, तदपि कारणगतस्वभावाङ्गीकारेण समीचीनमेवावसेयं, तथाहि—ते कङ्कटुकमुद्गाः स्वकारणवशतस्तथारूपा एव जाता ये स्थालीन्धनकालादिसामग्रीसम्पर्केऽपि न पाकमश्नुवते इति, स्वभावश्च कारणादभिन्न इति सर्वं सकारणमेवेति स्थितम्, उक्तं च—"कारणगओ उ हेऊ केण व निट्ठोत्ति नियय कज्जस्स ?। न य सो तओ विभिन्नो सकारणं

१ कारणगतस्तु (स्वभावः) हेतुः केन वा नेष्ट इति निजककार्यस्य ?। न च स (स्वभावः) ततो विभिन्नः सकारणमेव सर्वं ततः ॥ १ ॥

अज्ञानवाद-धिकारः

२०

॥२२४॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद्यमेव तओ ॥ १ ॥" यदपि च यदृच्छावादिनः प्रलपन्ति–'न खलु प्रतिनियतो वस्तूनां कार्यकारणभाव' इत्यादि, तदपि च कार्याकार्यादिविवेचनपटीयःशेमुषीविकलतासूचकमवगन्तव्यं, कार्यकारणभावस्य प्रतिनियततया सम्भवात्, तथाहि—यः शालूकादुपजायते शालूकः स सदैव शालूकादेव, न गोमयादपि, योऽपि च गोमयादुपजायते शालूकः (ग्रन्थाग्रं ७०००) सोऽपि सदैव गोमयादेव न शालूकादपि, न चानयोरेकरूपता, शक्तिवर्णादिवैचित्र्यतः परस्परं जात्यन्तरत्वात्, योऽपि च वह्नेरुपजायते वह्निः सोऽपि सदैव वह्नेरेव नारणिकाष्ठादपि, योऽपि चारणिकाष्ठादुपजायते सोऽपि सर्वदाऽरणिकाष्ठादेव न वह्नेरपि, यदपि चोक्तं–'बीजादपि जायते कदली'त्यादि, तत्रापि परस्परं विभिन्नत्वात् एतदेवोत्तरम्, अपिच—या कन्दादुपजायते कदली साऽपि परमार्थतो बीजादेव वेदितव्या, परम्परया बीजस्यैव कारणत्वात्, एवं वटादयोऽपि शाखैकदेशादुपजायमानाः परमार्थतो बीजादवगन्तव्याः, तथाहि–शाखातः शाखा प्रभवति, न च शाखा शाखाहेतुका लोके व्यवह्रियते, वटबीजस्यैव सकलशाखादिसमुदायरूपवटहेतुत्वेन प्रसिद्धत्वात्, एवं शाखैकदेशादपि जायमानो वटः परमार्थतो मूलवटप्रशाखारूप इति मूलवटबीजहेतुक एव सोऽपि वेदितव्यः, तस्मान्न क्वचिदपि कारणकार्यव्यभिचारः, निपुणविचारप्रवीणेन च प्रतिपत्त्रा भवितव्यं, ततो न कश्चिद्दोषः, एवं च यदुच्यते—'न खल्वन्यथा वस्तुसद्भावं पश्यन्तोऽन्यथाऽऽत्मानं प्रेक्षावन्तः परिक्लेशयन्ती'ति, तद्वाङ्मात्रमिति स्थितं । येऽपि चाज्ञानवादिनो 'न ज्ञानं श्रेयः, तस्मिन् सति परस्परं विवादयोगतश्चित्तकालुष्यादिभावतो दीर्घ-

अज्ञानवादिनिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]

तरसंसारप्रवृत्ते'रित्याद्युक्तवन्तः तेऽप्यज्ञानमहानिद्रोपप्लुतमनस्कतया यत्किञ्चिद्भाषितवन्तो वेदितव्याः, तथाहि–आस्तामन्यद् एतावदेव वयं पृच्छामः–ज्ञाननिषेधकं ज्ञानं वा स्यादज्ञानं वा ?, तत्र यदि ज्ञानं ततः कथमभाषिष्ट–अज्ञानमेव श्रेयो ?, नन्वेवं ज्ञानं श्रेयस्तामाचनीस्कन्यते, तदन्तरेणाज्ञानस्य प्रतिष्ठापयितुमशक्यत्वात्, तथा च प्रतिज्ञाव्याघातप्रसङ्गः, अथाज्ञानमिति पक्षः सोऽप्ययुक्तः, अज्ञानस्य ज्ञाननिषेधनसामर्थ्ययोगात्, न खलु अज्ञानं साधनाय बाधनाय वा कस्यापि प्रभवति, अज्ञानत्वादेव, ततोऽप्रतिषेधादपि सिद्धं ज्ञानं श्रेयः, आह च—"नाणंनिसेहणहेऊ नाणं इयरं व होज्ज? जइ नाणं । अब्भुवगमम्मि तस्सा कहं नु अन्नाणमो सेयं? ॥ १ ॥ अह अन्नाणं न तयं नाणनिसेहणसमत्थमेवंपि । अप्पडिसेहाउ चिय संसिद्धं नाणमेवन्ति ॥ २ ॥" यदप्युक्तं–'ज्ञाने सति परस्परं विवादयोगतश्चित्तकालुष्यादिभाव' इति, तदप्यपरिभावितभाषितं, इह हि ज्ञानी परमार्थतः स एवोच्यते यो विवेकपूतात्मा ज्ञानगर्वमात्मनि सर्वथा न विधत्ते, यस्तु ज्ञानलवमासाद्याकण्ठपीतासव इवोन्मत्तः सकलमपि जगत्तृणाय मन्यते स परमार्थेनाज्ञानी वेदितव्यो, ज्ञानफलाभावात्, ज्ञानफलं हि रागादिदोषगणनिरासः, स चेन्न भवति तर्हि न परमार्थतस्तत् ज्ञानं, उक्तं च—"तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः। तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकर-

१ ज्ञाननिषेधनहेतुर्ज्ञानमितरद्वा भवेत्? यदि ज्ञानम्। अभ्युपगमे तस्य कथं न्वज्ञानं श्रेयः? ॥ १ ॥ अथाज्ञानं न तत्कत् ज्ञाननिषेधनसमर्थमेवमपि। अप्रतिषेधादेव संसिद्धं ज्ञानमेवमिति ॥ २ ॥

२० ॥२२५॥ २४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥ १ ॥" तत इत्थम्भूतो ज्ञानी विवेकपूतात्मा परहितकरणैकरसिको वादमपि परेषामुपकारार्थमाधत्ते, न यथाकथञ्चित्, तमपि च वादं वादिनरपतिपरीक्षकेषु निपुणबुद्धिषु मध्यस्थेषु सत्सु विधत्ते, नान्येषु, तथा तीर्थकरगणधरैरनुज्ञानात्, उक्तं च—"वादोऽवि वाइनरवइपरिच्छगजणेसु निउणबुद्धीसुं। मज्झत्थेसु य विहिणा उस्सग्गेणं अणुण्णाओ ॥ १ ॥" तत एवं स्थिते कथं नु नाम चित्तकालुष्यभावो ? यद्वशात् तीव्रतीव्रतरकर्मबन्धयोगतो दीर्घदीर्घतरसंसारप्रवृत्तिः सम्भवेत्, केवलं वादिनरपतिपरीक्षकाणामज्ञानापगमतः सम्यग्ज्ञानोन्मीलनं जायते, तथा च महदुपकारि ज्ञानमिति तदेव श्रेयः। यत्पुनरुच्यते–'तीव्राध्यवसायनिष्पन्नः कर्मबन्धो दारुणविपाको भवती'ति तदभ्युपगम्यते एव, न च तीव्रोऽध्यवसायो ज्ञाननिबन्धनः, अज्ञानिनोऽपि तस्य दर्शनात्, केवलज्ञाने सति यदि कथञ्चित्कर्मदोषतोऽकार्येऽपि प्रवृत्तिरुपजायते तथापि ज्ञानवशतः प्रतिक्षणं संवेगभावतो न तीव्रः परिणामो भवति, तथाहि–यथा कश्चित्पुरुषो राजादिदुष्टनियोगतो विषमिश्रमन्नं जानानोऽपि भयभीतमानसो भुङ्क्ते तथा सम्यग्ज्ञान्यपि कथञ्चित्कर्मदोषतोऽकार्यमाचरन्नपि संसारदुःखभयभीतमानसः समाचरति, न निःशङ्कं, संसारभयभीतता च संवेग उच्यते, ततः संवेगवशान्न तीव्रः परिणामो भवति, उक्तं च—"जाणंतो सविसण्णं पवत्तमाणोऽवि वीहए जह उ। न उ इयरो तह नाणी पवत्तमाणोऽवि संविग्गो ॥ १ ॥ जं संवेगपहाणो अचंतसुहो य

१ वादोऽपि वादिनरपतिपरीक्षकजनेषु निपुणबुद्धिषु। मध्यस्थेषु च विधिनोत्सर्गेण अनुज्ञातः ॥ १ ॥ २ जानानः सविषमन्नं प्रवर्तमानोऽपि बिभेति यथा तु। न त्वितरः तथा ज्ञानी प्रवर्त्तमानोऽपि संविग्नः ॥ १ ॥ यत् संवेगप्रधानोऽत्यन्तशुभश्च भवति परिणामः। पापनिवृत्तिश्च परा नेदमज्ञानिनामुभयम् ॥ २ ॥

अज्ञानबाधाधिकारः

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होइ परिणामो । पावनिवित्ती य परा नेयं अण्णाणिणो उभयं ॥ २ ॥" ततो यदुक्तम्–'अज्ञानमेव मुमुक्षुणा मुक्तिपथप्रवृत्तेनाभ्युपगन्तव्यं, न ज्ञान'मिति, तत्तेषां मूढमनस्कतासूचकमवगन्तव्यं, यदप्युक्तं–'भवेत् युक्तो ज्ञानस्याभ्युपगमो यदि ज्ञानस्य निश्चयः कर्तुं पार्यते' इत्यादि, तदपि बालिशजल्पितं, यतो यद्यपि सर्वेऽपि दर्शनिनः परस्परं भिन्नमेव ज्ञानं प्रतिपन्नाः तथापि यद्वचो दृष्टेष्टाबाधितं पूर्वापराव्याहतं च तत्सम्यग्रूपमवसेयं, तादृग्भूतं च वचो भगवत्प्रणीतमेवेति तदेव प्रमाणं न शेषमिति, यदप्युक्तं–'सुगतादयोऽपि सौगतादिभिः सर्वज्ञा इष्यन्ते' इत्यादि, तदप्यसत्, दृष्टेष्टबाधितवचनतया सुगतादीनामसर्वज्ञत्वात्, यथा च दृष्टेष्टबाधितवचनता सुगतादीनां तथा प्रागेव सर्वज्ञसिद्धौ लेशतो दर्शिता, ततो भगवानेव सर्वज्ञः, उक्तं च—"सव्वण्णुविहाणंमिवि दिट्ठिट्ठाबाहियाउ वयणाओ। सव्वण्णू होइ जिणो सेसा सव्वे असव्वण्णू ॥ १ ॥" एतेन यदुक्तं—'भवतु वा वर्द्धमानस्वामी सर्वज्ञस्तथापि तस्य सत्कोऽयमाचारादिक उपदेश इति कथं प्रतीयते?' इति, तदपि दूरापास्तं, अन्यस्येत्थम्भूतदृष्टेष्टाबाधितवचनप्रवृत्तेरसम्भवात्, यदप्युक्तं—'भवत्वेषोऽपि निश्चयो यथाऽयमाचारादिक उपदेशो वर्द्धमानस्वामिन इति, तथापि तस्योपदेशस्यायमर्थो नान्य इति न शक्यं प्रत्येतु'मित्यादि, तदप्ययुक्तं, भगवान् हि वीतरागतातो न विप्रतारयति, विप्रतारणाहेतुरागादिदोषगणासम्भवात्, तथा सर्वज्ञत्वेन विपरीतं सम्यग् वाऽर्थमवबुध्यमानं शिष्यं जानाति ततो

१ सर्वज्ञविधानेऽपि दृष्टेष्टबाधितात् वचनात् । सर्वज्ञो भवति जिनः शेषाः सर्वे असर्वज्ञाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि विपरीतमर्थमवबुध्यते श्रोता तर्हि निवारयेत्, न च निवारयति, न च विप्रतारयति, करोति च देशनां कृतकृत्योऽपि तीर्थकरनामकर्मोदयात्, ततो ज्ञायते एष एवास्योपदेशस्यार्थ इति, उक्तं च—"नाएऽवि तदुवएसे एसेवत्थो मउत्ति से एवं । नज्जइ पवत्तमाणं जं न निवारेइ तह चेव ॥ १ ॥ अन्नह य पवत्तंतं निवारई न य तओ पवंचेई । जम्हा स वीयरागो कहणे पुण कारणं कम्मं ॥ २ ॥" एवं च भगवद्विवक्षायाः परोक्षत्वेऽपि सम्यगुपदेशस्यार्थनिश्चये जाते यदुक्तं–'गौतमादिरपि छद्मस्थ' इत्यादि, तदप्यसारमवसेयं, छद्मस्थस्याप्युक्तप्रकारेण भगवदुपदेशार्थनिश्चयोपपत्तेः, तथा चित्रार्था अपि शब्दा भगवतैव समर्थिताः, ते च प्रकरणाद्यनुरोधेन तत्तदर्थप्रतिपादकाः प्रतिपादितास्ततो न कश्चिद्दोषः, तत्प्रकरणाद्यनुरोधेन तत्तदर्थनिश्चयोपपत्तेः, भगवताऽपि च तथा तथाऽर्थावगमे प्रतिषेधाकरणादिति, एवं च तदानीं गौतमादीनां सम्यगुपदेशार्थस्यावगतावाचार्यपरम्परात इदानीमपि तदर्थावगमो भवति, न चाचार्यपरम्परा न प्रमाणं, अविपरीतार्थव्याख्यातृत्वेन तस्याः प्रामाण्यस्यापाकर्तुमशक्यत्वात्, अपिच— भवद्दर्शनमपि किमागममूलमनागममूलं वा ?, यद्यागममूलं तर्हि कथमाचार्यपरम्परामन्तरेण ?, आगमार्थस्यावबोद्धुमशक्यत्वात्, अथानागममूलं तर्हि न प्रमाणं, उन्मत्तकविरचितदर्शनवत्, अथ यद्यपि नागममूलं तथापि युक्तयुपपन्न-

अज्ञानवाद्यधिकारः

५

१०

१ ज्ञातेऽपि तदुपदेशे एष एवार्थो मत इति तस्यैवम् । ज्ञायते प्रवर्तमानं यत्र निवारयति तथैव ॥ १ ॥ अन्यथा च प्रवर्तमानं निवारयेत् न च ततः प्रवञ्चयते । यस्मात् स वीतरागः कथने पुनः कारणं कर्म ॥ २ ॥ २ संकेतिताः ।

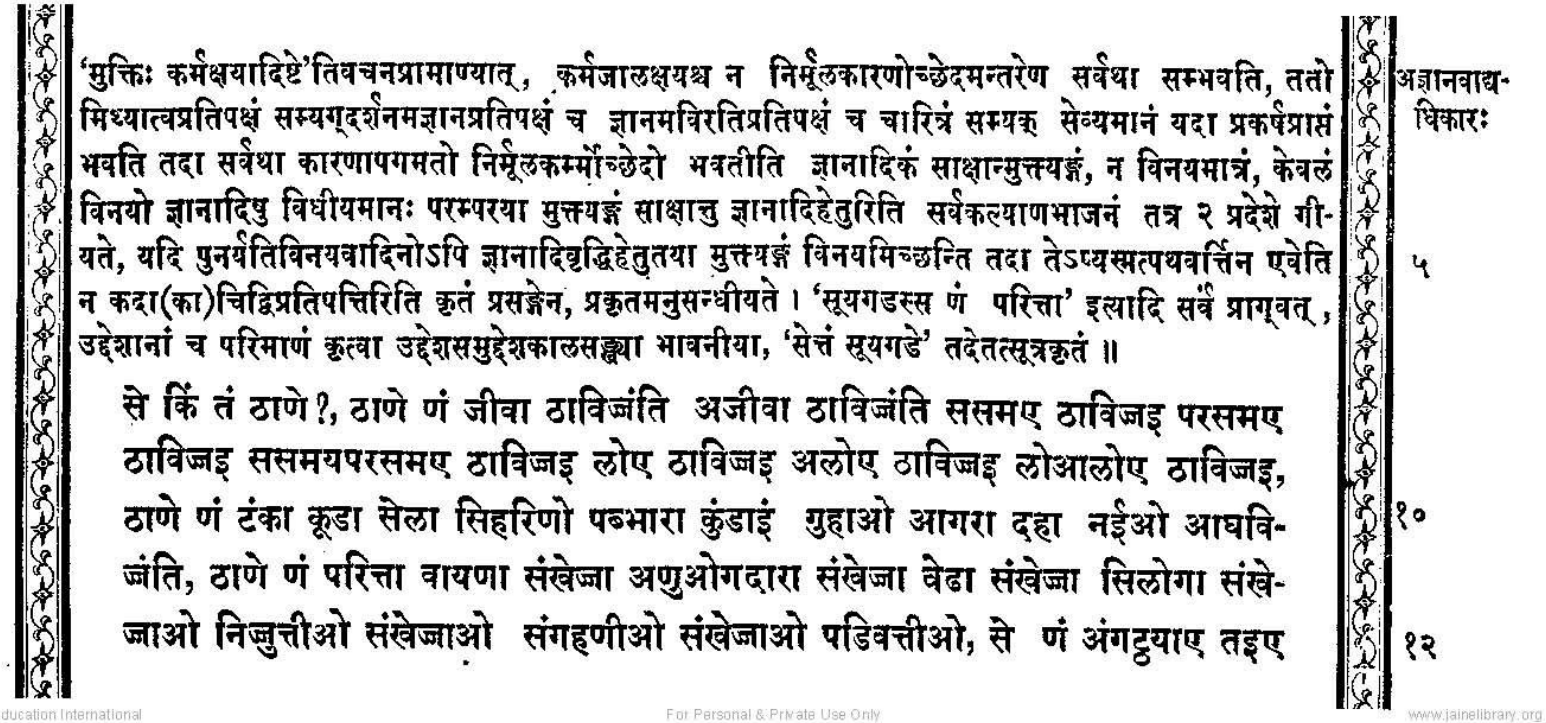
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मितिकृत्वा समाश्रीयते, अहो! दुरन्तः स्वदर्शनानुरागो य एवमपि पूर्वापरविरुद्धं भाषयति, अथवा भूषणमेतद्-
ज्ञानपक्षाभ्युपगमस्य यदित्थं पूर्वापरविरुद्धार्थभाषणं, कथं पूर्वापरविरुद्धार्थभाषितेति चेत्?, उच्यते, युक्तयो हि ज्ञा-
नमूला भवतां चाज्ञानाभ्युपगमः ततः कथं तास्तत्र घटन्ते? इति पूर्वापरविरुद्धार्थभाषितेति यत्किञ्चिदेतद्। येऽपि च
विनयवादिनो विनयप्रतिपत्तिलक्षणास्तेऽपि मोहान्मुक्तिपथपरिभ्रष्टाः वेदितव्याः, तथाहि—विनयो नाम मुक्त्यङ्गं यो
मुक्तिपथानुकूलो न शेषः, मुक्तिपथश्च ज्ञानदर्शनचारित्राणि, 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' (त०अ०१-सू०१)
इतिवचनात्, ततो ज्ञानादीनां ज्ञानाद्याधाराणां च बहुश्रुतादिपुरुषाणां यो विनयो ज्ञानादिबहुमानप्रतिपत्तिलक्षणः
स ज्ञानादिसम्पद्वृद्धिहेतुत्वेन परम्परया मुक्त्यङ्गमुपजायते, यस्तु सुरनृपत्यादिषु विनयः स नियमात् संसारहेतुः, यतः
सुरनृपत्यादिषु विनयो विधीयमानः सुरनृपत्यादिभावविषयं बहुमानमापादयति, अन्यथा विनयकरणाप्रवृत्तेः, सुरनृ-
पत्यादिभावश्च भोगप्रधानः, तद्बहुमाने च भोगबहुमानमेव कृतं परमार्थतो भवतीति दीर्घसंसारपथप्रवृत्तिः, येऽपि च
यतिविनयवादिनस्तेऽपि यदि साक्षाद्विनयमेव केवलं मुक्त्यङ्गमिच्छन्ति तर्हि तेऽप्यसमीचीनवादिनो वेदितव्याः,
ज्ञानादिरहितस्य केवलस्य विनयस्य साक्षान्मुक्त्यङ्गत्वाभावात्, न खलु ज्ञानदर्शनचारित्ररहिताः केवलपादप-
तनादिविनयमात्रेण मुक्तिमार्गमश्नुवते जन्तवः, किन्तु ज्ञानादिसहिताः, ततो ज्ञानादिकमेव साक्षान्मुक्त्यङ्गं न
विनयः, कथमेतदवसीयते?, इति चेदुच्यते, इह मिथ्यात्वाज्ञानाविरतिप्रत्ययं कर्मजालं, कर्मजालक्षयाच्च मोक्षः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [१४०]



'मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टे'तिवचनप्रामाण्यात्, कर्मजालक्षयश्च न निर्मूलकारणोच्छेदमन्तरेण सर्वथा सम्भवति, ततो मिथ्यात्वप्रतिपक्षं सम्यग्दर्शनमज्ञानप्रतिपक्षं च ज्ञानमविरतिप्रतिपक्षं च चारित्रं सम्यक् सेव्यमानं यदा प्रकर्षप्राप्तं भवति तदा सर्वथा कारणापगमतो निर्मूलकर्म्मोच्छेदो भवतीति ज्ञानादिकं साक्षान्मुक्त्यङ्गं, न विनयमात्रं, केवलं विनयो ज्ञानादिषु विधीयमानः परम्परया मुक्त्यङ्गं साक्षात्तु ज्ञानादिहेतुरिति सर्वकल्याणभाजनं तत्र २ प्रदेशे गीयते, यदि पुनर्यतिविनयवादिनोऽपि ज्ञानादिवृद्धिहेतुतया मुक्त्यङ्गं विनयमिच्छन्ति तदा तेऽप्यस्मत्पथवर्त्तिन एवेति न कदा(का)चिद्विप्रतिपत्तिरिति कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतमनुसन्धीयते। 'सूयगडस्स णं परित्ता' इत्यादि सर्वं प्राग्वत्, उद्देशानां च परिमाणं कृत्वा उद्देशसमुद्देशकालसङ्ख्या भावनीया, 'सेत्तं सूयगडे' तदेतत्सूत्रकृतं ॥

से किं तं ठाणे?, ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति अजीवा ठाविज्जंति ससमए ठाविज्जइ परसमए ठाविज्जइ ससमयपरसमए ठाविज्जइ लोए ठाविज्जइ अलोए ठाविज्जइ लोआलोए ठाविज्जइ, ठाणे णं टंका कूडा सेला सिहरिणो पब्भारा कुंडाइं गुहाओ आगरा दहा नईओ आघविज्जंति, ठाणे णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए तइए

अज्ञानवाद-धिकारः ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचय: प्रस्तुयते

अंगे एगे सुअक्खंधे दस अज्झयणा एगवीसं उद्देसणकाला एक्कवीसं समुद्देसणकाला बावत्तरि पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं ठाणे ३ (सूत्रं. ४८)

'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्स्थानं ?, तिष्ठन्ति प्रतिपाद्यतया जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति स्थानं, तथा चाह सूरिः—'ठाणे ण'मित्यादि, स्थानेन स्थाने वा 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे जीवाः स्थाप्यन्ते–यथाऽवस्थितस्वरूपप्ररूपणया व्यवस्थाप्यन्ते, शेषं प्रायो निगदसिद्धं, नवरं 'टंक'त्ति छिन्नतटं टङ्कं, कूटानि पर्वतस्योपरि, यथा वैताढ्यस्योपरि सिद्धायतनकूटादीनि नव कूटानि, शैला हिमवदादयः, शिखरिणः–शिखरेण समन्विताः, ते च वैताढ्यादयः, तथा यत्कूटमुपरि कुब्जाग्रवत् कुब्जं तत्प्राग्भारं, यद्वा यत्पर्वतस्योपरि हस्तिकुम्भाकृति कुब्जं विनिर्गतं तत्प्राग्भारं, कुण्डानि–गङ्गाकुण्डादीनि गुहाः–तिमिश्रगुहादयः आकराः–रूप्यसुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानि ह्रदाः–पौण्डरीकादयः नद्यो–गङ्गासिन्ध्वादय आख्यायन्ते, तथा स्थानेनाथवा स्थाने 'ण'मितिवाक्यालङ्कारे एकाद्येकोत्तरिकया वृद्ध्या दश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४८] दीप अनुक्रम [१४१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

स्थानकं यावद्विवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणा आख्यायते, किमुक्तं भवति ?-एकसङ्ख्यायां द्विसङ्ख्यायां यावद्दशसङ्ख्यायां ये भावा यथा यथाऽन्तर्भवन्ति तथा तथा ते ते प्ररूप्यन्ते इत्यर्थः, यथा 'एगे आया' इत्यादि, तथा 'जं इत्थं च णं लोके तं सव्वं दुपडोयारं, तंजहा—'जीवा चेव अजीवा चेव' इत्यादि, 'ठाणस्स णं परित्ता वायणा' इत्यादि, सर्वं प्राग्वत् परिभावनीयं, पदपरिमाणं च पूर्वस्मात् पूर्वस्मादङ्गादुत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिन्नङ्गे द्विगुणमवसेयं, शेषं पाठसिद्धं, यावन्निगमनं ।

समवायाधिकारः सू. ४९

से किं तं समवाए ?, समवाए णं जीवा समासिज्जंति अजीवा समासिज्जंति जीवाजीवा समासिज्जंति ससमए समासिज्जइ परसमए समासिज्जइ ससमयपरसमए समासिज्जइ लोए समासिज्जइ अलोए समासिज्जइ लोआलोए समासिज्जइ, समवाए णं एगाइआणं एगुत्तरिआणं ठाणसयविवड्ढिआणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ, समवायस्स णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे एगे सुअखंधे एगे अज्झयणे एगे उद्देसणकाले एगे समुद्देसणकाले एगे चोआले सयसहस्से पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा

५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया से एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं समवाए ४ ॥ (सू. ४९)

'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं समवायः ?, सम्यगवायो–निश्चयो जीवादीनां पदार्थानां यस्मात्स समवायः, तथा चाह सूरिः—'समवाए ण'मित्यादि, समवायेन यद्वा समवाये 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, जीवाः 'समाश्रीयन्ते'समिति–सम्यग् यथाऽवस्थिततया आश्रीयन्ते–बुद्ध्या स्वीक्रियन्ते, अथवा जीवाः समस्यन्ते–कुप्ररूपणाभ्यः समाकृष्य सम्यक्प्ररूपणायां प्रक्षिप्यन्ते, शेषमानिगमनं निगदसिद्धं, नवरमेकादिकानामेकोत्तराणां शतस्थानकं यावद्विवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणा आख्यायते, अयमत्र भावार्थः–एकसङ्ख्यायां द्विसङ्ख्यायां यावच्छतसङ्ख्यायां ये ये भावा यथा २ यत्र यत्रान्तर्भवन्ति ते ते तत्र तत्र तथा २ प्ररूप्यन्ते, यथा 'एगे आया' इत्यादि ॥

से किं तं विवाहे ?, विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति अजीवा विआहिज्जंति जीवाजीवा विआहिज्जंति ससमए विआहिज्जति परसमए विआहिज्जति ससमयपरसमए विआहिज्जंति लोए विआहिज्जति अलोए विआहिज्जति लोयालोए विआहिज्जंति, विवाहस्स णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखिज्जा वेढा संखिज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-अंग तथा ज्ञाताधर्मकथा-अंग सूत्रयोः शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [५०-५१]

दीप अनुक्रम [१४३--१४४]

संगहणीओ संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे एगे सुअक्खंधे एगे साइरेगे अज्झयणसए दस उद्देसगसहस्साइं दस समुद्देसगसहस्साइं छत्तीसं वागरणसहस्साइं दो लक्खा अट्ठासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखिज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं विवाहे ५। (सू. ५०)। से किं तं नायाधम्मकहाओ?, नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परिआया सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाईओ पुणबोहिलाभा अंतकिरिआओ अ आघविज्जंति, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंचपंचअक्खाइआसयाइं एगमेगाए अक्खाइआए पं-

व्याख्याधिकारः सू. ५० ज्ञाताधिकारः सू. ५१

५

१०

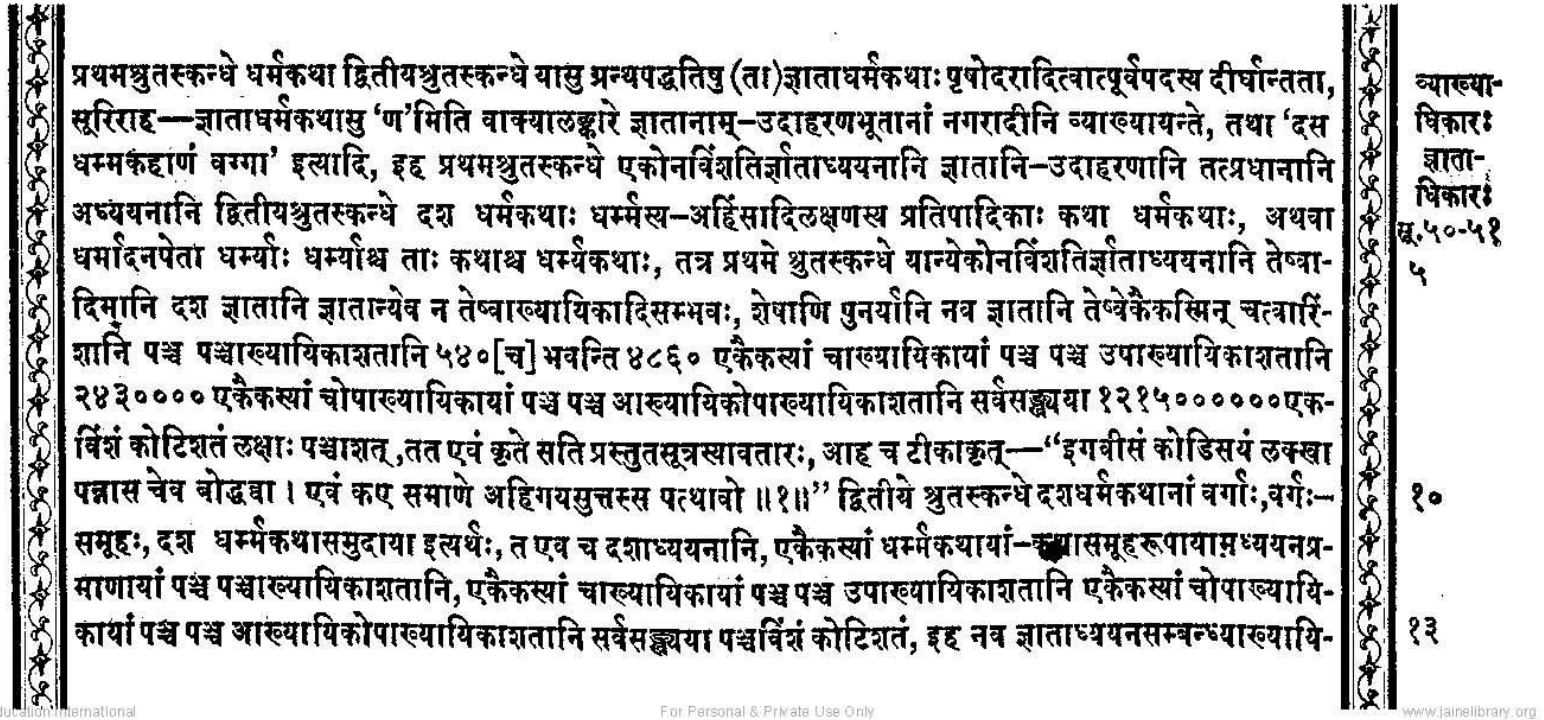
११

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चपंचउवक्खाइआसयाइं एगमेगाए उवक्खाइआए पंचपंचअक्खाइउवक्खाइआसयाइं एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंतित्ति समक्खायं, नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखिज्जा वेढा संखिज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे दो सुअक्खंधा एगूणवीसं अज्झयणा एगूणवीसं उद्देसणकाला एगूणवीसं समुद्देसणकाला संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जन्ति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं नायाधम्मकहाओ ६। (सू. ५१)

अथ केयं व्याख्या ?, व्याख्यायन्ते जीवादयः पदार्था अनयेति व्याख्या, 'उपसर्गादात' इत्यङ्प्रत्ययः, तथा चाह सूरिः–'विवाहे ण'मित्यादि, व्याख्यायां जीवा व्याख्यायन्ते शेषमानिगमनं पाठसिद्धं, । 'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः ?, ज्ञातानि–उदाहरणानि तत्प्रधाना धर्मकथा ज्ञाताधर्मकथाः, अथवा ज्ञातानि–ज्ञाताध्ययनानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



प्रथमश्रुतस्कन्धे धर्मकथा द्वितीयश्रुतस्कन्धे यासु ग्रन्थपद्धतिषु (ता)ज्ञाताधर्मकथाः पृषोदरादित्वात्पूर्वपदस्य दीर्घान्तता, सूरिराह—ज्ञाताधर्मकथासु 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे ज्ञातानाम्–उदाहरणभूतानां नगरादीनि व्याख्यायन्ते, तथा 'दस धम्मकहाणं वग्गा' इत्यादि, इह प्रथमश्रुतस्कन्धे एकोनविंशतिर्ज्ञाताध्ययनानि ज्ञातानि–उदाहरणानि तत्प्रधानानि अध्ययनानि द्वितीयश्रुतस्कन्धे दश धर्मकथाः धर्म्मस्य–अहिंसादिलक्षणस्य प्रतिपादिकाः कथा धर्मकथाः, अथवा धर्मादनपेता धर्म्याः धर्म्याश्च ताः कथाश्च धर्म्यकथाः, तत्र प्रथमे श्रुतस्कन्धे यान्येकोनविंशतिर्ज्ञाताध्ययनानि तेष्वादिमानि दश ज्ञातानि ज्ञातान्येव न तेष्वाख्यायिकादिसम्भवः, शेषाणि पुनर्यानि नव ज्ञातानि तेष्वेकैकस्मिन् चत्वारिंशानि पञ्च पञ्चाख्यायिकाशतानि ५४०[च] भवन्ति ४८६० एकैकस्यां चाख्यायिकायां पञ्च पञ्च उपाख्यायिकाशतानि २४३०००० एकैकस्यां चोपाख्यायिकायां पञ्च पञ्च आख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि सर्वसङ्ख्यया १२१५०००००० एकविंशं कोटिशतं लक्षाः पञ्चाशत्,तत एवं कृते सति प्रस्तुतसूत्रस्यावतारः, आह च टीकाकृत्—"इगवीसं कोडिसयं लक्खा पन्नास चेव बोद्धवा । एवं कए समाणे अहिगयसुत्तस्स पत्थावो ॥१॥" द्वितीये श्रुतस्कन्धे दशधर्मकथानां वर्गाः,वर्गः–समूहः, दश धर्म्मकथासमुदाया इत्यर्थः, त एव च दशाध्ययनानि, एकैकस्यां धर्म्मकथायां–कथासमूहरूपायामध्ययनप्रमाणायां पञ्च पञ्चाख्यायिकाशतानि, एकैकस्यां चाख्यायिकायां पञ्च पञ्च उपाख्यायिकाशतानि एकैकस्यां चोपाख्यायिकायां पञ्च पञ्च आख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशं कोटिशतं, इह नव ज्ञाताध्ययनसम्बन्ध्याख्यायि-

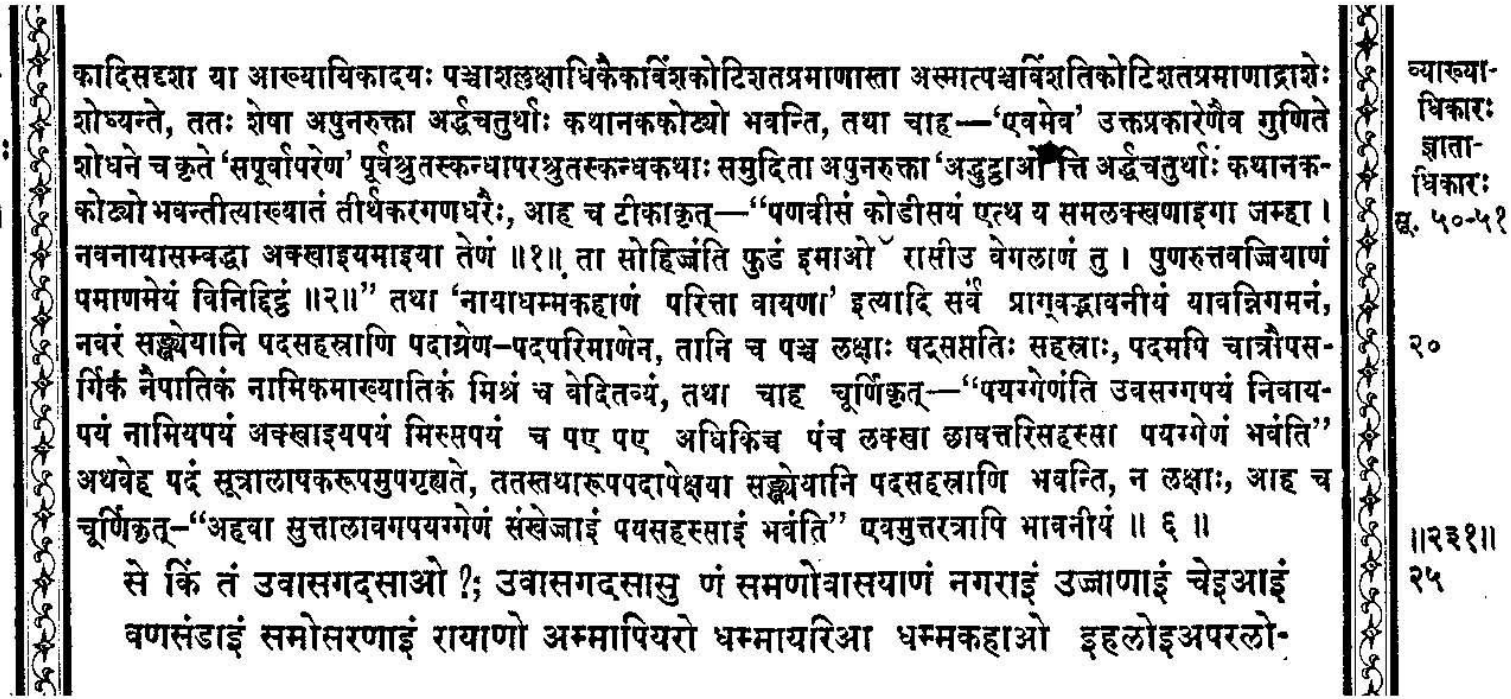
व्याख्याधिकारः ज्ञाताधिकारः सू.५०-५१ ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५०-५१]

दीप अनुक्रम [१४३--१४४]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२३१॥

कादिसदृशा या आख्यायिकादयः पञ्चाशल्लक्षाधिकैकविंशकोटिशतप्रमाणास्ता अस्मात्पञ्चविंशतिकोटिशतप्रमाणाद्राशेः शोध्यन्ते, ततः शेषा अपुनरुक्ता अर्द्धचतुर्थाः कथानककोट्यो भवन्ति, तथा चाह—'एवमेव' उक्तप्रकारेणैव गुणिते शोधने च कृते 'सपूर्वापरेण' पूर्वश्रुतस्कन्धापरश्रुतस्कन्धकथाः समुदिता अपुनरुक्ता 'अद्धट्ठाओ त्ति अर्द्धचतुर्थाः कथानककोट्यो भवन्तीत्याख्यातं तीर्थकरगणधरैः, आह च टीकाकृत्—"पणवीसं कोडीसयं एत्थ य समलक्खणाइगा जम्हा। नवनायासम्बद्धा अक्खाइयमाइया तेणं ॥१॥ ता सोहिज्जंति फुडं इमाओ रासीउ वेगलाणं तु। पुणरुत्तवज्जियाणं पमाणमेयं विनिद्दिट्ठं ॥२॥" तथा 'नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा' इत्यादि सर्वं प्राग्वद्भावनीयं यावन्निगमनं, नवरं सङ्ख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण–पदपरिमाणेन, तानि च पञ्च लक्षाः षट्सप्ततिः सहस्राः, पदमपि चात्रौपसर्गिकं नैपातिकं नामिकमाख्यातिकं मिश्रं च वेदितव्यं, तथा चाह चूर्णिकृत्—"पयग्गेणंति उवसग्गपयं निवायपयं नामियपयं अक्खाइयपयं मिस्सपयं च पए पए अधिकिच पंच लक्खा छावत्तरिसहस्सा पयग्गेणं भवंति" अथवेह पदं सूत्रालापकरूपमुपगृह्यते, ततस्तथारूपपदापेक्षया सङ्ख्येयानि पदसहस्राणि भवन्ति, न लक्षाः, आह च चूर्णिकृत्–"अहवा सुत्तालावगपयग्गेणं संखेज्जाइं पयसहस्साइं भवंति" एवमुत्तरत्रापि भावनीयं ॥ ६ ॥

से किं तं उवासगदसाओ ?; उवासगदसासु णं समणोवासयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिआ धम्मकहाओ इहलोइअपरलो-

व्याख्या-धिकारः ज्ञाता-धिकारः सू. ५०-५१

२०

॥२३१॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपासकदशा-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [५२]

दीप अनुक्रम [१४५]

इआ इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परिआगा सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणया पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाईओ पुणबोहिलाभा अंतकिरिआओ अ आघविज्जंति, उवासगदसाणं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे एगे सुअक्खंधे दस अज्झयणा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं उवासगदसाओ ७ ॥ (सू. ५२)

'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता उपासकदशाः ?, उपासकाः–श्रावकाः तद्भूताणुव्रतगुणव्रतादिक्रियाकलापप्रतिबद्धा दशा–अध्ययनानि उपासकदशाः, तथा चाह सूरिः–'उवासगदसासु ण'मित्यादि पाठसिद्धं यावन्निगमनं, नवरं

व्याख्या-धिकारः ज्ञाता-धिकारः सू. ५१-५२

५

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [१४६]

सङ्ख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेणेति एकादश लक्षा द्विपञ्चाशत्सहस्राणि इत्यर्थः, द्वितीयं तु व्याख्यानं प्रागिव भावनीयं ।

से किं तं अंतगडदसाओ ?, अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइअपरलोइआ इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परिआगा सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अंतकिरिआओ आघविज्जंति, अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे एगे सुअक्खंधे अट्ठ वग्गा अट्ठ उद्देसणकाला अट्ठ समुद्देसणकाला संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं अंतगडदसाओ ८ ॥ (सू. ५३)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतकृद्दशा-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [१४६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता अन्तकृद्दशाः ?, अन्तो–विनाशस्तं कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य ये कृतवन्तस्तेऽन्तकृतः–तीर्थंकरादयः तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा–अध्ययनानि अन्तकृद्दशाः, तथा चाह सूरिः—'अंतकडे(कृद्)दशासु' 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, पाठसिद्धं यावद् 'अन्तकिरियाओ'त्ति भवापेक्षया अन्त्याश्च ताः क्रियाश्चान्त्यक्रियाः शैलेश्यवस्थादिका गृह्यन्ते, शेषं प्रकटार्थं यावद् 'अट्ठ वग्ग'त्ति वर्गः समूहः, स चान्तकृतामध्ययनानां वा वेदितव्यः, सर्वाणि चाध्ययनानि वर्गेवर्गान्तर्गतानि युगपदुद्दिश्यन्ते अत आह—अष्टावुद्देशनकाला अष्टौ समुद्देशनकालाः, सङ्ख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण तानि च किल त्रयोविंशतिः लक्षाश्चत्वारश्च सहस्राः, शेषं पाठसिद्धं यावन्निगमनम् ॥

उपासकदशाधि. अंतकृद्दशाधि. सू. ५२ ५३ ५

से किं तं अणुत्तरोववाइअदसाओ ?, अणुत्तरोववाइअदसासु णं अणुत्तरोववाइआणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापिअरो धम्मायरिआ धम्मकहाओ इहलोइअपरलोइआ इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परिआगा सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती सुकुलपच्चायाईओ पुणबोहिलाभा अंतकिरिआओ आघविज्जंति, अणुत्तरोववाइअदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ

१०

१२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरोपपातिकदशा-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे एगे सुअक्खंधे तिन्नि वग्गा तिन्नि उद्देसणकाला तिन्नि समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं अणुत्तरोववाइअदसाओ ९ ॥ (सू. ५४)

'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता अनुत्तरौपपातिकदशाः ?, न विद्यते उत्तरः–प्रधानो येभ्यस्तेऽनुत्तराः—सर्वोत्तमा इत्यर्थः, उपपातेन निर्वृत्ता औपपातिका अनुत्तराश्च ते औपपातिकाश्च अनुत्तरौपपातिकाः, विजयाद्यनुत्तरविमानवासिन इत्यर्थः, तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा अनुत्तरौपपातिकदशाः, तथा चाह सूरिः—'अनुत्तरोववाइयदसा सु ण'मित्यादि पाठसिद्धं यावन्निगमनं, नवरमध्ययनसमूहो वर्गः, वर्गे २ च दश दशाध्ययनानि, वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते इति त्रय एव उद्देशनकालास्त्रय एव समुद्देशनकालाः, सङ्ख्येयानि च पदसहस्राणि–पदसहस्राष्टाधिकपदचत्वारिंशल्लक्षप्रमाणानि वेदितव्यानि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५५]

दीप अनुक्रम [१४८]

से किं तं पण्हावागरणाइं?, पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, तंजहा–अंगुट्ठपसिणाइं बाहुपसिणाइं अद्दागपसिणाइं अन्नेवि विचित्ता विज्जाइसया नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे एगे सुअक्खंधे पणयालीसं अज्झयणा पणयालीसं उद्देसणकाला पणयालीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयगडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया से एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, सेतं पण्हावागरणाइं १० ॥ (सू.५५)

'से किं त'मित्यादि, अथ कानि प्रश्नव्याकरणानि ?, प्रश्नः–प्रतीतः तद्विषयं निर्वचनं–व्याकरणं, तानि च बहूनि ततो बहुवचनं, तेषु प्रश्नव्याकरणेषु अष्टोत्तरं प्रश्नशतं–या विद्या मन्त्रा वा विधिना जप्यमानाः पृष्टा एव सन्तः शुभाशुभं कथयन्ति ते प्रश्नाः तेषामष्टोत्तरं शतं, या पुनर्विद्या मन्त्रा वा विधिना जप्यमाना अपृष्टा एव शुभाशुभं कथयन्ति

अनुत्तरोपपातिकाप्रश्नव्याकरणा. सू. ५४-५५ ५ १० १२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [५५]

दीप अनुक्रम [१४८]

तेऽप्रश्नाः तेषामष्टोत्तरं शतं, तथा ये पृष्टाः अपृष्टाश्च कथयन्ति ते प्रश्नाप्रश्नाः तेषामप्यष्टोत्तरं शतमाख्यायते, तथाऽन्येपि च विविधा विद्यातिशयाः कथ्यन्ते, तथा नागकुमारैः सुपर्णकुमारैरन्यैश्च भवनपतिभिः सह साधूनां दिव्याः संवादा–जल्पविधयः कथ्यन्ते, यथा भवन्ति तथा कथ्यन्ते इत्यर्थः, शेषं निगदसिद्धं, नवरं सङ्ख्येयानि पदसहस्राणि द्विनवतिर्लक्षाः षोडश सहस्रा इत्यर्थः ।

से किं तं विवागसुअं ?, विवागसुए णं सुकडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जइ, तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा, से किं तं दुहविवागा ?, दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं वणसंडाइं चेइआइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापिअरो धम्मआरिआ धम्मकहाओ इहलोइअपरलोइआ इड्ढिविसेसा निरयगमणाइं संसारभवपवंचा दुहपरंपराओ दुकुलपच्चायाईओ दुलहबोहिअत्तं आघविज्जइ से तं दुहविवागा । से किं तं सुहविवागा?, सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं वणसंडाइं चेइआइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापिअरो धम्मायरिआ धम्मकहाओ इहलोइअपारलोइआ इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परिआगा सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं

२०

॥२३४॥

२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाक-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचयः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [१४९]

देवलोगगमणाइं सुहपरंपराओ सुकुलपच्चायाईओ पुणबोहिलाभा अंतकिरिआओ आघविज्जंति । विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ संगहणीओ संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे दो सुअक्खंधा वीसं अज्झयणा वीसं उद्देसणकाला वीसं समुद्देसणकाला संखिज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं विवागसुयं ११ (सू. ५६)

विपाकश्रु. सू. ५६ दृष्टिवादे-परिकर्माध्ययनाधिकारः सू. ५७

अथ किं तद्विपाकश्रुतं?, विपचनं विपाकः शुभाशुभकर्मपरिणाम इत्यर्थः तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाकश्रुतं, शेषं सर्वमानिगमनं पाठसिद्धं, नवरं सङ्ख्येयानि पदसहस्राणीति एका कोटी चतुरशीतिर्लक्षा द्वात्रिंशच्च सहस्राणि । १०

से किं तं दिट्ठिवाए ?, दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ, से समासओ पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा–परिकम्मे १ सुत्ताइं २ पुव्वगए ३ अणुओगे ४ चूलिआ ५, से किं तं परिकम्मे?, १२

नं०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिवाद-अंग सूत्रस्य शास्त्रिय परिचय: प्रस्तुयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

परिकम्मे सत्तविहे पन्नत्ते, तंजहा–सिद्धसेणिआपरिकम्मे १ मणुस्ससेणिआपरिकम्मे २ पुट्ठसे-णिआपरिकम्मे ३ ओगाढसेणिआपरिकम्मे ४ उवसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे ५ विप्पजहणसेणि-आपरिकम्मे ६ चुआचुअसेणिआपरिकम्मे ७, से किं तं सिद्धसेणिआपरिकम्मे ?, २ चउदसविहे पन्नत्ते, तंजहा–माउगापयाइं १ एगट्ठिअपयाइं २ अट्ठपयाइं २ पाढोआमासपयाइं ४ केउभूअं ५ रासिबद्धं ६ एगगुणं ७ दुगुणं ८ तिगुणं ९ केउभूअं १० पडिग्गहो ११ संसारपडिग्गहो १२ नंदावत्तं १३ सिद्धावत्तं १४, से तं सिद्धसेणिआपरिकम्मे १, से किं तं मणुस्ससेणिआपरिकम्मे?,म-णुस्ससेणिआपरिकम्मे चउदसविहे पन्नत्ते, तंजहा–माउयापयाइं १ एगट्ठिअपयाइं २ अट्ठापयाइं ३ पाढोआमासपयाइं ४ केउभूअं ५ रासिबद्धं ६ एगगुणं ७ दुगुणं ८ तिगुणं ९ केउभूअं १० पडिग्गहो ११ संसारपडिग्गहो १२ नंदावत्तं १३ मणुस्सावत्तं १४, सेत्तं मणुस्ससेणिआपरिकम्मे २, से किं तं पुट्ठसेणिआपरिकम्मे ?. पुट्ठसेणिआपरिकम्मे इक्कारसविहे पन्नत्ते, तंजहा–पाढोआमा-सपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० पुट्ठावत्तं ११, सेत्तं पुट्ठसेणिआपरिकम्मे ३, से किं तं ओगाढसेणिआपरिकम्मे ?, ओगाढसेणिआपरिकम्मे इक्कारसविहे पन्नत्ते, तंजहा–पाढोआमासपयाइं १ केउभूअं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूअं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० ओगाढावत्तं११, सेत्तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ४, से किं तं उपसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे ?, २ इक्कारसविहे पन्नत्ते, तंजहा–पाढोआमासपयाइं १ केउभूयं २ रासीबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूअं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११, सेतं उवसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे ५, से किं तं विप्पजहणसेणिआपरिकम्मे ?, विप्पजहणसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पन्नत्ते, तंजहा–पाढोआमासपयाइं १ केउभूअं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूअं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११, से तं विप्पजहणसेणिआपरिकम्मे ६ । से किं तं चुआचुअसेणिआपरिकम्मे ?, चुअचुअसेणिआपरिकम्मे एक्कारसविहे पन्नत्ते, तं-

५

१०

११

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

जहा–पाढोआमासपयाइं १ केउभूअं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूअं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० चुआचुआवत्तं ११, सेत्तं चुआचुअसेणिआपरिकम्मे ७, छ चउक्कनइआइं सत्त तेरासियाइं, सेत्तं परिकम्मे १। से किं तं सुत्ताइं ?, सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तंजहा–उजुसुयं १ परिणयापरिणयं २ बहुभंगिअं ३ विजयचरियं ४ अणंतरं ५ परंपरं ६ मासाणं ७ संजूहं ८ संभिण्णं ९ आहव्वायं १० सोवत्थिअवत्तं ११ नंदावत्तं १२ बहुलं १३ पुट्ठापुट्ठं १४ विआवत्तं १५ एवंभूअं १६ दुयावत्तं १७ वत्तमाणप्पयं १८ समभिरूढं १९ सव्वओभद्दं २० पस्सासं २१ दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेअनइआणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेअनइयाणि आजीविअसुत्तपरिवाडीए इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाणि तेरासिअसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइआणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीई सुत्ताइं भवंतीति मक्खायं, से तं सुत्ताइं २ । से किं तं पुव्वगए ?, २ चउद्दसविहे पण्णत्ते, तंजहा–

२०
॥२३६॥
२२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२--८४॥

दीप अनुक्रम [१५०--१५४]



उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरिअं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४ नाणप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८ पच्चक्खाणप्पवायं (पच्चक्खाणं) ९ विज्जाणुप्पवायं १० अवंझं ११ पाणाऊ १२ किरिआविसालं १३ लोकबिंदुसारं १४। उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू चत्तारि चूलिआवत्थू पन्नत्ता, अग्गेणीयपुव्वस्स णं चोद्दस वत्थू दुवालस चूलिआवत्थू पण्णत्ता, वीरियपुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलिआवत्थू पण्णत्ता, अत्थिनत्थिप्पवायपुव्वस्स णं अट्ठारस वत्थू दस चूलिआवत्थू पण्णत्ता, नाणप्पवायपुव्वस्स णं बारस वत्थू पण्णत्ता, सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दोण्णि वत्थू पण्णत्ता, आयप्पवायपुव्वस्स णं सोलस वत्थू पण्णत्ता, कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता, पच्चक्खाणपुव्वस्स णं वीसं वत्थू पन्नत्ता, विज्जाणुप्पवायपुव्वस्स णं पन्नरस वत्थू पण्णत्ता, अवंझपुव्वस्स णं बारस वत्थू पन्नत्ता, पाणाउपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पण्णत्ता, किरिआविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता, लोकबिंदुसारपुव्वस्स णं पणुवीस वत्थू पण्णत्ता–'दस १ चोदस २ अट्ठ ३ [अ]ट्ठारसेव ४ बारस ५ दुवे ६ अ वत्थूणि। सोलस ७ तीसा ८

दृष्टिवादे-परिकर्माध्ययनाधिकारः सू. ५७

५

१०

११

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

वीसा ९ पन्नरस १० अणुप्पवायंमि ॥८२॥ बारस इक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि। तीसा पुण तेरसमे चोद्दसमे पण्णवीसाओ॥८३॥चत्तारि १ दुवालस २ अट्ठ ३ चेव दस ४ चेव चुल्लवत्थूणि। आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिआ नत्थि ॥८४॥ से तं पुव्वगए। से किं तं अणुओगे ?, अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–मूलपढमाणुओगे गंडिआणुओगे य, से किं तं मूलपढमाणुओगे ?, मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा देवगमणाइं आउं चवणाइं जम्मणाणि अभिसेआ रायवरसिरीओ पव्वज्जाओ तवा य उग्गा केवलनाणुप्पयाओ तित्थपवत्तणाणि अ सीसा गणा गणहरा अज्जपवत्तिणीओ संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं जिणमणपज्जवओहिनाणी सम्मत्तसुअनाणिणो अ वाई अणुत्तरगई अ उत्तरवेउव्विणो अ मुणिणो जत्तिआ सिद्धा सिद्धीपहो जह देसिओ जच्चिरं च कालं पाओवगया जे जहिं जत्तिआइं भत्ताइं छेइत्ता अंतगडे मुणिवरुत्तमे तमरओघविप्पमुक्के मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते एवमन्ने अ एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिआ, सेत्तं मूलपढमाणुओगे। से किं तं गंडिआ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

णुओगे ?, २ कुलगरगंडिआओ तित्थयरगंडिआओ चक्कवट्टिगंडिआओ दसारगंडिआओ बलदेवगंडिआओ वासुदेवगंडिआओ गणधरगंडिआओ भद्दबाहुगंडिआओ तवोकम्मगंडिआओ हरिवंसगंडिआओ उस्सप्पिणीगंडिआओ ओसप्पिणीगंडिआओ चित्तंतरगंडिआओ अमरनरतिरिअनिरयगइगमणविविहपरियट्टणेसु एवमाइआओ गंडिआओ आघविज्जंति पण्णविज्जंति, से तं गंडिआणुओगे, से तं अणुओगे ४। से किं तं चूलिआओ ?, चूलिआओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिआ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलिआइं, से तं चूलिआओ ५। दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे एगे सुअक्खंधे चोद्दस पुव्वाइं संखेज्जा वत्थू संखेज्जा चूलवत्थू संखेज्जा पाहुडा संखेज्जा पाहुडपाहुडा संखेज्जाओ पाहुडिआओ संखेज्जाओ पाहुडपाहुडिआओ संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासयकडनिबद्धनिकाइआ जिणपन्नत्ता भावा

दृष्टिवादे-परिकर्माधिकारः सू. ५७

५

१०

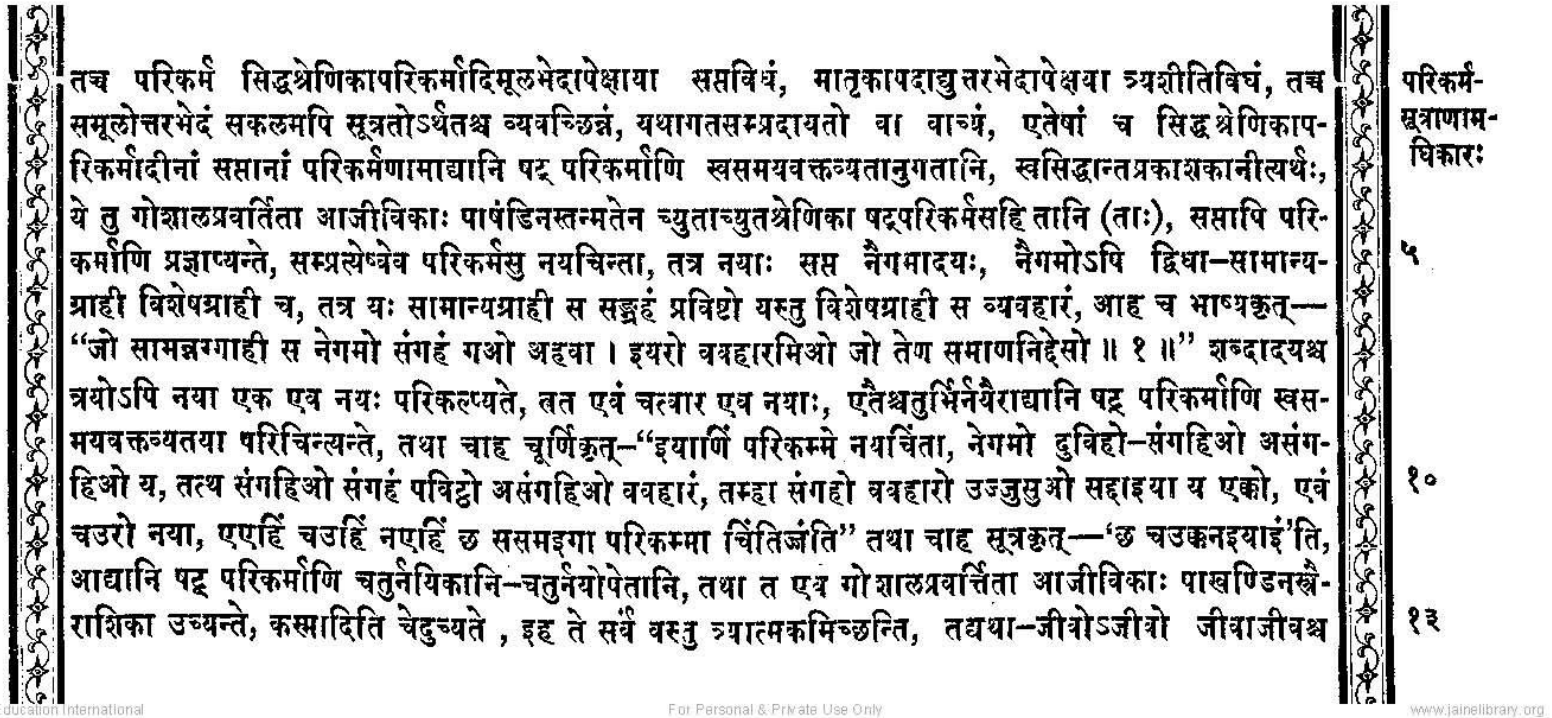
११

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विन्नाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जति, से तं दिट्ठिवाए १२ ॥ (सू. ५७)

'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं दृष्टिवादः?, दृष्टयो–दर्शनानि वदनं वादः दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः, अथवा पतनं पातो दृष्टीनां पातो यत्र स दृष्टिपातः, तथाहि–तत्र सर्वनयदृष्टय आख्यायन्ते, तथा चाह सूरिः—'दिट्ठिवाए ण'मित्यादि, दृष्टिवादेन अथवा दृष्टिपातेन यद्वा दृष्टिवादे दृष्टिपाते 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे सर्वभावप्ररूपणा आख्यायते, 'से समासतो पंचविहे पन्नत्ते' इत्यादि, सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नं तथापि लेशतो यथाऽऽगतसम्प्रदायं किञ्चिद्व्याख्यायते, स दृष्टिवादो दृष्टिपातो वा समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १ सूत्राणि २ पूर्वगतं ३ अनुयोग ४ श्रूलिका ५, तत्र परिकर्म नाम योग्यतापादनं तद्धेतुः शास्त्रमपि परिकर्म, किमुक्तं भवति?–सूत्रादिपूर्वगतानुयोगसूत्रार्थग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्माणि, यथा गणितशास्त्रे सङ्कलनादीन्याद्यानि षोडश परिकर्माणि शेषगणितसूत्रार्थग्रहणे योग्यतासम्पादनसमर्थानि, तथाहि–यथा गणितशास्त्रे गणितशास्त्रगताद्यषोडशपरिकर्मगृहीतसूत्रार्थः सन् शेषगणितशास्त्रग्रहणयोग्यो भवति, नान्यथा, तथा गृहीतविवक्षितपरिकर्मसूत्रार्थः सन् शेषसूत्रादिरूपदृष्टिवादश्रुतग्रहणयोग्यो भवति, नेतरथा, तथा चोक्तं चूर्णौ—"परिकम्मेति योग्यताकरणं, जह गणियस्स सोलस परिकम्मा, तग्गहियसुत्तत्थो सेसगणियस्स जोग्गो भवइ, एवं गहियपरिकम्मसुत्तत्थो सेससुत्ताइदिट्ठिवायस्स जोग्गो भवइ"त्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तच्च परिकर्म सिद्धश्रेणिकापरिकर्मादिमूलभेदापेक्षया सप्तविधं, मातृकापदाद्युत्तरभेदापेक्षया त्र्यशीतिविधं, तच्च समूलोत्तरभेदं सकलमपि सूत्रतोऽर्थतश्च व्यवच्छिन्नं, यथागतसम्प्रदायतो वा वाच्यं, एतेषां च सिद्धश्रेणिकापरिकर्मादीनां सप्तानां परिकर्मणामाद्यानि षट् परिकर्माणि स्वसमयवक्तव्यतानुगतानि, स्वसिद्धान्तप्रकाशकानीत्यर्थः, ये तु गोशालप्रवर्तिता आजीविकाः पाषंडिनस्तन्मतेन च्युताच्युतश्रेणिका षट्परिकर्मसहितानि (ताः), सप्तापि परिकर्माणि प्रज्ञाप्यन्ते, सम्प्रत्येष्वेव परिकर्मसु नयचिन्ता, तत्र नयाः सप्त नैगमादयः, नैगमोऽपि द्विधा–सामान्यग्राही विशेषग्राही च, तत्र यः सामान्यग्राही स सङ्ग्रहं प्रविष्टो यस्तु विशेषग्राही स व्यवहारं, आह च भाष्यकृत्—"जो सामन्नग्गाही स नेगमो संगहं गओ अहवा । इयरो ववहारमिओ जो तेण समाणनिद्देसो ॥ १ ॥" शब्दादयश्च त्रयोऽपि नया एक एव नयः परिकल्प्यते, तत एवं चत्वार एव नयाः, एतैश्चतुर्भिर्नयैराद्यानि षट् परिकर्माणि स्वसमयवक्तव्यतया परिचिन्त्यन्ते, तथा चाह चूर्णिकृत्–"इयाणिं परिकम्मे नयचिंता, नेगमो दुविहो–संगहिओ असंगहिओ य, तत्थ संगहिओ संगहं पविट्ठो असंगहिओ ववहारं, तम्हा संगहो ववहारो उज्जुसुओ सद्दाइया य एक्को, एवं चउरो नया, एएहिं चउहिं नएहिं छ ससमइगा परिकम्मा चिंतिज्जंति" तथा चाह सूत्रकृत्—'छ चउक्कनइयाइं'ति, आद्यानि षट् परिकर्माणि चतुर्नयिकानि–चतुर्नयोपेतानि, तथा त एव गोशालप्रवर्तिता आजीविकाः पाखण्डिनस्त्रैराशिका उच्यन्ते, कस्मादिति चेदुच्यते , इह ते सर्वं वस्तु त्र्यात्मकमिच्छन्ति, तद्यथा–जीवोऽजीवो जीवाजीवश्च

परिकर्म-सूत्राणाम-धिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

लोका अलोका लोकालोकाश्च, सदसत्सदसत्,नयचिन्तायामपि त्रिविधं नयमिच्छन्ति,तद्यथा—द्रव्यास्तिकं पर्यायास्तिकमुभयास्तिकं च, ततस्त्रिभी राशिभिश्चरन्तीति त्रैराशिकाः तन्मतेन सप्तापि परिकर्माणि उच्यन्ते, तथा चाह सूत्रकृत्–'सत्त तेरासिया' इति, सप्त परिकर्माणि त्रैराशिकमतानुयायीनि, एतदुक्तं भवति–पूर्वं सूरयो नयचिन्तायां त्रैराशिकमतमवलम्बमानाः सप्तापि परिकर्माणि त्रिविधयापि नयचिन्तया चिन्तयन्ति स्मेति, 'सेत्तं परिकम्मे' तदेतत्परिकर्म। 'से किं तं सुत्ताइं' अथ कानि सूत्राणि ?, पू(स)र्वस्य पूर्वगतसूत्रार्थस्य सूचनात्सूत्राणि, तथाहि—तानि सूत्राणि सर्वद्रव्याणां सर्वपर्यायाणां सर्वनयानां सर्वभङ्गविकल्पानां प्रदर्शकानि, तथा चोक्तं चूर्णिकृता—"ताणि य सुत्ताइं सव्वदव्वाण सव्वपज्जवाण सव्वनयाण सव्वभंगविकप्पाण य पदंसगाणि। सव्वस्स पुव्वगयस्स सुयस्स अत्थस्स य सूयगत्ति सूयणत्ताउ(वा) सुया भणिया जहाभिहाणत्था" इति, आचार्य आह–सूत्राणि द्वाविंशतिः प्रज्ञप्तानि, तद्यथा 'ऋजुसूत्र'–मित्यादि, एतान्यपि सम्प्रति सूत्रतोऽर्थतश्च व्यवच्छिन्नानि यथागतसम्प्रदायतो वा वाच्यानि, एतानि च सूत्राणि नयविभागतो विभज्यमानानि अष्टाशीतिसङ्ख्यानि भवन्ति, कथमिति चेत् ? अत आह—'इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं' इत्यादि, इह यो नाम नयः सूत्रं छेदेन छिन्नमेवाभिप्रैति न द्वितीयेन सूत्रेण सह सम्बन्धयति यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ'मिति श्लोकं, तथाहि–अयं श्लोकः छिन्नच्छेदनयमतेन व्याख्यायमानो न द्वितीयादीन् श्लोकानपेक्षते नापि द्वितीयादयः श्लोका अमुं, अयमत्राभिप्रायः–तथा कथञ्चनाप्यमुं श्लोकं पूर्वसूरयः छिन्नच्छे-

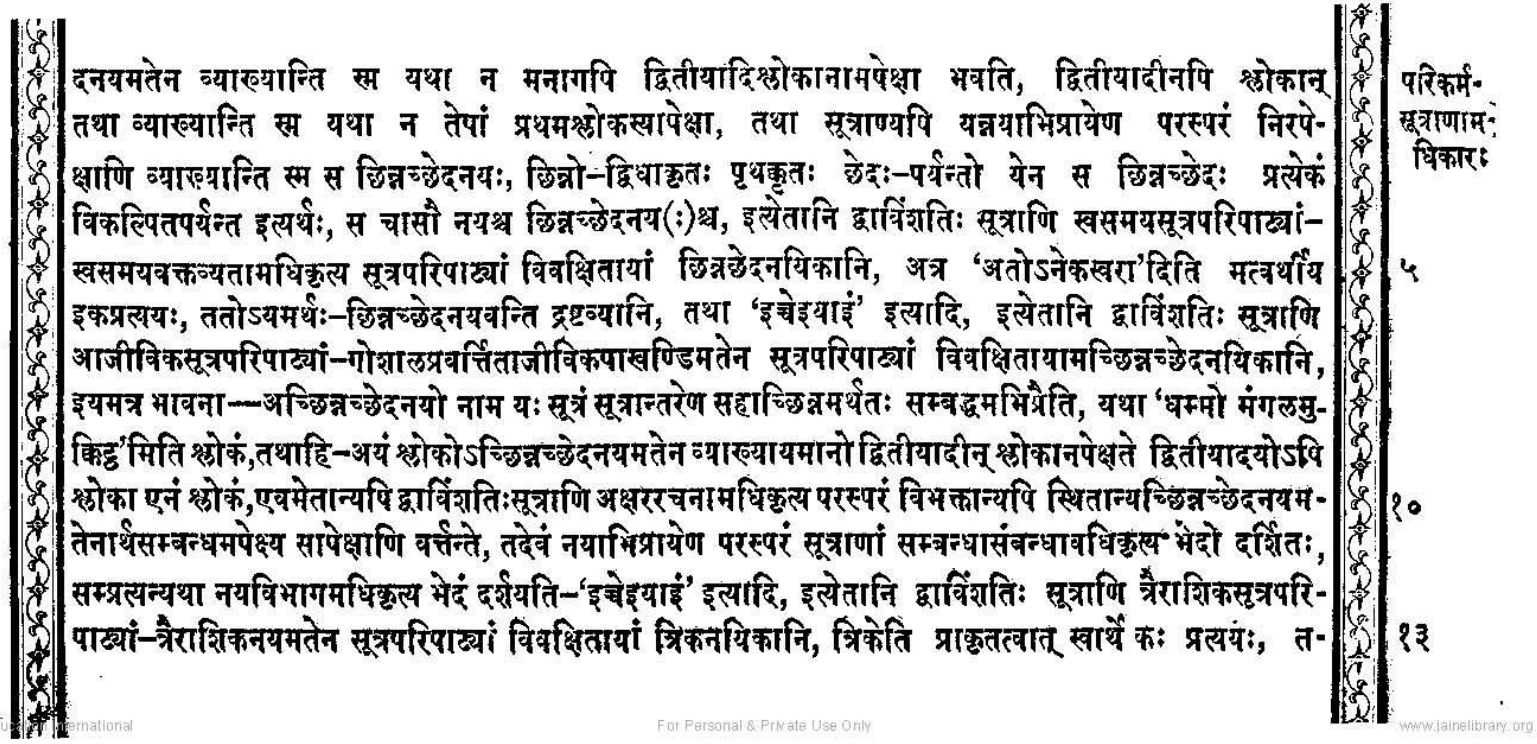
२०

॥२३९॥

२५

२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



दनयमतेन व्याख्यान्ति स्म यथा न मनागपि द्वितीयादिश्लोकानामपेक्षा भवति, द्वितीयादीनपि श्लोकान् तथा व्याख्यान्ति स्म यथा न तेषां प्रथमश्लोकस्यापेक्षा, तथा सूत्राण्यपि यन्नयाभिप्रायेण परस्परं निरपेक्षाणि व्याख्यान्ति स्म स छिन्नच्छेदनयः, छिन्नो–द्विधाकृतः पृथक्कृतः छेदः–पर्यन्तो येन स छिन्नच्छेदः प्रत्येकं विकल्पितपर्यन्त इत्यर्थः, स चासौ नयश्च छिन्नच्छेदनय(:)श्च, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि स्वसमयसूत्रपरिपाट्यां–स्वसमयवक्तव्यतामधिकृत्य सूत्रपरिपाट्यां विवक्षितायां छिन्नछेदनयिकानि, अत्र 'अतोऽनेकस्वरा'दिति मत्वर्थीय इकप्रत्ययः, ततोऽयमर्थः–छिन्नच्छेदनयवन्ति द्रष्टव्यानि, तथा 'इच्चेइयाइं' इत्यादि, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि आजीविकसूत्रपरिपाट्यां–गोशालप्रवर्त्तिताजीविकपाखण्डिमतेन सूत्रपरिपाट्यां विवक्षितायामच्छिन्नच्छेदनयिकानि, इयमत्र भावना—अच्छिन्नच्छेदनयो नाम यः सूत्रं सूत्रान्तरेण सहाच्छिन्नमर्थतः सम्बद्धमभिप्रैति, यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ'मिति श्लोकं,तथाहि–अयं श्लोकोऽच्छिन्नच्छेदनयमतेन व्याख्यायमानो द्वितीयादीन् श्लोकानपेक्षते द्वितीयादयोऽपि श्लोका एनं श्लोकं,एवमेतान्यपि द्वाविंशतिःसूत्राणि अक्षररचनामधिकृत्य परस्परं विभक्तान्यपि स्थितान्यच्छिन्नच्छेदनयमतेनार्थसम्बन्धमपेक्ष्य सापेक्षाणि वर्त्तन्ते, तदेवं नयाभिप्रायेण परस्परं सूत्राणां सम्बन्धासंबन्धावधिकृत्य भेदो दर्शितः, सम्प्रत्यन्यथा नयविभागमधिकृत्य भेदं दर्शयति–'इच्चेइयाइं' इत्यादि, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्यां–त्रैराशिकनयमतेन सूत्रपरिपाट्यां विवक्षितायां त्रिकनयिकानि, त्रिकेति प्राकृतत्वात् स्वार्थे कः प्रत्ययः, त-

परिकर्म-सूत्राणाम-धिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४०॥

लोऽयमर्थः–त्रिनयिकानि–त्रिनयोपेतानि, किमुक्तं भवति ?–त्रैराशिकमतमवलम्ब्य द्रव्यास्तिकादिनयत्रिकेण चिन्त्यन्ते इति, तथा इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि स्वसमयसूत्रपरिपाट्यां–स्वसमयवक्तव्यतामधिकृत्य सूत्रपरिपाट्यां विवक्षितायां चतुर्नयिकानि–सङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दरूपनयचतुष्टयोपेतानि, सङ्ग्रहादिनयचतुष्टयेन चिन्त्यन्ते इत्यर्थः, एवमेव–उक्तेनैव प्रकारेण 'पुव्वावरेणं'ति पूर्वाणि चापराणि च पूर्वापरं समाहारप्रधानो द्वन्द्वः, पूर्वापरसमुदाय इत्यर्थः, ततः, एतदुक्तं भवति–नयविभागतो विभिन्नानि पूर्वाण्यपराणि च सूत्राणि समुदितानि सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्ति, चतसृणां द्वाविंशतीनामष्टाशीतिमानत्वात्, इत्याख्यातं तीर्थकरगणधरैः, 'से तं सुत्ताइं' तान्येतानि सूत्राणि २। 'से किं त'मित्यादि, अथ किं तत्पूर्वगतं ?, इह तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्त्तनकाले गणधरान् सकलश्रुतार्थावगाहनसमर्थानधिकृत्य पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते, ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते,गणधराः पुनः सूत्ररचनां विदधतः आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्ति वा, अन्ये तु व्याचक्षते–पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते गणधरा अपि पूर्वं पूर्वगतसूत्रं विरचयन्ति पश्चादाचारादिकम्, अत्र चोदक आह–नन्विदं पूर्वापरविरुद्धं यस्मादादौ निर्युक्तावुक्तं–'सव्वेसिं आयारो पढमो' इत्यादि, सत्यमुक्तं, किन्तु तत्स्थापनामधिकृत्योक्तमक्षररचनामधिकृत्य पुनः पूर्वं पूर्वाणि कृतानि ततो न कश्चित् पूर्वापरविरोधः, सूरिराह—'पुव्वगयं' इत्यादि, पूर्वगतं श्रुतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'उत्पादपूर्व'मित्यादि, तत्र उत्पादप्रतिपादकं पूर्वमुत्पादपूर्वं, तथाहि–तत्र सर्वद्रव्याणां सर्वपर्यायाणां चोत्पादमधिकृत्य प्ररूपणा क्रियते, आह चूर्णिकृत्–"पढमं

सूत्रपूर्वगताधिकारः २०

॥२४०॥ २५ २६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

उप्पायपुव्वं, तत्थ सव्वदव्वाणं पज्जवाण य उप्पायमंगीकाउं पण्णवणा कया" इति, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी। द्वितीयमग्रायणीयं,अग्रं–परिमाणं तस्यायनं गमनं परिच्छेदनमित्यर्थः तस्मै हितमग्रायणीयं, सर्वद्रव्यादिपरिमाणपरिच्छेदकारीति भावार्थः, तथाहि—सर्व[जीव]द्रव्याणां सर्वपर्यायाणां सर्वजीवविशेषाणां च (तत्र)परिमाणमुपवर्ण्यते, यत उक्तं चूर्णिकृता—"विइयं अग्गाणीयं, तत्थ सव्वदव्वाण पज्जवाण सव्वजीवाण य अग्गं–परिमाणं वन्निज्जइ"त्ति, अग्रायणीयं तस्य पदपरिमाणं षण्णवतिः पदशतसहस्राणि। तृतीयं पूर्वं 'वीरिय'न्ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद्वीर्यप्रवादं, तत्र सकर्मेतराणां जीवानामजीवानां च वीर्यं प्रवदतीति वीर्यप्रवादं, 'कर्मणोऽणि'ति अण्प्रत्ययः, तस्य पदपरिमाणं सप्ततिः पदशतसहस्राणि। चतुर्थमस्तिनास्तिप्रवादं, तत्र यद्वस्तु लोकेऽस्ति धर्मास्तिकायादि यच्च नास्ति खरशृङ्गादि तत्प्रवदतीत्यस्तिनास्तिप्रवादं, अथवा सर्वं वस्तु स्वरूपेणास्ति पररूपेण नास्तीति प्रवदतीति अस्तिनास्तिप्रवादं, तस्य पदपरिमाणं षष्टिः पदशतसहस्राणि। पञ्चमं ज्ञानप्रवादं, ज्ञानं–मतिज्ञानादिभेदभिन्नं पञ्चप्रकारं तत्सप्रपञ्चं वदतीति ज्ञानप्रवादं, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी पदेनैकेन न्यूना। षष्ठं सत्यप्रवादं, सत्यं–संयमो वचनं वा तत्सत्यं संयमं वचनं वा प्रकर्षेण सप्रपञ्चं वदतीति सत्यप्रवादं, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी षड्भिः पदैरभ्यधिका। सप्तमं पूर्वमात्मप्रवादं, आत्मानं–जीवमनेकधा नयमतभेदेन यत्प्रवदति तदात्मप्रवादं, तस्य पदपरिमाणं षड्विंशतिः पदकोटयः। अष्टमं कर्मप्रवादं, कर्म-ज्ञानावरणीयादिकमष्टप्रकारं तत्प्रकर्षेण–प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभिर्भेदैः सप्रपञ्चं वद-

चतुर्दश-पूर्वाधिकारः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४१॥

तीति कर्मप्रवादं, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी अशीतिश्च पदसहस्राणि । नवमं 'पच्चक्खाणं'ति अत्रापि पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात्प्रत्याख्यानप्रवादमिति द्रष्टव्यं, प्रत्याख्यानं सप्रभेदं यद्वदति तत्प्रत्याख्यानप्रवादं, तस्य पदपरिमाणं चतुरशीतिः पदलक्षाणि । दशमं विद्यानुप्रवादं, विद्या–अनेकातिशयसम्पन्ना अनुप्रवदति–साधनानुकूल्येन सिद्धिप्रकर्षेण वदतीति विद्यानुप्रवादं, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी दश च पदलक्षाः । एकादशमवन्ध्यं, वन्ध्यं नाम निष्फलं न विद्यते वन्ध्यं यत्र तदवन्ध्यं, किमुक्तं भवति ?–यत्र सर्वेऽपि ज्ञानतपःसंयमादयः शुभफलाः सर्वे च प्रमादादयोऽशुभफला यत्र वर्ण्यन्ते तदवन्ध्यं नाम, तस्य पदपरिमाणं षड्विंशतिः पदकोट्यः । द्वादशं प्राणायुः, प्राणाः–पञ्चेन्द्रियाणि त्रीणि मानसादीनि बलानि उच्छ्वासनिश्वासौ चायुश्च प्रतीतं, ततो यत्र प्राणा आयुश्च सप्रभेदमुपवर्ण्यन्ते तदुपचारतः प्राणायुरित्युच्यते, तस्य पदपरिमाणमेका पदकोटी पदपञ्चाशच्च पदलक्षाणि । त्रयोदशं क्रियाविशालं, क्रियाः–कायिक्यादयः संयमक्रियाश्च ताभिः प्ररूप्यमाणाभिर्विशालं क्रियाविशालं, तस्य पदपरिमाणं नव कोटयः । चतुर्दशं लोकबिन्दुसारं, लोके–जगति श्रुतलोके च अक्षरस्योपरि बिन्दुरिव सारं–सर्वोत्तमं सर्वाक्षरसन्निपातलब्धिहेतुत्वात् लोकबिन्दुसारं, तस्य पदपरिमाणमर्द्धत्रयोदशकोटयः । 'उप्पायपुव्वस्स ण'मित्यादिकं कण्ठ्यं, नवरं वस्तु–ग्रन्थविच्छेदविशेषः तदेव लघुतरं चुल्लकं वस्तु, तानि चादिमेष्वेव चतुर्षु, न शेषेषु, तथा चाह—'आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चुल्लिया णत्थि', 'सेत्तं पुव्वगए' तदेतत्पूर्वगतं । 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयमनुयोगः?, अनुरूपोऽनुकूलो वा योगोऽनुयोगः–

चतुर्दश-पूर्वा-धिकारः २० ॥२४१॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

सूत्रस्य स्वेनाभिधेयेन सार्द्धमनुरूपः सम्बन्धः, स च द्विधा–मूलप्रथमानुयोगो गण्डिकानुयोगश्च, इह मूलं–धर्मप्रणयनात्तीर्थकरास्तेषां प्रथमः–सम्यक्त्वावाप्तिलक्षणपूर्वभवादिगोचरोऽनुयोगो मूलप्रथमानुयोगः, इक्ष्वादीनां पूर्वापरपर्वपरिच्छिन्नो मध्यभागो गण्डिका गण्डिकेव गण्डिका–एकार्थाधिकारा ग्रन्थपद्धतिरित्यर्थः, तस्या अनुयोगो गण्डिकानुयोगः। 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं मूलप्रथमानुयोगः?, आचार्य आह—मूलप्रथमानुयोगेन अथवा मूलप्रथमानुयोगे 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे अर्हतां भगवतां सम्यक्त्वभवादारभ्य पूर्वभवा देवलोकगमनानि तेषु पूर्वभवेषु देवभवेषु चायुर्देवलोकेभ्यश्चयवनं तीर्थकरभवत्वेनोत्पादस्ततो जन्मानि ततः शैलराजे सुरासुरैर्विधीयमाना अभिषेका इत्यादि पाठसिद्धं यावन्निगमनं। 'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽयं गण्डिकानुयोगः?, सूरिराह—गण्डिकानुयोगेन अथवा गण्डिकानुयोगे 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, कुलकरगण्डिकाः, इह सर्वत्राप्यपान्तरालवर्त्तिन्यो बह्व्यः प्रतिनियतैकार्थाधिकाररूपा गण्डिकास्ततो बहुवचनं, कुलकराणां गण्डिकाः कुलकरगण्डिकाः, तत्र कुलकराणां विमलवाहनादीनां पूर्वभवजन्मनामादीनि सप्रपञ्चमुपवर्ण्यन्ते, एवं तीर्थकरगण्डिकादिष्वभिधानवशतो भावनीयं, 'जाव चित्तंतरगंडिआउ'त्ति चित्रा–अनेकार्था अन्तरे–ऋषभाजिततीर्थकरापान्तराले गण्डिकाः चित्रान्तरगण्डिकाः, एतदुक्तं भवति–ऋषभाजिततीर्थकरान्तरे ऋषभवंशसमुद्भूतभूपतीनां शेषगतिगमनव्युदासेन शिवगतिगमनानुत्तरोपपातप्राप्तिप्रतिपादिका गण्डिकाश्चित्रान्तरगण्डिकाः, तासां च प्ररूपणा पूर्वाचार्यैरेवमकारि–इह सुबुद्धिनामा सगरचक्रवर्त्तिनो

मूलप्रथमानुगण्डिकानुयोगः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

महामात्योऽष्टापदपर्वते सगरचक्रवर्त्तिसुतेभ्य आदित्ययशःप्रभृतीना भगवद्वंषभवंशजानां भूपतीनामेवं सङ्ख्यामारूयातुमुपक्रमते स्म, आह च–"आइच्चजसाईणं उसभस्स परंपरा नरवईणं। सगरसुयाण सुबुद्धी इणमो संखं परिकहेइ॥१॥" आदित्ययशःप्रभृतयो भगवन्नाभेयवंशजास्त्रिखण्डभरतार्द्धमनुपाल्य पर्यन्ते पारमेश्वरीं दीक्षामभिगृह्य तत्प्रभावतः सकलकर्म्मक्षयं कृत्वा चतुर्दश लक्षा निरन्तरं सिद्धिमगमन्, तत एकः सर्वार्थसिद्धौ, ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा निरन्तरं निर्वाणे, ततोऽप्येकः सर्वार्थसिद्धे महाविमाने, एवं चतुर्दशलक्षान्तरितः सर्वार्थसिद्धावेकैकस्तावद्वक्तव्यो यावत्तेऽप्येकका असङ्ख्येया भवन्ति, ततो भूयश्चतुर्दश लक्षा नरपतीनां निरन्तरं निर्वाणे ततो द्वौ सर्वार्थसिद्धे, ततः पुनरपि चतुर्दश लक्षा निरन्तरं निर्वाणे ततो भूयोऽपि द्वौ सर्वार्थसिद्धे, ततः पुनरपि चतुर्दश लक्षा निरन्तरं निर्वाणे ततो भूयोऽपि द्वौ सर्वार्थसिद्धे, एवं चतुर्दश लक्षा २ लक्षान्तरितौ द्वौ २ सर्वार्थसिद्धे तावद्वक्तव्यौ यावत्तेऽपि द्विक २ सङ्ख्या असङ्ख्येया भवन्ति, एवं त्रिक २ सङ्ख्यादयोऽपि प्रत्येकमसङ्ख्येयास्तावद्वक्तव्याः यावन्निरन्तरं चतुर्दश लक्षा निर्वाणे ततः पञ्चाशत्सर्वार्थसिद्धे ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा निर्वाणे ततः पुनरपि पञ्चाशत्सर्वार्थसिद्धे, एवं पञ्चाशत्सङ्ख्याका अपि चतुर्दश २ लक्षान्तरितास्तावद्वक्तव्या यावत्तेऽप्यसङ्ख्येया भवन्ति, उक्तं च—"चोद्दस लक्खा सिद्धा निवईणेक्को य होइ सवट्ठे। एवेक्केके ठाणे पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ॥१॥ पुणरवि चोद्दस लक्खा सिद्धा निवईण दोवि सवट्ठे। दुगठाणेऽवि असंखा पुरिसजुगा होंति नायवा ॥२॥ जाव य लक्खा चोद्दस सिद्धा पण्णास होंति सवट्ठे। पन्नासट्ठा-

२०

॥२४२॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेवि उ पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ॥ ३ ॥ एगुत्तरा उ ठाणा सव्वट्ठे चेव जाव पन्नासा । एक्केक्कंतरठाणे पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ॥ ४ ॥ स्थापना ।

१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०

ततोऽनन्तरं चतुर्दश लक्षा नरपतीनां निरन्तरं सर्वार्थसिद्धे एकः सिद्धौ, भूयः चतुर्दश लक्षाः सर्वार्थे एकः सिद्धौ, एवं चतुर्दशचतुर्दशलक्षान्तरित एकैकः सिद्धौ तावद्वक्तव्यो यावत्तेऽप्येकका असङ्ख्येया भवन्ति, ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा नरपतीनां निरन्तरं सर्वार्थसिद्धौ, ततो द्वौ निर्वाणे, ततः पुनरपि चतुर्दश लक्षाः सर्वार्थसिद्धे ततो भूयोऽपि द्वौ निर्वाणे एवं चतुर्दशलक्षान्तरितौ २ द्वौ २ निर्वाणे तावद्वक्तव्यौ यावत्तेऽपि द्विकसङ्ख्यया असङ्ख्येया भवन्ति, एवं त्रिक २ सङ्ख्यादयोऽपि यावत्पञ्चाशत्सङ्ख्याश्चतुर्दशचतुर्दशलक्षान्तरिताः सिद्धौ प्रत्येकमसङ्ख्येया वक्तव्याः, उक्तं च—

"विवरीयं सव्वट्ठे चोद्दसलक्खा उ निवुओ एगो । सच्चेव य परिवाडी पन्नासा जाव सिद्धीए ॥ १ ॥" स्थापना ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०
१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४

ततः परं द्वे लक्षे नरपतीनां निरन्तरं निर्वाणे, ततो द्वे लक्षे निरन्तरं सर्वार्थसिद्धौ, ततस्तिस्रो लक्षा निर्वाणे,

गण्डिकानुयोगः

५

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२--८४॥

दीप अनुक्रम [१५०--१५४]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४३॥

ततो भूयोऽपि तिस्रो लक्षाः सर्वार्थसिद्धे, ततश्चतस्रो लक्षा निर्वाणे, ततः पुनरपि चतस्रो लक्षाः सर्वार्थसिद्धे, एवं पञ्च पञ्च षट् २ यावदुभयत्राप्यसङ्ख्येया लक्षा वक्तव्याः, आह च—"तेण परं दुलक्खाइं दो दो ठाणा य समग वचंति । सिवगइसवट्ठेहिं इणमो तेसिं विही होइ ॥ १ ॥ दो लक्खा सिद्धीए दो लक्खा नरवईण सवट्ठे । एवं तिलक्ख चउ पंच जाव लक्खा असंखेज्जा ॥ २ ॥" स्थापना ॥

२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	३	४	५	६	७	८	९	१०

ततः परं चतस्रश्चित्रान्तरगण्डिकाः, तद्यथा–प्रथमा एकादिका एकोत्तरा, द्वितीया एकादिका द्व्युत्तरा, तृतीया एकादिका त्र्युत्तरा, चतुर्थी त्र्यादिका द्व्यादिविषमोत्तरा, आह च—"सिवगइसवट्ठेहिं चित्तंतरगंडिया तओ चउरो । एगा एगुत्तरिया एगाइ बिउत्तरा बिइया ॥ १ ॥ एगाइतिउत्तरा एगाइ बिसमुत्तरा चउत्थी उ ।" प्रथमा भाव्यते– प्रथममेकः सिद्धौ ततो द्वौ सर्वार्थसिद्धे ततस्त्रयः सिद्धौ ततश्चत्वारः सर्वार्थे ततः पञ्च सिद्धौ ततः षट् सर्वार्थे एवमेकोत्तरया वृद्ध्या शिवगतौ सर्वार्थे च तावद्वक्तव्याः यावदुभयत्राप्यसङ्ख्येया भवन्ति, उक्तं च—"पढमाए सिद्धेक्को दोन्नि उ सवट्ठसिद्धंमि ॥ २ ॥ तत्तो तिन्नि नरिंदा सिद्धा चत्तारि होंति सवट्ठे । इय जाव असंखेज्जा सिवगइसवट्ठसिद्धेहिं ॥ ३ ॥" स्थापना ॥

गण्डिकानुयोगः

२०

॥२४३॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२--८४॥

दीप अनुक्रम [१५०--१५४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

१	३	५	७	९	११	१३	१५	१७	१९
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०

गण्डिकानुयोगः

सम्प्रति द्वितीया भाव्यते, ततः ऊर्द्धमेकः सिद्धौ त्रयः सर्वार्थे ततः पञ्च सिद्धौ सप्त सर्वार्थे ततो नव सिद्धौ एकादश सर्वार्थे ततः त्रयोदश सिद्धौ पञ्चदश सर्वार्थे एवं द्व्युत्तरया वृद्ध्या शिवगतौ सर्वार्थे च तावद्वक्तव्यौ यावदुभयत्राप्यसङ्ख्येया भवन्ति, उक्तं च—"ताहे दिउत्तराए सिद्धेक्को तिन्नि होंति सवट्ठे । एवं पंच य सत्त य जाव असंखेज्ज दोण्णिवि ॥ १ ॥"त्ति । स्थापना ॥ ५

१	५	९	१३	१७	२१	२५
३	७	११	१५	१९	२३	२७

सम्प्रति तृतीया भाव्यते, ततः परमेकः सिद्धौ चत्वारः सर्वार्थे, ततः सप्त सिद्धौ दश सर्वार्थे, ततस्त्रयोदश सिद्धौ षोडश सर्वार्थे, एवं त्र्युत्तरया वृद्ध्या शिवगतौ सर्वार्थे च क्रमेण तावदवसेयं यावदुभयत्राप्यसङ्ख्येया गता भवन्ति, उक्तं, च–"एग चउ सत्त दसगं जाव असंखेज्ज होंति ते दोवि । सिवगयसवट्ठेहिं तिउत्तराए उ नायव्वा ॥१॥" स्थापना ॥' १०

१	७	१३	१९	२५	३१	३७	४३	४९	५५
४	१०	१६	२२	२८	३४	४०	४६	५२	५८

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४४॥

सम्प्रति चतुर्थी भाव्यते, सा च विचित्रा, ततस्तस्याः परिज्ञानार्थमयमुपायः पूर्वाचार्यदर्शितः, इह एकोनत्रिंशत्सङ्ख्याश्रिका ऊर्ध्वाधःपरिपाट्या पट्टिकादौ स्थाप्यन्ते, तत्र प्रथमे त्रिके न किञ्चिदपि प्रक्षिप्यते, द्वितीये द्वौ प्रक्षिप्येते तृतीये पञ्च चतुर्थे नव पञ्चमे त्रयोदश षष्ठे सप्तदश सप्तमे द्वाविंशतिः अष्टमे षट् नवमे अष्टौ दशमे द्वादश एकादशे चतुर्दश द्वादशेऽष्टाविंशतिः त्रयोदशे षड्विंशतिः चतुर्दशे पञ्चविंशतिः पञ्चदशे एकादश षोडशे त्रयोविंशतिः सप्तदशे सप्तचत्वारिंशत् अष्टादशे सप्ततिः एकोनविंशे सप्तसप्ततिः विंशतौ एकः एकविंशे द्वौ द्वाविंशे सप्ताशीतिः त्रयोविंशे एकसप्ततिः चतुर्विंशे द्विषष्टिः पञ्चविंशे एकोनसप्ततिः षड्विंशे चतुर्विंशतिः सप्तविंशे षट्चत्वारिंशत् अष्टाविंशे शतं एकोनत्रिंशे षड्विंशतिः, उक्तंच—"[ताहे] तियगाइविसमुत्तराए अउणतीसं तु तियग ठावेउं । पढमे नत्थि उ खेवो सेसेसु इमो भवे खेवो ॥ १ ॥ दुग पण नवगं तेरस सतरस दुवीसं च छच अट्ठेव । बारस चउदस तह अट्ठवीस छवीस पणुवीसा ॥ २ ॥ एकारस तेवीसा सीयाला सतरि सत्तहत्तरिया । इग दुग सत्तासीई एगुत्तरमेव बावट्ठी ॥ ३ ॥ अउणत्तरि चउवीसा छायाल सयं तहेव छवीसा । एए रासिक्खेवा तिगअंतंता जहाकमसो ॥ ४ ॥" एतेषु च राशिषु प्रक्षिप्तेषु यद्भवति तावन्तस्तावन्तः क्रमेण सिद्धौ सर्वार्थे चेत्येवंरूपेण वेदितव्याः, तद्यथा—त्रयः सिद्धौ पञ्च सर्वार्थे ततः सिद्धावष्टौ द्वादश सर्वार्थे ततः षोडश सिद्धौ सर्वार्थे विंशतिः ततः पञ्चविंशतिः सिद्धौ नव सर्वार्थे तत एकादश सिद्धौ पञ्चदश सर्वार्थे ततः सप्तदश सिद्धौ एकत्रिंशत्सर्वार्थे तत एकोनत्रिंशत्सिद्धौ अष्टाविंशतिः सर्वार्थे

गण्डिकानुयोगः २० ॥२४४॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२--८४॥

दीप अनुक्रम [१५०--१५४]

ततः सिद्धौ चतुर्दश षड्विंशतिः सर्वार्थे ततः पञ्चाशत्सिद्धौ त्रिसप्ततिः सर्वार्थे ततोऽशीतिः सिद्धौ चत्वारः सर्वार्थे ततः पञ्च सिद्धौ नवतिः सर्वार्थे ततश्चतुःसप्ततिर्मुक्तौ पञ्चषष्टिः सर्वार्थसिद्धे ततः सिद्धौ द्विसप्ततिः सप्तविंशतिः सर्वार्थे एकोनपञ्चाशत् मुक्तौ त्र्युत्तरं शतं सर्वार्थे तत एकोनत्रिंशत्सिद्धौ, उक्तं च—"सिवगइसत्तट्ठेहिं दो दो ठाण विसमुत्तरा नेया। जाव उणतीसठाणे गुणतीसं पुण छवीसाए ॥ १ ॥" अत्र 'जावे'त्यादि यावदेकोनत्रिंशत्तमे स्थाने त्रिकरूपे षड्विंशतौ प्रक्षिप्तायामेकोनत्रिंशद्भवति, स्थापना चेयं।

३	८	१६	२५	११	१७	२९	१४	५०	८०	५	७४	७२	४९	२९
५	१२	२०	९	१५	३१	२८	२६	७३	४	९०	६५	२७	१०३	०

एवं त्र्यादिविषमोत्तरा गण्डिका असङ्ख्येयास्तावद्वक्तव्या यावदजितस्वामिपिता जितशत्रुः समुत्पन्नः, नवरं पार्श्वात्यायां २ गण्डिकायां यदन्त्यमङ्कस्थानं तदुत्तरस्यामादिमं द्रष्टव्यं, तथा प्रथमायां गण्डिकायामादिममङ्कस्थानं सिद्धौ द्वितीयस्यां सर्वार्थे तृतीयस्यां सिद्धौ चतुर्थ्यां सर्वार्थे, एवमसङ्ख्येयास्वपि गण्डिकास्वादिमान्त्यान्यङ्कस्थानानि क्रमेणैकान्तरितानि शिवगतौ सर्वार्थे च वेदितव्यानि, एतदेव दिग्मात्रप्रदर्शनतो भाव्यते, तत्र प्रथमायां गण्डिकायामन्त्यमङ्कस्थानमेकोनत्रिंशत्तत एकोनत्रिंशद्वारान् सा एकोनत्रिंशद्ऊर्ध्वाधःक्रमेण स्थाप्यते, तत्र प्रथमेऽङ्के नास्ति प्रक्षेपः, द्वितीयादिषु चाङ्केषु 'दुग पण नवगं तेरसे'त्यादयः क्रमेण प्रक्षेपणीया राशयः प्रक्षिप्यन्ते, तेषु प्रक्षिप्तेषु च सत्सु यद्यत् क्रमेण

गण्डिकानुयोगः ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४५॥

भवति तावन्तस्तावन्तः क्रमेण सिद्धौ सर्वार्थे इत्येवं वेदितव्याः, तद्यथा–एकोनत्रिंशत्सर्वार्थे सिद्धावेकत्रिंशत्तत्तश्चतुस्त्रिंशत्सर्वार्थे सिद्धावष्टात्रिंशत्ततो द्विचत्वारिंशत्सर्वार्थे षट्चत्वारिंशत्सिद्धौ तत एकपञ्चाशत्सर्वार्थे पञ्चत्रिंशत्सिद्धौ सप्तत्रिंशत्सर्वार्थे सिद्धावेकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्सर्वार्थे सप्तपञ्चाशत्सिद्धौ ततः पञ्चपञ्चाशत्सर्वार्थे चतुःपञ्चाशत्सिद्धौ चत्वारिंशत्सर्वार्थे द्विचत्वारिंशत्सिद्धौ सर्वार्थे षट्सप्ततिः सिद्धौ नवनवतिः षडुत्तरशतं सर्वार्थे त्रिंशत्सिद्धौ एकत्रिंशत्सर्वार्थे सिद्धौ षोडशाधिकं शतं सर्वार्थे शतं सिद्धावेकनवतिः सर्वार्थेऽष्टानवतिः त्रिपञ्चाशत्सिद्धौ पञ्चसप्ततिः सर्वार्थे सिद्धावेकोनत्रिंशं शतं पञ्चपञ्चाशत्सर्वार्थे, स्थापना ।

२९	३४	४२	५१	३७	४३	५५	४०	७६	१०६	३१	१००	९८	७५	५५
३१	३८	४६	३५	४१	५७	५४	४२	९९	३०	११६	९१	५३	१२९	०

एषा द्वितीया गण्डिका, अस्यां च गण्डिकायामन्त्यमङ्कस्थानं पञ्चपञ्चाशत् ततस्तृतीयस्यां गण्डिकायामिदमेवादिममङ्कस्थानं, ततः पञ्चपञ्चाशदेकोनत्रिंशद्वारान् स्थाप्यते, तत्र प्रथमेऽङ्के नास्ति प्रक्षेपो, द्वितीयादिषु चाङ्केषु क्रमेण द्विकपञ्चनवत्रयोदशादयः पूर्वोक्तराशयः क्रमेण प्रक्षेपणीयाः प्रक्षिप्यन्ते, इह चादिममङ्कस्थानं सिद्धौ ततस्तेषु प्रक्षेपणीयेषु राशिषु प्रक्षिप्तेषु सत्सु यत् २ क्रमेण भवति तावन्तस्तावन्तः प्रथमादङ्कादारभ्य सिद्धौ सर्वार्थे इत्येवं क्रमेण वेदितव्याः, एवमन्यास्वपि गडिकासूक्तप्रकारेण भावनीयं, उक्तं च—"विसमुत्तरा य पढमा एवमसंखविसमुत्तरा

गण्डिकानुयोगः

२०

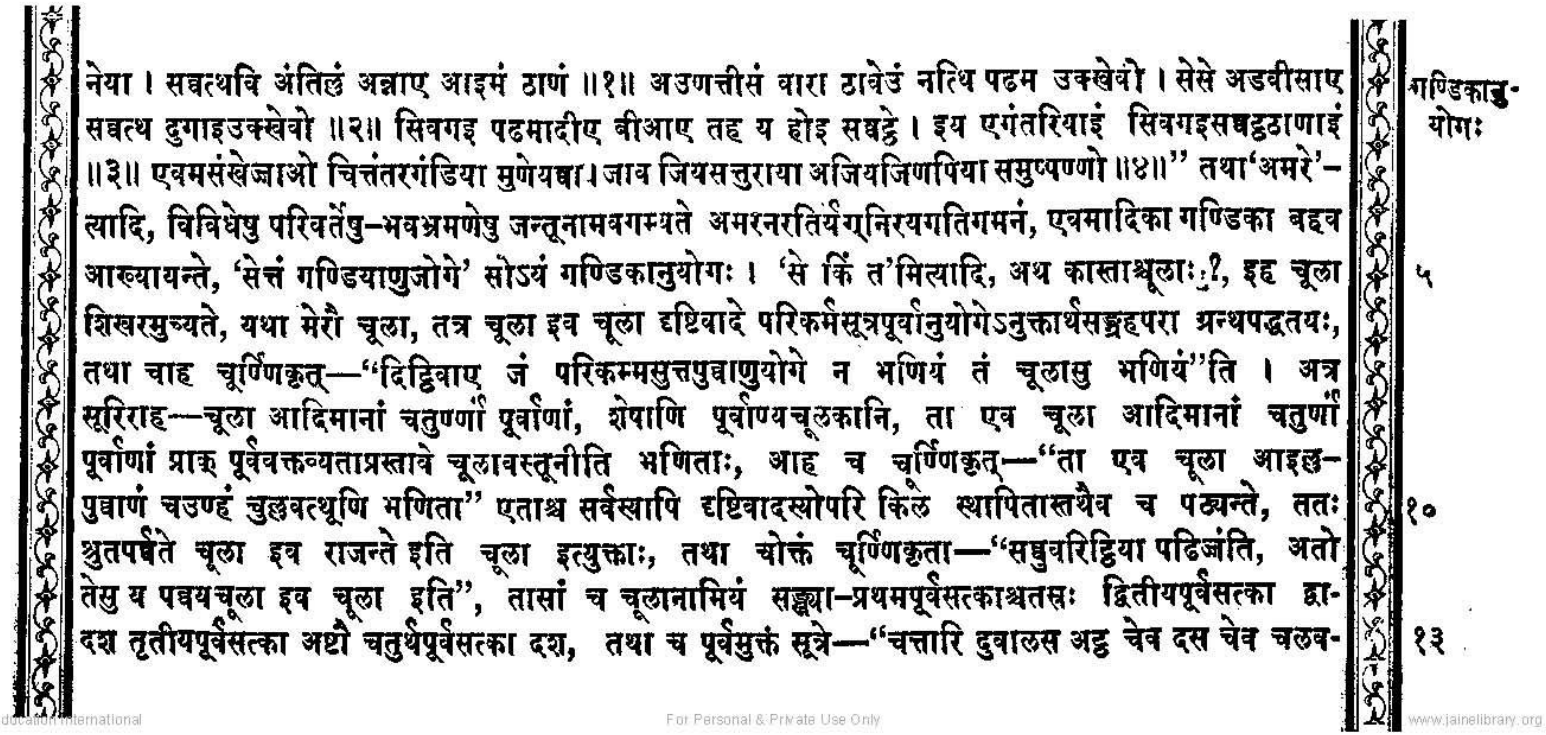
॥२४५॥

२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]



नेया । सव्वत्थवि अंतिलं अन्नाए आइमं ठाणं ॥१॥ अउणत्तीसं वारा ठावेउं नत्थि पढम उक्खेवो । सेसे अडवीसाए सव्वत्थ दुगाइउक्खेवो ॥२॥ सिवगइ पढमादीए बीआए तह य होइ सव्वट्ठे । इय एगंतरियाइं सिवगइसव्वट्ठठाणाइं ॥३॥ एवमसंखेज्जाओ चित्तंतरगंडिया मुणेयव्वा । जाव जियसत्तुराया अजियजिणपिया समुप्पण्णो ॥४॥" तथा 'अमरे'–त्यादि, विविधेषु परिवर्तेषु–भवभ्रमणेषु जन्तूनामवगम्यते अमरनरतिर्यग्निरयगतिगमनं, एवमादिका गण्डिका बहव आख्यायन्ते, 'सेत्तं गण्डियाणुजोगे' सोऽयं गण्डिकानुयोगः । 'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ताश्चूलाः ?, इह चूला शिखरमुच्यते, यथा मेरौ चूला, तत्र चूला इव चूला दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोगेऽनुक्तार्थसङ्ग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयः, तथा चाह चूर्णिकृत्—"दिट्ठिवाए जं परिकम्मसुत्तपुव्वाणुयोगे न भणियं तं चूलासु भणियं"ति । अत्र सूरिराह—चूला आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां, शेषाणि पूर्वाण्यचूलकानि, ता एव चूला आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां प्राक् पूर्ववक्तव्यताप्रस्तावे चूलावस्तूनीति भणिताः, आह च चूर्णिकृत्—"ता एव चूला आइल्लपुव्वाणं चउण्हं चुल्लवत्थूणि भणिता" एताश्च सर्वस्यापि दृष्टिवादस्योपरि किल स्थापितास्तथैव च पठ्यन्ते, ततः श्रुतपर्वते चूला इव राजन्ते इति चूला इत्युक्ताः, तथा चोक्तं चूर्णिकृता—"सव्वुवरिट्ठिया पढिज्जंति, अतो तेसु य पव्वयचूला इव चूला इति", तासां च चूलानामियं सङ्ख्या–प्रथमपूर्वसत्काश्चतस्रः द्वितीयपूर्वसत्का द्वादश तृतीयपूर्वसत्का अष्टौ चतुर्थपूर्वसत्का दश, तथा च पूर्वमुक्तं सूत्रे—"चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चलव-

गण्डिकानुयोगः

५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + ॥८२-८४॥

दीप अनुक्रम [१५०-१५४]

त्थूणि। आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया नत्थि ॥ १ ॥" सर्वसङ्ख्यया चूलिकाश्चतुस्त्रिंशत्, 'सेत्तं चूलिय'त्ति अथैताश्चूलिकाः। 'दिट्ठिवायस्स ण'मित्यादि, पाठसिद्धं, नवरं 'सङ्खेज्जा वत्थू'त्ति, सङ्ख्येयानि वस्तूनि, तानि पञ्चविंशत्युत्तरे द्वे शते, कथमिति चेत्, इह प्रथमपूर्वे दश वस्तूनि द्वितीये चतुर्दश तृतीये अष्टौ चतुर्थेऽष्टादश पञ्चमे द्वादश षष्ठे द्वे सप्तमे षोडश अष्टमे त्रिंशत् नवमे विंशतिः दशमे पञ्चदश एकादशे द्वादश द्वादशे त्रयोदश त्रयोदशे त्रिंशच्चतुर्दशे पञ्चविंशतिः, तथा सूत्रे प्राक् पूर्ववक्तव्यतायामुक्तं—"दस चोद्दस अट्ठट्ठारसेव बारस दुवे य [मूल]वत्थूणि। सोलस तीसा वीसा पनरस अणुप्पवायंमि ॥ १ ॥ बारस एक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि। तीसा पुण तेरसमे चोद्दसमे पण्णवीसा उ ॥ १ ॥" सर्वसङ्ख्यया चामूनि द्वे शते पञ्चविंशत्यधिके, तथा सङ्ख्येयानि चूलावस्तूनि, तानि च चतुस्त्रिंशत्सङ्ख्याकानि। साम्प्रतमोघतो द्वादशाङ्गाभिधेयमुपदर्शयति—

इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा अणंता अभावा अणंता हेऊ अणंता अहेऊ अणंता कारणा अणंता अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिआ अणंता सिद्धा अणंता असिद्धा पण्णत्ता—'भावमभावा हेऊमहेउ कारणमकारणे चेव। जीवाजीवा भविअमभविआ सिद्धा असिद्धा य॥८५॥'इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"द्वादश-अंग" तेषाम् अभिधेय, आराधना-विराधना फ़लम्, शाश्वतता आदीनाम् वर्णनं

अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरिअट्टिंसु, इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरिअट्टंति, इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरिअट्टिस्संति । इच्चेइअं दुवासंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइंसु, इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयंति, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्संति । इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी न कयाइ न भवइ न कयाइ न भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे निअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, से जहानामए पंचत्थिकाए न कयाइ नासी न कयाइ नत्थि न कयाइ न भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे नियए सासए अक्खए अवए अवट्ठिए निच्चे, एवामेव दुवालसंगे

द्वादशाङ्ग्याआराधनाविराधनाफलं स्वरूपं च सू. ५८

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५८] + ॥८५॥

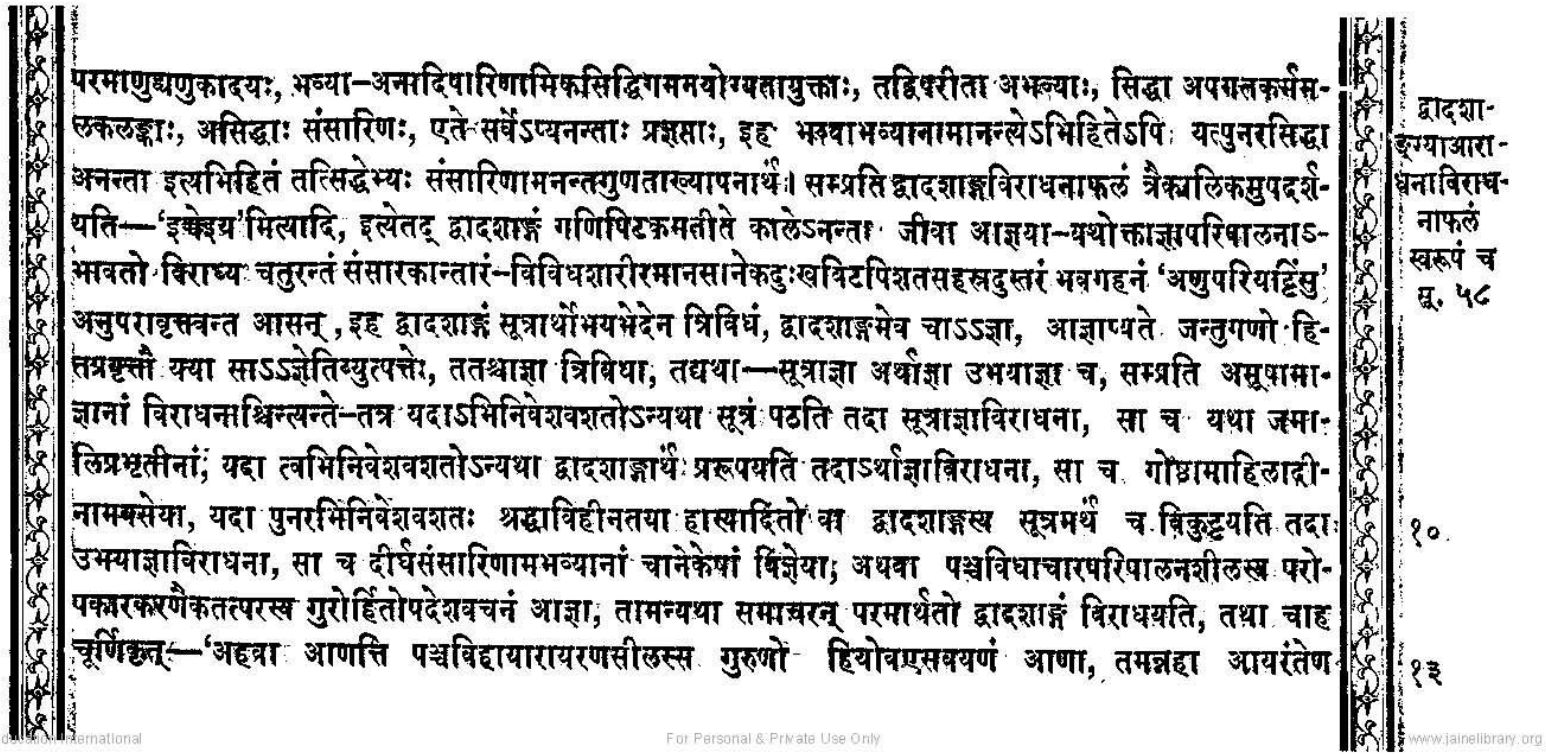
दीप अनुक्रम [१५५--१५७]

गणिपिडगे न कयाइ नासी न कयाइ नत्थि न कयाइ न भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे निअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–द-व्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पा-सइ, खित्तओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ (सू. ५८)

'इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके' एतत्पूर्ववदेव व्याख्येयं, अनन्ता भावा–जीवादयः पदार्थाः, प्रज्ञप्ता इति योगः, तथा अनन्ता अभावाः–सर्वभावानां पररूपेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा द्रष्टव्याः, तथाहि—स्वपरसत्ताभावाभा-वात्मकं वस्तुतत्त्वं, यथा जीवो जीवात्मना भावरूपो अजीवात्मना चाभावरूपः, अन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गात्, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते ग्रन्थगौरवभयादिति, तथाऽनन्ता 'हेतवो' हिनोति–गमयति जिज्ञासितधर्म्मविशिष्टमर्थमिति हेतुः, ते चानन्ताः, तथाहि—वस्तुनोऽनन्ता धर्मास्ते च तत्प्रतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकास्ततोऽनन्ता हेतवो भवन्ति, यथोक्तहेतुप्रतिपक्षभूता अहेतवः, तेऽपि अनन्ताः, तथा अनन्तानि कारणानि घटपटादीनां विवर्त्तकानि मृत्पिण्डतन्त्वा-दीनि, अनन्तान्यकारणानि, सर्वेषामपि कारणानां कार्यान्तराण्यधिकृत्याकारणत्वात्, तथा जीवाः–प्राणिनः, अजीवाः–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५८] + ॥८५॥ दीप अनुक्रम [१५५--१५७]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



परमाणुद्व्यणुकादयः, भव्या–अनादिपारिणामिकसिद्धिगमनयोग्यतायुक्ताः, तद्विपरीता अभव्याः, सिद्धा अपगतकर्मसकलकलङ्काः, असिद्धाः संसारिणः, एते सर्वेऽप्यनन्ताः प्रज्ञप्ताः, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहितेऽपि यत्पुनरसिद्धा अनन्ता इत्यभिहितं तत्सिद्धेभ्यः संसारिणामनन्तगुणताख्यापनार्थं। सम्प्रति द्वादशाङ्गविराधनाफलं त्रैकालिकमुपदर्शयति—'इक्केइय'मित्यादि, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते काले ऽनन्ता जीवा आज्ञया–यथोक्ताज्ञापरिपालनाऽभावतो विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं–विविधशारीरमानसानेकदुःखविटपिशतसहस्रदुस्तरं भवगहनं 'अणुपरियट्टिंसु' अनुपरावृत्तवन्त आसन्, इह द्वादशाङ्गं सूत्रार्थोभयभेदेन त्रिविधं, द्वादशाङ्गमेव चाऽऽज्ञा, आज्ञाप्यते जन्तुगणो हितप्रवृत्तौ क्वया साऽऽज्ञेतिव्युत्पत्तेः, ततश्चाज्ञा त्रिविधा, तद्यथा—सूत्राज्ञा अर्थाज्ञा उभयाज्ञा च, सम्प्रति अमूषामाज्ञानां विराधनाश्चिन्त्यन्ते–तत्र यदाऽभिनिवेशवशतोऽन्यथा सूत्रं पठति तदा सूत्राज्ञाविराधना, सा च यथा जमालिप्रभृतीनां; यदा त्वभिनिवेशवशतोऽन्यथा द्वादशाङ्गार्थं प्ररूपयति तदाऽर्थाज्ञाविराधना, सा च गोष्ठामाहिलादीनामवसेया, यदा पुनरभिनिवेशवशतः श्रद्धाविहीनतया हास्यादितो वा द्वादशाङ्गस्य सूत्रमर्थं च विकुट्टयति तदा उभयाज्ञाविराधना, सा च दीर्घसंसारिणामभव्यानां चानेकेषां विज्ञेया; अथवा पञ्चविधाचारपरिपालनशीलस्य परोपकारकरणैकतत्परस्य गुरोर्हितोपदेशवचनं आज्ञा, तामन्यथा समाचरन् परमार्थतो द्वादशाङ्गं विराधयति, तथा चाह चूर्णिकृत्—'अहवा आणत्ति पञ्चविहायारायरणसीलस्स गुरुणो हियोवएसवयणं आणा, तमन्नहा आयरंतेण

द्वादशाङ्ग्याआराधनाविराधनाफलं स्वरूपं च सू. ५८

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

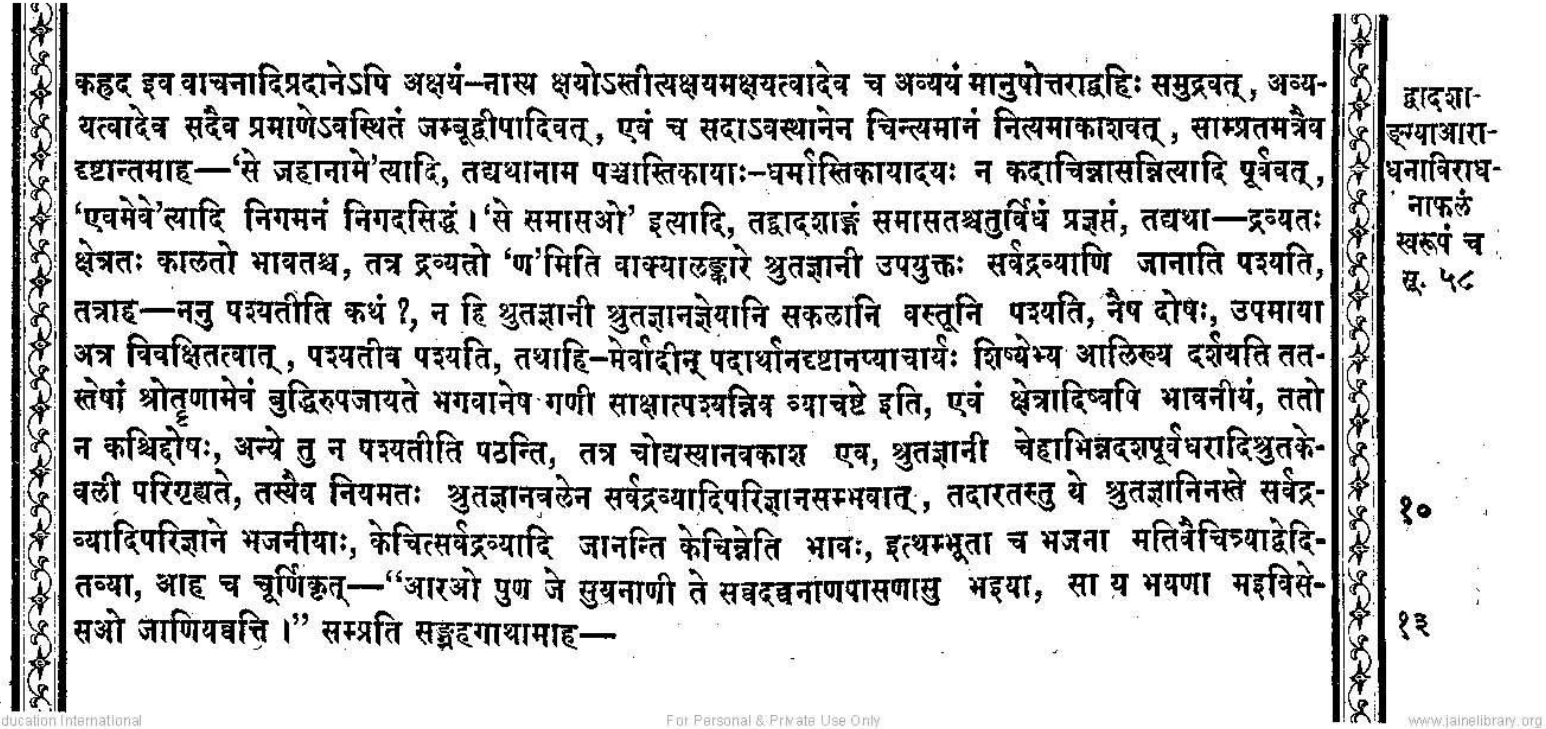
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५८] + ॥८५॥

दीप अनुक्रम [१५५--१५७]

गणिपिडगं विराहियं भवइत्ति" तदेवमतीते काले विराधनाफलमुपदर्श्य सम्प्रति वर्त्तमानकाले दर्शयति–'इचेइय'मित्यादि, सुगमं, नवरं 'परित्ता' इति परिमिता नत्वनन्ता असङ्ख्येया वा, वर्त्तमानकालचिन्तायां विराधकमनुष्याणां सङ्ख्येयत्वात्, 'अणुपरियट्टंति'त्ति अनुपरावर्त्तन्ते—भ्रमन्तीत्यर्थः, भविष्यति काले विराधनामुपदर्शयति–'इचेइय'मित्यादि, इदमपि पाठसिद्धं, नवरं 'परियट्टिस्संति'त्ति अनुपरावर्त्तिष्यन्ते–पर्यटिष्यन्तीत्यर्थः तदेवं विराधनाफलं त्रैकालिकमुपदर्श्य सम्प्रत्याराधनाफलं त्रैकालिकं दर्शयति–'इचेइय'मित्यादि, सुगमं, नवरं 'वीइवइंसु'त्ति व्यतिक्रान्तवन्तः, संसारकान्तारमुल्लङ्घ्य मुक्तिमवाप्ता इत्यर्थः, 'वीईवइस्संति'त्ति व्यतिक्रमिष्यन्ति, एतच्च त्रैकालिकं विराधनाफलमाराधनफलं च द्वादशाङ्गस्य सदाऽवस्थायित्वे सति युज्यते, नान्यथा, ततः सदावस्थायित्वं तस्याह–'इचेइय'मित्यादि, इत्येतद्द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, सदैव भावात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यचिन्तायां सदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति–'भुविं च' इत्यादि, अभूत् भवति भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वात् ध्रुवं मेर्वादिवत्, ध्रुवत्वादेव सदैव जीवादिषु पदार्थेषु प्रतिपादकत्वेन नियतं पञ्चास्तिकायेषु लोकवचनवत्, नियतत्वादेव च शाश्वतं–शश्वद्भवनस्वभावं, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि (पद्म) पुण्डरी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कहद् इव वाचनादिप्रदानेऽपि अक्षयं–नास्य क्षयोऽस्तीत्यक्षयमक्षयत्वादेव च अव्ययं मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव सदैव प्रमाणेऽवस्थितं जम्बूद्वीपादिवत्, एवं च सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमानं नित्यमाकाशवत्, साम्प्रतमत्रैव दृष्टान्तमाह—'से जहानामे'त्यादि, तद्यथानाम पञ्चास्तिकायाः–धर्मास्तिकायादयः न कदाचिन्नासन्नित्यादि पूर्ववत्, 'एवमेवे'त्यादि निगमनं निगदसिद्धं। 'से समासओ' इत्यादि, तद्द्वादशाङ्गं समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, तत्राह—ननु पश्यतीति कथं ?, न हि श्रुतज्ञानी श्रुतज्ञानज्ञेयानि सकलानि वस्तूनि पश्यति, नैष दोषः, उपमाया अत्र विवक्षितत्वात्, पश्यतीव पश्यति, तथाहि–मेर्वादीन् पदार्थानदृष्टानप्याचार्यः शिष्येभ्य आलिख्य दर्शयति ततस्तेषां श्रोतृणामेवं बुद्धिरुपजायते भगवानेष गणी साक्षात्पश्यन्निव व्याचष्टे इति, एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयं, ततो न कश्चिद्दोषः, अन्ये तु न पश्यतीति पठन्ति, तत्र चोद्यस्यानवकाश एव, श्रुतज्ञानी चेहाभिन्नदशपूर्वधरादिश्रुतकेवली परिगृह्यते, तस्यैव नियमतः श्रुतज्ञानबलेन सर्वद्रव्यादिपरिज्ञानसम्भवात्, तदारतस्तु ये श्रुतज्ञानिनस्ते सर्वद्रव्यादिपरिज्ञाने भजनीयाः, केचित्सर्वद्रव्यादि जानन्ति केचिन्नेति भावः, इत्थम्भूता च भजना मतिवैचित्र्याद्वेदितव्या, आह च चूर्णिकृत्—"आरओ पुण जे सुयनाणी ते सव्वदव्वनाणपासणासु भइया, सा य भयणा महविसेसओ जाणियव्वत्ति।" सम्प्रति सङ्ग्रहगाथामाह—

द्वादशाङ्ग्याआराधनाविराधनाफलं स्वरूपं च सू. ५८

१०

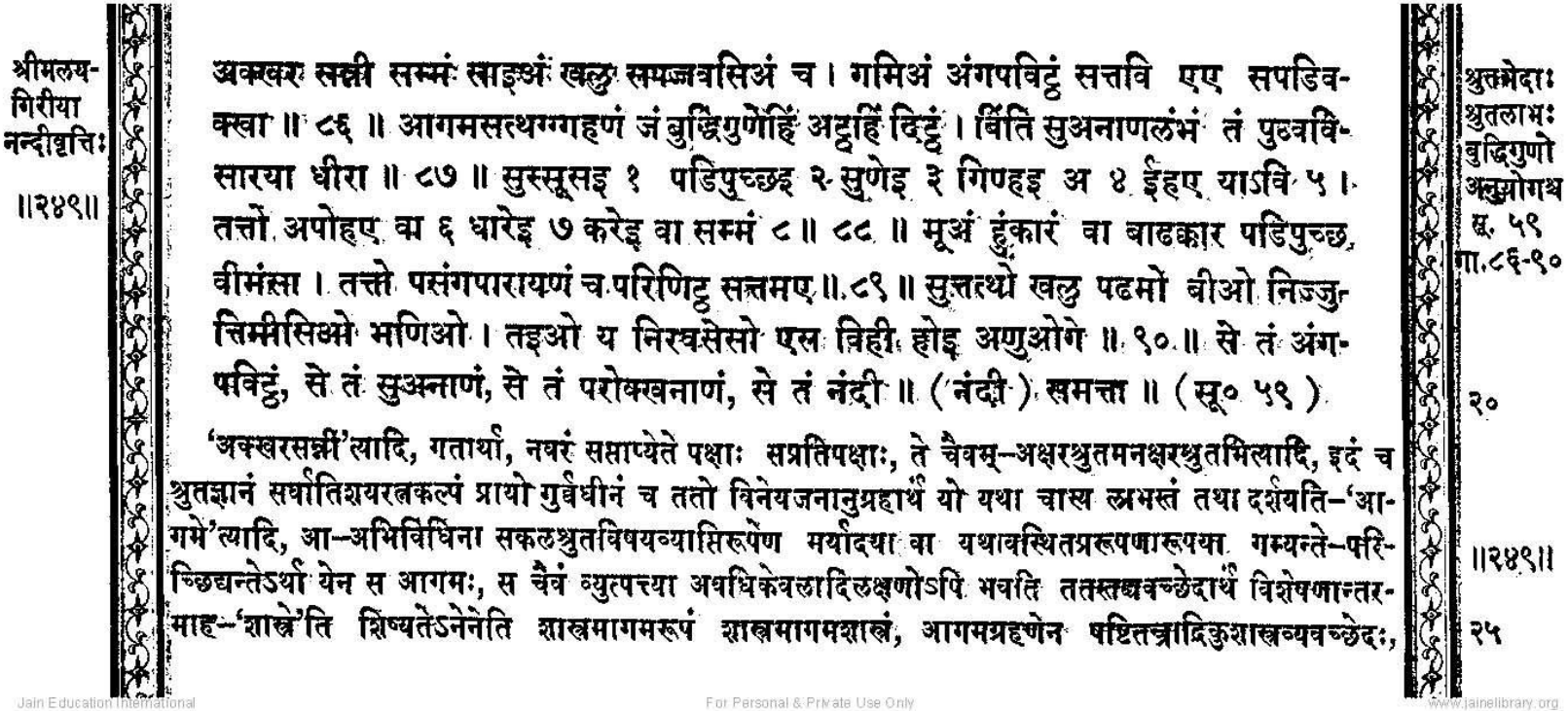
१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५९] + ॥८६--९०॥

दीप अनुक्रम [१५५--१५७]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२४९॥

अक्खर सन्नी सम्मं साइअं खलु सपज्जवसिअं च। गमिअं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ८६ ॥ आगमसत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं। बिंति सुअनाणलंभं तं पुव्वविसारया धीरा ॥ ८७ ॥ सुस्सूसइ १ पडिपुच्छइ २ सुणेइ ३ गिण्हइ अ ४ ईहए याऽवि ५। तत्तो अपोहए वा ६ धारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८॥ ८८ ॥ मूअं हुंकारं वा बाढक्कार पडिपुच्छ, वीमंसा। तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ठ सत्तमए॥ ८९ ॥ सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ। तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुओगे ॥ ९० ॥ से तं अंगपविट्ठं, से तं सुअनाणं, से तं परोक्खनाणं, से तं नंदी ॥ ('नंदी') समत्ता ॥ (सू० ५९)

'अक्खरसन्नी'त्यादि, गतार्था, नवरं सप्ताप्येते पक्षाः सप्रतिपक्षाः, ते चैवम्–अक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतमित्यादि, इदं च श्रुतज्ञानं सर्वातिशयरत्नकल्पं प्रायो गुर्वधीनं च ततो विनेयजनानुग्रहार्थं यो यथा चास्य लाभस्तं तथा दर्शयति–'आगमे'त्यादि, आ–अभिविधिना सकलश्रुतविषयव्याप्तिरूपेण मर्यादया वा यथावस्थितप्ररूपणारूपया गम्यन्ते–परिच्छिद्यन्तेऽर्था येन स आगमः, स चैवं व्युत्पत्त्या अवधिकेवलादिलक्षणोऽपि भवति ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह–'शास्त्रे'ति शिष्यतेऽनेनेति शास्त्रमागमरूपं शास्त्रमागमशास्त्रं, आगमग्रहणेन षष्टितन्त्रादिकुशास्त्रव्यवच्छेदः,

श्रुतभेदाः श्रुतलाभः बुद्धिगुणो अनुयोगश्च सू. ५९ गा.८६-९० २० ॥२४९॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५९] + ॥८६--९०॥

दीप अनुक्रम [१५५--१५७]

तेषां यथावस्थितार्थप्रकाशनाभावतोऽनागमत्वाद्, आगमशास्त्रस्य ग्रहणं आगमशास्त्रग्रहणं यद् बुद्धिगुणैर्वक्ष्यमाणैः कारणभूतैरष्टभिर्दृष्टं तदेव ग्रहणं श्रुतज्ञानस्य लाभं ब्रुवते पूर्वेषु विशारदा-विपश्चितः धीराः–व्रतपरिपालने स्थिराः, किमुक्तं भवति ?—यदेव जिनप्रणीतप्रवचनार्थपरिज्ञानं तदेव परमार्थतः श्रुतज्ञानं, न शेषमिति ॥ बुद्धिगुणैरष्टभिरित्युक्तं, ततस्तानेव बुद्धिगुणानाह—'सुस्सूसई'त्यादि, पूर्वं तावत् शुश्रूषते–विनययुक्तो गुरुवदनारविन्दाद्विनिर्गच्छद्वचनं श्रोतुमिच्छति, यत्र शङ्कितं भवति तत्र भूयोऽपि विनयनम्रतया वचसा गुरुमनः प्रह्लादयन् पृच्छति, पृष्टे च सति यद्गुरुः कथयति तत्सम्यक्–व्याक्षेपपरिहारेण सावधानः शृणोति,श्रुत्वा चार्थरूपतया गृह्णाति, गृहीत्वा च ईहते–पूर्वापराविरोधेन पर्यालोचयति, चशब्दः समुच्चयार्थः, अपिशब्दात्प(ब्दः प)र्यालोचयन् किञ्चित् स्वबुद्ध्याऽप्युत्प्रेक्षते इति सूचनार्थः, ततः पर्यालोचनाऽनन्तरमपोहते–एवमेतत् यदादिष्टमाचार्येण नान्यथेत्यवधारयति, ततस्तमर्थं निश्चितं स्वचेतसि विस्मृत्यभावार्थं सम्यग् धारयति, करोति च सम्यग् यथोक्तमनुष्ठानं, यथोक्तमनुष्ठानमपि श्रुतज्ञानप्राप्तिहेतुः तदावरणक्षयोपशमनिमित्तत्वात् । तदेवं गुणा व्याख्याताः, सम्प्रति यच्छुश्रूषते इत्युक्तं तत्र श्रवणविधिमाह–'मूय'मित्यादि, मूकमिति प्रथमतो मूकं शृणुयात्, किमुक्तं भवति ?–प्रथमश्रवणे संयतगात्रस्तूष्णीमासीत, ततो द्वितीये श्रवणे हुङ्कारं दद्यात्, वन्दनं कुर्यादित्यर्थः, ततस्तृतीये वाढंकारं कुर्यात्, वाढमेवमेतन्नान्यथेति, ततश्चतुर्थे श्रवणे तु गृहीतपूर्वापरसूत्राभिप्रायो मनाक् प्रतिपृच्छां कुर्यात्, कथमेतदिति ?, पञ्चमे मीमांसां–प्रमाणजिज्ञासां कुर्यादिति

श्रुतभेदाः श्रुतलाभः बुद्धिगुणो अनुयोगश्च सू. ५९ गा.८६-९०

१०

१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५९] + ॥८६--९०॥

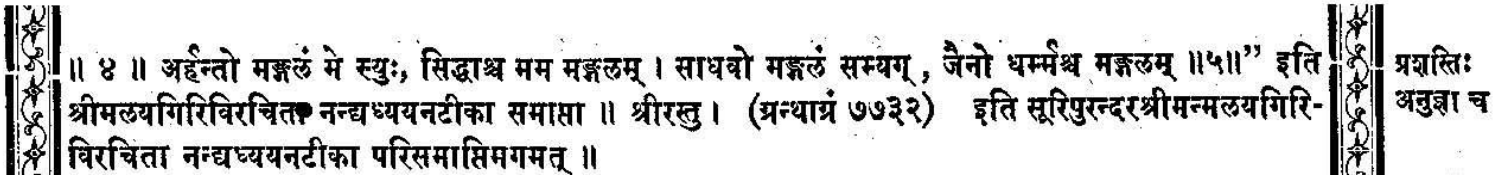
दीप अनुक्रम [१५५--१५७]

श्रीमलयगिरीया नन्दीवृत्तिः ॥२५०॥

भावः, षष्ठे श्रवणे तदुत्तरोत्तरगुणप्रसङ्गः पारगमनं चास्य भवति, ततः सप्तमे श्रवणे परिनिष्ठा–गुरुवदनुभाषते। एवं तावच्छ्रवणविधिरुक्तः, सम्प्रति व्याख्यानविधिमभिधित्सुराह—'सुत्तत्थो' इत्यादि, प्रथमानुयोगः सूत्रार्थः–सूत्रार्थप्रतिपादनपरः, खलुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, ततोऽयमर्थः–गुरुणा प्रथमोऽनुयोगः सूत्रार्थाभिधानलक्षण एव कर्त्तव्यः, मा भूत् प्राथमिकविनेयानां मतिमोहः, द्वितीयोऽनुयोगः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिमिश्रितो भणितस्तीर्थकरगणधरैः, सूत्रस्पार्शिकनिर्युक्तिमिश्रितं द्वितीयमनुयोगं गुरुर्विदध्यादित्याख्यातं तीर्थकरगणधरैरिति भावः, तृतीयश्चानुयोगो निरवशेषः–प्रसक्तानुप्रसक्तप्रतिपादनलक्षण इत्येषः–उक्तलक्षणो विधिर्भवत्यनुयोगे–व्याख्यायाम्,आह–परिनिष्ठा सप्तमे इत्युक्तं, त्रयश्चानुयोगप्रकारास्तदेतत्कथम्?, उच्यते, त्रयाणामनुयोगानामन्यतमेन केनचित्प्रकारेण भूयो २ भाव्यमानेन सप्त वाराः श्रवणं कार्यते ततो न कश्चिद्दोषः, अथवा कञ्चिन्मन्दमतिविनेयमधिकृत्य तदुक्तं द्रष्टव्यं, न पुनरेष एव सर्वत्र श्रवणविधिनियमः, उद्घटितज्ञविनेयानां सकृच्छ्रवणत एवाशेषग्रहणदर्शनादिति॥कृतं प्रसङ्गेन, 'सेत्त'मित्यादि, तदेतच्छ्रुतज्ञानं, तदेतत्परोक्षमिति ॥ नन्द्यध्ययनं पूर्वं प्रकाशितं येन विषमभावार्थम्। तस्मै श्रीचूर्णिकृते नमोऽस्तु विदुषे परोपकृते ॥ १ ॥ मध्येसमस्तभूपीठं, यशो यस्याभिवर्द्धते। तस्मै श्रीहरिभद्राय, नमश्चीकाविधायिने ॥ २ ॥ वृत्तिर्वा चूर्णिर्वा रम्याऽपि न मन्दमेधसां योग्या । अभवदिह तेन तेषामुपकृतये यत्न एष कृतः ॥ ३ ॥ बह्वर्थमल्पशब्दं नन्द्यध्ययनं विवृण्वता कुशलम् । यदवापि मलयगिरिणा सिद्धिं तेनाश्नुतां लोकः

श्रुतभेदाः श्रुतलाभः बुद्धिगुणो अनुयोगश्च सू. ५९ गा.८६-९० २० ॥२५०॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



॥ ४ ॥ अर्हन्तो मङ्गलं मे स्युः, सिद्धाश्च मम मङ्गलम् । साधवो मङ्गलं सम्यग् , जैनो धर्म्मश्च मङ्गलम् ॥५॥" इति श्रीमलयगिरिविरचिता नन्द्यध्ययनटीका समाप्ता ॥ श्रीरस्तु । (ग्रन्थाग्रं ७७३२) इति सूरिपुरन्दरश्रीमन्मलयगिरिविरचिता नन्द्यध्ययनटीका परिसमाप्तिमगमत् ॥

प्रशस्तिः अनुज्ञा च

अत्र नन्दीसूत्र मूलं एवं वृत्तिः परिसमाप्ताः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत (परिशिष्ठ) सूत्रांक [१]

दीप (परिशिष्ठ) अनुक्रम [१]

◆ अनुज्ञा-नन्दी ◆

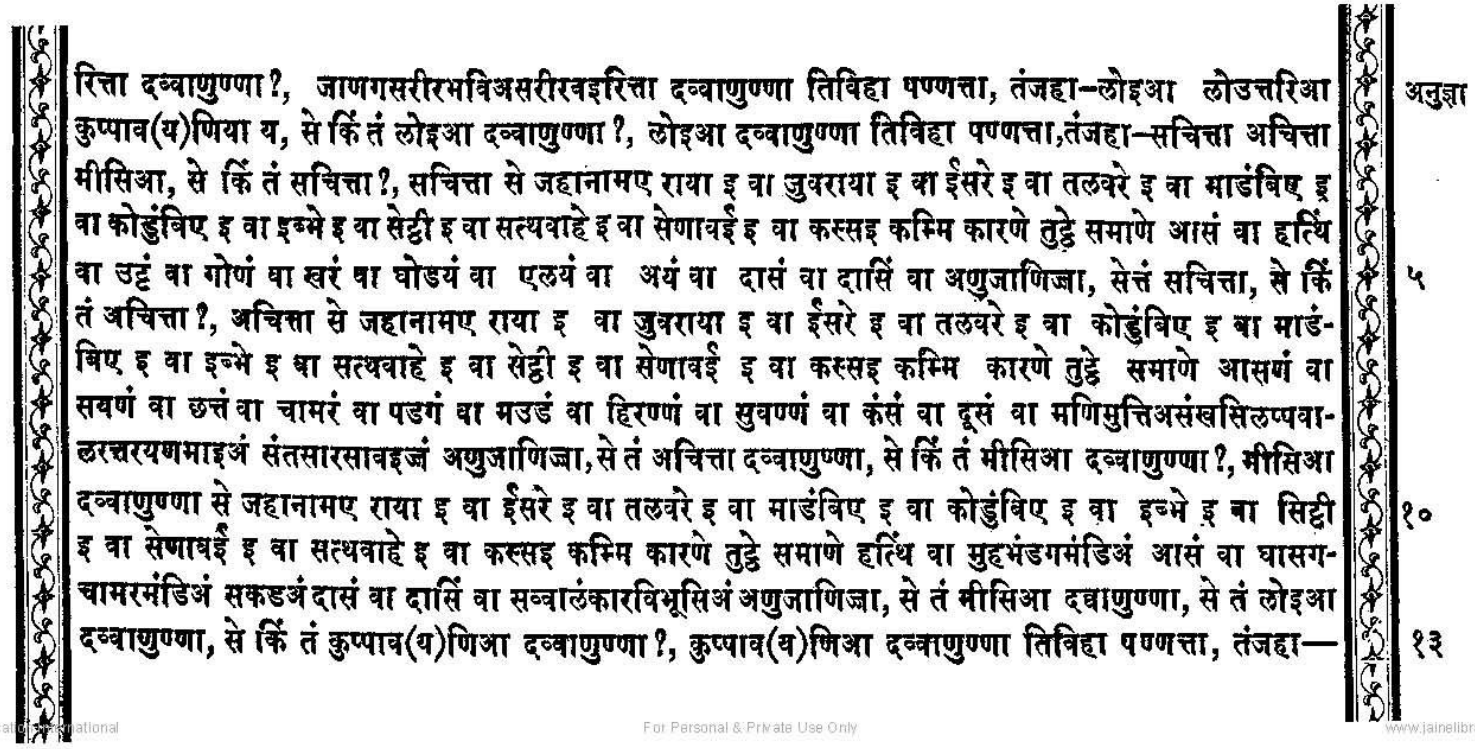
[अनुज्ञाप्ररूपणा] ॥ से किं तं अणुन्ना ?, अणुन्ना छविहा पण्णत्ता, तंजहा—नामाणुण्णा १ ठवणाणुण्णा २ दव्वाणुण्णा ३ खित्ताणुण्णा ४ कालाणुण्णा ५ भावाणुण्णा ६, से किं तं नामाणुन्ना ?, २ जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा तदुभयस्स वा तदुभयाणं वा अणुण्णत्ति नामं कीरइ से तं नामाणुन्ना, से किं तं ठवणाणुण्णा ?, ठवणाणुण्णा जे णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा लिप्पकम्मे वा चित्तकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगे वा अणेगे वा सब्भावट्ठवणाए वा असब्भावठवणाए वा अणुण्णत्ति ठवणा ठविज्जइ से तं ठवणाणुण्णा, नामठवणाणं को पइविसेसो ?, नामं आवकहिअं ठवणा इत्तरिआ वा हुज्जा आवकहिआ वा, से किं तं दव्वाणुण्णा ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आगमओ अ नोआगमओ य । से किं तं आगमओ दव्वाणुण्णा ?, आगमओ दव्वाणुण्णा जस्स णं अणुण्णत्ति पयं सिक्खिअं ठिअं जिअं मिअं परिजिअं नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अव्वाइद्धक्खरं अक्खलिअं अमिलिअं अविच्चामेलिअं पडिपुन्नं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं से णं तत्थ वाअणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए नो अणुप्पेहाए, कम्हा ?, 'अणुवओगो दव्व'मितिकट्टु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ अनुज्ञा नन्दी आरब्धा: ***

नेगमस्सु एगे अणुवउत्ते आगमओ इक्का दव्वाणुन्ना दुन्नि अणुवउत्ता आगमओ दुन्नि दव्वाणुण्णाओ तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वाणुण्णाओ एवं जावइआ अणुवउत्ता तावइआओ दव्वाणुण्णाओ, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वाणुण्णा वा दव्वाणुण्णाओ वा सा एगा दव्वाणुण्णा, उज्जुसुअस्स एगे अणुवउत्ते आगमओ एगा दव्वाणुण्णा पुहुत्तं नेच्छइ, तिण्हं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू, कम्हा?, जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ, से तं आगमओ दव्वाणुण्णा। से किं तं नोआगमओ दव्वाणुण्णा?, नोआगमओ दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जाणगसरीरदव्वाणुन्ना भविअसरीरदव्वाणुण्णा जाणगसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा, से किं तं जाणगसरीरदव्वाणुण्णा?, जाणगसरीरदव्वाणुण्णा अणुण्णत्तिपयत्थाहिगारजाणगस्स णं जं सरीरं ववगयचुअचाविअचत्तदेहं जीवविप्पजढं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहिआगयं वा सिद्धिसिलातलगयं वा अहो णं इमेणं वा सरीरसमुस्सएणं अणुण्णत्तिपयं आघविअं पन्नविअं परूविअं दंसिअं निदंसिअं उवदंसिअं, जहा को दिट्ठंतो?, अयं घयकुंभे आसी, अयं महुकुंभे आसी, से तं जाणगसरीरदव्वाणुण्णा, से किं तं भवियसरीरदव्वाणुण्णा?, भविअसरीरदव्वाणुण्णा जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव सरीरसमुस्सएणं आदत्तेणं जिणदिट्ठेणं भावेणं अणुण्णत्तिपयं सिअकाले सिक्खिस्सइ न ताव सिक्खइ, जहा को दिट्ठंतो?, अयं घयकुंभे भविस्सइ अयं महुकुंभे भविस्सइ, सेत्तं भविअसरीरदव्वाणुण्णा, से किं तं जाणगसरीरभविअसरीरवइ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



रित्ता दव्वाणुण्णा?, जाणगसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–लोइआ लोउत्तरिआ कुप्पाव(य)णिया य, से किं तं लोइआ दव्वाणुण्णा?, लोइआ दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता,तंजहा–सचित्ता अचित्ता मीसिआ, से किं तं सचित्ता?, सचित्ता से जहानामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडंबिए इ वा कोडुंबिए इ वा इब्भे इ वा सेट्ठी इ वा सत्थवाहे इ वा सेणावई इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थिं वा उट्टं वा गोणं वा खरं वा घोडयं वा एलयं वा अयं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणिज्जा, सेत्तं सचित्ता, से किं तं अचित्ता?, अचित्ता से जहानामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा कोडुंबिए इ वा माडंबिए इ वा इब्भे इ वा सत्थवाहे इ वा सेट्ठी इ वा सेणावई इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पडगं वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा मणिमुत्तिअसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइअं संतसारसावइज्जं अणुजाणिज्जा, से तं अचित्ता दव्वाणुण्णा, से किं तं मीसिआ दव्वाणुण्णा?, मीसिआ दव्वाणुण्णा से जहानामए राया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडंबिए इ वा कोडुंबिए इ वा इब्भे इ वा सिट्ठी इ वा सेणावई इ वा सत्थवाहे इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थिं वा मुहभंडगमंडिअं आसं वा घासगचामरमंडिअं सकडअं दासं वा दासिं वा सव्वालंकारविभूसिअं अणुजाणिज्जा, से तं मीसिआ दव्वाणुण्णा, से तं लोइआ दव्वाणुण्णा, से किं तं कुप्पाव(य)णिआ दव्वाणुण्णा?, कुप्पाव(य)णिआ दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—

अनुज्ञा ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत (परिशिष्ठ) सूत्रांक [१]

दीप (परिशिष्ठ) अनुक्रम [१]

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

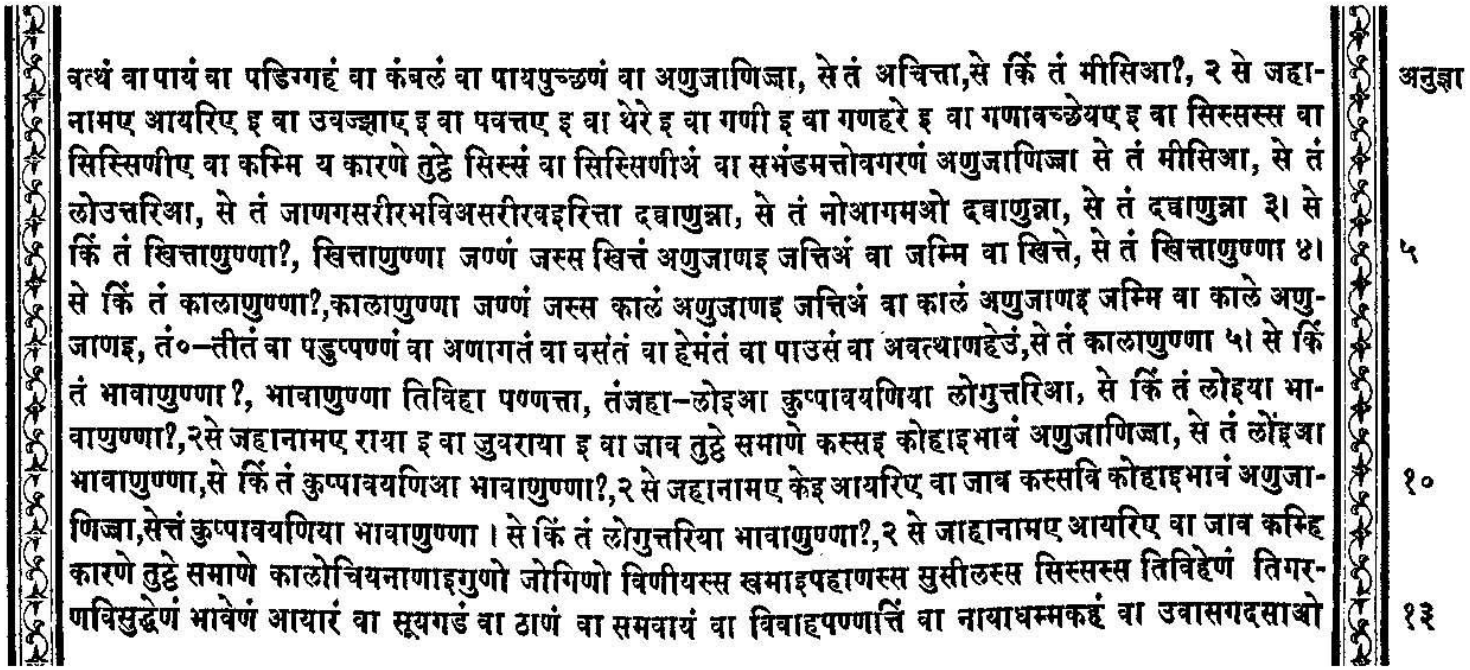
॥२५२॥

सचित्ता अचित्ता मीसिआ, से किं तं सचित्ता ?, सचित्ता से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थिं वा उट्टं वा गोणं वा खरं वा घोडं वा अयं वा एलगं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणिज्जा, से तं सचित्ता कुप्पाव(य)णिआ दव्वाणुण्णा । से किं तं अचित्ता ?, अचित्ता से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पट्टं वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा मणिमुत्तिअसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइअं संतसारसावएज्जं अणुजाणिज्जा, से तं अचित्ता कुप्पाव(य)णिआ दव्वाणुण्णा । से किं तं मीसिआ दव्वाणुण्णा ?, मीसिआ दव्वाणुण्णा से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थिं वा मुहभंडगमंडिअं आसं वा घासगचामरमंडिअं सकडअं दासं वा दासिं वा सव्वालंकारविभूसियं अणुजाणिज्जा, से तं मीसिआ कुप्पा(य)णिआ दव्वाणुण्णा, से तं कुप्पाव(य)णिआ दव्वाणुण्णा । से किं तं लोउत्तरिआ दव्वाणुण्णा ?, लोउत्तरिआ दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—सचित्ता अचित्ता मीसिआ, से किं तं सचित्ता ?, सचित्ता से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा पवत्तए इ वा थेरे इ वा गणी इ वा गहणरे इ वा गणावच्छेयए इ वा सीसस्स वा सिस्सिणीए इ वा कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे सीसं वा सिस्सिणीअं वा अणुजाणिज्जा, से तं सचित्ता, से किं तं अचित्ता ?, अचित्ता से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा पवत्तए इ वा थेरे इ वा गणी इ वा गणधरेइ वा गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा सिस्सिणीए वा कम्मि य कारणे तुट्ठे समाणे

अनुज्ञा १५ २० ॥२५२॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः



वत्थं वा पायं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुच्छणं वा अणुजाणिज्जा, से तं अचित्ता,से किं तं मीसिआ?, २ से जहा-
नामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा पवत्तए इ वा थेरे इ वा गणी इ वा गणहरे इ वा गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा
सिस्सिणीए वा कम्मि य कारणे तुट्ठे सिस्सं वा सिस्सिणीअं वा सभंडमत्तोवगरणं अणुजाणिज्जा से तं मीसिआ, से तं
लोउत्तरिआ, से तं जाणगसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुन्ना, से तं नोआगमओ दव्वाणुन्ना, से तं दव्वाणुन्ना ३। से
किं तं खित्ताणुण्णा?, खित्ताणुण्णा जण्णं जस्स खित्तं अणुजाणइ जत्तिअं वा जम्मि वा खित्ते, से तं खित्ताणुण्णा ४।
से किं तं कालाणुण्णा?,कालाणुण्णा जण्णं जस्स कालं अणुजाणइ जत्तिअं वा कालं अणुजाणइ जम्मि वा काले अणु-
जाणइ, तं०–तीतं वा पडुप्पण्णं वा अणागतं वा वसंतं वा हेमंतं वा पाउसं वा अवत्थाणहेउं,से तं कालाणुण्णा ५। से किं
तं भावाणुण्णा?, भावाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–लोइआ कुप्पावयणिया लोगुत्तरिआ, से किं तं लोइया भा-
वाणुण्णा?,२से जहानामए राया इ वा जुवराया इ वा जाव तुट्ठे समाणे कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा, से तं लोइआ
भावाणुण्णा,से किं तं कुप्पावयणिआ भावाणुण्णा?,२ से जहानामए केइ आयरिए वा जाव कस्सवि कोहाइभावं अणुजा-
णिज्जा,सेत्तं कुप्पावयणिया भावाणुण्णा । से किं तं लोगुत्तरिया भावाणुण्णा?,२ से जाहानामए आयरिए वा जाव कम्हि
कारणे तुट्ठे समाणे कालोचियनाणाइगुणो जोगिणो विणीयस्स खमाइपहाणस्स सुसीलस्स सिस्सस्स तिविहेणं तिगर-
णविसुद्धेणं भावेणं आयारं वा सूयगडं वा ठाणं वा समवायं वा विवाहपण्णत्तिं वा नायाधम्मकहं वा उवासगदसाओ

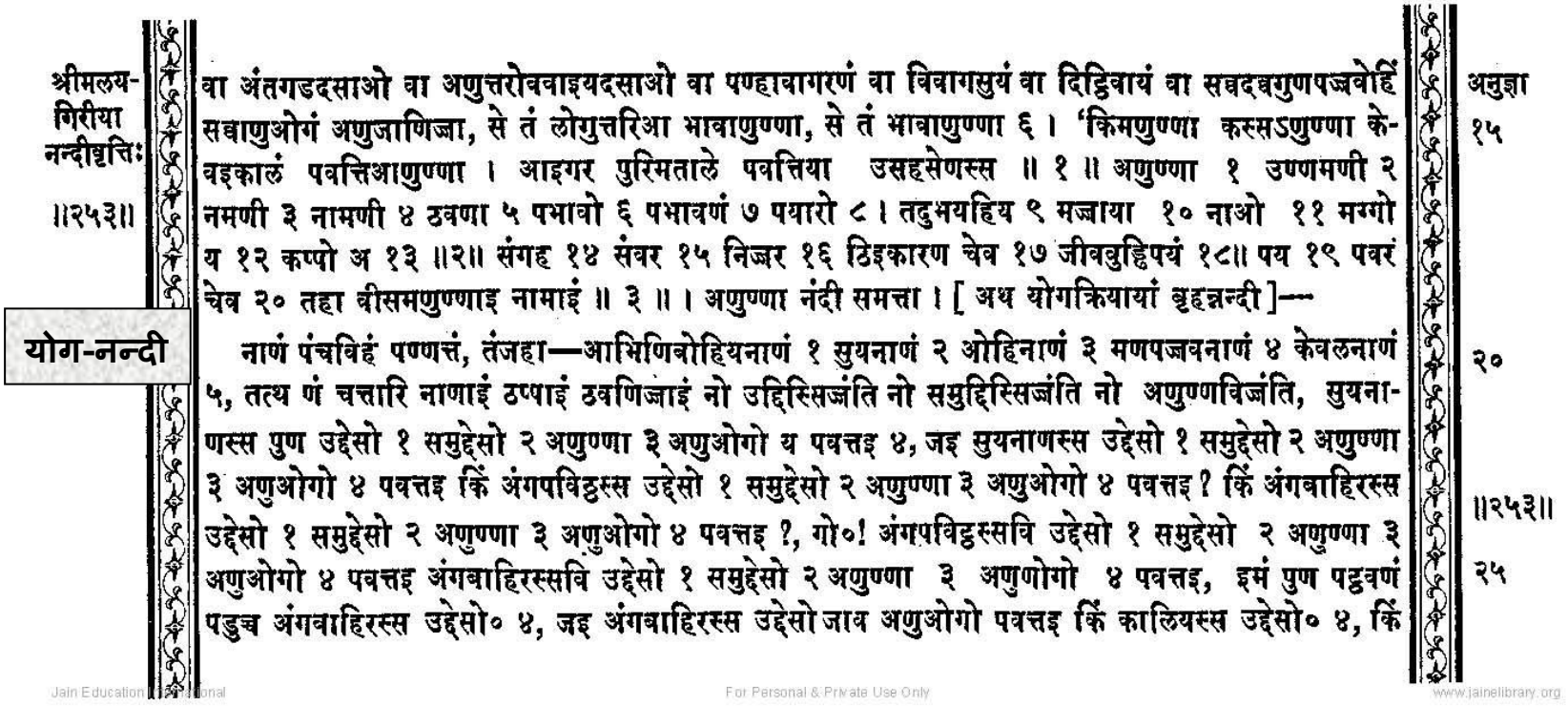
अनुज्ञा ५ १० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत (परिशिष्ठ) सूत्रांक [१]

दीप (परिशिष्ठ) अनुक्रम [१]



श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥२५३॥

योग-नन्दी

वा अंतगडदसाओ वा अणुत्तरोववाइयदसाओ वा पण्हावागरणं वा विवागसुयं वा दिट्ठिवायं वा सव्वदव्वगुणपज्जवेहिं सव्वाणुओगं अणुजाणिज्जा, से तं लोगुत्तरिआ भावाणुण्णा, से तं भावाणुण्णा ६ । 'किमणुण्णा कस्सऽणुण्णा केवइकालं पवत्तिआणुण्णा । आइगर पुरिमताले पवत्तिया उसहसेणस्स ॥ १ ॥ अणुण्णा १ उण्णमणी २ नमणी ३ नामणी ४ ठवणा ५ पभावो ६ पभावणं ७ पयारो ८ । तदुभयहिय ९ मज्जाया १० नाओ ११ मग्गो य १२ कप्पो अ १३ ॥२॥ संगह १४ संवर १५ निज्जर १६ ठिइकारण चेव १७ जीववुड्ढिपयं १८॥ पय १९ पवरं चेव २० तहा वीसमणुण्णाइ नामाइं ॥ ३ ॥ । अणुण्णा नंदी समत्ता । [अथ योगक्रियायां बृहन्नन्दी]—

नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा—आभिणिबोहियनाणं १ सुयनाणं २ ओहिनाणं ३ मणपज्जवनाणं ४ केवलनाणं ५, तत्थ णं चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं नो उद्दिस्सिज्जंति नो समुद्दिस्सिज्जंति नो अणुण्णविज्जंति, सुयनाणस्स पुण उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो य पवत्तइ ४, जइ सुयनाणस्स उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ ? किं अंगबाहिरस्स उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ ?, गो०! अंगपविट्ठस्सवि उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ अंगबाहिरस्सवि उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अंगबाहिरस्स उद्देसो० ४, जइ अंगबाहिरस्स उद्देसो जाव अणुओगो पवत्तइ किं कालियस्स उद्देसो० ४, किं

अनुज्ञा १५ २० ॥२५३॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	***अत्र अनुज्ञा-नन्दी परिसमाप्ता, *** अथ योग-नन्दी आरब्धा: ***

प्रत (परिशिष्ठ) सूत्रांक [१] दीप (परिशिष्ठ) अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

उक्कालियस्स उद्देसो०४,?,गो०कालियस्सवि उद्देसो०४ उक्कालियस्स(वि) उद्देसो०४, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालि- अनुज्ञा
यस्स उद्देसो० ४, जइ उक्कालियस्स उद्देसो० ४ किं आवस्सगस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो पवत्तइ आव-
स्सगवइरित्तस्स० ४ ?, गो० आवस्सगस्सवि उद्देसो० ४ आवस्सगवइरित्तस्सवि उद्देसो० ४, जइ आवस्सगस्स
उद्देसो किं सामाइयस्स १ चउवीसत्थयस्स २ वंदणस्स ३ पडिक्कमणस्स ४ काउस्सग्गस्स ५ पच्चक्खाणस्स ६ ?
सव्वेसिं एतेसिं उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो पवत्तइ ४ । जइ आवस्सगवइरित्तस्स उद्देसो० ४ किं
कालियसुयस्स उद्देसो० ४ उक्कालियसुयस्स उद्देसो० ४?, कालियस्सवि उद्देसो० ४ उक्कालियस्सवि उद्देसो० ४, जइ ५
उक्कालियस्स उद्देसो०४ किं दसवेकालियस्स १ कप्पियाकप्पियस्स २ चुल्लकप्पसुयस्स ३ महाकप्पसुयस्स ४ उववाइ-
यसुयस्स ५ रायपसेणीसुयस्स ६ जीवाभिगमस्स ७ पण्णवणाए ८ महापण्णवणाए ९ पमायप्पमायस्स १० नंदीए ११
अणुओगदाराणं १२ देविंदथयस्स १३ तंदुलवेयालियस्स १४ चंदाविज्झयस्स १५ सूरपण्णत्तीए १६ पोरसिमंडलस्स
१७ मंडलप्पवेसस्स १८ विज्जाचरणविणिच्छियस्स १९ गणिविज्जाए २० संलेहणासुयस्स २१ विहारकप्पस्स २२ १०
वीयरागसुयस्स २३ झाणविभत्तीए २४ मरणविभत्तीए २५ मरणविसोहीए २६ आयविभत्तीए २७ आयविसोहीए२८
चरणविसोहीए २९ आउरपच्चक्खाणस्स ३० महापच्चक्खाणस्स ३१?, सव्वेसिं एएसिं उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३
अणुओगो ४ पवत्तइ । जइ कालियस्स उद्देसो जाव अणुओगो पवत्तइ किं उत्तरज्झयणाणं१ दसाणं २ कप्पस्स ३ वव- १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र[४४] चूलिकासूत्र[१] नन्दीसूत्र मूलं एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीमलय-गिरीया नन्दीवृत्तिः

॥२५४॥

हारस्स ४ निसीहस्स ५ महानिसीहस्स ६ इसिभासियाणं ७ जंबुद्दीवपण्णत्तीए ८ चंदपण्णत्तीए ९ दीवपण्णत्तीए १० सागरपण्णत्तीए(दीवसागरप०)११ खुड्डियाविमाणपविभत्तीए १२ महल्लियाविमाणपविभत्तीए १३ अंगचूलियाए १४ वग्गचूलियाए १५ विवाहचूलियाए १६ अरुणोववाए १७ वरुणोववाए १८ गरुलोववाए १९ धरणोववाए २० वेसमणोववाए २१ वेलंधरोववायस्स २२ देविंदोववायस्स २३ उट्ठाणसुयस्स २४ समुट्ठाणसुयस्स २५ नागपरियावणियाणं २६ निरयावलियाणं २७ कप्पियाणं २८ कप्पवडिंसियाणं २९ पुप्फियाणं ३० पुप्फचूलियाणं ३१ [वण्हिदयाणं ३२] वण्हिदसाणं ३३ आसीविसभावणाणं ३४ दिट्ठिविसभावणाणं ३५ चारणभा० ३६ सुमिणभा० (चारणसुमिण)३७ महासुमिणभा० ३८ तेयग्गिनिसग्गाणं ३९ ?, सव्वेसिंपि एएसिं उद्देसो जाव अणुओगो ४ पवत्तइ, जइ अंगपविट्ठस्स उद्देसो जाव अणुओगो ४ पवत्तइ किं आयारस्स १ सूयगडस्स २ ठाणस्स ३ समवायस्स ४ विवाहपण्णत्तीए ५ नायाधम्मकहाणं ६ उवासगदसाणं ७ अंतगडदसाणं ८ अणुत्तरोववाइयदसाणं ९ पण्हावागरणाणं १० विवागसुयस्स ११ दिट्ठिवायस्स १२ ?, सव्वेसिं एएसिं उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च इमस्स साहुस्स इमाए साहुणीए उद्देसो १ समुद्देसो २ अणुण्णा ३ अणुओगो ४ पवत्तइ, खमासमणाणं हत्थेणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभएणं उद्देसामि समुद्देसामि अणुजाणामि ॥

इति श्रीयोगनन्द्यनुज्ञासूत्रं ॥ तदेवं श्रीनन्दीसूत्रं समाप्तम् ॥

अनुज्ञा १५

२०

॥ २५४॥ २५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	[भाग-३८] "नन्दी"– चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्ति:) **..... मूलं [--] .....,,,.....**
	 Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org
भाग 38	**'नन्दी'-चूलिकासूत्र [१] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:** **मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब** **किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]**

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

[भाग-३८] आगम 44

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“नन्दी (चूलिका)सूत्र” [मूलं + मलयगिरिसूरि-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“नन्दीसूत्र” मूलं एवं वृत्ति: नामेण परिसमाप्तं

“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-38



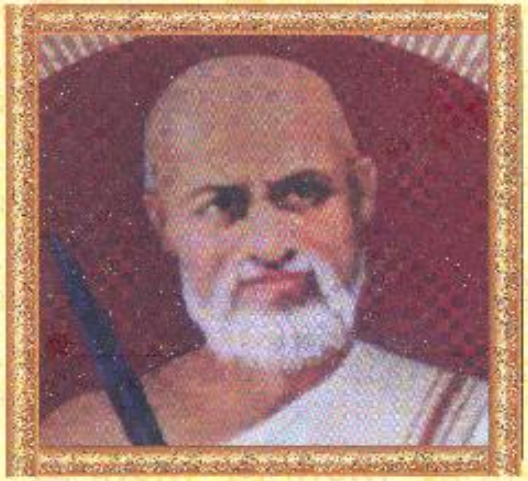
आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

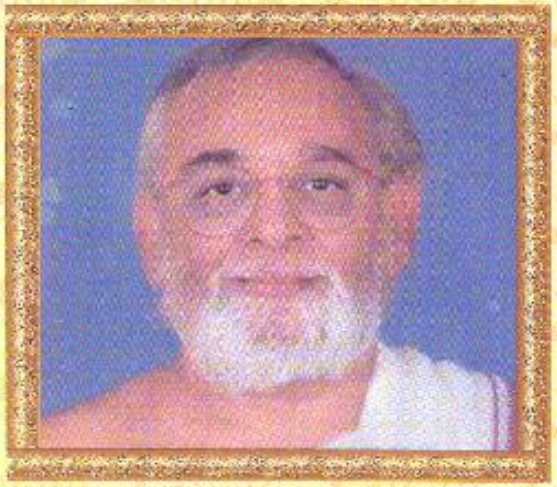
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

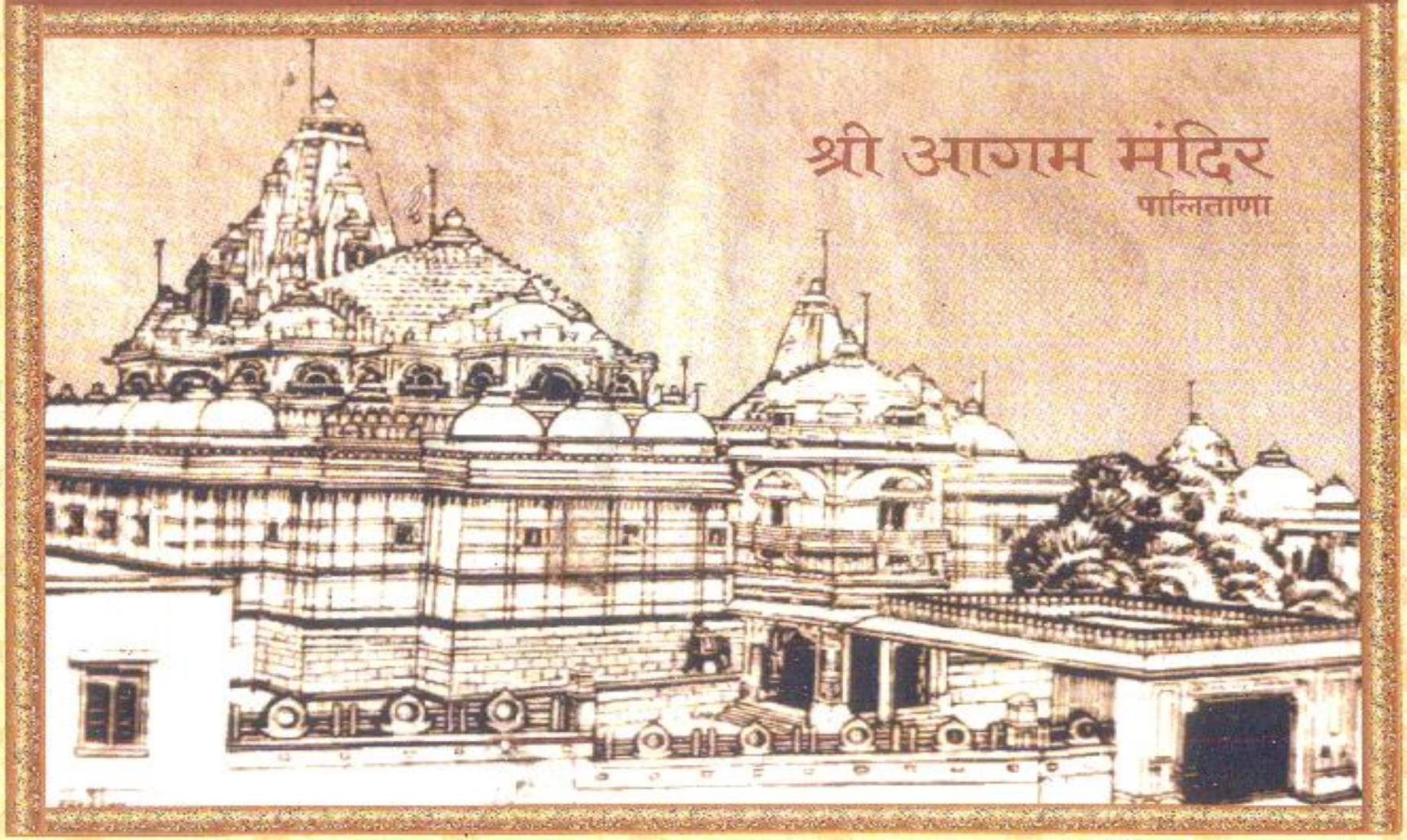
अभिनव-संकलनकर्ता

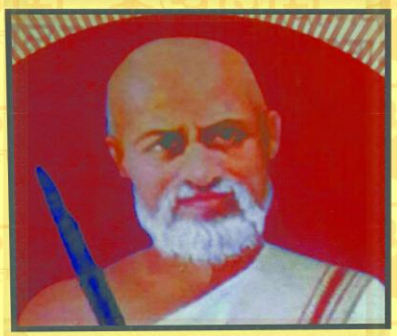


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४४

"नन्दीसूत्रं" मूलं एवं वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

